जैन-ग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह

(अपभ्रंश जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह)

द्वितीय भाग

सम्पादक

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

प्रकाशक

वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी

२१ दरियागंज, दिल्ली

प्रथम सस्करण ज्येष्ठ शुक्ला १४ वी० नि० स० २४८९

जून सन् १९६३, वि० स० २०२०

प्रकाशक
वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी
२१ दरियागज, दिल्ली

मूल्य १२ रुपया
प्रथम सस्करण
कापी ५००

मुद्रक
रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस,
२३, दरियागज, दिल्ली-६

Vir-Sewa Mandir Granthmala

Jain Granth Prashasti Sangrah

PART II

Edited by

Pt. Parmanand Jain Shastri

Published by

Vir Sewa Mandir Society

21 DARYAGANJ, DELHI

Jetha, Shukla 14, Vira N. Samvat 2489, Vikram Samvat 2020

June 1963

Publisher
VIR SEWA MANDIR SOCIETY
21, Daryaganj, Delhi

PRICE Rs 12
FIRST EDITION
Copies 500

Printers
ROOPVANI PRINTING HOUSE
23, Daryaganj, Delhi

१. चंदप्पहचरिउ—कवियशः कीर्ति, लिपि सं० १५३०—ज्ञानभण्डार शाहगढ़।

२ कथा-ग्रन्थ, ब्रह्मसाधारण, लिपि स० १५०८ ज्ञानभण्डार, शाहगढ़।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत प्रशस्ति संग्रह पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इससे पाठकों को वीर-सेवा-मन्दिर के अनुसधान कार्य का आभास मिल सकेगा। इस ग्रन्थ मे अनुसन्धान मे सम्बन्ध रखने वाली सभी सामग्री को आकलन करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अधिक विलम्ब हो गया है, और उसका कारण प्रेस आदि की अव्यवस्था है। ग्रन्थ के तय्यार करने मे भी काफी समय और श्रम करना पड़ा है, और यह अनुसन्धत्सुओ के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होगा, क्योकि इसमें अपभ्र श भाषा के साहित्य की कृतियो और ग्रन्थकर्ताओ के परिचय तथा समयादि पर प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना पं० परमानन्द शास्त्री ने बड़े परिश्रम से लिखी और वह प्रमेय बहुल है तथा उपयोगी परिशिष्टो से अलंकृत है।

सबसे महत्व की बात यह है कि इस ग्रन्थ का प्राक्कथन डाक्टर श्री वासुदेव जी शरण अग्रवाल हिन्दु विश्व विद्यालय बनारस ने लिखा है, और प्रिफेस (PREFACE) दिल्ली विश्वविद्यालय के रीडर डा० श्री दशरथ शर्मा, डी० लिट् ने अग्रेजी भाषा मे लिखा है। इससे ग्रन्थ की महत्ता और भी अधिक बढ गई है। मैं सस्था की ओर से उन दोनो ही मान्य विद्वानो का बहुत ही आभारी हूँ। आशा है विद्वान, विश्वविद्यालयो, लायब्रेरियो और कालेजो के पुस्तकालयाध्यक्ष इस ग्रन्थ को मंगाकर उससे अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करेगे।

जयभगवान जैन, एडवोकेट
मंत्री—वीर-सेवा-मंदिर सोसाइटी
२१ दरियागज, दिल्ली

सम्पादकीय

वीर-सेवा-मन्दिर एक ऐतिहामिक सस्थान है, जो एक जैन रिसर्च इन्स्टिट्यूट के रूप मे प्रसिद्ध है। उसके उद्देश्यो मे पुरातन-प्रवन्धो का अन्वेषण, पुस्तकालय का सकलन, पुरातन जैनाचार्यों, राजाओ, विद्वानो और भट्टारको आदि के सम्बन्ध मे ऐतिहामिक तथ्यो को प्रकाशित करना भी शामिल है। वीर-सेवा मन्दिर सोसाइटी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के अनुरूप ही कार्य कर रही है। उनके सामने 'जैन साहित्य का इतिहास, भगवान नेमिनाथ के समय से लेकर अव तक ऐतिहासिक प्रसाधनो का मकलन, सयोजन और महत्व की सामग्री के प्रकाशन की ओर रहा है। परन्तु समाज का पूर्ण सहयोग न मिलने से वह जैसा चाहिये था वैसा कार्य सम्पन्न करने मे समर्थ न हो सका। पर जितना भी कार्य कर सका वह सव उसकी प्रगति का ससूचक है, उसने अपने प्रतिष्ठित और ख्याति प्राप्त अनेकान्त पत्र द्वारा ऐतिहामिक साहित्यिक एव पुरातत्त्व मम्बन्धी अनुसन्धानात्मक सामग्री को प्रकाशित किया है और कर रहा है

आवश्यकता

जैन साहित्य और सस्कृति का इतिहास लिखने के लिये जिस तरह शिलालेख, ताम्रपत्र, पुरातात्त्विक अवशेष और भूउत्खनन से प्राप्त विविध सभ्यताओ के अलकरणो से वडी सहायता मिलती है। अतएव अनुसधान कर्ताओ को विविध भाषाओ के साहित्य से साहाय्य मिलता है। अतएव ऐतिहासिक अनुसन्धत्सुओ के लिये भारतीय साहित्य के परिशीलन, मनन, और अनुसधान करने की महती आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि अपभ्रश का जैन साहित्य, जो दिल्ली, ग्वालियर, जयपुर, व्यावर, वम्वई, कारजा, झालरापाटन और नागौर आदि के विवध जैन ग्रन्थागारो मे सुरक्षित है उनके ग्रन्थो के आदि अन्त भाग का सग्रह कर ऐतिहासिक प्रशस्तियो को प्रकाशित किया जाय। और उनकृतियो के परिचयादि के साथ ग्रन्थकर्ता विद्वानो के सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हुए उनके समय की भी चर्चा की जाय। जिससे हिन्दी के आदिकाल पर प्रकाश पड सके, और हिन्दी के उद्गम एव विकास को भी अच्छा सकेत मिल सके। साथ ही, विविध उप जातियो द्वारा समय समय पर निर्माण कराये गये और प्रति लिपि कराने वालो का इतिवृत्त भी अकित हो सके। और उस समय की धार्मिक जागृति तथा सामाजिक रीति-रिवाजो का भी परिज्ञान हो सके। इन्ही सब कार्यो को ध्यान मे रखते हुए अपभ्रंश प्रशस्यिो के संकलन का विचार स्थिर किया गया।

वीर सेवा मन्दिर की इस योजना को कार्य मे परिणत करने के लिये मैं मई सन् १९४४ मे सरसावा से जयपुर गया, और वहाँ के प्रतिष्ठित विद्वान् प० चैनसुखदास जी और महावीर तीर्थक्षेत्र कमेटी के मंत्री रामचन्द्र जी खिन्दुका आदि महानुभावो के सहयोग से आमेर का भट्टारकीय भडार जयपुर लाया गया, और सेठ वधीचन्द जी के कमरे मे रक्खा गया। मैंने बडे परिश्रम से उन गट्ठडो को खोला और ग्रथो को निकाल कर उनके आदि अन्त भाग का सकलन शुरु कर दिया, परन्तु बीच मे ही मरसावा लौटना पडा, जिमसे पूरा भडार न देखा जा सका, जितना देखा और नोट कर सका उसका परिचय अनेकान्त वर्ष ६ किरण ११-१२ के पृष्ठ २७२ मे 'जयपुर मे एक महीना' नाम के लेख मे प्रकाशित कर दिया। और बाद मे सस्कृत ग्रन्थो की प्रशस्तियो का सग्रह भी प्रकाशित हो हो गया। अपभ्रश प्रशस्तियो के सकलित मैटर की प्रेस कापी तय्यार की गई, और अन्य अपभ्रश ग्रन्थो को मगवा कर उनकी भी प्रेस कापी करली गई, प्रकाशन का विचार किया गया किन्तु आर्थिक कठिनाई ने उसे कार्य रूप मे परिणत न होने दिया।

सन् १६५६ में अपभ्रंश प्रशस्तियो को अनेकान्त की प्रत्येक किरण में एक फार्म रूप से प्रकाशित करने का निश्चय डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुर की सम्मति से किया गया, और १४ वे वर्ष के अनेकान्त मे प्रशस्ति सग्रह के १० फार्म छपगए, उसके बाद आर्थिक कठिनाई आदि के कारण पत्र का प्रकाशन स्थगित हो गया, और मेरा भी सस्था से सम्वन्ध विच्छेद हो जाने से प्रशस्तियो का प्रकाशन अधूरा ही रह गया। किन्तु सन् ६० मे उसे प्रकाशित करने का पुन: निश्चय हुआ, और वाबू जयभगवान जी एडवोकेट, मत्री वीर-सेवा-मदिर सोसाइटी ने मुझ से प्रशस्तियो का मैटर देने तथा प्रस्तावना लिखने की प्रेरणा की। मैंने मैटर देने और प्रस्तावना लिखना स्वीकृत कर लिया, मैटर दे दिया गया, परन्तु सस्था मे योग्य विद्वान के अभाव मे प्रशस्तियो का प्रकाशन दशरा-मशरा हुआ, कुछ मैटर भी प्रेस वालो से गुम गया और एक प्रशस्ति के अन्त का भाग भी प्रकाशित नही हुआ, फिर भी दूसरी प्रशस्ति प्रकाशित हो गई, श्रावक-श्राविकाओ के नाम वाले परिशिष्ट का पूरा चार पेज का अन्तिम मैटर भी खो गया। मैने उसे पुन तय्यार करके दूसरे प्रेस मे छपवाया, उसमे भी टाइप की विभिन्नता रही। प्रस्तावना का मैटर भी प्रेस में दे दिया गया, परन्तु प्रेस में कार्याधिक्य के कारण ५-६ महीने यो ही पड़ा, रहा, बाद मे प्रेरणा पाकर १०-१२ दिन मे ८ फार्म छाप दिये गए और फिर कम्पोज रुक गया, इस तरह वड़ी कठिनना से छपाई का कार्य पूरा हो पाया है। यही सब उसके प्रकाशन मे विलम्ब का कारण है।

आभार प्रदर्शन

मुझे यह लिखते हुए बडी प्रसन्नता होती है कि श्रीमान् डा० वासुदेव शरणजी अग्रवाल हिन्दी विश्व-विद्यालय बनारस ने प्राक्कथन लिखने की मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया और मित्रवर प० दरवारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य एम० ए० को प्राक्कथन लिखवा कर अनुगृहीत किया, और वह मुझे तत्काल प्राप्त हो गया मैं इसके लिये डाक्टर साहब का और कोठिया जी का बहुत ही आभारी हूँ। साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के रीडर श्रीमान् डा० दशरथ शर्मा डी० लिट् का भी मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होने मेरी प्रार्थना को मान्य करते हुए अग्रेजी भाषा में प्रफेस लिख देने की कृपा की।

इनके अतिरिक्त बा० जयभगवान जी एडवोकेट पानीपत, बा० छोटेलाल जी सरावगी कलकत्ता, श्री प० जुगलकिशोर जी मुख्तार दिल्ली, पं० दीपचन्द जी पाण्डया केकडी, डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल जयपुर, और डा० प्रेमसागर जी का आभारी हूँ, जिन्होने उचित सलाह-मशवरा दिया।

शास्त्र समुद्र अत्यन्त विशाल और गभीर है यद्यपि मैंने पूरी सावधानी वर्ती है फिर भी मेरे जैसे अल्पयज्ञ का स्खलित हो जाना संभव है। आशा है विद्वज्जन प्रस्तावना का अध्ययन कर मुझे उस सम्वध मे विशेष जानकारी देकर अनुगृहीत करेगे।

परमानन्द जैन शास्त्री

REVIEW

It was with great interest that I went through the "Jaina-grantha-prasasti-sangraha" edited by Pandit Paramanand Jain Shastri The work includes 122 prasastis from Apabhramsa work by Jain authors

The prasastis are a mine of historical information. They are important source material because most of them are from unpublished works. The author has taken pains to collect all availadle information, about the poets and their patrons An exhaustive introduction of over 140 pages and 11 appendices make the work useful even to a general student of history, who cannot read Praorits, particularly Apabhramsa I congratulate Pandt Parma-Nand Shastri on his excellent performance

L. G. PARAB
Librarian—Central Archaeological Library
Janpath, New Delhi-11.

New Delhi, the 23rd July, 1963

प्रस्तावना का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	३१	१३ (आगे)	और युद्धकाण्ड	८१	२२	कुहाकवि	कुकवि]
			मे २१	८६	—	मणिपुर	जोयणिपुर
४७	१६	प्राति	प्राप्ति	७५	८	अपनी	अपनी रानी
५७	१७	सुभद्रा (के आगे)	धारिणी	८९	३६	णेमिमिणाह चरिउ	णेमिणाह चरिउ
६३	२	१०५२ मे या उसके	१०५२ से ११००	९२	३०टि०	सरदादर	सरदार
		एक दो वर्ष पूर्व ही	के मध्य	९२	३४	इही	इन्ही
७५	३५	रत्नवंश	राजवंश	१२८	३	औव	और
८०	२६	उडा	बडा	१२८	१०	पद्मवती	पद्मावती
७८	३०	जायस या जैसवाल	लबकचुक	१३४	४	मणिकचन्द	माणिकचन्द
७९	४	उभयश्री	उदयश्री				

प्राक्कथन

श्री परमानन्द जी जैन द्वारा लिखित इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का मैं स्वागत करता हूँ। इसमे ११४ अपभ्रंश हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रशस्तियो और पुष्पिकाओ का खोजपूर्ण सग्रह किया गया है। अपभ्रश साहित्य हिन्दी के लिए अमृत की घूट के समान है। इसका कारण स्पष्ट है। भाषा की दृष्टि से अपभ्रश भाषा प्राचीन हिन्दी का एक महत्वपूर्ण मोड प्रस्तुत करता है। जब प्राकृत भापा के अति उत्कर्ष के बाद जनता का सम्पर्क जनपदीय सस्कृति से हुआ और उसे साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई, तब अपभ्रश भाषा साहित्यिक रचना के योग्य करली गई। सप्तम शती के आचार्य दण्डी ने अपने युग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि आभीर आदि अनेक जातियाँ, जो राज्याधिष्ठित होकर भारत के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थी, उनकी जो उच्चारण क्षमता थी उनसे अपभ्रश भापा का जन्म हुआ और उसे काव्य स्वरूपो मे मान्यता प्राप्त हुई। याद होता है कि दण्डी से भी ३०० वर्ष पूर्व भापा सम्बन्धी यह तथ्य भारतीय वाङ्मय का अग बन गया था, क्योकि पश्चिमी भारत मे आभीरो के व्यवस्थित राज्य का प्रमाण नागगुप्तयुग के लगभग मिलता है। विक्रमोर्वशीय मे जो अपभ्रश भाषा के मजे हुए ललित छन्द पाए जाते हैं उन्हे कुछ विद्वान् कालिदास की रचना मानते है और कुछ नही मानते हैं। विक्रमोर्वशीय के नवीनतम सशोधित सस्करण के सम्पादक श्री वेलणकरने उन्हे महाकवि कालिदास की रचना मानकर अपने सस्करण मे स्थान दिया है। हमारी धारणा हैं कि इस विषय मे अपने किसी पूर्वाग्रह को स्थान न देकर जो पारस्परिक अनुश्रुति है, उसे ही मान लेना ठीक है। महाकवि कालिदास ने सस्कृत और प्राकृत मे जहा इतनी प्रभूत रचना की, वही उन्होने विशेप रचना के अनुसार अपभ्रश मे भी कुछ छन्द लिखे हो तो इसमे कोई आश्चर्य नही, कहने का तात्पर्य यह कि अपभ्रश की जो परम्परा इस प्रकार प्रारम्भ हुई, उसे इस प्रकार वल मिलता गया और ८वी शती के लगभग तो वह साहित्यिक रचना का भी एक प्रमुख माध्यम ही बन गई। सिद्धो की पद रचना अपभ्रश मे ही हुई। आगे चलकर नाथो ने भी इसी परम्परा को अपनाया। इधर जैन आचार्यों ने अपभ्रश भाषा के माध्यम को अधिक उदार मन से ग्रहण किया। क्योकि लोक मे विचरण करने के कारण वे जन सम्पर्क के अधिक निकट थे। ११वी शती मे लिखे गए 'कण्ठाभरण' नामक अपने ग्रन्थ मे भोजदेव ने अपभ्रश के कुछ और विकसित रूप का उल्लेख करते हुए उसे अपभ्रश कहा है। आगे चलकर उसी का रूप अवहट्ट भाषा हो गया, जिसका उल्लेख १५वी शती के आरम्भ मे विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता मे किया है। वस्तुत विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका ऐसे ग्रन्थ है जिनमे एक ओर अवहट्टभापा और दूसरी ओर मैथिली इन दोनो का प्रयोग मिलाजुला किया गया है। विद्यापति से पहले ही लगभग ३०० वर्षों तक यही क्रम देखने मे आया है। अर्थात् एक ओर अपभ्रश अवहट्ट के माध्यम से ग्रन्थ रचना होती थी और दूसरी ओर प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन व्रज, प्राचीन अवधी और प्राचीन मैथिली भाषाओ मे स्वच्छन्द ग्रन्थ रचना हो रही थी। उनका अन्वेषण हिन्दी के आदिकालीन इतिहास का उज्ज्वल अध्याय है।

अपभ्रश एवं अवहट्ट भाषा ने जो अद्भुत विस्तार प्राप्त किया उसकी कुछ कल्पना जैन भडारो मे सुरक्षित साहित्य से होती है। अपभ्रश भाषा के कुछ ही ग्रन्थ मुद्रित होकर प्रकाश मे आये है। और भी सैंकड़ो ग्रन्थ अभी क भडारो मे सुरक्षित हैं। एव हिन्दी के विद्वानो द्वारा प्रकाश मे आने की वाट देख रहे हैं। अपभ्रश साहित्य ने हिन्दी न केवल भाषा रूप साहित्य को समृद्ध वनाया, अपितु उनके काव्यरूपो तथा कथानको को भी पुष्पित और पल्लवित

किया । इन तीनो तत्त्वो का सम्यक् अध्यापन अभी तक नही हुआ है । जो हिन्दी के सर्वांगपूर्ण इतिहास के लिए आवश्यक है । वस्तुत अपभ्रश भापा का उत्तम कोष बनाने की बहुत आवश्यकता है, क्योकि प्राचीन हिन्दी के सहस्रो शव्दो की व्युत्पत्ति और अर्थ अपभ्रश भाषा मे सुरक्षित है । इसी के साथ-साथ अपभ्रशकालीन समस्त साहित्य का एक विशद इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता अभी बनी हुई है ।

जब हम अपभ्रश के साहित्य की चर्चा करते हैं, तो हमारा मन उन अनेक ग्रन्थो की ओर जाता है जो ग्रन्थ भडारो मे बडी सावधानी से अभी तक सुरक्षित रक्खे गये हैं । उन ग्रन्थो का लेखन काल विक्रम की दूसरी सहस्राब्दि है ।

जैन लेखक अपने ग्रन्थो की प्रशस्ति अर्थात् आरम्भिक भाग मे और पुष्पिका अर्थात् अत के भाग मे देवता नमस्कार आदि के अतिरिक्त आचार्य, गच्छ, शिष्य परम्परा, सम सामयिक शासक, अपने आश्रयदाता, उसके परिवार, इष्टपूर्ति, धार्मिक कार्य, तिथि, सम्वत्, स्थान एव लेखक-पाठक के सम्बन्ध मे बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी लिख देते थे । वह सब इतिहास और वाड्मय के लिए महत्वपूर्ण है । जैन भडारो से ओत-प्रोत सस्कृत ग्रन्थो की भी इस सवध मे ऐसी ही स्थिति है । जैन सस्कृत हस्तलिखित ग्रथो की प्रशस्तियो के दो सग्रह पहले प्रकाशित हो चुके है । अब अपभ्रश हस्तलिखित ग्रथो मे उसी प्रकार का यह सग्रह प्रकाशित हो रहा है । इसकी सामग्री भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जैसा कि पाठक देखेगे कि इसमे लगभग १४० पृष्ठो मे प्रस्तावना के रूप मे विद्वान् सम्पादक ने अनेक ऐतिहासिक तथ्यो का सग्रह किया है और लगभग १५० पृष्ठो मे ११४ हस्तलिखित ग्रन्थो से काव्यबद्ध अपभ्रश प्रशस्तियो का सग्रह दिया है । अन्त मे प्रशस्तियो मे आये हुए आचार्य नाम, श्रावक नाम, सघ-गण-गच्छ नाम, एव ग्रथ नामो का उपयोगी सग्रह किया है । इनमे विशेषत श्रावक-श्राविकाओ के नाम अध्ययन के योग्य हैं, क्योकि वे अपभ्रश और अवहट्ट भाषा रूपो के परिचायक हैं । यदि अपभ्रश और प्राकृत ग्रन्थो एव सस्कृत ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे आये हुए समस्त स्त्री-पुरुषो के नाम रूपो पर अलग एक शोधनिबन्ध ही लिखा जाय तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा । श्री परमानन्द जी ने तिल-तिल सामग्री जोडकर ऐतिहासिक तथ्यो का मानो एक सुमेरु ही बनाया है । मुझे उनका यह परिश्रम देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।

वासुदेवशरण अग्रवाल
आचार्य, भारती महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

२० जनवरी १९६३

Preface

I have enjoyed going through the *Jaina-grantha-prasasti-sangraha*, Vol. II, edited by Pandit Paramanand Jain Shastri. Even the bare text of the 122 *prasastis* presented here would have been highly welcome to orientalists. students of Indian languages, literature, history and culture. With the learned and comprehensive introduction appended to them by the Editor, their value has become much greater, for he throws therein considerable light on important questions like (a) the General Value of the *Prasastis*, (b) Apabhramsa, its meaning and development as a medium of literary expression, (c) Early Indian languages dialects and their inter-relations, (d) Extant Apabhramsa literature and its varieties, and (e) Apabhramsa writers and their books described in the Collection The information in the last section is only about Digambara Jaina writers But a list of all the available Apabhramsa works, Jaina as well as non-Jaina, which the Editor has given, should give the reader a fairly comprehensive idea of the subject and encourage him to pursue his studies in the direction he chooses.

Under all the heads, just enumerated, the Editor has put in a good deal of new and very often new information, as a result of more than twenty years of his painstaking research in Jaina Bhandars But I personally have been interested most in the last two sections. Dealing with Apabhramsa literature under the categories, (1) *Mahakavya*, which consists of 8 *sandhis* or more, each comprising generally 15 to 30 *kadavakas*, (2) *Khandakavya*, which being concerned with some special aspect of life, is naturally of a moderate size, (3) *Sandhikavya* which consists only of one canto, (4) *Katha* or story, (5) *Muktaka-kavya* or independent verses in the form of *dohas* generally, (6) *Rupa Ka-kavya* or plays, (7) *Raso* and (8) *Chaichari*, he has criticised incisively but convincingly some theories of earlier writers and given a well-balanced view of the nature and objectives of Jaina poetry He has also taken a rapid survey of early books on Apabhramsa metrics and grammar and added a few remarks about the nature of Apabhramsa used in Sanskrit plays.

The final section of the Introduction, pp. 41-136, begins with the account of Svayambhu's two works, *Paumachariu* and *Ritthanemichariu* (nos 1 and 2 of the *Sangraha*), one dealing with the life of Rama and the other with that of the Jaina *tirthamkara*, Aristanemi, Both the works had to be completed by Svayambhu's son, Tribhuvanasvayambhu and can stand comparison with the best *kavyas* in Sanskrit or in any other language for their graphic description of scenes of nature as well as battles, successful depiction of various poetic sentiments and aesthetically controlled use of figures of speech

Originally a Brahmana, Svayambhu had become a Jaina, and most of his literary work was done at Manyakheta where he was patronised by Dhananjaya and Dhavalaiyya Tribhuvanasvayambhu mentions Vandaiyya as his patrons. These three patron were, probably, related to one another.

In the 104th *sandhi* of the *Ritthanemicharıu* is a very valuable list of 70 earlier poets, Jaina as well as non-Jaina [2]

The 3rd and 17th *prasastis*, respectively, are of Nayanandin's *Sudamsanachariu* and *Sayaḷa-vihi-vihana-kavya*, of which the former is a beautiful *khandakvya* written at Dhara in V 1100 (1043 A D) in the reign of Bhoja Paramara, and the latter a religio-philosophic work in verse, which in its *prasasti* mentions about 33 earlier poets [3]

Padmakirti's *Parsavapurana* (*prasasti* No. 4) is again a *khandakavya* written in V 999 (942 A D) Later than it by nearly 45 years (V. 1044) is the *Dharmapariksa* of Harisena who belonged to Chittor but wrote the work at Achalapura where he had gone to transact some state business.

Far more poetic than these is Vira's *Jambusvamicharu* (*prasasti* No 6) which like, No 3, was written in Malwa in the reign of Bhoja Vira's father, Devadatta, also must have been a good poet. He restored the *Varangacharita* and *Ambadevi-rasa*, both of them unfortunately unavailable now, The *chariu* deserves being published for its beautiful poetry and vigorous description and also for popularising further the story of the last *kevalin*, Jambusvamin Jhunjhuna, the place where the work was copied out in V 1516, should in my opinion be identified with Jhunjhanu in Shekhawati, Rajasthan

The *prasastis* No 7 and 8 are, respectively, of Srichandra's *Kathakosa* and *Ratnakarandasravakachara*, of which the former deals with *kathas* relating to various Jaina *vratas* and the latter is a good explanatory commentary on Svami Samantabhadra's *Ratnakaranda*. The *Sravakachara* was completed in V 1123 during the reign of the Chaulukya ruler, Karna This being so, I am not sure whether the Editor is right in assigning the composition of Srichandra's other work, the *Kathakosa* to a period before 1052, *i e* , not less than 71 years before the composition of his other work It may be well to remember also that according to the *prasasti* of the *Kosa*, Srichandra was not a contemporary of Mularaja's courtier, Sajjana, but of his son, Krsna, who at the time of writing the work, was old enough to have three sons (who are described as proficient in the knowledge of *dharma* and *karma*) and also four daughters. Thus it would probably be best to assign its composition to the end of the 11th Century

The *Sukumaracharita* of Sridhara (*prasasti* No 9) deals with the well-known story of Sukumara *muni* As the work was composed in V 1208 in the reign of Govinda-chandra, I feel like identifying the ruler with Govindachandra Gahadavala of Kannauj who ruled from V. 1171 to V 1212

The 10th *prasasti* is of Dhavala's *Harivamsa-purana* It is a well-written *kavya*, the utility of which to historians of Apabhramsa literature is increased by its list of earlier poets.[4] The Editor puts him after V 999 on the basis of the poets he mentions.

Prasastis 11-13 are of works written by Amarakirti His *Chhakammovaesa* was written at Godhra during the reign of Kanha-narendra, a son of Vandiggadeva, in V 1247 Another of his works, the *Nemmahacharu* was written in V 1244 It is known from various sources that Godhra was a strong principality of *Mahitata*, which defied more than once the might of the Chaulukyas of Anahillapattana [5]

The 13th and 18th *prasastis*, respectively, are of Laksmana's *Jinadattacharita* and *Anuvayarayanapaiva* Of these the former, a beautiful *kavya* setting forth the ideal of real love in the form of Jinadatta's story, was written in V 1275 (1218 A D), at *Bilarampur* in the present Etah district to which the poet and his relatives had fled after the sack of Tribhuvanagiri (Tahangarh)[6] by the Muslims in 1196 A D (V 1253) The *Anuvayarayanapaiva* deals with *Samyagdarsana* and the twelve *vratas* of a Jaina householder It was written in V 1313 (1256 A D), at Raybaddiya which was then ruled by the Chauhan king, Ahavamalla [7] The poet was patronised by Ahavamalla's minister, Kanha, of the Lambakanchuka or Lemchu family.

The *Sulochana-charita* of Devasena-gani (*prasasti* No. 14) was composed in the city of king Mammala[8], probably in V. 1132, and is practically an Apabhramsa rendering of Kunda-kunda's work of this name. Of the earlier poets he mentions Valmiki, Vyasa, Kalidasa, Bana Mayura, Haliya, Govinda, Chaturmukha, Svayambhu, Puspadanta and Bhupala

The *Pajunnacharia* was begun by Siddha and completed by Simha. Siddha mentions Brahmanavataka, its ruler Ballala, son of Ranadhoritya, and Ballala's servant, the Guhilaputra Bhullana Brahmanavataka is known to have been in *Nirmada-mandala*[10] This Ballala could have been, as surmised by the Editor, Ballala of Malwa, whose servant the Guhilaputra Bhullana might then be regarded as the man put in charge of the Brahmanavataka area

The 16th *prasasti* is of the *Parsvanathacharita* of Devachandra which was composed at Gundijjangara (the location of which is uncertain).[11] The work might have been written in the 10th or 12th century A D., our dating depending in this case on the identification of Devachandra's *guru*, Vasavachandra.

The author of the *Bahubalicharita* (*prasasti* No. 19) was Dhanapala He wrote it in V. 1454 at the instance of Vasadhara, a minister of the Chauhan ruler Ramachandra, of Chandwar The poet himself belonged to Palanpur and was a disciple of Prabhachandra who is said to have pleased Mahmudshahi at Yoginipura This Mahmud should in my opinion be identified with Muhammad bin Tughlaq, as Prabha Chandra ascended the *gaddi* at Delhi before V. 1416 (1359).

The *Chandraprabhacharita* of Yasahkirti was written at Unmattagrama in Gurjaradesa. This Yasahkirti appears to be different from Bhattaraka Yasahkirti, four *prasastis* of whose works (Nos 21-24) have been included in the *Sangraha*. The *Pandavapurana* was written in V 1497 at the instance of Hemaraja who is described as a *mantrin* of "Suratana Mumarakha" (Mubarak Shah). But as Saiyyad Mubarak Shah was no longer on the throne in 1440 A D. or V 1497, Are we to suppose that by that time Hemaraja had retired from ministership ?

Yasahkirti's *Harivamsapurana* was written in V. 1500 (1443 A D) at Indaura in the reign of Jalal Khan who should be identified with the Mewati chief of this name who gave plenty of trouble to Saiyyad Mubarak Shah and was besieged by the latter at "Andwar" (*Tarikh-i-Mubarakshahi*, p 211). Elsewhere we find Indore mention as a *pargana* of Tijara (Mewat)[11a] Nos 23 and 24 are *vrata-kathas* Yasahkirti, as pointed out by the Editor, was one of the most influential religious figures of his time

Prasasti No 25 is of Sridhara's *Parsvanathacharita* written in V. 1189 at the instance of Nattula Sahu of Dhilli which was then being ruled by Anangapala Tomara Another of his work was the *Vardhamanacharita*, the *prasasti* of which has been given in an appendix to the *Sangraha*. Both these *prasastis* contain valuable material about the economic and political conditions of that period[12]

Prasasti No 26 is of Halla's *Srenikacharita* which was written before V. 1471. Halla wrote also the *Mallinaha-kavya* (*prasasti* No. 104). He was patronised by Amarasimha, a minister of the Chauhan chief Bhojaraja of Karahal, a place about 13 miles from Etah.

The *Bhavisattakaha* (*prasasti* No. 27) was written by Sridhara who was probably different from Sridhara, the author of the *Parsvanathacharita*. He wrote his work in V. 1230 (1173 A D).

Prasastis 28-29 and 100 are of works by Tejapala. They were written at Sripatha (not Sriprabha) of the Bhadanaka-desa, which was then ruled by Daud Shah Auhadi. I have found this reference extremely important, because it has helped me in locating definitely Bhadanaka

which, thanks to Muslim historians and Prakrit phonology, turned into Bhayanaya and then into Bhayanaa and Bayana[13] The poet's *Varangacharita* was written in V 1507 and the *Pasapurana* in 1515 V

The 30th *prasasti* is of the *Sukumalacharia of Purnabhadra* who flourished before 1632 A D Much more poetic than it is the *Neminahachariu* of Laksmana (*prasasti* No 31) which must have been writren before V 1510 *Prasastis* No 32 and 33 are of two works by Manikyaraja Of these the *Amarasenacharita* was written at Rohtak in V 1576 (1519 A D) The second work, the *Nagakumaracharita*, was written in V 1579

Prasastis Nos 35 49, 99 and 106 are of works by Raidhu, one of the best Apabhramsa poets of this later period He belonged to the *Pomavai-Poravada-kula* and passed much of his time at Gwalior which was during his days ruled first by Dungarsimha of the Tomara dynasty and then by his son, Kirtisimha

Prasastis No 50-64 are of *kathas* by Gunabhadra. He lived at Gwalior in the sixteenth century of the Vikrama era.

Prasasti No 65 is of an anonymous *Anantavratakatha*, and the 66th of the *Aradhanasara* by a poet named Vira The 67th *prasasti* is of an anonymous *Harisenachariu*

The 68th *prasasti* is of Haradeva's allegorical poem, the *Mayanaparajaya* in which Jinaraja is represented as defeating Kamadeva and marrying *Mukti-kanya* The poet flourished before V 1551.

The *Siddhachakra-kaha* and *Jinarattivihana* (Nos 69 and 105) are by Narasena He might have been a poet of the fourteenth century

The *Anatthamiyakaha* (No 70) was written by Harichanda and is directed against *ratribhojana* (taking food at night) It might have been written in the 15th century

The *prasastis* 71-73 are of works by Vinayachandra The *Chunadirasa* is a short but exquisite piece written at Tribuvanagadha in the Ajayanarendra-vihara The *Nirjharapanchamirasa* is another *katha* in the form of a *rasa* The third work is the *Kalyanaka-rasa* Dr Prem Sagar has put Vinayachandra in V 1576 Actually, however, as the Editor of our *Sangraha* points out, he cannot be put later than the 14th century

The 75th *prasasti* is of Lakhu's *Chandana-chhatthikaha*, and the *prasastis* No 76-77 of works by Balachandra who probably lived in the thirteenth century

Prasastis No 78-80 are of various *kathas* No. 81 is the *Anupeharasa* by Jalhiga and No 82 of *Anuvekkha-rasa* by Yogadeva Nos 83-84 are also similar works

Prasastis 85-86 and 107 are of works by Srutakirti, who lived in the middle of the sixteenth century Of these the *Harivamsapurana* was written in V. 1552 Its copy from Jorhat in Damoh District mentions its governor, the Great Khan Bhoj Khan, under whom the affairs at Jorhat were managed by Soni Shri Isura The *Paramestiprakasa-sara* was writteu in V 1553 during the reign of Nasiruddin of Malwa and the Yogasara in V 1552

Mahindu wrote the *Santinaha-chariu* (No 87) in V 1587 during the reign of Babar Nos 88, 108 and 109 are *prasastis* of the works of another prolific Apabhramsa writer, Bhagavatidasa of Buria (Ambala District) His *Miyankalekha-chariu* was written at Hissar in V 1709. His Apabhramsa brings us fairly near Hindi, though he was a good scholar of Sanskrit, Prakrit as

well as Apabhramsa His works were written at Buria, Dilli, Agra, Hissar, Kapisthala, Siharadi and Sankasa and he lived on at least up to V. 1712.

The 89th *prasasti* is of Vijayasimha's *Ajita-purana* written in V 1505 and the *prasastis* 90-98 of 9 works by Brahma Sadharana who mentions himself as a disciple of Narendrakirti

The 101st *prasasti* is of Damodara's *Siripalacharıu* The writer was a disciple of Bhattaraka Jinachandra

Oswal's *Pasacharıu* (No 102) was written in V. 1479 (1422 A D) in the reign of Chahamana Bhoja of Karahala at the instance of Lonasimha whose family had been responsible for much of the good literary work done at Karahala even earlier. The *prasasti* is thus of great importance for literary and political history

Thakur's *Santinaha-charıu* (No 103) was written in V. 1652 when Akbar ruled at Delhi and Mansingh at Amer The work gives a good genealogy of the Sarasvati-gachchha The poet was a disciple of Visalakirti.

Appendix 1 has 6 *prasastis* of works already printed, and Appendix 2 of 3 important *lipi-prasastis* Of these latter the first *prasasti*, which is dated in V. 1521, throws important light on the political as well as cultural set-up of Gwalior. The second *prasasti* is of V 1530. and the third of V. 1607.

The three *prasastis* in Appendix 3 are of *Rohinivihana-katha* of Devanandi, *Vaddhamana-charıu* of Sridhara, and *Neminahacharıu* of Damodara. All the three are important additions to the works of these authors already noted in the *Sangraha.*

One need hardly emphasise the importance of this collection of *prasastis* which opens a new door of research in the little-known political, social, cultural, religious and linguistic questions of a period of nearly eight hundred years. The publication of these works is the prime duty not only of the Jaina community but also of non-Jaina institutions of learning ' The Editor has discharged well his duty by bringing these priceless treasures to their notice; let others now perform theirs by spending like their ancestors a part of their money in popularising works and teachings which are their priceless heritage

Pandit Parmanand Shastri's work has been done with the greatest care and deserves the appreciation of every lover of oriental learning. We have seen also other *prasasti-sangrahas* but this one surpasses them, not of course in the amount of material it puts together, for a few bigger catalogues have been published, but in the way all this material has been systematised. He has thrown new light on the lives of some of the Apabhramsa poets represented here, mentioned also the earlier poets whose writings inspired them and shown a much better understanding of the Jaina theory of poetics than many other writers on the subject whose views have been largely influenced by the writings of western scholars. And even when one does not fully agree with him, one has to respect his views on account of the reasoned way in which they have been presented When future writers compile either the history of Apabhramsa or early Rajasthani and Hindi literatures, Shri Parmanand Jain Shastri's work will be found not only useful but indispensable.

'Navin-vasant'
E-4/1, Krishnanagar,
Delhi-31

Dasharatha Sharma
Reader, History Department
University of Delhi

Footnotes

1 See for instance his criticism of the view of Dr. Shambhunath Singh, pp. 22 ff.

2. See page 46 of the Introduction

3. See pages 50-1 of the Introduction I do not, however, find the name of Magha in the original *prasasti*.

4 See page 65 of the Introduction

5 *Prabandhakosa*, p. 107 101 Rajputs are said to have died fighting against him He was subdued by Vastupala The same story is found in the *Puratanaprabandhasangraha* which speaks also of the subduing of Godhra by Kumarapala

6 On the identification of Tribhuvanagiri with Tahangarh see our paper in the *Bharatiya Vidya*, (Hindi edition), Vol II, pp 62-66

7 For an assessment of the historical material in the *Anuratna-pradipa* see our paper the *Jainasiddhantabhaskara*, VII, part 1, p 11.

8 Can it be Mammalapuram founded by Mahamalla Pallava ?

9 The line containing the information is prosodically defective

10 In Ajayapala Chaulukya's reign, Brahmanavataka of Narmadamandala was governed by Vaijaladeva Chahamana

11 There is one Gundoch in former Jodhpur State The Editor thinks that it was somewhere in the south

11a See my paper "Revenue in 1680 A D", *Journal of Ganganatha Jha Research Institute*, Vol. IV p 72

12 Partly utilised by us in our *Early Chauhan Dynasties* in the chapter on Arnoraja

13 For my earlier view on the subject which has been adopted by some historians see *IC*, Vol. X and *Early Chauhan Dynasties*, pp. 91-92

प्रस्तावना

प्रशस्तियों की उपयोगिता

भारतीय इतिहास के अनुसधान मे जिस तरह शिलालेख, प्रशस्तियां, दानपत्र, स्तूप, मूर्तिलेख, ताम्रपत्र और सिक्के आदि उपयोगी होते है। उसी तरह पुरातन ग्रन्थो के उल्लेख, ग्रन्थकर्ता विद्वानों के ग्रन्थो के आदि अन्त मे दी हुई प्रशस्तिया और लिपि प्रशस्तिया भी उपयोगी होती है। इनमे दिए हुए ऐतिहासिक उल्लेखो से अनेक तथ्य प्रकाश मे आते है। इनकी महत्ता भारतीय अन्वेषक विद्वानो से छिपी हुई नही है। ये सब चीजे भारत की प्राचीन आर्यसस्कृति की समुज्ज्वलधारा की प्रतीक है और ये इतिहास की उलझी हुई समस्याओ एव गुत्थियो को सुलझाने मे अमोघ अस्त्र का काम देती है। इनमे पूर्वजो की गुण-गरिमा का सजीव चित्रण एव इतिवृत्त गुफित मिलता है।

ये महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रशस्तियाँ भारतीय साहित्यादि के अन्वेषण मे ग्रन्थकर्ता विद्वानों, आचार्यो और भट्टारको द्वारा लिखी गई होने से विद्वानो के समयादि का निर्णय करने मे अथवा वस्तुतत्त्व की जाच करने मे महत्वपूर्ण योगदान देती है और कही-कही प्रशस्तियो मे अकित इतिवृत्त उलझी हुई समस्याओ का केवल समाधान ही नही करते, प्रत्युत वास्तविक स्थिति को प्रकट करने की अपूर्व क्षमता रखते है।

अपभ्रश भाषा के ग्रन्थकारों ने ग्रन्थ निर्माण कराने मे प्रेरक अनेक अग्रवाल खडेलवालादि कुटुम्बो का परिचय दिया है, और उनके तीर्थयात्रा और मन्दिर निर्माण, मूर्ति निर्माण एव बिम्ब प्रतिष्ठा, राजमत्री, कोषाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी आदि पदो का भी उल्लेख किया है, जिनसे उस कालके जैनियो की धार्मिक परिणति और उदारता आदि के साथ तात्कालिक सामाजिक राजनैतिक वातावरण का भी पता लग जाता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी से अन्वेषको और इतिहासज्ञो के लिये इस प्रकार की ग्रन्थ प्रशस्तियाँ अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुई है। शिलालेखो और ताम्रपत्रादि से इनकी महत्ता किसी प्रकार कम नही है।

प्रस्तुत प्रशस्ति सग्रह मे अप्रकाशित ग्रथो की १०६ प्रशस्तियाँ दी गई है परिशिष्ट नम्बर एक में छ प्रशस्तिया मुद्रित ग्रन्थो की दी हुई है, और परिशिष्ट न० दो मे तीन लिपि प्रशस्तिया दी गई है, तथा परिशिष्ट न० ३ मे चार अप्रकाशित ग्रन्थो की प्रशस्ति दी है। इस तरह प्रशस्तियो की कुल सख्या एक सौ बाईस हो गई है। ये प्रशस्तियाँ जहा साहित्य और इतिहास की मौलिकता को प्रकट करती है—उसकी कडी जोडती है। वहाँ वे तात्कालिक सामाजिक एव धार्मिक रीति-रिवाज पर भी अच्छा प्रकाश डालती है अतएव उपलब्ध अपभ्रशसाहित्य का यह प्रशस्तियो का सग्रह विशेष लाभप्रद होगा। इनके अध्ययन एव सकलन से इतिहास का मूर्तिमान रूप प्रकट होता है, इतना ही नही, किन्तु ये जैन सस्कृति की उत्तम प्रतीक है। इन मे उल्लिखित ग्रन्थकर्ता, विद्वानो, आचार्यों, भट्टारको, राजाओं, राजमत्रियो, श्रावक-श्राविकाओ और उनकी गुरु परम्परा तथा सघ, गण-गच्छादिका वह परिचय भी प्राप्त हो जाता है। जिन पर से अनेक वशों जातियों, गोत्रो और गुरुपरम्पराओ, उनके स्थान, समय, कार्यक्षेत्र तथा लोगो की ज्ञान लिप्सा के साथ-साथ

तात्कालिक परिस्थितियो, राजाओ, महामात्यो, सेनापतियो और नगरसेठ आदि के इतिवृत्त सहज ही सकलित किये जा सकते है।

इस प्रशस्ति सग्रह मे अपभ्रश भाषा के ग्रन्थो की प्रशस्तियो का ही सग्रह किया गया है। ये सब प्रशस्तियाँ हस्तलिखित ग्रन्थो पर से समुद्धृत की गई है। यह सब सग्रह दिल्ली, जयपुर, आमेर अजमेर, व्यावर आदि स्थानो के जैन ग्रन्थ भडारो के ग्रन्थो पर से किया गया है, जिससे अपभ्रश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर से उसके उत्थान और पतन का क्रमवार इतिहास लिखा जा सके। ये प्रशस्तिया अपभ्रश भाषा के इतिहास सकलित करने मे जहाँ मूल्यवान् सिद्ध होगी वहाँ अध्येता अन्वेषको के लिये भी उपयोगी रहेगी।

इस प्रशस्ति सग्रह के अत मे कुछ परिशिष्ट भी दिये गये है, जिनमे प्रथम परिशिष्ट मे कुछ मुद्रित ग्रन्थो की ऐतिहासिक प्रशस्तियो का भी सकलन दिया है। उसका एक मात्र कारण रिसर्च स्कालरो या अन्वेषको के लिए उपयुक्त सामग्री का सचित करना है। अन्य परिशिष्टो मे भौगोलिक ग्राम-नगरादि के नामो, सघो, गणो, गच्छो, अन्वय, या वशो, जातियो, गोत्रो राजमत्रियो, राजाओ, विद्वानो, आचार्यो भट्टारको श्रावक-श्राविकाओ और ग्रथो की सूची अकारादि क्रम से दी गई है। जिससे अन्वेषक विद्वानो को बिना किसी विशेष परिश्रम के उनका परिचय मिल सके और उन्हें ऐतिहासिक स्थलो आदि का भी परिचय सुलभ हो सके।

इस सग्रह मे वर्तमान मे उपलब्ध अपभ्र श के दिगम्बर साहित्य-विषयक प्रशस्तियाँ ही दी गई है। किन्तु प्रस्तावना मे अपभ्र श साहित्य की एक ऐसी सूची दे दी गई है, जिसमे प्राय उपलब्ध अनुपलब्ध ग्रथो को भी सकलित किया गया है। इससे विद्वानो को अपभ्र श के साहित्य की पर्याप्त जानकारी हो सकेगी। इस तरह यह प्रशस्ति सग्रह अपने विशाल रूप मे साहित्यिक अनुसधाताओ के लिए विशेष उपयोगी रहेगा।

प्रस्तुत प्रस्तावना को तीन भागो मे विभक्त किया गया है जिनमे पहला भाग अपभ्रश भाषा के इतिहास का है, जिसमे शताब्दी क्रम से अपभ्रश के ऐतिहासक निर्देश दिये गये है, जिनसे अपभ्रश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रश का वर्तमान साहित्य ९वी से १७वी शताब्दी तक का उपलब्ध है। ५वी से ८वी शताब्दी तक उसका प्रारम्भिक काल और ९वी से १३वी तक मध्यान्ह काल और १४ वी से १७ वी शताब्दी तक उसका अपरान्ह काल समझना चाहिये। मध्यान्ह काल ही उसके विकास का समय है।

दूसरे विभाग मे उपलब्ध अपभ्रश साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिसमे भारतीय भाषाओ के विकास के साथ अपभ्रश के विकास एव साहित्य की चर्चा की गई है और वर्तमान मे उपलब्ध अपभ्रश साहित्य की एक सूची भी दी गई है।

तीसरे विभाग मे प्रशस्ति सग्रह मे मुद्रित प्रशस्तियो के ग्रन्थो और ग्रन्थकारो का परिचय कराया गया है।

भारतीय साहित्यिक भाषाओ मे प्राकृत सस्कृतादि की तरह अपभ्रश भी सदियो तक साहित्यिक भाषा रही है और जनता के कण्ठ को विभूषित करती रही है। अपभ्रश प्राकृत भाषा का ही एक रूप है। जिसे 'अवहट्ट, अवहस, अपब्भट्ट, अपभ्रष्ट या अपभ्रश के नाम से उल्लेखित किया जाता है। देश विशेष के कारण उनकी बोलियो और प्रातीय भाषाओ के उच्चारण मे अन्तर पड जाता है, और वही अन्तर धीरे-धीरे भाषाओ के आदान-प्रदान मे व्यवहृत होने लगता है। पाली और प्राकृत भाषा मे प्रचुर साहित्य रचा गया है। प्राकृत भाषा देश भेद के कारण अनेक रूपो मे विभक्त है, फिर भी उसके मुख्य दो रूप दृष्टिगत

होते है। महाराष्ट्री और शौरसैनी। इन दोनो भाषाओ मे विपुल साहित्य रचा हुआ उपलब्ध होता है। यद्यपि अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास अभी तक नही लिखा गया। अतएव उसका पूरा इतिवृत्त लिखना तो यहाँ सम्भव नही प्रतीत होता, किन्तु उसके सम्बन्ध मे यहाँ कुछ विचार जरूर किया जायगा।

अपभ्रंश भाषा का जो भी पुरातन साहित्य वर्तमान मे उपलब्ध होता है यद्यपि राज्यविप्लवादि के कारण बहुमूल्य पुरातन साहित्य विनष्ट हो चुका है, फिर भी जो किसी तरह अवशिष्ट रह गया है, वह अपनी महत्ता का स्पष्ट द्योतक है। उसका उद्गम कब और कहा पर हुआ, और कैसे वह साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति पा सका, उसमे क्या कुछ विशेषताये थी, कैसे वह आम लोगो के लिए बोलचाल की भाषा मे परिणत होता हुआ साहित्यिक भाषा बनने का श्रेय प्राप्त कर सका, यह सब अभी विचारणीय है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अपभ्रंश भाषा के साहित्य का अध्ययन बड़ा महत्व रखता है। भारतीय आर्य भाषाओ के साहित्य का अध्ययन तब तक सुसम्पन्न नही कहा जा सकता, जब तक अपभ्रंश भाषा के साहित्य का विधिवत् पारायण न कर लिया जाय। इतना ही नही, किन्तु विविध प्रादेशिक भाषाओ एव राष्ट्रभाषा हिन्दी के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए अपभ्रंश भाषा का मौलिक अध्ययन करने की जरूरत है। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि प्रादेशिक भाषाओ और हिन्दी भाषा के विकास मे अपभ्रंश भाषा ने क्या कुछ योगदान दिया है। अपभ्रंश भाषा ने केवल हिन्दी के विकास मे ही सहयोग नही दिया किन्तु उसे प्रभावित और प्रतिष्ठित भी किया है। अत. भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपभ्रंश का साहित्य प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अध्ययनीय है।

अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास न लिखा जाने से उसके साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार नही हो सका है, उसमें साहित्य का अभी तक अप्रकाशित रहना भी एक कारण है। अपभ्रंश भाषा के साहित्य की जब हम विपुलता देखते है और उसकी रचनाओ का ध्यान से समीक्षण करते है तब हमें उसकी विशेषता और महत्ता का यथेष्ट परिज्ञान होता है। वर्तमान मे अपभ्रंश भाषा का समुपलब्ध साहित्य ८वी शताब्दी से लेकर १७वी शताब्दी तक का रचा हुआ अवलोकन करने मे आया है। यद्यपि ९वी से १२वी शताब्दी तक के साहित्य मे जो प्रौढता देखी जाती है, वह आगे के साहित्य मे नही पाई जाती, क्योकि उसमे देशी भाषा के तत्सम शब्दो का बहुलता से समावेश पाया जाता है, अत उसमे उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा के विकास का औचित्य उपलब्ध होता है।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पुरातन उल्लेख हमे पतञ्जलि के महाभाष्य[1] मे मिलता है। उसमे उन्होने लिखा है —"अपशब्दो का उपदेश बहुत विस्तृत या व्यापक है, क्योकि एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश है। जैसे एक ही गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि बहुत से अपभ्रंश होते है।"

दूसरा उल्लेख 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ के कर्ता भर्तृहरि ने सग्रहकार 'व्याडि' नामक आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए किया है —

"शब्दसस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम् ॥"

वार्तिक—शब्द प्रकृतिरपभ्रंश इति सग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंश स्वतन्त्र कश्चिद्विद्यते। सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृति। प्रसिद्धेस्तु रूढतामापद्यमानास्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र

१. "गरीयानपशब्दोपदेश। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गौणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयो ऽपभ्रंशा ॥" —पतजलि महाभाष्य १, १, १।

गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृतोपभ्रंशा प्रयुज्यन्ते।"

—वाक्यपदीयम् प्रथम काड का० १४८

इन उल्लेखो से यह स्पष्ट जान पडता है कि तत्सम अपभ्रंश किसी भापा विशेष का नाम नही था किन्तु सस्कृत के विकृत रूप ही अपभ्रंश कहलाते थे।

अपभ्रंश का तीसरा उल्लेख हमे भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र मे मिलता है।[2] जिसमे भाषाओ की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बतलाया गया है कि—'हिमवत, सिन्धुसौवीर तथा अन्य देशो के आश्रित लोगो मे नित्य ही उकार बहुला भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के ३२ वे अध्याय मे जो वाक्य उपलब्ध होते हैं वे अपभ्रंश के प्रारम्भ की सूचना देते है। 'मोरुल्लउ-नच्चन्तउ। महागमे सभत्तउ। मेहउ हर्तु णेइ जोण्हउ। णिच्च णिप्पहे एहु चदहु।' आदि समुद्धृत वाक्य अपभ्रंश के प्रारम्भिक रूप हो सकते हैं। इनमे कुछ विशेषताये अपभ्रंश भाषा की देखी जाती है।

इससे ध्वनित होता है कि नाट्यकार के समय हिमालय से सिन्धु तक के देशो मे जो बोली प्रचलित थी उसमे उकार का प्रयोग विशेष रूप से होता था। समस्त प्राकृत भाषाओ मे अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है जिसमे कर्ता और कर्म कारक की विभक्ति मे 'उ' होने से उकार का बाहुल्य पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश भाषा का आदि क्षेत्र हिमालय से सिन्धु तक का भारत का वह पश्चिमोत्तर प्रदेश ही है। परन्तु भरत मुनि के समय वहा अपभ्रंश एक प्रकार की बोली ही थी, जिसे विभाषा कहा गया है, उसने तब तक साहित्यिक रूप धारण नही कर पाया था, और न वह अपभ्रंश विशेष से प्रसिद्धि को ही पा सकी थी, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि इस भापा ने परवर्ती काल मे बडी उन्नति की है और उसने इतना अधिक विकास पाया कि विक्रम की ६वी ७वी शताब्दी से कुछ समय पूर्व उसमे गद्य-पद्य मे रचना होने लगी थी। कवि भामह ने अपने काव्यालकार मे सस्कृत प्राकृत की रचनाओ के साथ अपभ्रंश की गद्य-पद्य मय रचना का भी उल्लेख किया[3] है।

महाकवि दण्डी ने इस सम्बन्ध मे कुछ मौलिक सूचनाये भी की[4] है। और वे इस प्रकार हैं—

(१) दण्डी के समय तक ग्रन्थकार सस्कृत के सिवाय अन्य समस्त भाषाओ को अपभ्रंश कहते थे, जिसकी परम्परा का उल्लेख पतजलि ने अपने महाभाष्य मे किया है।

---

२ हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जना देशान् समुपाश्रिता।
उकारबहुला तज्ज्ञस्तेषु भाषा प्रयोजयेत्॥ —नाट्यशास्त्र १७-६२

३ "शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्य पद्य च तद् द्विधा।
सस्कृत प्राकृत चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा॥" —काव्यालकार १-३६

४ "तदेतद्वाङ्मय भूय सस्कृत प्राकृत तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्र चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्॥
सस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभि।
तद्भवास्तत्समो देशी नित्यनेक प्राकृतक्रम॥
आभीरादिगिर काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृता।
शास्त्रे तु सस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्॥" —काव्यादर्श १, ३२, ३३, ३६

(२) जिन भाषाओ ने उस समय तक अपभ्रंश के नाम से काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश प्राप्त कर लिया था, वे सब भाषाये आभीरादि जातियो की बोलियाँ थी। नाठ्यकार भरत मुनि ने आभीरों की बोली को 'शाबरी' बतलाया है[५]।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आभीरो की शक्ति का लोक मे जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे ही उनकी सस्कृति मे भी चेतना का जागरण होता गया और फलत उनकी काव्य-कला अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

सौराष्ट्र देश से प्राप्त होने वाले बलभी के राजा धरसेन द्वितीय के सन् ५५९ (वि० स० ६१६) के उत्कीर्ण ताम्रपट मे राजा धरसेन के पिता गुह्यसेन को सस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश रूप भाषात्रय मे प्रबन्ध रचना करने मे निपुण बतलाया गया है[६]। बुल्हर ने इस ताम्रपट-लेख को जाली बतलाया है और वे उसे बाद का मानते है। हो सकता है कि यहलेख बाद मे उत्कीर्ण किया गया हो, किन्तु घटना-क्रम तो उसी काल का है। भले ही इस लेख के काल मे सौ, पचास वर्ष का फर्क हो सकता है, पर उसकी बारीकी से जाँच करना अभी आवश्यक है।

भाषा शास्त्र के विद्वान अपभ्रंश साहित्य का प्रारम्भ ५०० या ६०० ईस्वी से मानते है किंतु अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध मे वैयाकरणो ने जो लक्षण निर्दिष्ट किये है, उनके कुछ उदाहरण हमे अशोक के शिलालेखो मे दृष्टिगत होते है। उनमे सयुक्त 'र और उकारान्त पदो का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। इसी तरह 'धम्मपद' मे भी अनेक शब्दो के अपभ्रंश रूप दृष्टिगत होते है। ललितविस्तर और महायान सम्प्रदाय के अन्य बौद्ध ग्रथो की सरकृत मे भी अपभ्रंश रूप उपलब्ध होते है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान तारानाथ ने यह स्पष्ट उल्लेखित किया है कि—'बौद्धो के सम्मितीय समुदाय के त्रिपिटक के सस्करण पाली सस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश मे भी लिखे गये है[७]।' इससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि नाट्यकार भरत के समय और उसके बाद अपभ्रंश बीज रूप से विद्यमान थी और उसका अर्थ शब्द का विकृत या बिगडा हुआ रूप उस काल मे देशवासियो के व्यवहार मे प्रयुक्त होता था।

इस तरह अपभ्रंश का उत्तरोत्तर विकास होता गया और विक्रम की ८वी शताब्दी मे तो अपभ्रश का काव्यरूप बहुत प्रसिद्ध और लोकरजक हो चुका था। विक्रम की ९वी शताब्दी के विद्वान उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला मे सस्कृत प्राकृत और अपभ्रश की तुलना करते हुए सस्कृत की अपेक्षा अपभ्रश की महत्ता का उल्लेख किया है। जिससे अपभ्रश की उस समय की लोकप्रियता का सहज ही परिज्ञान हो जाता है। उन्होने लिखा है कि—'सस्कृत अपने बडे-बडे समासो, निपातो, उपसर्गो, विभक्तियो और लिङ्गो की दुर्गमता के कारण दुर्जन हृदय के समान विषम है। प्राकृत समस्तकला-कलापो की मालारूप जल कल्लोलो से सकुल लोक वृत्तान्त रूपी महोदधि, महापुरुषो के मुख से निकली हुई अमृतधारा का बिन्दु सदोह तथा एक एक क्रम से वर्ण और पदो के सघटन से नाना प्रकार की रचनाओ के योग्य होते हुए भी सज्जन वचन के समान सुख-सगम[८] है और अपभ्रश वह काव्य-शैली है जिसमें दोनो भाषाओ(सस्कृत-

५. आभीरोक्ति शाबरी स्यात् ' ' नाट्यशास्त्र १८-४४।

६ सस्कृतप्राकृतापभ्रशभाषात्रय प्रतिबद्ध प्रबन्ध रचना निपुणान्तःकरण।

—इण्डियन् एण्टीक्वेरी भा० १० पृ० २८०

७ देखो, त्रिपिटिक के सम्मितीय सस्करण।

८. देखो वलयमाला।

प्राकृत) के शुद्ध अशुद्ध रूप पदो का मिश्रित रूप पाया जाता है, जो नव वर्षाकालीन मेघो के प्रपात से पूर द्वारा प्लावित गिरि नदी के वेग समान सम और विषम होता हुआ भी प्रणय कोप से युक्त कामिनी के वार्तालाप की तरह मनोहर है[१]।

इसी तरह स्वयभू ने भी अपभ्रश काव्य-रचना की तुलना एक नदी से की है, जो सस्कृत और प्राकृत दोनो के तटो का स्पर्श करती हुई घनपद—सघटना की चट्टानो से टकराकर बहती है[२]।

उद्योतनसूरि की 'कुवलय माला' मे जहा अपभ्रश का चर्चरीरास' समाविष्ट है। वहा लोक-भाषा सूचक अपभ्रश गद्य के नमूने भी उपलब्ध हैं। यद्यपि वे प्राकृत के प्रभाव से परिलक्षित है, फिर भी मायादित्य और ग्राम-महत्तरो का परस्पर कथनोपकथन अपभ्रश भाषा मे दिया हुआ है और अवशिष्ट कथन प्राकृत मे अङ्कित है। इससे स्पष्ट है कि उस समय अपभ्रश का प्रयोग लूले-लगडे, रोगी और दरिद्री भी करते थे, और वह साहित्यिक विकास मे अग्रसर हो रही थी।

इसी ग्रथ के एक दूसरे उद्धरण मे कथानायक राजकुमार का शूरसेन देश के केन्द्रस्थल मथुरा के एक अनाथ मण्डप मे पहुचने पर वहा के दीन-हीन, कोढी और लगडे आदि रोगी गवार लोगो से जो बातचीत या सवाद हुआ है वह बडा ही सजीव है[३]। यहा यह अवश्य विचारणीय है कि उन लोगो से शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग न कराकर अपभ्रश का प्रयोग कराना खास विशेषता रखता है। वहाँ उसमे शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट है और उन शब्दो की ध्वनि मे उदार प्रवृत्ति और देशी शब्दो का बाहुल्य आदि अपभ्रश का स्पष्ट इगित कराता है।

नवमी शताब्दी के विद्वान कवि रुद्रट ने अपने काव्यालकार मे काव्य का गद्य-पद्य मे विभाजन के अनन्तर भाषा के आधार पर उसे छह भागो मे विभक्त किया है, और देश भेद से अपभ्र श के बहुत भेद होने की सूचना भी की है[४]। इससे स्पष्ट है कि कवि रुद्रट अन्य साहित्यिक प्राकृतो के समान ही अपभ्रश को गौरव प्रदान करते है। रुद्रट के इस कथन पर विक्रम की बारहवी शताब्दी के विद्वान नमि साधु ने (१०६९ ई०) अपनी टीका मे अपभ्रश को प्राकृत मे अन्तर्भुक्त करते हुए लिखा है—कि अन्य लेखको ने उस अपभ्र श के तीन भेद माने है, उपनागर, आभीर और ग्राम्य[५]। इसी का निराकरण करने के लिए रुद्रट ने भूरिभेद बतलाते हुए उसके अनेक भेदो की सूचना की है, क्योकि देश की विशेषता के कारण भाषा मे भी विशेषता पाई जाती है। साथ ही प्राकृत को ही अपभ्र श माना है।

---

१ ता कि अवहस होहइ ? हूँ त पि णो जेण सक्कअ-पाय उभयसुद्धासुद्ध पयसमतरगरगतवग्गिर णव पाउस जलयपवाह पूर पव्वालिय गिरिणइ सरिससम विसम पणयकुवियपियनणइणी समुल्लावसरिस मणोहर ।।'

—कुवलयमाला

२ सक्कय-पायय-पुलिणालकिय देसी भासा उभय तडुज्जल। कवि दुक्कर-घण सद्द-सिलायल।

स्वयम्भू-पउम चरिउ।

३ देखो, कुवलय माला कहा पृ० ५५।

४ 'भाषाभेदनिमित्त षोढा भेदोऽस्य सभवति।
प्राकृतसस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रश। —काव्यालकार २, ११-१२।

५. "प्राकृतमेवापभ्रश, स चान्यैरूपनागराभीरग्राम्यावभेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्त भूरिभेद इति। कुतो देशविशेषात्। तस्य च लक्षणं लोकादेव सम्यगवसेयम् ।।" —काव्यालङ्कारटीका २-१२

कवि राजशेखर ने (८८० से ९२० ई०) अपनी काव्यमीमासा मे अनेक स्थलो पर अपभ्रंश का निर्देश किया है। साथ ही अपने से पूर्ववर्ती कवियो की तरह स्वय भी सस्कृत प्राकृतादि भाषाओ के समान अपभ्रंश को भी पृथक् साहित्यिक भापा स्वीकार किया है तथा काव्य-पुरुष के शरीर का कथन करते हुए सस्कृत को मुख, प्राकृत को वाहु, अपभ्रंश को जघन—मध्यभाग, पैशाची को पैर, और मिश्र को उरस्थल बतलाया है[1] और तदनुसार राजा की काव्य-सभा मे सस्कृतकवि उत्तर, प्राकृतकवि पूर्व, अपभ्रंशकवि पश्चिम, और पैशाची कवि दक्षिण मे बैठे[2] ऐसी व्यवस्था का उल्लेख किया है। कवि ने दूसरे स्थल पर सौराष्ट्र और त्रवण देश को अपभ्रंश भाषा भाषी प्रकट किया[3] है। सस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के क्षेत्र का निर्देश करते हुए मरु (मारवाड) टक्क (ठक्क) पजाब का एक भाग भादानक—पजाब के झेलम जिले के भद्रावती देशो मे अपभ्रंश के प्रयोग होने का सकेत भी किया[4] है।

महाकवि पुष्पदन्त (वि० स० १०१६) ने अपने 'महापुराण' मे सस्कृत और प्राकृत भापा के साथ अपभ्रंश का भी समुल्लेख किया है। उस काल मे सस्कृत प्राकृतादि के साथ अपभ्रंश का भी ज्ञान राजकुमारियो को कराया जाता था[5]।

अमरचन्द ने तो अपभ्रंश की गणना षड्भाषाओ मे की है—

सस्कृत प्राकृत चैव शौरसेनी च मागधी।
पैशाचिकी चापभ्रंश षड् भाषा परिकीर्तिता.॥ —काव्य कल्पलता वृत्ति पृ० ८

अपभ्रंश भाषा के उल्लिखित ये भिन्न भिन्न निर्देश उसके विकास मे निम्न बाते फलित करते है और उसकी ऐतिहासिक कडी जोडने मे सक्षम है—

प्रारम्भ मे अपभ्रंश का अर्थ बिगड़ा हुआ रूप था। उस समय भारत मे 'विभ्रष्ट शब्द का प्रयोग होने लगा था और नाट्यकार के समय अपभ्रंश बीजरूप से विद्यमान थी और उसका प्रयोग आभीर एव शबर आदि वनवासी जातियो मे प्रयुक्त किया जाता था, पर उस समय तक उसका कोई साहित्यिक रूप पल्लवित नही हुआ था। किन्तु छठी शताब्दी मे 'अपभ्रंश का प्रयोग वैयाकरणो और आलकारिको के ग्रन्थो मे भी उल्लिखित होने लगा और वह साहित्यिक भाषा का सूचक भी माना जाने लगा इतना ही नही, किन्तु उसका स्वतन्त्र रूप भी विकसित होने लगा था और जो दण्डी तथा भामह जैसे आलकारिक साहित्यको की स्वीकृति भी पा चुका था, इस तरह वह ८ वी शताब्दी मे सर्वसाधारण के बोल-चाल की भापा मानी जाने लगी और उसका विस्तार सौराष्ट्र से लेकर मगध तक हो गया था[6]। हा देशभेद के कारण उसमे कुछ भिन्नता अवश्य आ गई थी, किन्तु काव्यादि रचना मे आभीरादि की अपभ्रंश का ही प्रयोग होता था। ११ वी से लेकर १३ वी शताब्दी तक के कवियो—मम्मट, वाग्भट्ट, हेमचन्द्र,

---

१ "अहो श्लाघनीयोऽसि। शब्दार्थौ ते शरीर, सस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, जघनमपभ्रंश, पैशाच पादौ उरो मिश्रम्।" काव्यमीमासा अ० ३।

२. मध्येसभ राजासनम्। तस्य चोत्तरत सस्कृतकवयो निविशेरन्।...पूर्वेण प्राकृता कवय।...पश्चिमेनापभ्रंशिन कवय. दक्षिणतो भूतभाषाकवय।" —काव्यमीमासा अ० १०

३ सापभ्रंशप्रयोगा सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च। काव्यमीमासा, अ० १०

४ सौराष्ट्र त्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पित सौष्ठवम्। —काव्यमीमासा अ० ७

५ सक्कउ पायउ पुण अवहसउ, वित्तउ उप्पाइउ सपससउ। —महापुराण ५-१८-६

६ आभीरी भाषापभ्रंशस्था कथिता क्वचिन्मागध्यामपि दृश्यते। —काव्यालकारटीका पृष्ठ १५

रामचन्द्र, गुणचन्द्र और अमरचन्द्र आदि ने अपभ्र श को सस्कृत प्राकृतादि के समान ही साहित्यिक भाषा माना। ८वी से ११ वी शताब्दी मे साहित्यको ने महाकाव्यो और खण्डकाव्यो को गुफित किया। उसे रस और अलकारो से केवल पुष्ट ही नही किया, किन्तु पल्लवित, पुष्पित भी किया तथा उसके, माधुर्य की सरस सरिता मे जन साधारण को निमज्जन उन्मज्जन करने की सुविधा भी प्रदान की।

इस विवेचन पर से अपभ्र श के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पडता है। साथ ही आगे होने वाले साहित्यिक परिचय से उसके विकास और ह्रास का भी पता चल जाता है। प्रत्येक भाषा अपने प्रारम्भिक काल के बाद विकास पाती है। अपभ्र श ने भी इसी तरह विकास पाया, और बाद मे वह पतन को प्राप्त हुई।

भारतीय साहित्यिक भाषायें

आत्म-अनात्म भावनाओ की अभिव्यक्ति साहित्य है। साहित्य के सृष्टिकर्ता विद्वानो ने अपनी चिरसाधना और अन्तर्मानस की अनुभूति द्वारा सुख, दु ख, जीवन, मरण, आशा, निराशा, भय निर्भयता, हास्य, शोक और विलाप तथा प्राकृतिक रहस्यो से विस्मित करने वाले दृश्यो एव सौन्दर्य की अनुपम छटा को वाणी द्वारा प्रकट किया है उसे साहित्य कहते है। साहित्य की महत्ता उसमे चर्चित वस्तु तत्त्व से होती है। इसी से साहित्य सार्वकालिक और सार्वदेशिकता से ओत-प्रोत रहता है, वह किसी सम्प्रदाय, देश या व्यक्ति विशेष का समर्थक नही होता, किन्तु उसमे सार्वभौमता होती है। वह किसी एक अङ्ग का सम्पोषक नही होता। उसमे देश, काल, ऋतु, क्षेत्र, पर्वत और तद्देशीय युवति-जनो के वेष-भूषा के साथ धर्म के सिद्धान्तो का भी यथा स्थान सक्षिप्त या विशद रूप मे निर्देश किया गया है।

साहित्य की सृष्टि अनेक भाषाओ मे की गई है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श और गुजराती, मराठी आदि।

सस्कृत

सस्कार की गई भाषा का नाम सस्कृत है। वैदिक कालीन सस्कृत प्राचीन है और अवैदिक कालीन अर्वाचीन। पाणिनीय ने सस्कृत को व्याकरण से परिष्कृत कर उसके रूप को स्थिर किया। पश्चात् व्याकरण के विकास के साथ-साथ सस्कृत के प्रयोग और नियम भी सुस्थिर होते गये। व्याकरण के प्रयोग से शिक्षित समुदाय की भाषा शुद्ध और परिमार्जित होती गई। किन्तु व्याकरण विहीन जन साधारण की भाषा अपरिमार्जित और स्खलित ही रह गई। सस्कृतभाषा मे प्रबन्ध काव्य चरित, पुराण, कथा, सिद्धान्त, व्याकरण, दर्शन, वैद्यक ज्योतिष कोष, छन्द, नाटक, चम्पू और अलकार आदि विषयो पर विविध एव विशाल ग्रन्थ लिखे गये। जैन जैनेतर ग्रन्थकारो ने सस्कृत के भण्डार को खूब ही समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। उसमे विपुल साहित्य की सृष्टि ही उसकी महत्ता की सद्योतक है। सस्कृत का साहित्य प्रौढ और उच्चकोटि का है। परन्तु सस्कृत भाषा साम्प्रदायिक व्यामोह के कारण जन साधारण की भाषा नही कहला सकी। वह शिक्षित और शिष्ट लोगो की ही भाषा बनी रही। परन्तु प्राकृत और अपभ्र श जन साधारण की भाषा बनी, और साहित्यिक महत्ता को भा प्राप्त हुई। सस्कृत की अपेक्षा ये दोनो भाषाए सरल और सुकोमल है। जन साधारण उनके अर्थ को शीघ्र ही अवगत कर लेता है। यहा प्राकृतादि भाषाओ का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए अपभ्र श के विकास-सम्बन्ध मे विचार किया जायगा।

प्राकृत भाषा

जो प्रकृति से सिद्ध हो अर्थात् स्वभाव से निष्पन्न हो, उसे प्राकृत कहते है। जो लोग प्राकृत भाषा को संस्कृत से निष्पन्न वतलाते है[1]। उनका वह कथन संगत नही जान पडता, क्योकि प्राकृत जन साधारण की भापा थी, अथवा जिस कथ्य भाषा को जनसाधारण अपने व्यवहार मे लाते हो, वही प्रकृति निष्पन्न भापा है। प्राकृत भाषा की महत्ता जनसाधारण से छिपी हुई नही है। उसका सरल और मधुर साहित्य आज भी लोगो के हृदयो मे अपने गौरव को अंकित किये हुए है। भगवान महावीर ने अपना उप-देश अर्धमागधी भाषा मे दिया था वह आधी मगध देश की भाषा थी और आधी भाषा शूरसेन देश की। पर उसमें अन्य भाषाओ के हृदयस्थ करने की क्षमता थी। बुद्ध ने भी तात्कालिक देश भाषा को अपनाया था, बाद मे वही भाषा पालि के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्राकृत की महत्ता उसके हृदयंगम करने से सहज ही ज्ञात हो जाती है। प्राकृत बडी सरल और सहज बोधगम्य भाषा है जबकि संस्कृत दुरूह और कठिन है। इसी कारण वह जनसाधारण की भाषा नही बन सकी है। यद्यपि प्राकृत को गिराने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, परन्तु फिर भी उसका अस्तित्व बना ही रहा। काव्यालंकार के टीकाकार नमि साधु ने लिखा है कि "सकल जगज्जन्तूना व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कार सहजो वचनव्यापार प्रकृति, स्तत्र भव, सैव वा प्राकृत। 'आरिस वयणे सिद्ध देवाण अद्धमागही वाणी' इत्यादि वचनात् वा प्राक पूर्व कृत प्राक्कृत—बाल-महिलादिसुबोध सकल-भाषा-निबन्धनभूत वचनमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैक स्वरूप तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादित सत् संस्कृताद्युत्तर विभेदानाप्नोति। अतएव शास्त्रकृता प्राकृतमादौ निर्दिष्ट तदनु संस्कृतादीनि।" (काव्यालंकारटीका २,१२)

इसमे बतलाया गया है कि—लोगो के व्याकरण आदि के संस्कार से रहित स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते है उसे ही प्राकृत कहा है। आर्ष वचन मे (द्वादशांग मे) ग्रन्थो की भाषा अर्ध-मागधी थी, इससे प्रकट है कि जो बालक तथा महिलाओ आदि के लिए सहजबोधगम्य है, वही भाषा सकल भाषाओ की मूल कही गई है और वह मेघ वर्षा के जल की तरह पहले एक रूप होने पर भी देश भेद से और संस्कार करने से वह अनेक भेदो मे परिणत हो जाती है। अतएव शास्त्रकारो ने पहले प्राकृत को कहा है। बाद मे (व्याकरणादि द्वारा संस्कारित हुई भाषा) संस्कृत आदि को कहा है।

इस प्राकृत भाषा का भी क्रमश परिष्कार हुआ और उसने अपने को साहित्यिक वेश-भूषा से अलंकृत किया। शिलालेखो की भाषा और व्याकरण सम्बन्धी प्राकृत साहित्य का अध्ययन करने से इस वात का सहज ही आभास हो जाता है। बौद्धो के हीयमान सम्प्रदाय के मान्य त्रिपिटको की पालि और जैनागमो की अर्धमागधी प्राकृत बोलियो के ही साहित्यिक रूप है। प्राकृत भाषा के साहित्य को संस्कृत की तरह समृद्ध एव संगठित बनाने के लिए वैयाकरणो ने व्याकरण के अनेक नियम भी बनाये। परन्तु प्राकृत की बोलिया अपने भिन्न-भिन्न अनेक रूपो मे प्रचलित रही और उसमे संस्कृत के समान एक रूपता न आ सकी। क्योकि एक भाषा के लक्षण दूसरी भाषा के लक्षणो से जुदा थे। इसी कारण त्रिविक्रम और आचार्य हेमचन्द्र आदि व्याकरणकर्ताओ ने नियमों मे 'प्राय ''क्वचित्' मे 'बहुल' आदि शब्दो का प्रयोग किया है। जिनसे स्पष्ट जान पडता है कि ये नियम किसी भाषा के लिए शाश्वत रूप मे लागू नही हो सकते। यद्यपि व्याक-रणो से भाषा मे थोडा बहुत सुधार भी हुआ है। फिर भी देशभेद और विभिन्न बोलियो के कारण प्राकृत

१ प्रकृते संस्कृतादागतम् प्राकृतम्—वाग्भट्टालंकारटीका २,५ अथवा प्रकृति संस्कृत तत्र भव तत् आगतं वा प्राकृतम्। —हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण

भाषा अनेक रूपो मे विभक्त हो गई। प्राकृत के अर्धमागधी, मागधी, शौरसैनी महाराष्ट्री और पैशाची भेद आज भी मिलते है। श्वेताम्बर जैनागमो की भाषा 'अर्धमागधी प्राकृत' और दिगम्बर जैनो के प्राचीन आगम साहित्य की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' कही जाती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र (१७-४८) मे मागधी अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या नाम की सात प्रकार की प्राकृत भाषाएँ बतलाई है। प्राकृत भाषा मे विशाल साहित्य रचा गया है। वर्तमान मे उपलब्ध साहित्य से उसकी समृद्धि का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है। यहा प्राकृत भाषा के उक्त भेदो पर कुछ विचार किया जाता है।

जैन प्राकृत और साहित्यिक प्राकृतो का उल्लेख मध्य काल के वैयाकरणो और आलकारिको के ग्रन्थो मे मिलता ही है। उनमे शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी पैशाची, और अपभ्रंश के नाम पाये जाते है।

शौरसेनी भाषा

शूरसेन देश मे स्थित मथुरा नगर के आस-पास की भाषा शौरसेनी कहलाती है। इसका प्रयोग सस्कृत के नाटको मे स्त्री-पात्रो और मध्यकोटि के पुरुषपात्रो मे पाया जाता है। दो स्वरो के मध्य मे सस्कृत के त, थ, का क्रमश द और ध हो जाना इसकी विशेषता है। इस भाषा मे र का ल क्वचित् ही होता है। तीनो सकारो के स्थान मे 'स' ही होता है। कर्त्ता कारक पुल्लिग के एक वचन मे 'ओ' होता है। 'थ' के स्थान मे क्वचित् 'ध' भी होता है और पूर्वकालिक कृदन्त के रूप मे सस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'त्ता'—इय, या 'दूण' होता है। जैसे सुत-सुदो, कथम्-कध, कृत्वा-करित्ता, करिअ, करिदूण होता है। इस भाषा के ग्रन्थ दिगम्बर जैन साहित्य मे पाये जाते है। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द का प्रवचनसार, पचास्तिकाय इसी भाषा के ग्रन्थ है, परन्तु पचास्तिकाय मे अर्धमागधी का प्रभाव भी परिलक्षित है। शिवकोटि की भगवती आराधना इस भाषा का मौलिक ग्रन्थ है, वट्टकेरका मूलाचार भी इसी भाषा की देन है। इस मे जैन साहित्य की बहुलता होने से इसे जैन शौरसेनी भी कहा जाता है।

महाराष्ट्री

यह काव्य की पद्यात्मक भाषा है। काव्य-ग्रन्थो मे इसी का प्रयोग किया जाता था। गाथा सप्त-सती, सेतुबन्ध, गउडवहो और रावणवध जैसे उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थ इसी मे रचे गए है। पहले महाराष्ट्री महाराष्ट्र देश की भाषा मानी जाती थी, किन्तु अब वह शौरसेनी के विकास का उत्तर रूप है। ऐसा डाक्टर मोहन घोष का कहना है। दो स्वरो के मध्य के अल्पप्राण स्पर्श-वर्ण का लोप और महाप्राण का 'ह' रूप मे परिणत हो जाना इसकी विशेषता है। महाराष्ट्री के विशेष लक्षण जो इसे शौरसेनी से विभक्त करते है इस प्रकार है—यहाँ मध्यवर्ती 'त' का लोप होकर केवल स्वर रह जाता है, किन्तु 'द' मे परि-वर्तित नही होता। उसी तरह यहाँ 'थ' ध मे परिवर्तित न होकर 'ह' मे परिवर्तित हो जाता है और क्रिया का रूप पूर्वकालिक 'ऊण' लगाकर बनाया जाता है, इनके सिवाय जैन महाराष्ट्री मे कही-कही 'र' का 'ल' तथा प्रथमान्त 'ए' हो जाता है। जैसे जानाति-जाणइ, कथ-कह, और भूत्वा होऊण आदि।

इस भाषा मे भी जैन साहित्य ही विशेष उपलब्ध होता है। विमलसूरिका 'पउम चरिउ' इसी भाषा का पद्य-बद्ध काव्य है। पर इसमे 'य' श्रुतिका अत्यधिक प्रयोग पाया जाता है। श्वेताम्बर जैन

(१) 'मागहद्ध विसयभासाणिबद्ध अद्धमागह अट्ठारस देसी भासा भासणियय वा अद्धमागह ॥'—निशीथचूर्णि

(२) मागधभाषा लक्षण किंचित् किंचिञ्च प्राकृत भाषा लक्षण यस्यामस्ति सा अर्धमागध्या ।

साहित्य की इसमे अधिकता है। आगम ग्रन्थो पर लिखी हुई चूर्णिकाएँ, कथा और चरित साहित्य, जैसे समराइच्चकहा, सुरसुन्दरीचरिअ, पासणाहचरिअ और आगमिक ग्रन्थ है। हाल की सत्तसई और जयवल्लभ का वज्जालग्ग महाराष्ट्री प्राकृत के श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है। सघदास गणी की वसुदेवहिण्डी गद्य काव्य है। इनका समय विक्रम की छठवी शताब्दी माना जाता है। इनके अध्ययन से यह अवश्य जाना जाता है कि इनसे पूर्व भी कोई साहित्य अवश्य रहा है।

मागधी

यह मगध देश की भाषा कही जाती है। नाटको मे निम्न वर्ग के पात्रो द्वारा इसका प्रयोग करना पाया जाता है। अन्य प्राकृत भाषाओ मे 'य' के स्थान मे जहा 'ज' का प्रयोग होता है वहा इसमे 'य' ही रहता है। हा 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग अवश्य पाया जाता है जैसे राजा-लाआ। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के अनुसार इस भाषा मे वर्ग के तीसरे, चौथे अक्षरो के स्थान मे वर्ग के पहले और दूसरे अक्षर हो जाते है। जैसे गिरि-किरि धूली-थूली आदि। इसी तरह अन्य वर्णो में भी विशेषता है। इस भाषा का प्राकृत साहित्य उपलब्ध नही है किन्तु व्याकरण ग्रन्थो और नाटको मे इसका प्रयोग अवश्य हुआ मिलता है।

अर्धमागधी

शौरसेनी और मागधी भाषाओ प्रदेशो के मध्य के कुछ भाग में दोनों भाषाओ का मिश्रित रूप अवश्य पाया जाता है, इसी को अर्धमागधी कहते हैं। ७वी शताब्दी के आचार्य जिनदास गणी, (६३५) महत्तर ने अपनी निशीथ चूर्णी में आधे मगध देश की भाषा को अर्धमागधी बतलाया है। जो अष्टादश देशी भाषाओ से युक्त थी।[1] टीकाकार अभयदेव ने इसमे कुछ लक्षण मागधी और प्राकृत के बतलाये है।[2] जैनियो के आगम साहित्य मे और अन्य धार्मिक साहित्य मे इसका प्रयोग खुलकर पाया जाता है। मागधी के समान इसमे भी अकारान्त सज्ञा के मुख्य रूप से इसका प्रयोग मिलता है। कही-कही र के स्थान पर ल का भी प्रयोग पाया जाता है, और कर्ता कारक एक वचन में ओ का ए हो जाता है किन्तु इसमे 'श' का प्रयोग न होकर 'स' का ही प्रयोग पाया जाता है। भगवान महावीर ने अपना धर्मोपदेश इसी भाषा मे दिया था।[2] परन्तु महावीर के निर्वाण से ९८० वर्ष के बाद वलभी मे सकलित कर लिपिवद्ध होने वाले श्वेताम्बरीय सूत्र-ग्रन्थो की भाषा मे अवश्य परिवर्तन पाया जाता है। इस परिवर्तन के साथ-साथ ईस्वी सन् ३१० से पूर्व मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य काल मे मगध देश मे पडने वाले द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष का प्रभाव भी उस पर पडे बिना नही रह सका। दूसरे साधु सघ का विविध देशो मे भ्रमण तथा उन-उन देशी भाषाओ के आदान प्रदान से भी उसमे परिवर्तन होना सभव है, आगम साहित्य का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो उसमें वह परिवर्तन अवश्य ज्ञात हो जायगा। इसी को लक्ष्य मे रखकर आचार्य हरिभद्र ने जैनागमो की भाषा को अर्धमागधी न कहकर प्राकृत नाम से उल्लिखित किया है[3]। डा० जैकोबी ने जैन वर्तमान सूत्रो की भाषा को अर्धमागधी न बतलाकर जैन महाराष्ट्री बतलाया है[4]। इसी को आर्ष और ऋषिभाषिता भी

---

(२) 'भगव च ण अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ'। —समवायाग सूत्र पत्र ६०

(३) दश वैकालिक वृत्ति पृ० २०३।

(४) Kalpa Sutra : Sacred Book of the East Vol. XII.

कहा जाता रहा है।[५] अत अर्धमागधी आर्ष और ऋषिभाषिता ये तीनो एक ही भाषा के पर्यायवाची नाम हैं।

पैशाची

यह एक बहुत प्राचीन प्राकृत बोली है। इस भाषा का साहित्य नही के बराबर है, गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इस भाषा मे रची गई थी, परन्तु दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नही हुआ। पर उसके आधार से रचित ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध है। दो स्वरो के मध्य मे वर्गों का तीसरा चौथा वर्ण पहला और दूसरा वर्ण हो जाता है। जैसे वारिद—वारितो आदि। चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ट्री शिलालेखो मे पैशाची की विशेषताएँ देखी जा सकती है। वररुचि के प्राकृतप्रकाश मे (पृ० १०) पैशाची को शौरसेनी की आधार-भूत भाषा स्वीकृत की है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व मे कांची देश, पाण्ड्य, पाचाल, गौड, मगध, व्राचड, दाक्षिणात्य शौरसेन, कैकय, शाबर और द्राविड देशो को पिशाच देश बतलाया है।

अपभ्रंश भाषा और उसका विकास

वैदिक कालीन विभाषाओ—बोलियो—का धीरे-धीरे विकास होता गया, और वे आर्यो की भाषा के उत्तर-पश्चिम प्रदेश से धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैलती गईं। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध के जन्म समय तक यह भाषा विदेह (उत्तर विहार) और मगध (दक्षिणी विहार) तक फैल गई थी। इस आर्य भाषा का रूप उत्तर भारत, वजीरिस्तान, मध्यप्रदेश और पूर्वी भारत मे उस समय पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। इसी से उन प्रदेशो की भाषा को उदीच्या, प्राच्या और मध्यदेशीया के नाम से उल्लेखित किया गया है।

उदीच्या—पेशावर और उत्तरीय पजाब की भाषा कहलाती थी, इसमे अधिक परिवर्तन तो नही हुआ, किन्तु प्राच्या का प्रयोग करने वाले वैदिक मर्यादाओ का पालन नही करते थे, और वे वेदो को नही मानते थे, और न ब्राह्मणो के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजो का आचरण ही करते थे, क्योकि वे व्रात्य थे, अर्हन्तो के उपासक थे[१] और चैत्यो के पूजक थे। किन्तु मध्यदेशीया भाषा उदीच्या और प्राच्या के मध्य मार्ग का अनुसरण करती थी। उदीच्या और प्राच्या मे व्यजन समीकरण के अतिरिक्त 'र' और 'ल' के प्रयोग मे भी भिन्नता थी। उदीच्या मे जहाँ 'र' के प्रयोग की प्रचुरता थी वहाँ प्राच्या मे 'र' के स्थान पर

---

(५) सक्कता पागता चेव दुहा भणितीओ आहिआ।
सरमडलम्मि गिज्जते पसत्था इसिभासिता ॥ —स्थानाग ७ पत्र ३९४।
सक्कया पायया चेव भणिईओ होंति दोण्णि वा।
सरमडलम्मि गिज्जते पसत्था इसिभासिआ ॥ —अनुयोगद्वार पत्र १३१

१ देखो, इण्डो आर्यन एँण्ड हिन्दी पृ ५६

अथर्ववेद के १५ वें काण्ड मे एक व्रात्य सूक्त है, व्रात्य व्रती का पर्यायवाची है। अथर्ववेद के काण्ड ४ सू० ११ मत्र ११ मे व्रत का पर्यायवाची 'व्रत्य' शब्द आया है। जिसका अर्थ व्रत धारण करने वाला होता है। उक्त वेद के ४ थे काण्ड मे व्रात्य को मागध विज्ञान भी बतलाया है। जिससे स्पष्ट है कि व्रात्य लोग मगध देश के रहने वाले थे। अतएव इनकी सस्कृति 'मगध' कहलाती थी। सामवेदी ताण्ड ब्राह्मण मे एक 'व्रात्य स्तोम' है, जिसमे व्रात्यो का उल्लेख है। उसमे लिखा है कि 'व्रात्य लोग वैदिक यज्ञादि से घृणा करते थे, तथा अहिंसा को अपना मुख्य धर्म मानते थे।' (ताण्ड ब्राह्मण १७-१-५)

"अर्हन्तो के अनुयायी व्रात्य कहलाते थे, जिन का उल्लेख अथर्ववेद मे है। लिच्छविलोग प्राचीन भारत की एक प्रसिद्ध व्रात्य जाति के थे।" (भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ३४९)

'ल' की ओर मध्य देशीया मे 'र' 'ल' दोनो का प्रयोग होता था। वाद मे इस मे भी परिवर्तन और विशेपताए होती गई।

पूर्वकाल मे यद्यपि यात्रा करने के साधन सुलभ नही थे। किन्तु व्यापारीजन पूर्व-पश्चिमी-देशो मे अपने व्यापार के निमित्त जिस-तिस प्रकार आया जाया करते थे। उससे उन देशो से भाषा सम्वन्धी व्यवहार का आदान-प्रदान वरावर होता रहता था। इसी से अनेक शब्दो का प्रयोग दूसरे देशो की भापाओ मे भी व्यवहृत होने लगा था।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने सन् १५०० ई० पूर्व से लेकर सन् ६०० ईस्वी पूर्व तक प्रथम प्राकृतो अथवा विभाषाओ के अनेक परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप बुद्ध और महावीर के समय भारत मे भाषा के निम्न रूपो का सकेत किया है।

उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या रूपमे तीन विभाषाएँ विकास पा गई थी।

वैदिक सूक्तो की प्राचीन भाषा छान्दस थी जिसका व्यवहार ब्राह्मण वर्ग मे चल रहा था।

तीसरी वह जो छान्दस भाषा के नूतन सस्करण और उदीच्या के प्राचीन रूप से विकसित हुई थी, जिसमे प्राच्या और मध्यदेशीया के तत्त्वो का समिश्रण था। इसी भाषा मे सभवत वैदिक ग्रन्थो के भाष्यादिक भी उस समय लिखे गए थे।

भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध ने अपनी-अपनी देशना और उपदेश का माध्यम उस समय की बोलचाल की जन साधारण की भाषा को बनाया। इस कारण तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओं के विकास मे क्रान्ति आ गई और परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रातीय भाषाओ के साहित्यिक विकास का सूत्र-पात प्रारम्भ हो गया।

उस काल मे सस्कृत का विकास शिक्षितोमे अपनी चरम सीमा को पहुच चुका था, परन्तु उसमे साम्प्रदायिक सकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसका पूर्णविकास जैसा चाहिए था वैसा न हो सका। यद्यपि वह भारत से वाहर भी गई और वह वहा भी फैली, पर उसे सार्वभौमता का पद प्राप्त नही हो सका।

ईसा की छठी शताब्दी से ईसा की १० वी शताब्दी तक की प्रचलित विभाषाओ को ग्रियर्सन ने दूसरी श्रेणी की प्राकृत (Secondary Prakrits) वतलाया है[२]।

किन्तु डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उस काल की भाषा को मध्यकालीन आर्य भाषा (Middle Indo Aryan Speech) कहा है और उसे तीन भागो मे विभक्त किया है। इस काल को मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल कहा जा सकता है।

(१) मध्य कालीन आर्यभापा की प्रारम्भिक अवस्था (४०० ई० पूर्व से लेकर १०० ईस्वी तक) प्रारम्भिक प्राकृत भापाओ का काल माना जाता है।

(२) भारतीय आर्य भापा की मध्यकालीन अवस्था (१०० ई० से ५०० ई० तक) साहित्यिक प्राकृतो का काल माना जाता है। किन्तु वर्तमान मे प्राकृत भापा का साहित्य ५०० ईस्वी के वाद का रचा हुआ भी उपलब्ध होता है। कौतूहल की 'लीलावती' निस्सन्देह उत्तर काल की रचना है और 'गोउडवहो' का रचना काल भी ७ वी ८ वी शताब्दी माना जाता है। इसके अतिरिक्त हरिभद्र, कुमारस्वामी, देवसेन, पद्मनन्दि, नेमिचन्द्र, पद्मसिह (१०८६) और हेमचन्द्र आदि अनेक जैनाचायो ने प्राकृत भापा मे (९९०) अनेक ग्रन्थो की रचनाएँ की हैं। जिससे उक्त सीमा का निर्धारण विचारणीय है।

२ देखो, लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया पृ० १२१ (१९२७ ई० पू०)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की उत्तर कालीन अवस्था का समय ५०० ई० से १००० ई० तक भापा विज्ञानी प्रकट करते है और उसे अपभ्र श का नाम दिया गया है। किन्तु यह भी चिन्तनीय है, क्योकि वर्तमान मे अपभ्र श भाषा का साहित्य ८ वी शताब्दी से १७वी शताब्दी तक का रचा हुआ उपलब्ध होता है। अतएव अपभ्र श का रचना काल ५०० ई० से १३०० ई० तक मानना ही चाहिये। कारण कि उत्तरवर्ती साहित्य मे हिन्दी का विकसित रूप भी देख ने मे आता है और १३ वी शताब्दी तक की रचनाओ मे उतनी प्रौढता तो नही है। किन्तु रचना शैथिल्य भी नही पाया जाता आठवी शताब्दी से १३ वी, १४ वी तक अपभ्र श के साहित्य की प्रचुरता रही है।

प्रान्तीय भाषाओं का विकास

द्वितीयश्रेणी की प्राकृत भाषाओ से भिन्न-भिन्न प्रादेशिक अपभ्र श भाषाओ की उत्पत्ति मानी जाती है और वर्तमान प्रान्तीय आर्यभाषाओ का विकास अपभ्र श से हुआ है। शौरसेनी अपभ्र श से व्रज भापा, खडी बोली राजस्थानी, पजाबी और गुजराती भाषाओ का सम्बन्ध है। किन्तु इनमे से शौरसेनी के 'नागर अपभ्र श' से राजस्थानी और गुजराती का सम्बन्ध विशेषरूपसे स्वीकृत किया जाता है। 'मागध 'अपभ्र श' से भोजपुरी, उडिया, वगाली, आसामी, मैथिली और मगही का विकास हुआ माना जाता है। सिन्धी भापा का विकास व्राचड अपभ्र श से हुआ कहा जाता है महाराष्ट्री से मराठी के विकास का सम्बन्ध अव विद्वान नही मानते। इन प्रान्तीय भाषाओ के विकास के पूर्वकाल मे ये सब भाषाए अपनी अपनी भिन्न-भिन्न अपभ्र शो से प्रभावित हुई दिखलाई देती है और उत्तरकालीन अपभ्र श का साहित्य भी प्रान्तीय भाषाओ से प्रभावित हुआ जान पडता है। उसमे प्रचुरता से तत्सम देशी भाषाओ के शब्दो का प्रयोग दिखाई पडता है। आज जिसे हम पुरानी हिन्दी कह कर पुकारते है वही वर्तमान हिन्दी का पूर्व रूप है। इससे यह स्पष्ट है कि वे पुरातन रचनाए हिन्दी की जनक है। अथवा हिन्दी के विकास मे उन का योग दान महत्वपूर्ण है।

देशी भाषा की महत्ता

अपभ्र श देशी भाषा कहलाती थी। सस्कृत भाषा को शुद्ध मानने वाले वैयाकरण भी देशी भाषा को भ्रष्ट-अपभ्रष्ट या बिगडी हुई भाषा कहते थे। स्वयभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, लक्ष्मण, लाखू, वाग्भट्ट, पादलिप्त आदि कवियो ने भी अपभ्र श को देशी भाषा बतलाया है।[1] और विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता मे देशी वचनो को मिष्ट प्रकट किया है—

---

१ (क) देशी भासा उभय तडुज्जल, कवि दुक्कर घण सद्द सिलायल —स्वयभू पउम चरिउ।

(ख) देस देसि भाषा लिवि ठाणइ, कइ वायालकार विहाणइ। —पुष्पदन्त महापुराण ५, ६-१०

(ग) वायरण देसि सद्दत्थ गाढ, छदालकार विलास पोढ।
स-समय-पर समय वियार सहिय, अवसद्द वाय दूरेण रहिय॥
—पद्मकीर्ति पासणाह चरिउ

(घ) ण समाणमि छदु ण बधभेउ, ण उ हीणाहिउ मत्ता समेउ।
ण उ मक्कअ पाउअ देसभास, णउ सद्दु वण्णु जाणमि समास॥
लक्ष्मण णेमिणाहचरिउ पीठिका

सक्कय वाणी बहुअ [न] भावइ, पाइअ रस को मम्म न पावइ ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, त ते सन जपिउ अवहट्टा ।।

अर्थात सस्कृत वाणी बहुतो को अच्छी नही लगती, प्राकृत रस का मर्म नही प्राप्त करती। देशी वचन सबसे मीठे होते है। इसीलिए मै अपभ्र श मे कथा कहता हूं।

पादलिप्त ने अपनी तरगवती कथा देशी भाषा मे बनाई थी[2]। ग्रन्थ कारो ने अपभ्र श भापा में जो ग्रथ बनाये, उन्होने उन ग्रथो की भापा देशी बतलाई है। वही देशी भापा अपभ्र श है। वैयाकरण जिस भापा को अपभ्र श प्रकट करते है उसमे ग्रथ रचना करने वाले ग्रथकार उसे देशी भापा कहते है।

वास्तव मे अपभ्र श या देशी भापा मे स्वभावत माधुर्य तो है ही, पद लालित्य की भी कमी नही, पद सरल सरस तथा सुबोध है इसी से उस काल मे देशी भाषा जनसाधारण के गौरव को प्राप्त कर सकी। पर सस्कृत मे वैसी क्षमता नही, क्योकि वह साम्प्रदायिकता से ऊचे नही उठ सकी। यद्यपि जैन और बौद्धो का विशाल साहित्य भी सस्कृत मे रचा गया, परन्तु उसकी विशेष महत्ता ब्राह्मण साहित्य मे ही रही, वह साम्प्रदायिक सकीर्ण दृष्टिकोण से निकलकर जन साधारण का गौरव प्राप्त नही कर सकी।

पर अपभ्र श दृष्टिकोण के चक्रव्यूह से अलग रहती हुई अपनी निदा और बुराई को सुनती हुई भी जनसाधारण के कण्ठ को विभूषित करती रही, राज्य सभाओ मे भी आदर पा सकी और विद्वानो के कण्ठ का भूषण बनी रही। इसी से उसका लोकव्यापी महत्व रहा है। जब वह अपने मध्यान्ह काल मे बहु-मूल्य प्रबन्धकाव्यो मे गुम्फित हो रही थी, तब उसकी तेजस्विता, वाक्य विन्यास और पद गाम्भीर्य अर्थ के प्रतिपादक थे, उनमे महानता और सरसता आदि सद्गुण स्वभावत अङ्कित हो रहे थे। धर्म भाषा और साहित्य के विकास मे राज्याश्रय का मिलना अपना खास महत्व रखता है। इनके विकास और समृद्ध होने मे राज्याश्रय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बिना राज्याश्रय के उक्त भापा अथवा धर्म पनप नही सके। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन धर्मो और भाषाओ को उचित राज्याश्रय मिला वे लोक मे समुन्नत और विकास पाते गये। लोक मे वे आगे बढने मे समर्थ हो सके। अपभ्र श भापा के विकास मे भी राज्याश्रय की आवश्यकता हुई।

राज्याश्रय

अपभ्र श भाषा का उपलब्ध साहित्य विभिन्न देशो और विभिन्न समयो मे रचा गया है। अप-भ्र श के विकास मे अनेक राजवशो और देशो के राजाओ का सहयोग मिला है। इसी से वह अपना विकास कर सकी। मान्यखेट (बरार), गुजरात, मालवा, मारवाड, राजस्थान, बगाल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश मे अपभ्र श साहित्य रचा गया।

(ड) देस भास लक्खण ण तक्कओ, मुणमि णेव आयमहिं गुरुक्कओ।
पय समित्ति किरिया विसेसया, सधि छदु वायरण भासया ।।

—लाखू जिनदत्तचरित सधि १

पालित्तएण रइया वित्थरओ तहव देसिवयणेहि।
णामेण तरगवई कहा विचित्ता य विउला य ।। —पादलिप्त, तरंवगती

२ देखो डा० जैकोवी दृत सणक्कुमारचरिउ की भूमिका, पृ० न० १८।

यद्यपि स्वयभू से पूर्ववर्ती अनेक कवि हो गये है किन्तु उनका साहित्य अभी उपलब्ध ही नही है। कविवर चउमुह (चतुर्मुख) का भी साहित्य उपलब्ध नही है। अतएव वर्तमान मे स्वयभू को ही आद्य कवि माना जाने लगा है।

मान्यखेट के सभी राष्ट्रकूट राजागण जैन नही थे, किन्तु वैष्णव धर्मानुयायी भी थे, हा, अमोघवर्ष अवश्य जैन हो गया था। उनके राज्य मे जैनधर्म को कोई आच नही आई थी, क्योकि उन राजाओ के राजमन्त्री प्राय जैनधर्मावलम्बी थे। अमोघवर्ष जिनसेनाचार्य का शिष्य था, जैनधर्म पर उसकी वडी आस्था थी, इतना ही नही, वह विवेकपूर्वक अपने राज्य का परित्याग कर तपस्वी बन गया था। उनके राज्यो मे जैन मुनियो और विद्वानो को आश्रय मिला हुआ था, इसी से वे ग्रथ रचनादि कार्य मे प्रवृत्त हो सके।

राष्ट्रकूट राजा ध्रुव (वि० स० ८३७-८५१) के अमात्य रयडा धनजयने महाकवि स्वयभू को आश्रय दिया था, और उनके पुत्र धवलासिय ने त्रिभुवनस्वयभू को। पउमचरिउ 'और रिट्ठणेमिचरिउकी रचना उन्ही के अनुरोध से हुई थी। इसी तरह कृष्ण तृतीय (वि० स० ९९६-१०२५) के मत्री भरत और उनके पुत्र नन्न ने महाकवि पुष्पदन्त को आश्रय दिया था। मत्री भरत की प्रेरणा से ही महापुराण की रचना हुई थी। उस समय बरार जैन वैश्यो का केन्द्र था, और बरार गुजरात मालवा आदि प्रदेशो का वाणिज्य भी प्राय उन्ही के हाथ मे था। यद्यपि जैन लोग भारत के प्राय सभा देशो मे व्यापार के निमित्त आया जाया करते थे। (व्यापार और तीर्थयात्रा का जैनियो मे खूब प्रचार रहा) है। उन्होने सस्कृत की अपेक्षा देशी भाषा को अधिक प्रश्रय दिया था और उन्ही के सहयोग से अपभ्र श राष्ट्रीय भाषा के रूप मे पल्लवित हो सकी थी।

दशवी शताब्दी के बाद जब राष्ट्रकूटो का पतन हो गया, तब गुजरात केन्द्र बन गया। ११ वी शताब्दी मे गुजरात के सोलकी राजाओ ने भी अपभ्र श साहित्य के विकास मे पर्याप्त सहायता की और ग्यारहवी शताब्दी मे गुजरात के सोलकी राजाओ ने भी अपभ्र श साहित्य के विकास मे पर्याप्त सहायता प्रदान की। वहाँ जैनधर्म का विकास भी हुआ और राजा कुमारपाल ने तो स्वय आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जैनधर्म स्वीकृत किया था। उनके राज्य मे ही हेमचन्द्र ने 'अपभ्र श व्याकरण, और देशीनाममाला की रचना की। सोलकी राजा कर्णदेव के समय मे स० ११२३ मे कवि श्रीचन्द ने रयणकरण्डसाबयायार' और कथाकोश की रचना की थी।

चालुक्य वशी राजा वट्टिगदेव के पुत्र कृष्ण' नरेन्द्र के राज्यकाल मे गोध्रा मे अमरकीर्ति ने नेमिणाह चरिउ (१२४४) और षट कमेपिदेश की रचना स० (१२४७) मे की थी। मालवा मे राजा भोज (जयसिह) के राज्य मे नयनन्दी ने स० ११०० मे सुदसण चरिउ और सयलविहिविहाणकव्व की रचना की। साथ ही परमारवशी राजा देवपाल के समय मे कवि दामोदर ने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना स० १२८७ मे की।

बगाल मे पालवश के राज्यकाल मे अपभ्र श को उचित सम्मान मिला। बगाल दीर्घकाल तक वौद्धो का केन्द्र रहा। पालवश के राजा स्वय बौद्धधर्मानुयायी थे। अतएव बौद्धतान्त्रिको के अपभ्र श साहित्य के निर्माण मे उनका पूरा सहयोग रहा। पालो के बाद बगाल मे सेनवश का राज्य रहा, उनसे अपभ्र श को कोई सहयोग नही मिला, क्योकि वे ब्राह्मण धर्मानुयायी थे।

दिल्ली के तोमरवशीय राजा अनगपाल तृतीय के राज्यकाल मे भी अपभ्र श ग्रथो की रचना हुई। अनगपाल के मत्री नट्टलसाहुकी प्रेरणा से स० ११८९ मे कवि श्रीधरने 'पासणाहचरिउ' की रचना

की थी। मुसलमानी शासनकाल मे—मुगल बादशाह बाबर के समय दिल्ली में कवि महिंदु या महाचन्द ने स० १५८७ मे 'सतिणाहचरिउ' की और मुबारिक शाह के राज्यकाल मे उनके मत्री साह हेमराज के अनुरोध से भ० यश कीर्ति ने स० १४९७ मे पाडवपुराण की तथा स० १५०० मे हरिवश पुराण की रचना की। ग्वालियर के तोमर वशी राजाओ के राज्य काल मे भी जैनधर्म और जैन साहित्य के निर्माण मे अच्छा प्रोत्साहन मिला। राजा डूगरसिह और कीर्तिसिह (पिता-पुत्र) दोनो ही जैनधर्म पर पूर्ण आस्था रखते थे। ग्वालियर के किले मे जैनमूर्तियो के निर्माण मे इन्होने पर्याप्त धन खर्च किया था। इनके शासन काल (वि० स० १४८१ से १५३६ तक) मे कवि रइधू ने लगभग २५ अपभ्रश'ग्रथो की रचना की थी।उस काल मे वहाँ जैनधर्म का खूब प्रसार रहा।

चन्द्रवाड आदि के चौहानवशी नरेशो के राज्य काल मे, यद्यपि ये नरेश जैनधर्म के अनुयायी नही थे, किन्तु, उनका जैनधर्म के प्रति कोई अनादर भाव न था, प्रत्युत जैनधर्म के प्रति उनका सदा सद्भाव बना रहा, कारण कि उनके मन्त्रीगण और राजश्रेष्ठी जैनधर्म के अनुयायी थे। उनका जैन साहित्य की रचना और मन्दिरो के निर्माण मे पूरा सहयोग रहा है। इसी समय कवि लक्ष्मण ने 'अणुवयरयणपईव' और धनपाल ने 'बाहुबलीचरिउ' की रचना की।

इटावा के समीप करहल के चौहानवशी राजा भोजराज के समय उनके मन्त्री गोलालारीय साहू अमरसिंह की प्रेरणा से कवि असवाल ने स० १४७९ मे 'पार्श्वनाथ चरित' की रचना की थी। इस तरह राज्याश्रय को पाकर अपभ्र श साहित्य का विकास हुआ। आगे चलकर इस भाषा की धारा देशभाषा का आश्रय लेकर हिन्दी के रूप मे विकास पाती रही, और नाथ-सिद्धो की वाणियो मे, कबीर आदि सन्तो के पद-साखी आदि मे और जैन कवियो की रचनाओ मे उज्जीवित होती रही। इस तरह इस अपभ्र श भाषा का विकास बराबर होता रहा, पश्चात् वही हिन्दी के रूप मे प्रतिष्ठित होगई। हिन्दी भाषा के कवियो ने अपभ्रश की सरणी का अनुसरण करते हुए अपनी कृतियो को उपयोगी बनाने का प्रयत्न भी किया है। इसीलिए आज अनेक विद्वान् इस अपभ्रश भाषा के साहित्य को पुरानी हिन्दी या हिन्दी का साहित्य मानने लगे है। यद्यपि अब अपभ्रश भाषा मे साहित्य रचना नही हो रही है, परन्तु अपभ्रश के अध्ययन के विना हिन्दी का विकास भी पूर्णता को नही पा सकता। अत आज अपभ्रश भाषा के विशिष्ट अध्ययन की पूर्ण आवश्यकता है।

अपभ्रंश भाषा का उपलब्ध साहित्य और उसका वर्गीकरण

अपभ्रश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर जब हम विचार करते है तब हमे इसकी विशेषताओ का परिज्ञान सहज ही हो जाता है। इस साहित्य मे कथन की क्रमबद्धता, छन्दविस्तार, घटना-बाहुल्य, सत्पात्रो का चुनाव, आदि गुण इसकी महत्ता के द्योतक है। रसात्मकता, भाषा मे ओज और माधुर्य गुण इस के आकर्षणके कारण रहे है। इसी से यह जन साधारण द्वारा अपनायी गई जान पड़ती है। अपभ्रश साहित्य का मनन करने से हिन्दी भाषा के विकास का अच्छा इतिवृत्त सकलित किया जा सकता है। यह साहित्य प्रवन्ध या महाकाव्य, खण्डकाव्य, रूपककाव्य, मुक्तककाव्य, सन्धिकाव्य, कथाकाव्य और रासाकाव्य आदि के रूप मे मिलता है। वर्तमान मे न अपभ्रश का कोई स्वतन्त्र गद्य ग्रथ उपलब्ध है और न कोई नाटक ही। पर सस्कृत के नाटको मे अपभ्रश भाषा के गद्य पद्य दोनो के दर्शन अवश्य होते है। कुवलयमाला मे भी अपभ्रश गद्य मिलता है। अपभ्र श भाषा के दो शिलालेख भी उपलब्ध है।[1]

१ देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० ६, अङ्क ४, पृष्ठ ५ मे रायबहादुर हीरालाल का इन्क्रप्सन। यह लेख विक्रम की १२वी शताब्दी का बतलाया जाता है। दूसरा लेख बम्बई म्यूजियम मे सुरक्षित है।

प्रबन्धकाव्य

विश्व साहित्य मे सभवत सबसे प्रथम भारतवर्ष मे ही काव्य-ग्रन्थ लिखे गये। इस देश मे प्रबन्ध काव्य लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इससे पहले पुराणादि ग्रन्थ ही लिखे जाते थे। ये पुराण प्रबन्ध-काव्यात्मक रचना है। प्रबन्धकाव्यो मे इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार वर्णन, भावाभिव्यजना और सवाद ये चार अवयव होते है। कथा मे पूर्वापर क्रमबद्धता आवश्यक है इसके बिना कोई काव्य प्रबन्धकाव्य नही कहला सकता। अपभ्र श भाषा मे प्रबन्ध काव्य बहुसख्या मे लिखे गए उपलब्ध है, उनमे पूर्वापर क्रम-बद्धता के साथ कथा के मार्मिक स्थलो की परख होना जरूरी है, इससे प्रबन्धकाव्य की रचना मे सफलता मिलती है। जैन अपभ्रश प्रबन्ध काव्यो मे वस्तुव्यापार वर्णन तो सुन्दर है ही, किन्तु सवाद इतने प्रभादक और आकर्षक होते हैं कि उनसे इन प्रबन्ध काव्यो के निर्माताओ की सहृदयता का सहज ही आभास मिल जाता है। इन प्रबन्धकाव्यो का विषय प्राय राम और कृष्ण की कथा ही रहा है।

सस्कृत प्रबन्धकाव्यो मे नायक के चरित-चित्रण के अतिरिक्त उपाकाल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सध्या, रजनी, नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतु, युद्ध और यात्रा आदि दृश्यो का वर्णन सालकार किया गया है[1]। ऐसा करते हुए भी कवियो ने उनमे अनेक चमत्कारो को भी दिखलाया है। ये सब कथन अल्प या बहुत मात्रा मे सभी भापाओ के प्रबन्धकाव्यो मे उपलब्ध होते है। हाँ, प्राकृत प्रबन्धकाव्यो मे कुछ नई प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती है। उनमे अनेक स्थलो पर ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र अकित मिलते हैं। अपभ्रश प्रबन्ध काव्यो मे ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं जो जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

सस्कृत भाषा मे हमे दो प्रकार के काव्य मिलते है। उनमे कुछ काव्य ऐसे है जिनमे कथा का विस्तार, घटनाबाहुल्य और उसके साथ ही साथ प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन प्रचुरता से किया गया है और कुछ ऐसे भी है जिनमे कथा बहुत ही सक्षिप्त है, किन्तु प्राकृतिक वर्णनो के विस्तार मे प्रचुर काव्यत्व दृष्टि गोचर होता है। प्राकृत मे भी इन दोनो शैलियो के दर्शन होते है। यदि सेतु-बन्ध मे रामकथा का विस्तार है, तो गउडवहो मे गौड राजा के वध का कथन अति सक्षिप्त (३-४ पद्यो) मे ही दिया गया है और अन्य काव्योचित वर्णनो का पर्याप्त रूप मे स्थल-स्थल पर समावेश है।

अपभ्रश के महाकाव्यो मे भी हमे वर्ण्य विषय का पर्याप्त विस्तार मिलता है। कथा-पात्रो के अलौकिक चमत्कारो, भवान्तरो की कथाओ और पौराणिक आख्यानो के कारण कथा का विस्तार अधिक बढ गया है, जिससे कथा-सूत्र के समझने मे कठिनाई हो जाती है। अनेक कथाओ और अवान्तर उप कथाओ मे उलझे हुए अनेक स्थलो मे यद्यपि सुन्दरता के दर्शन होते है, फिर भी उन मे कवित्व प्रचुर परिमाण मे प्रकट नही हो सका है और कविता मे विषय की अपेक्षा कवित्व का विस्तार कम ही हुआ है।

---

१ सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनस गरा ॥
सभोगविप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वरा ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादय ॥
वर्णनीया यथायोग्य सागोपागा अमी इह ।

साहित्यदर्पण ६ परि० से ३२२-३२४

महाकाव्य

साहित्यकारों ने 'सर्गबन्धो महाकाव्य'—[1]इस लक्षणानुसार महाकाव्य का विभाजन अनेक सर्गो में किया है। कथा का सर्गबद्ध होना आवश्यक है, सर्गों की सख्या का भी वहा निर्देश किया गया है। सस्कृत महाकाव्यो मे कथा अनेक आश्वासो (सर्गों) मे विभक्त मिलती है, किन्तु प्राकृत मे कुछ काव्य ऐसे भी मिलते हैं, जिनमे पद्य-कथा को आश्वासो मे विभक्त नही किया गया। 'गउडवहो'मे विभिन्न विषयो और घटनाओ को कुलको और महाकुलको मे बाधा गया है। 'लीलावइकहा' आदि कुछ काव्य सर्गो या आश्वासो मैं विभवत नही है। इस तरह प्राकृत महाकाव्यो मे आश्वासो और सर्गोका लोप होगया। प्राकृत काव्यों की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव सस्कृत महाकाव्यो पर भी पडा है।

अपभ्र श महाकाव्य मे कथा वस्तु अनेक सन्धियो मे विभक्त होती है और प्रत्येक सन्धि अनेक कडवको के मेल से बनती है सधियो की सख्या का वहाँ कोई नियम नही है। धवल कवि के 'हरिवश' मे १२२ सधिया है और पुष्पदन्त के महापुराण मे १०२ सन्धिया दी हुई है। अपभ्रशभाषा के महाकाव्यो मे यद्यपि वर्णनीय विषय को सस्कृत महाकाव्यों के अनुसार ही दिया है, किन्तु वे काव्योचित मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन करने मे असमर्थ रहे है। इन महाकाव्यो मे अपभ्र श की कुछ परम्परागत रूढियों का भी पालन होता रहा है। अपभ्रश के प्राय सभी महाकाव्य सन्धियों मे विभक्त है। किन्तु स्वयभू के दोनो महाकाव्य काण्डो मे विभक्त होकर भी सधियो मे रखे गए हैं। यह पद्धति बहुत पुरानी हैं। सस्कृत भाषा के काव्यो और ग्रन्थो मे इसका प्रचलन था, आचार्य अकलकदेव ने अपने तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रन्थ को अध्यायो मे विभवत करके भी उन्हे आह्निको मे विभाजित किया है। महाभारत मे यह क्रम अध्यायो मे पर्वो या सर्गो के रूप मे मिलता है, और रामायण मे काव्यो को सर्गो मे विभाजित कर दिया गया है। एक एक अध्याय मे अनेक आह्निक मिलते है।

कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे भ्रमवश यह लिख दिया कि—अपभ्रश महाकाव्यो मे सर्गो की जगह कुडवक या कडवक होते है[2]। पर ऐसा नही है। अपभ्रश महाकाव्यो मे सधि या सर्ग अनेक कडवको के समूह से बनती है। कडवको का प्रयोग वहाँ पद के रूप मे हुआ है। १५ से ३० कडवको या इससे अधिक की एक सधि होती है। इसी कारण सन्धियो का आकार छोटा या बड़ा देखने को मिलता है। अपभ्रश काव्यो मे प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ मे और अन्त मे एक घत्ता रहता है। इस नियम का निर्वाह कुछ काव्यो मे पूर्ण रूप से मिलता है और कुछ मे कम। अपभ्रश काव्यो की कडवक-योजना का प्रभाव हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यो पर पडा है। रामचरित मानस और पद्मावत आदि मे कुछ-चौपाइयाँ रखकर दोहा या कही कही हरिगीतिका छन्द रक्खा गया है। कवि लक्ष्मण का 'णेमिणाहचरिउ' रड्ढा छन्द मे रचा गया है और सुदसणचरिउ पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त विविध छन्दो से विभूषित है। अब्दुलरहमान के सन्देशरासक मे कडवकबद्धता नही है। पुष्पदन्त के काव्यो मे नाना छन्दो का प्रयोग हुआ है। पर वे सब कडवकबद्ध ही है। सस्कृत के कुछ महाकाव्यो मे मगलाचरण और वस्तुनिर्देश के बिना भी काव्यारभ देखा जाता है, यह परम्परा परवर्ती काव्यो मे नही है। अपभ्रश भाषा के प्रायः सभी काव्य मगलाचरण और वस्तु निर्देश आदि की परम्परा को लिये हुए है, इसी का हिन्दी के काव्यो मे अनुसरण किया गया है।

---

१ सर्गबन्धो महाकाव्य—साहित्यदर्पण ६ परि० ३१५।

२ अपभ्रशनिबद्धेऽस्मिन्सर्गा कुडवकाभिधा।
तथापभ्रंश योग्यानि छन्दासि विविधान्यपि ॥ —साहित्यदर्पण ६-३२७

कवि भामह ने काव्यालकार मे कथा का जो लक्षरण निर्दिष्ट किया है तदनुसार कथा दो व्यक्तियो की वातचीत से प्रारम्भ होती है। किन्तु आख्यायिका मे नायक अपनी कथा स्वय कहता है। जैन अपभ्रश काव्यो मे प्राय सभी कथानक राजा श्रेरिणक के प्रश्न और गौतम गरणधर के उत्तररूप मे प्रारम्भ होते है।

कथा का नायक

सस्कृत महाकाव्यो मे[1] कथा का नायक धीरोदात्त गुरणवाला आदर्श व्यक्ति देवता या सद्वश क्षत्रिय माना गया है, किन्तु जैन कवियो द्वारा निर्मित अपभ्रश-काव्यो मे कुछ मे क्षत्रियवशोद्भव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायरण, प्रतिनारायरण और बलभद्र आदि पुरारण-पुरुषो को माना गया है और कुछ मे आदर्श व्यक्ति राजश्रेष्ठी, वरिणक या राजपुत्र को माना गया है, क्योकि जैन कवियो की रचना का उद्देश्य आत्म-विकास बतलाना रहा है, इसी से नायक क्षत्रिय न होते हुए भी आदर्श गुरणो वाला कुलीन व्यक्ति स्वीकृत किया गया है। उसकी धर्मपरायरणता और लोकोपकारिता आदि का चित्ररण नैतिक चरित्र के विकास को लिए हुए है। नायक के जीवन की अच्छी-बुरी परिरणति का कथन करते हुए तपश्चर्या, व्रताराधना, और सत्कर्मो द्वारा जीवन के अन्तिम लक्ष्य-पूर्ण स्वातत्र्य की प्राप्ति का निर्देश करना ही कवि का उद्देश्य है और नायक के उदात्तचरित को यथार्थता के मापदण्ड से नापा गया है, ऐसा होने पर उसमे हीनता की कल्पना करना उचित नही जान पडता। केवल रूढि वश क्षत्रिय को नायक बना कर महा-काव्यो के औचित्य का पालन नही हो सकता। यह तो सकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है। जीवन का आदर्श चारित्र-गुरण पर ही निर्भर होता है।

महाकाव्यों मे वर्ण्य विषय

(१) महाकाव्य मे कथा का अको, सर्गो या अधिकारो आदि मे विभाजित होना।

(२) नायक का तीर्थंकर, चक्रवर्ती या अन्य महापुरुष होना।

(३) शृगार, वीर और शान्तादिरस की प्रधानता रहना।

(४) कथा वस्तु का ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध होना।

(५) धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टय मे से किसी एक पुरुषार्थ की प्रमुखता का होना।

(६) काव्य का नामकररण किसी प्रधान घटना, काव्यगतवृत्त, कवि का नाम, अथवा नायक के नाम के आधार पर होना।

(७) सर्ग, सधि या अधिकार के अन्त मे छन्द का बदल जाना और किसी एक ही अध्याय मे विविध छन्दो का पाया जाना।

(८) सर्गो या अध्यायो की सख्या का ८ से अधिक होना।

(९) काव्य के प्रारम्भ मे मगलाचररण, आशीर्वचन, सज्जन दुर्जन-वर्रगन और प्रतिपाद्य कथा की पृष्ठभूमि का निर्देश।

१　तत्रैको नायक सुर।
सद्वशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वित। साहित्य दर्पण ६ परि० ३१६।

(१०) वर्णन में विविधता—ग्राम नगर, प्रभात, सन्ध्या, प्रदोष, सूर्य, चन्द्र, अन्धकार आदि प्राकृतिक दृश्यो, सयोग-वियोग, विवाह वेष-भूपा, लोक जीवन की परिस्थितियाँ, सुख-दुख, युद्ध, वर्णन और सामाजिक व्यवस्था का सुन्दर सजीव चित्रण।

(११) ग्रन्थ मे यथाप्रसग लोकोक्तियो और सुन्दर सुभाषितो का प्रयोग।

(१२) काव्य मे विविध अलकारो का सन्निवेश, जैसे शब्दालकारो मे यमक, श्लेष और अनुप्रास। अर्थालकारो मे उपमा, व्यतिरेक, विरोधाभास और अनन्वय आदि का होना।

कतिपय महाकाव्यो के नाम—पउमचरिउ, महापुराण, हरिवशपुराण और पाण्डवपुराण आदि।

खण्डकाव्य

'खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि' इस लक्षण के अनुसार खण्डकाव्य में जीवन के किसी एक पहलू की झाँकी रहती है। खण्डकाव्यो मे वर्णनीय विषय, कथानक, कवि की बहुज्ञता, पात्र, रस, युद्धवर्णन, भावाभिव्यजना, प्रकृति-वर्णन, सामाजिक व्यवस्था और भाषा मे सौन्दर्य लाने के लिये कवि स्थल-स्थल पर उपमा और श्लेषादि अलकारो का प्रयोग करता है।

खण्डकाव्य की विशेषता

यहाँ मैं नागकुमार चरित के आधार से खण्ड-काव्य-गत कुछ विशेषताओ का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। उस काल मे सगीत कला का शिक्षण राजकुमार और राजकुमारियो के लिये आवश्यक माना जाता था। राजकुमारियाँ इसी के आधार पर वर का चुनाव करती थी। काश्मीर की राजकुमारी ने नागकुमार से उसी समय प्रणय-सम्बन्ध किया था जब उसने आलापिनी (वीणा) को बजाने मे अपनी निपुणता का परिचय दिया था (नागकुमार चरित ५-७-११) नागकुमार ने स्वय वीणा बजाई और उसकी तीन रानियो ने जिन मन्दिर मे नृत्य किया था (नागकुमार चरित ५-११-१२) मेघपुर की राजकुमारी ने भी मृदग बजाने की चतुराई दिखलाने पर ही विवाह किया था (८-७-७)

जब जयन्धर का पृथ्वी देवी के साथ विवाह-सम्बन्ध हुआ तब पुरनारियो ने नृत्य किया था (१-१८-९)। उस समय मनोरजनो के साधनो मे क्रीड़ोद्यान या जलक्रीडा प्रमुख थे। राजकुमार अपने अन्त -पुर के साथ इन स्थानो पर जाकर आमोद-प्रमोद किया करते थे। कवि के समय समाज मे सभवत द्यूतक्रीडा की प्रथा थी, इसके लिये वहाँ अनेक द्यूत-गृह बने हुए थे। धनोपार्जन के लिये भी लोग द्यूतक्रीडा का आश्रय लेते थे जैसा कि नागकुमार ने किया था।

जैन कवियो ने पुरातन कथानको का काव्यो मे चयन कर अपने रचना कौशल से प्रबन्ध-पटुता और सहृदयता आदि गुणो का समन्वय किया है। जिससे ये काव्य-ग्रन्थ पाठको की सुपुप्त भावनाओ को प्रेरणा देने या उद्भावन करने मे सहज ही समर्थ हो जाते है। जैन कवियो ने अपभ्रश भाषा मे अनेक खण्डकाव्य बनाये है। जसहरचरिउ, नागकुमारचरिउ, जवूस्वामिचरिउ, सुदसणचरिउ, सुकुमालचरिउ, करकडुचरिउ, सुलोयणाचरिउ, णेमिणाहचरिउ, बाहुवलिचरिउ, सुकोशलचरिउ, धण्णकुमारचरिउ, मेहेसरचरिउ और पासणाहचरिउ आदि।

इन काव्यो के अतिरिक्त अनेक रूपक खण्ड-काव्य भी बनाये है, जैसे मयणजुज्झ, मयण-पराजय आदि। इसी तरह जैन कवियो ने हिन्दी भाषा में भी रूपक खण्डकाव्य लिखे है, जैसे भगवतीदास का चेतन चरित, पचइन्द्रिय-सवाद आदि।

अपभ्रंश काव्यों में रोमांचकता

कुछ विद्वानो ने अपभ्रंश काव्यो मे रोमाचकता को रूढिपरक बतलाकर उनके औचित्य को निरर्थक सिद्ध किया है। डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने 'हिन्दी महाकाव्यो का स्वरूप विकास' नाम के ग्रन्थ मे रोमाचक शैली के महाकाव्यो के कुछ नाम गिनाये हैं और उन्होने उन पर विचार करते हुए उनकी कुछ परम्परागत रूढियो को दिखाने का प्रयत्न किया है

(१) भविसयत्तकहा—धनपाल।
(२) सुदसणचरिउ—नयनन्दि स० ११००।
(३) विलासवइकहा—साधारण कवि ११२३।
(४) करकडुचरिउ—कनकामर।
(५) पज्जुण्णकहा—सिद्ध तथा सिंह।
(६) जिणदत्तचरिउ—कविलक्ष्मण वि० स० १२७५।
(७) णायकुमारचरिउ—माणिक्कराज स० १५७५।
(८) सिद्धचक्कमाहप्प (श्रीपाल कथा)—रइधू।

डा० साहब की मान्यता है कि—

(१) वस्तुत ये कथाएँ लोक-कथाओ और लोक-गाथाओ के आधार पर लिखी गई है। जिनमे कवियो ने कुछ धार्मिक बाते जोडकर कथात्मक काव्य या चरित काव्य बनाने का प्रयत्न किया है।

(२) इन काव्यो मे युद्ध और प्रेम का वर्णन पौराणिक शैली के काव्यो की अपेक्षा अधिक है, और विकसनशील महाकाव्यो मे रोमाचक तत्त्व अधिक होते है। जैनो ने धार्मिक आवरण मे रोमांचक काव्य लिखे है।

(४) इन काव्यो मे अतिशयोक्ति पूर्ण बाते अधिक हैं। इनमे साहसपूर्ण कार्य, वीहड यात्राएँ, उजाडनगर, भयकर वन मे अकेले जाना, मत्त गज से युद्ध, उग्र अश्व को वश मे करना, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरादि से युद्ध, समुद्रयात्रा और जहाज टूटने आदि का वर्णन मिलता है। इससे कथा मे रोमाचकता का गुण बढ जाता है और पाठक की जिज्ञासा की तृप्ति होती है। यह कथा-आख्यायिका का गुण है, जिसे इन काव्यो मे अपना लिया गया है। इस विषय मे मेरा विचार इस प्रकार है —

डा० साहब की उक्त मान्यतानुसार इन जैन काव्यो को रोमाचक मान भी लिया जाय, तो भी इनसे रागवृद्धि और अनैतिकता को कोई सहारा नही मिलता, क्योकि जैन कवियो का लक्ष्य 'विशुद्धि' रहा है। इन अपभ्रश काव्यो मे शृगारादि सभी रसो का वर्णन है। किन्तु ग्रन्थकारो ने शृगार को वैराग्य मे और वीर रस को शान्तरस मे परिवर्तित किया है, और नायक के विशुद्ध चरित को दर्शाने का उपक्रम किया है। अन्य रोमाचक काव्यो मे जैसी रागवर्द्धक कथाओ, लोक-गीतो, यात्रा और वन-गमनादि की घटनाओ को अतिरजित रूप मे उल्लिखित किया गया है, साथ ही शृगारादि रसो का वर्णन भी रागोत्पादक हुआ है, जो मानव जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने मे सहायक सिद्ध नही होता, वैसा वर्णन इन जैन अपभ्रश काव्यो मे नही मिलता। अत उन्हे अन्य रोमाचक काव्यो की कोटि मे नही रक्खा जा सकता। यहाँ सुदसणचरिउ की मौलिकता और विशेपता पर विचार करना अप्रासगिक न होगा।

सुदंसणचरिउ

नयनन्दि के 'सुदसणचरिउ' मे सतर्कता खूब बरती गई है। उसमे 'भविसयत्त कहा' और 'जिनदत्त चरिउ' जैसी लौकिक तथा आश्चर्यजनक घटनाओ को स्थान नही दिया गया। ग्रथ में एक व्यतर का धाडी वाहन राजा से युद्ध करने और राजा को सुदर्शन की शरण मे पहुचाने का उल्लेख अवश्य है, जो सुदर्शन के शील और पुण्य का परिचायक है। इतने मात्र से उस पर वैसी रोमाचकता नही लादी जा सकती। वह खड काव्य होकर भी महाकाव्य की कोटिका ग्रन्थ है। ग्रन्थ मे णमोकार मत्र के फल का वर्णन किया है। उसमे सेठ का एक मात्र ध्येय आत्म-विकास करना, और अभयारानी आदि की कुत्सित वृत्तियो से अपने को सरक्षित कर तथा ब्रह्मचर्यव्रत मे निष्ठ रहकर पूर्ण स्वातत्र्य प्राप्त करना रहा है।

सुदर्शन के स्वभाव मे अपनी विशेषता है, वह धीर, उदात्त और प्रशान्त नायक है, वह अपनी प्रतिज्ञा पर अडोल रहता है, उसे ससार का कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट करने मे समर्थ नही हो सका। कचन और कामिनी के राग से विरले ही अपने को अलग रख पाते है, बडे-बड़े तपस्वी भी भ्रष्ट हो जाते है।

कवि ने इसका मौलिक विवेचन किया है। उससे उक्त काव्य की आत्मा चमक उठी है। इस कारण उसे भविसयत्तकहा के समान रोमाचक काव्य नही कहा जा सकता। सुदर्शन ने अपने चरित की विशुद्धता से मानवता के कलक को धो दिया है। अतएव मै ही इसे विशुद्ध काव्य नही कहता, नयनन्दि ने स्वय भी उसे निर्दोष काव्य माना है जैसा कि उनके निम्न पद्य से स्पष्ट है —

रामो सीय-विओय-सोय-विहुर सपत्तु रामायणे।
जाद पडव-धायरठ्ठ सदद गोत्त-कलीभारहे।।
डेडा कोलियचोररज्जुणिरदा आहासिदा सुद्दये।
णो एक्क पि सुदसणस्स चरिदे दोस समुब्भासिद।।

उन्होने काव्य का आदर्श व्यक्त करते हुए लिखा है कि रामायण मे राम और सीता के वियोग और शोक जन्य व्याकुलता के दर्शन होते है, और महाभारत मे पाडवो और धार्तराष्ट्रो (कौरवो) के परस्पर कलह और मारकाट के दृश्य अकित मिलते है तथा लोक-शास्त्र मे भी कौलिक, चौर-व्याध आदि की कहानियाँ सुनने मे आती है किन्तु इस सुदर्शनचरित मे ऐसा एक भी दोष नही कहा गया है।

इस ग्रथ की कथन शैली, वाक्य-विन्यास, सुन्दर सुभाषित और विविध छन्दो मे वस्तु वर्णन, पाठक के हृदय को आकर्षित करते ही है।

डा० हरिवश कोछड ने भी अपभ्रंश साहित्य में युद्ध प्रसंगादि की घटनाओं को अनावश्यक माना है।

इस सब कथन पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन अपभ्रश काव्यो के सम्बन्ध मे विभिन्न लेखको द्वारा अब तक जो भी लिखा गया है वह सब एकागी है। जैन विद्वानो का कर्तव्य है कि वे निष्पक्ष दृष्टि से इस पर विचार करे और रोमाचक काव्यों की परिभाषा का विश्लेषण कर उसके औचित्यअनौचित्य पर प्रकाश डाले और अपभ्रश साहित्य की महत्ता को लोक में प्रतिष्ठित करे।

सन्धि-काव्य

एक ही सन्धि मे विभक्त होने वाले काव्यो को एक सन्धि काव्य कहा जाता है। अपभ्रश के खण्ड सन्धि काव्यो की परम्परा केवल श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे पाई जाती है। किन्तु ये सब परवर्ती काल की रचनाये है। इनमे भी जीवन चरित की परम्परा उपलब्ध होती है। उपलब्ध सन्धिकाव्य स० १२८७ से १४५० तक के रचे हुए है, सभव है इसके वाद भी कुछ रचे गए हो, पर वे अपभ्र श भाषा के न होकर हिन्दी या राजस्थानी भाषा मे ही लिखे गए जान पडते हैं। ये सन्धिकाव्य पाटन आदि के जैन शास्त्रभण्डारो से उपलब्ध हुए है। उदाहरणार्थ जिनप्रभसूरि ने अनाथ सन्धि स० १२९७ मे, जीवानुसधी ३१८ पद्यो मे और मयरण-रेहा-सन्धि १२९७ मे बनाई है। वरदत्त ने वज्रस्वामिसन्धि, रत्नप्रभ ने अन्तरगसन्धि, तथा स० १२९८ मे जिनप्रभ सूरि के शिष्य ने नर्मदासुदरीसधि की रचना की है।[1]

अपभ्र श के सन्धि-काव्यो के सम्बन्ध मे विशेष जानने के लिए राजस्थानी पत्रिका मे प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का 'अपभ्र श भाषा के सन्धि-काव्य और उनकी परम्परा' नाम का लेख पढे।

कथा साहित्य

भारतीय वाङ्मय मे कथा, पुराण और चरित ग्रन्थो का उल्लेखनीय बाहुल्य है। प्राय सभी सम्प्रदायो के विद्वानो ने विविध भाषाओ मे पुराणो, चरितो और काव्य, चम्पू आदि विविध ग्रथो का निर्माण किया है। जहा जैनेतर विद्वानो ने अपभ्र श को गौण कर सस्कृत आदि अन्य भाषाओ मे कथा-साहित्य की सृष्टि की हैं, वहा जैन विद्वानो ने प्राकृत और सस्कृत के साथ अपभ्र श भाषा मे भी कथा, चरित और पुराण ग्रन्थ निबद्ध किये हैं। इतना ही नही, उन्होने भारत की विविध प्रान्तीय भाषाओ मे—मराठी, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी आदि मे भी पुष्कल कथा-साहित्य रचा है।

कथाये कई प्रकार की होती हैं, परन्तु उनके दो भेद मुख्य हैं—लौकिक और धार्मिक (आध्यात्मिक)। इन दोनो मे सभी कथाओ का समावेश हो जाता है, धार्मिक कथाओ मे तो आध्यात्मिकता की पुट रहती है और लौकिक कथाओ मे पशु-पक्षियो, राजनीति, लोकनीति, हाव-भाव, शृगार आदि रागोत्पादक और लौकिक मनोरजक आख्यानो का सम्मिश्रण रहता है। इनमे आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत धार्मिक कथाओ का घनिष्ठ सम्बन्ध आन्तरिक जीवन-घटनाओ के साथ रहता है, इनमे व्रतो का सदनुष्ठान करने वाले भव्य श्रावको की धार्मिक मर्यादा के साथ नैतिक जीवनचर्या का भी अच्छा चित्रण पाया जाता है, साथ ही उनके भारी सकट उपस्थित होने पर धीरता से विजय प्राप्त करने, अपने पुरुषार्थ को सुदृढ रूप मे कायम रखने तथा धार्मिक श्रद्धा मे अडोल (निश्चल) रहने का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। कितनी ही कथाओ मे जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्व का सकलन यथेष्ट रूप मे पाया जाता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन सफल वनाने के लिए आवश्यक होता है। असल मे सत्-पुरुषो का उच्चतर जीवन दूसरो के लिए आदर्शरूप होता है, उस पर चलने से जीवन मे विकास और नैतिक चरित्र मे वृद्धि होती है, एव स्वय का जीवन आदर्श वनता है। इससे पाठक सहज ही मे कथाओ की उपयोगिता और महत्ता का अनुभव कर सकते हैं।

---

१ देखो, पाटन भडार सूची, जो गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बडौदा से प्रकाशित हुई है।

प्राकृत भाषा मे अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये है। उनमें वसुदेवहिण्डी गद्य और कुवलयमालाकथा तो गद्य-पद्य रूप मे प्रसिद्ध ही हैं। कुवलयमाला मे कही-कही अपभ्रशभाषा के गद्यके भी दर्शन होते है पर बहुत ही कम। हाँ अपभ्रशभापा का पद्यात्मक कथासाहित्य प्रचुरता से उपलब्ध होता है, परन्तु कोई गद्यात्मक स्वतन्त्र ग्रथ उपलब्ध नही हुआ।

कथाग्रन्थों के निर्माण का उद्देश्य

जैनाचार्यो अथवा जैन विद्वानो द्वारा कथा ग्रथो के बनाए जाने का उद्देश्य केवल यह प्रतीत होता है कि जनता असयम से बचे और व्रतादि के अनुष्ठान द्वारा शरीर और आत्मा की शुद्धि की ओर अग्रसर हो। कथाओ मे दुर्व्यसनो और अन्याय, अत्याचारो के बुरे परिणामो को दिखाने का अभिप्राय केवल उनसे अपनी रक्षा करना, और जीवन को उच्च बनाना है। व्रताचरण-जन्य पुण्य-फल को दिखाने का प्रयोजन यह है कि जनता अपना जीवन अधिक से अधिक सयत और पवित्र बनावे। त्रसघात, प्रमादकारक, अनिष्ट, अनुपसेव्य, तथा अल्पफल बहु-विघातरूप अभक्ष्य वस्तुओ के व्यवहार से अपने को निरन्तर दूर रखे। ऐसा करने से ही मानव अपने जीवन को सफल बना सकता है। जैन विद्वानो का यह दृष्टिकोण कितना उच्च और लोकोपयोगी है।

अपभ्र श के जैन कथा ग्रन्थो मे अनेक कवियो ने व्रतो का अनुष्ठान अथवा आचरण करने वाले भव्य श्रावको के जीवन-परिचय के साथ व्रत का स्वरूप, विधान और फल प्राप्ति का रोचक वर्णन किया है, साथ ही व्रत का पूरा अनुष्ठान करने के पश्चात् व्रत के उद्यापन करने की विधि, तथा उद्यापन की सामर्थ्य न होने पर दुगुना व्रत करने की आवश्यकता और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। उद्यापन करते समय उस भव्य-श्रावक की कर्तव्यनिष्ठा, धार्मिक श्रद्धा, सार्धमि-वत्सलता, निर्दोष व्रताचरण की क्षमता और उदारता का अच्छा चित्रण किया गया है और उससे जैनियो की उन समयो मे होने वाली प्रवृत्तियो, लोकसेवाओं, आहार, औषध, ज्ञान और अभय रूप चार दानो की प्रवृत्ति, तपस्वी-सयमी जनो की वैयावृत्त्य तथा दीन दुखियो की समय समय पर की जाने वाली सहायता का उल्लेख पाया जाता है। इस तरह यह कथा-साहित्य और पौराणिक चरितग्रन्थ ऐतिहासिक व्यक्तियो के पुरातन आख्यानो, व्रताचरणो अथवा ऊँच-नीच व्यवहारो की एक कसौटी है। यद्यपि उनमे वस्तुस्थिति को आलकारिक रूप से बहुत कुछ बढा चढाकर भी लिखा गया है, तो भी उनमे केवल कवि की कल्पना ही नही; कितनी ही ऐतिहासिक आख्यायिकाये (सच्ची घटनाये) भी मौजूद है जो समय समय पर वास्तविक रूप से घटित हुई है। अत: उनके ऐतिहासिक तथ्यो को यो ही नही भुलाया जा सकता। जो ऐतिहासिक विद्वान इन कथाग्रन्थो और पुराणो को कोरी गप्प या असत्य कल्पनाओ का गढ कहते है वे वस्तुस्थिति का मूल्य आँकने मे असमर्थ रहते है। अत उनकी यह मान्यता समुचित नही कही जा सकती।

प्राकृत भाषा मे अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये है। वसुदेव हिण्डी प्राकृत गद्य कथा-ग्रन्थ है। कुवलयमाला गद्य-पद्य कथा-ग्रन्थ है। समराइच्चकहा हरिभद्र की सुन्दर कृति है। कथारयणकोष मे अनेक कथाएँ दी हुई है। इस तरह प्राकृत का कथा-साहित्य भी विपुल सामग्री को लिए हुए है, जिनमे अनेक कथाएँ लौकिक हैं तथा लोकगीतो से निर्मित हुई है।

अपभ्रश भापा मे कथा-साहित्य कब शुरू हुआ, यह निश्चित नही है किन्तु विक्रम की ८ वी-९ वी शताब्दी मे रचे हुए अपभ्रश कथा-साहित्य के उल्लेख जरूर उपलब्ध होते है, यद्यपि उस समय

का रचा हुआ कथा-साहित्य अभी उपलब्ध नही हुआ। महाकवि चउमुह (चतुर्मुख) और स्वयभू की रची हुई पचमी-कथाएँ थी अवश्य और अन्य कथाग्रन्थ भी रचे गए होगे। परन्तु वे अप्राप्य हो रहे है। अपभ्रश मे दो तरह की कथाएँ उपलब्ध होती हैं—वडी और छोटी, पर वे सब पद्य मे है, गद्य मे कोई कथा मेरे देखने मे नही आई। वे उसमे न रची गई हो, ऐसा तो ज्ञात नही होता किन्तु वे रचनाएँ विरल होने से सभवत विनष्ट हो गई हैं।

प्रस्तुत प्रशस्तिसग्रह मे ४० के लगभग अपभ्रश कथाग्रन्थो की प्रशस्तिया दी गई हैं। उनमे कई कथा-ग्रन्थो के कर्ता अभी अज्ञात हैं। शास्त्रभण्डारो मे अन्वेषण करने पर इस तरह की अन्य कवियो द्वारा रचित कथाएँ और भी मिलेगी, ऐसी सभावना है। क्योकि अभीतक समस्त जैन ग्रन्थालय देखे नही गए हैं। उनके देखे जाने पर अपभ्र श के कथा-साहित्य पर विशेष प्रकाश पड सकेगा। अपभ्र श की अनेक कथाओ के आधार पर सस्कृत मे और हिन्दी मे रचा हुआ विपुल कथा-साहित्य उपलब्ध होता है।

दोहा साहित्य या मुक्तककाव्य

जैसे सस्कृत साहित्य मे ही 'अनुष्टुप् छद' प्रसिद्ध रहा है वैसे ही अपभ्रश मे दोहा छद है। इस छद को अपभ्र श की देन कहा जा सकता है। दोहा छद का लक्षण प्राकृत पिङ्गल मे इस प्रकार है—

तेरह मत्ता पढम पअ पुणु एयारह देह।
पुणु तेरह एआरहइ दोहा-लक्खणु एह ॥७८॥

जिसके प्रथम चरण मे तेरह मात्रा, फिर दूसरे चरण मे ग्यारह मात्रा, अनन्तर ३-४ चरणो मे क्रमश तेरह मात्रा और ग्यारह मात्रा हो वह दोहा छद कहलाता है।

जब इसी छद को लय मे गाया जाता है, तब चरणो की अतिम मात्रा पर जोर दिया जाता है, इस अपेक्षा से हेमचन्द्राचार्य ने दोहे मे चौदह और बारह मात्राओ का भी उल्लेख किया है सो ठीक है। दोहे को दोधक—दोहक भी कहते है। क्वचित् दोहे का नाम 'दुविहा' भी पाया जाता है। 'दुविहा' का सस्कृत रूपातर 'द्विधा है'[1]। दोहा छद की प्रत्येक पक्ति दो भागो मे (१३-११ मात्रा रूप मे) विभक्त होने से यह छद मात्रिक अर्धसम जाति का है और इसके लिए 'दुविहा' यह रूढ अन्वर्थ सज्ञा है। दोहा छद सरल होने के साथ-साथ व्याकरण के नियमो से भी कम बधा है, यही कारण है कि दोहा-साहित्य का अपभ्र श मे बाहुल्य है। हेमचद्र आदि लक्षण-शास्त्रियो ने जो अपने व्याकरण ग्रथो मे अपभ्र श के उदाहरणो के लिए प्राय दोहा उद्धृत किये है यह भी बाहुल्य का परिचायक है। आगे चलकर इस दोहा छद को उत्तर भारत की प्राय सभी भाषाओ मे अपनाया गया है। दोहा छद के माध्यम से गुजराती, व्रज, राजस्थानी भाषाओ मे ढाल—रासो आदि की रचना खूब हुई और होती रहती है। राजस्थानी मे लौकिक गीत, ख्यालो के बोल, नोटकी चोबोलो के बोल, कहावते और चारणो का साहित्य प्राय इसी भाषा छद मे कुछ मात्राएँ जोडकर प्रचुर मात्रा मे पाया जाता और सुना जाता है इससे यह छद सर्वाधिक लोकप्रिय और सरल रहा है। मुक्तक काव्यो के अतिरिक्त अपभ्र श के सुलोचनाचरिउ, बाहुबलिचरिउ, सदेशरासक, कीर्तिलता आदि खडकाव्यो मे यश कीर्ति भट्टारक के पाण्डवपुराण और अन्यान्य पबन्ध काव्यो मे भी दोहा छद का प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध है। हिन्दी भाषा

---

[1] देखो विरहाक का वृत्त जाति समुच्चय 'दो पाया भण्णइ दुविहउ'।
—H D वेलणकर ने 'विरहाक' का समय ईसा की ९ वी शताब्दी बतलाया है।

के प्रसिद्ध कविगण तुलसी, कबीर, रहीम, वनारसीदास, भूधरदास, भगवतीदास, बुधजन, वृन्द, महाचन्द्र, विहारी आदि ने दोहा छद में अनेक भावपूर्ण रचनाएँ और सुभाषित प्रस्तुत किए हे।

हमे कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक मे, जिसका काल विक्रम की ५ वी शताब्दी कहा जाता है अपभ्र श भाषा के अनेक दोहे उपलब्ध मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि दोहा साहित्य उस समय रचा जाने लगा था[1] बौद्ध सिद्ध सरहप्पा और कण्हपा आदि के दोहाकोश मे जिसका रचना काल ईसा की १० वी शती से पूर्व है अनेक दोहे गम्भीर अर्थं के प्रतिपादक है। दोहाकोश के दोहो की रचना कितनी उत्तम हुई है यह देखिए—

जाव ण आप जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अधा अंधकडाव तिम विण्णि वि कूव पडेइ॥

—इसमे वतलाया है कि 'जब तक आप अपने को नही जानते तबतक शिष्य मत वनाइये', यदि अधा दूसरे अधे को निकालने का प्रयत्न करे तो दोनो ही कुये मे पडेगे।

जहि मण पवण ण सचरइ रवि ससि णाहि पवेस।
तहि वढ, चित्त विसामकरु सरहे कहिउ उवएस॥४॥

सरह उपदेश करते है कि—'जहाँ पर मन और पवन भी सचार नही करते, रवि और शशि का भी प्रवेश नही है, हे मूढ चित्त, तू वही पर विश्राम कर।

दोहो मे दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होती है—एक भावात्मक शृगार, वीर और करुण आदि रसो से आप्लावित मुक्तक पद्य और दूसरा सतो की आध्यात्मिक वाणी रूप मुक्तक पद्य। प्रथम प्रकार के दोहा हेमचन्द्र के व्याकरण आदि मे उपलब्ध है, शृगार विरह आदि के दोहा जहाँ रागोत्पादक है वहाँ नैतिक पतन मे भी निमित्त है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि जैनेतर कवियो का लक्ष्य जहाँ रागोत्पादक रहा है, वहाँ जैन कवियो का उद्देश्य नैतिकता को प्रोत्साहन देने के साथ मानव जीवन को उन्नत बनाने का रहा है अत दूसरे प्रकार के दोहा मुक्तक काव्यो के रूप मे जोइन्दु के परमात्मप्रकाश और योगसार ग्रथ, रामसिह का दोहापाहुड, सुप्रभाचार्य का वैराग्यसार, लक्ष्मीचद्र का दोहानुप्रेक्षा और सावयधम्मदोहा, जल्हिग, धागा, महाचन्द्र, शालिभद्र का दूहामातृका,पद्मसिह मुनि की ७१ दोहात्मक रचनाएँ अध्यात्मरस से परिपूर्ण है।

'जोइन्दु' ने परमात्म-प्रकाश ग्रथ के दोहो मे अत्यन्त सरस अध्यात्म रस की पावन सरिता के प्रवाह को प्रवाहित किया है, इसी तरह रामसिह ने दोहापाहुड मे और लक्ष्मीचन्द्र आदि आध्यात्मिक जैन सन्तो ने अध्यात्म रस की धारा को वहाया है।

रूपक-काव्य

कुमारपाल-प्रतिबोध

अपभ्र श भाषा मे भी सस्कृत भाषा के समान रूपक-काव्यो की परम्परा पाई जाती है। परन्तु अपभ्र श भाषा मे तेरहवी शताब्दी से पूर्व की कोई रचना मेरे देखने मे नही आई। सोमप्रभाचार्य का

---

१ मइँ जाणियइँ मिअलोअणी णिसिअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ॥
('जब तक नई बिजली से युक्त श्यामल मेघ वरसने लगा, तव तक मैंने यही,समझा था कि मेरी मृगलोचनी प्रिया को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है।")

'कुमारपाल-प्रतिवोध' प्राकृत-प्रधान रचना है और जिसका रचनाकाल सवत् १२४१ है। परन्तु उसमे कुछ अग अपभ्र श भाषा के भी उपलब्ध होते है। उसका एक अश 'जीव मन करण सलाप कथा' नाम का भी है। जो उक्त ग्रथ मे पृ० ४२२ से ४३७ तक पाया जाता है। यह एक धार्मिक कथा-बद्ध रूपक खण्ड-काव्य है। इसमे जीव, मन और इन्द्रियो के सलाप की कथा दी गई है। इतना ही नही इसमे एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक को भी जोड दिया गया है। ऐसा होने पर भी उक्त अश की रोचकता मे कोई अन्तर नही पडा। इस रूपक-काव्य मे मन और इन्द्रियो के वार्तालाप मे जगह-जगह कुछ सुभाषित भी दिए हुए है, जिनसे उक्त काव्य-ग्रथ की सरसता और भी अधिक बढ गई है।

ज पुणु तुहु जपेसि जड त असरिसु पडिहाइ।
मण निल्लक्खण किं सहइ, नेवरु उट्टह पाइ॥

अर्थात् हे मूर्ख ! तुम तो कहते हो कि वह तुम्हारे योग्य नही प्रतीत होता, हे निर्लक्षण मन। क्या ऊँट के पैर मे नूपुर शोभा देते है।

काया नगरी मे लावण्य रूप लक्ष्मी का निवास है। उस नगरी के चारो ओर आयुकर्म का भारी प्राकार है, उसमे सुख-दु ख क्षुधा-तृषा हर्ष-शोकादि रूप अनेक प्रकार की नदियाँ एव मार्ग है। उस काया नगरी मे जीवात्मा नामक राजा अपनी बुद्धि नाम की पत्नी के साथ राज्य करता है। उसका प्रधान मत्री मन है और स्पर्शनादि पाँचो इन्द्रिया प्रधान राजपुरुष हैं। एक दिन सभा मे परस्पर उनमे विवाद उत्पन्न हो गया, तब मन ने जीवो के दु खो का मूल कारण अज्ञान को बतलाया, किन्तु राजा ने उसी मन को दु खो का मूल कारण बतलाते हुए उसकी तीव्र भर्त्सना की। विवाद बढता ही चला गया। उन पाचो प्रधान राज पुरुषो की निरकुशता और अह मन्यता की भो आलोचना हुई। प्रधान मत्री मन ने इन्द्रियो को दोषी बतलाते हुए कहा कि जब एक-एक इन्द्रिय की निरकुशता से व्यक्ति का विनाश हो जाता हैं तब जिसकी पाँचो ही इन्द्रियाँ निरकुश हो, फिर उसकी क्षेम-कुशल कैसे हो सकती है[1]। जिन्हे जन्म कुलादि का विचार किये बिना ही भृत्य वना लिया जाता है तो वे दु ख ही देते हैं। उनके कुलादि का विचार होने पर इन्द्रियो ने कहा—हे प्रभु ! चित्त-वृत्ति नामकी अटवी मे महामोह नामका एक राजा है, उसकी महामूढा नामक पत्नी के दो पुत्र है, उनमे एक का नाम रागकेशरी है, जो राजस-चित्त-पुर का स्वामी है और दूसरा द्वेष-गजेद्र नामका है, जो तामस-चित्तपुर का अधिपति है, उसका मिथ्या-दर्शन नामका प्रधान मत्री है, क्रोध लोभ, मत्सर, काम मद आदि उसके सुभट हैं। एक बार उसके प्रधान मत्री मिथ्यादर्शन ने आकर कहा कि हे राजन् ! बडा आश्चर्य है कि आपके प्रजाजनो को चारित्र-धर्म नामक राजा का सन्तोष नामक चर, विवेकगिरि पर स्थित जैनपुर मे ले जाता है। तब मोह राजा ने सहायता के लिए इन्द्रियो को नियुक्त किया। इस तरह कवि ने एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक का कथन जोडते हुए उसे और भी अधिक सरस बनाने की चेष्टा की है।

इस प्रकार मन द्वारा इन्द्रियो को दोषी बतलाने पर इन्द्रियो ने भी अपने दोष का परिहार करते हुए मन को दोषी वतलाया और कहा कि जीव मे जो राग द्वेष प्रकट होते है वह सब मोह का ही माहात्म्य

---

१ इय विषय पल्लकओ, इट्ठु एक्केक्कुइदिउ जगडइ जगु सयलु।
जसु पचवि एयइ कयबहुखेयइ, खिल्लहि पहु तसु कउ-कुसलु॥ २६॥

है। क्योकि मन के निरोध करने पर हमारा (इन्द्रियो का) व्यापार रुक जाता है[1]। इस तरह ग्रथ मे क्रम से कभी इन्द्रियो को, कभी कर्मो को और कभी कामवासना को दु ख का कारण बतलाया गया है। जब वाद-विवाद बढ कर अपनी चरम सीमा पर पहुच गया, तब आत्मा अपनी स्वानुभूति से उन्हे शान्त रहने का आदेश देता है अन्त मे मानव जीवन की दुर्लभता का प्रतिपादन करते हुए तथा जीव दया और व्रतो के अनुष्ठान का उपदेश देते हुए कथानक समाप्त किया गया है।

मयरणपराजय

'मयण-पराजय' अपभ्रश भाषा का एक छोटा सा रूपक काव्य है, जो दो सधियो मे समाप्त हुआ है। इसके कर्त्ता कवि हरदेव है। हरदेव ने अपने को चगदेव का तृतीय पुत्र, और अपने दो ज्येष्ठ भाइयो के नाम किंकर और कण्ह (कृष्ण) बतलाये है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ मे कवि ने अपना कोई परिचय नही दिया है। ग्रन्थ मे पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त रड्ढा छन्द का भी प्रयोग किया गया है, जो इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। इसमे कामदेव राजा, अपने मोह मत्री, अहकार और अज्ञान आदि सेनापतियों के साथ भवनगर मे राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु हैं, क्योकि वे मुक्ति रूपी कन्या से अपना पाणिग्रहण करना चाहते है। कामदेव ने राग-द्वेष नामके दूतो द्वारा जिनराज के पास यह सन्देशा भेजा कि आप या ता मुक्ति कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड दे और अपने दर्शन-ज्ञान चारित्र रूप सुभटो को मुझे सोप दे, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाय। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अन्त मे कामदेव को पराजित कर अपना मनोरथ पूर्ण किया। ग्रथ की दूसरी सन्धि का ७ वां कडवक द्रष्टव्य है जिसमे कामदेव से युद्ध करने वाले सुभटो के वचन अकित है।

वज्जघाउ को सिरिण पडिच्छइ, असिधारापहेण को गच्छइ।
को जमकरणु जतु आसघइ, को भुवदडइ सायरु लघइ।
को जममहिसर्सिग उप्पाडइ, विप्फुरतु को दिरणमरिण तोडइ।
को पचारणणु सुत्तउ खबलइ, कालकुट्टु को कवलहि कवलइ।
आसीविसमुहि को करु छोहइ, धगधगत को हुववहि सोवइ।
लोहपिंडु को तत्तु धवक्कइ, को जिरणसमुहु सगरि थक्कुइ।
णिय घरमज्झि करहि बहुधिट्टिम, महिलह अग्गइ तोरी वड्ढिम।

ग्रन्थ मे रचनाकाल नहो दिया, किन्तु आमेर भडार की यह प्रति वि० स० १५७६ की लिखी हुई है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रथ उससे पूर्व की रचना है, कितने पूर्व की यह अभी विचारणीय है। पर भाषा साहित्यादि की दृष्टि से प्रस्तुत रचना १४ वी-१५ वी शताब्दी की जान पडती हैं।

तीसरी कृति 'मनकरहा रास' है, जिसके कर्त्ता कवि पाहल है। रचना सुन्दर और शिक्षाप्रद है, इसमें ८ कडवक दिये हुए है, जिन मे पाचो इन्द्रियो की निरकुशता से होने वाले दुर्गति के दु खो का उद्भावन करते हुए मन और इन्द्रियो को वश मे करने और तपश्चरण-द्वारा कर्मों की क्षपणा करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। ग्रन्थ मे रचनाकाल दिया हुआ नही है। यह रचना भी स० १५७६ के गुटके परसे सगृ-

१ ज तसु फुरेइ रागो दोसो वा त मणस्स माहप्प।
विरमइ मणम्मि रुद्धे जम्हा अम्हाण वावारो ।।४७।।

हीत की गई है जिससे स्पष्ट है कि ग्रथ इससे पूर्व रचा गया होगा[१]। इसकी भाषा देखने से प्रतीत होता है कि इसका निर्माण वि० की १४-१५ वी शताब्दी मे हुआ होगा।

चौथी कृति 'मदन-जुद्ध' है। जिसके कर्त्ता कवि बूचिराज या 'बल्ह' हैं। ग्रन्थ मे इक्ष्वाकुकुल-मडन नाभिपुत्र ऋपभदेव के गुणो का कीर्तन करते हुए, उन्होने कामदेव को कैसे जीता, इसका विस्तार से कथन किया गया है। ग्रन्थ मे उसका रचनाकाल वि० स० १५८९ आश्विन शुक्ला एकम शनिवार दिया हुआ है[२]।

सस्कृत और अपभ्रश के रूपक-काव्यो के समान हिन्दी भाषा मे भी अनेक रूपक-काव्य लिखे गये हैं। जिनमे से एक का परिचय अनेकान्त मे दिया गया है[३] और शेष का परिचय अभी अप्रकाशित है। जैसे पचेन्द्रिय सम्वाद' सूवा बत्तीसी आदि।

रासा साहित्य

रासक स्वर-ताल नृत्य और लय के साथ गाई जाने वाली एक कला है। रास वह है जिसमे सगीत की रसानुभूति हो, अथवा जिसकी मधुर सुरीली तान और गभीर नृत्य कला दर्शक के मन को आनन्द—विभोर कर दे। इस कला मे गान और नृत्यकला को ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल मे स्त्रिया लास्यनृत्य' करती थी, पर उसमे देश-भेद के कारण विविधता दृष्टिगोचर होती थी। उससे जनता का मनोरजन और उसके प्रति आकर्षण भी होता था। यह सगीत कला का ही एक भेद ज्ञात होता है।

रास-परम्परा का पुरातन उल्लेख भरत के नाट्य शास्त्र मे पाया जाता है। अत इसे केवल अपभ्रश युग की देन कहना उचित नही है जब अपभ्रश मे साहित्यिक रचनाए नही होती थी तब भी नृत्य और गान के रूप मे रास प्रचलित थे। भरत ने नाट्यशास्त्र मे रासक को एक उपरूपक माना है और उसके तालरासक, दण्डरासक और मण्डलरासक ये तीन भेद बतलाये है[४]।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी काव्यानुशासन मे रासक को गेय काव्य माना है[५]। हेमचन्द्र ने 'अनेकार्थ-सग्रहकोष मे रास का अर्थ—'क्रीडासु गोदुहाम् भाषा श्रृङ्खलि के' दिया है। जिसका अर्थ 'ग्वालो की क्रीडा' तथा भाषा मे श्रृङ्खलाबद्ध रचना होता है।

---

१ देखो, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, अप्रकाशित रचना।

२ राइ विक्रम तणो सवत् नव्वासीय पनरहसइ सरद रुति आसु बखाणु।
तिथि पडिवा सुकल पख, सनीचरवार करणक्खत्त जाणु॥ मदनजुज्झ प्रशस्ति

३ हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (अप्रकाशित) और रूपक-काव्य-परम्परा अनेकान्त वर्ष १४

४ (क) 'तालरासकनाम स्यात् तत् त्रिधा रासक स्मृतम्।
.. दडरासक तु तथा मडलरासकम्॥

(ख) अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' मे रासक को गेयरूपक का एक भेदमाना है। गेयरूपक मे ताल और लयका विशेष स्थान होता है और इसमे अधिक से अधिक ६४ युगल भाग ले सकते हैं।
अनेकनर्तकी योज्य चित्रताललयान्वितम्।
आचतु षष्टि युगलाद्रासक मसृणोद्धतम्॥

५ (क) गेयडोम्बिकाभाणप्रस्थानशिङ्गभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासकगोष्ठीश्रीगदितरागकाव्यादि।
काव्यानुशा० ८-४- पृ० ३२७

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में रासक का लक्षण हेमचन्द्र के लक्षणसे भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है किन्तु उसके नृत्यगीत वाले पहलू को पूर्ण से रूप माना है[1]।

वाग्भट्ट ने भी हेमचन्द्र का अनुसरण करते हुए उसे गेय रूप मे स्वीकार किया है[2]। हा विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे रासक के लक्षण पर विचार करते हुए पात्र, वृत्ति आदि की पूर्ण रूप मे व्याख्या करने का प्रयत्न किया[3] है।

महाकवि स्वयभू ने अपने छन्द ग्रन्थ मे 'रास' का लक्षण बतलाते हुए उसे जन-मन अभिराम बतलाया है,। घत्ता, छड्डणिया, पद्धडिया तथा ऐसे ही अन्य सुन्दर छन्दो से युक्त रासा-बन्ध काव्य जन-मनअभिराम होता है[4]। इसके बाद ही कवि ने २१ मात्रावाले रासा छन्द का लक्षण भी दिया है। स्वयभू के इस छन्दलक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल मे रासावन्ध छन्द प्रचलित था। उस रासक या रासा छन्द के लक्षण पर विचार करने से अब्दुलरहमान का 'सन्देश रासक, अपभ्र श भाषा का सुन्दर काव्य-ग्रन्थ कहा जा सकता है[5]। अन्य अनेक रास यद्यपि इस कोटि के नही है परन्तु वे जीवन परिचयात्मक रास भी अपनी महत्ता कम नही रखते।

कवि शारङ्गधर के द्वारा सगीत मे दी हुई रास-सम्बन्धी कथा भी इस के मूलरूप पर बहुत कुछ प्रकाश डालती है। इस कथा मे बतलाया गया है कि शिव नेताण्डव नृत्य किया और पार्वती ने लास्य नृत्य। पार्वती ने उसे बाणासुर की पुत्री उषा को सिखलाया, जो कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को विवाही गई थी। उषा ने द्वारावती की गोपियो को और गोपियो ने सौराष्ट्र देश की नव-युवतियो को सिखलाया, और वहा से वह समस्त भूमडल मे विस्तृत हुआ।

व्रज की रासलीला तो लोकप्रसिद्ध है ही। यह प्राचीन परम्परा अपभ्र श भाषा के विकास काल मे उच्च स्तर पर थी। विक्रम की १० वी से १३ वी शताब्दी तक इसमे अनेक रास रचे गये है और बाद मे राजस्थानी हिन्दी और गुजराती मिश्रित अनेक रास रचनाए देखने मे आती है। विक्रम की १५ वी शताब्दी मे भ० सकल कीर्ति के लघुभ्राता एव शिष्य अकेले ब्रह्म जिनदास के रचे हुए ४४ रासे मिलते है।

---

१. षोडश द्वादशाष्टौ वा यस्मिन् नृत्यन्ति नायिका।
पिंडीबन्धादि विन्यासे रासकं तदुदाहृतम्॥
पिंडनात् तु भवेत् पिंडी गुम्फनाच्छृखला भवेत्।
भेदनाद् भेद्यको जातो लता जालापनोदत॥
कामिनीभिर्भुवो भर्तुश्चेष्टित यन्तनृत्यते।
रामाद्य वसन्तमासाद्य स शेषो नाट्यरासक॥
नाट्य दर्पण ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बडौदा १९२९ भा० पृ० २१४

२ डोम्बिकाभाणप्रस्थानभाणिकाप्रेरणशिङ्गकरामाक्रीडहल्लीसकश्रीगदितरासक गोष्ठी प्रभृतीनि गेयानि। काव्यानुशासन २, पृ० १८

३ साहित्यदर्पण पृ० १०४-१०५।

४ घत्ता-छड्डणिआहि पद्धडिआहि सुअण्णरूएहि।
रासाबधो कव्वे जण-मण-अहिरामओ होइ॥ ८-४९

५ एकवीसमत्ता णिहणउ उद्दामगिरु,
चउदसाइ विस्सामहो भगण वि रइउ थिरु
रासाबधु समिद्धु एउ अहिराम अरू॥ ८-५०

रास परम्परा का उद्देश्य

किसी व्यक्ति विशेष, या देवी देवता की आराधना, और साधु या किसी सेठ की जीवन-गाथा को अकित करने मे, अथवा किसी विरहिणी नारी के सन्देश को उसके विरही पति तक पहुँचाने के लिए अथवा आत्म-सम्बोधन के लिए रासा साहित्य की सृष्टि की गई है।

अपभ्रंश का प्राचीन 'चर्चरी' रास

उपलब्ध रास-रचनाओ मे उद्योतनसूरि का चर्चरी रास सबसे पुराना है[1]। यह कुवलय-मालाकहा के प्रारम्भ मे निबद्ध है। इसकी रचना सम्राट् वत्सराज के समय जालौर (जाबालिपुर) के आदिनाथ के मन्दिर मे बैठ कर शक सवत् ७०० (वि० स० ८३५) मे की गई थी। इसमे वतलाया गया है कि—मनुष्य सचेत होकर काम करे, अन्यथा मृत्यु के घेर लेने पर कुछ भी नही हो सकेगा[2]। इस रास मे चार ध्रुवको की परिपाटी है, जिनमे एक ध्रुवक—जहाँ कामोन्मादक रस का जनक है वहाँ दूसरा विषय वासना से परान्मुख करने वाला है, तीसरा ध्रुवक अशुचि मल-मूत्रादि से सयुक्त घृणित अस्थिपजर को दिखाकर ज्ञान और विवेक की ओर ले जाता है तो चौथा ध्रुवक वैराग्य की ओर आकृष्ट करता है। इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन कवियो की रास-रचना का मूल उद्देश्य राग से हटाकर जनसाधारण को ज्ञान-वैराग्य की ओर आकर्षित कर हित के मार्ग मे सलग्न करना रहा है।

उद्योतनसूरि की इस कृति मे अनेक रसो का समिश्रण है। इसमे भगवान् महावीर के गणधर सुधर्म स्वामी की एक जीवन घटना को अकित किया गया है—'वे एक दिन अकेले ही एक ऐसे वन मे गए जहाँ ५०० भयकर डाकुओ का समूह रहता था। वहाँ उन्होने 'चर्चरीरास' युक्त, एक गान गाया और ऐसा नृत्य किया कि डाकू दल ने सदा के लिए डाकेजनी छोडकर आत्म-बोध प्राप्त किया[3]। इससे इस रास की महत्ता ज्ञात होती है।

उपमिति भव-प्रपचा कथा के अन्तर्गत 'रिपुदारणरास' नाम का एक रास है। जिसकी रचना कवि सिद्धर्षि ने वि० स० ९६२ मे की थी। यह कृति सस्कृत भाषा के ५ ध्रुवक पदो मे रची गई है। उसका नाम सार्थक है और वह गान, नृत्य, लय आदि से समन्वित है। इसमे वृहद् देश के सार्व-भौम राजा तपन द्वारा सिद्धार्थपुर के मिथ्यावादी और अहकारी उद्दण्ड राजा रिपुदारण को तान्त्रिक योगी से दण्ड दिलाने या उसे वश मे कर उसके विनाश करने का उल्लेख किया गया है। रिपुदारण की

---

१ देखो, कुवलयमाला कथा पृ० ४

२ सवुज्झह किं ण बुज्झह एत्तिए वि मा किंचि मुज्झह।
कीरउ ज करियव्वय पुण ढुक्कइ त करियव्वय ॥

कुवलयमाला पृ० ४

३ 'जहा तेण केवलिणा अरण्ण पविसिऊण पच-चोर-सयाइ रास-णच्चणच्छलेण महामोहग्गहगहियाइं अक्खिविऊण इमाए चच्चरीए सवोहियाइ।' × × × 'एव च जहा काम-णिव्वेओ तहा कोह-लोहमाण-मायादीण कुतित्थयाण च। समकाल चिय सव्व-भाव-वियाणएण गुरुणा सव्वण्णुणा तहा तहा गायतेण ताइ चोराण पच वि सयाइ सभरिय-पुव्व-जम्म-वुत्तताइ पडिवण्ण-समण-लिंगाइ तहा कय जहा सजम पडिवण्णाइ ति।'

—कुवलयमाला पृ० ४-५।

उद्दण्डता का उल्लेख उक्त रास के—'यो हि गर्वमविवेक भरेण करिष्यते' वाक्य से ज्ञात होता है[1] इसके अतिरिक्त सस्कृत भापा मे अन्य कोई प्राचीन रास देखने मे नही आया।

रासक-रचनाओ में कई रचनाएँ उपदेशक भावना के साथ सम्बोधक भावना से ओत-प्रोत है। इन रास-रचनाओ से ज्ञात होता है कि पुरातन काल में जो रास या रासक रचनाएँ रची जाती थी, वे सारगर्भित होती थी। किन्तु बाद में ज्यों-ज्यो उनका विस्तार होता गया त्यो-त्यो उन रचनाओ की सार-परकता भी कम होती गई।

रास या रासक रचनाएँ जैन सम्प्रदाय के अतिरिक्त हिन्दू सम्प्रदाय में भी पाई जाती है। परन्तु जैनियों मे इसका रिवाज बहुत पुराना है। वीर कवि के विक्रम सवत् १०७६ मे रचित 'जम्बूसामिचरिउ' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उनके पिता कविवर देवदत्त ने अपभ्रंश भाषा मे 'अम्बादेवी चर्चरी रास' नामक ग्रन्थ बनाया था।[2] जिसका रचनाकाल संवत् १०५० के लगभग है। यह रास ताल, स्वर, लय और नृत्य के साथ गाया जाता था। यह रचना अभी अनुपलब्ध है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों मे रासो की रचनाएँ अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती भाषाओ में चारसौ-पाचसौ होंगी, उनमें दिगम्बर रासा-ग्रन्थों की सख्या २०० के लगभग है। दिगम्बर सम्प्रदाय का रासा साहित्य अभी अप्रकाशित है। उसके प्रकाश मे आने पर अनेक ज्ञातव्य बातो पर प्रकाश पड सकेगा।

जैनेतर कवियो ने भी रास ग्रन्थ बनाये है। उनमे 'पृथ्वीराज रासो', 'वीसलदेव रासो', 'खुमान रासो' और 'सन्देश रासो' आदि के नाम प्रसिद्ध है। इनमे सबसे पुराना पृथ्वीराज रासो बतलाया जाता है, परन्तु उसका वर्तमानरूप बहुत-कुछ अस्त-व्यस्त है, तो भी वह अपभ्रंश भाषा के बहुत नजदीक है। हा, उसकी कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ जरूर खटकने वाली है। उनका उपलब्ध इतिहास के साथ ठीक मेल नही बैठता। अत वह आज भी चर्चा का विषय बना हुआ है। मुसलमान कवि 'अब्दुलरहमान' का सन्देश रासक उल्लेखनीय है। यह रचना सिघी सीरीज बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी ग्रथरत्नाकर कार्यालय बम्बई से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और त्रिपाठी के सम्पादन मे इसका हिन्दी अनुवाद सहित एक नया सस्करण अभी प्रकाशित हुआ है। उसमे उसकी कई ज्ञातव्य बातो पर प्रकाश डाला गया है।

रासक रचनाओं के प्रकार

रास या रासो रचनाएँ तीन प्रकार की दृष्टिगोचर होती है। पहली राग परक अर्थात् शृङ्गार तथा विरहसूचक, दूसरी अध्यात्मरस से युक्त या उपदेशपरक और तीसरी जीवन-चरित सम्बन्धी। इनमे अब्दुलरहमान की कृति सदेश रास प्रथम प्रकार की रचना है। इसमे एक विरहिणी नायिका का विरह-सूचक-सन्देश विरही पति के पास पहुचाने का वर्णन किया गया है। जैसा कि उस ग्रन्थ के निम्न दोहो से स्पष्ट है।

जसु पवसत ण पवसिआ मुइअ विओह ण जासु।
लज्जिज्जइ सदेसडउ, दिंती पहिय पियासु॥३७॥

हे पथिक! जिसके प्रवास करते हुए प्रवास नही किया और न जिसके वियोग से मरी ही, उस प्रिय को सन्देश देती हुई लज्जित हो रही हू।

१ देखो, उपमितिभवप्रपच कथा प्रस्ताव ४ श्लोक ४३७ से ४४२।

२ चच्चरि बधि विरइउ सरसु गाइज्जइ सतिउ तारजसु।
णच्चिज्जइ जिण पय सेवयहि, किउ रासउ अबादेवयहि॥ —जम्बूस्वामिचरित १—४

आगे नायिका उस पथिक से कहती है कि—'सन्देश बहुत विस्तृत है परन्तु मुझ नहीकहा से जाता। जो कनगुरिया की मुदरी (अगूठी) थी वह वाह मे समा जाती है'[1]। इससे उसके विरह-सम्बन्धी परितापका अन्दाज लगाया जा सकता है।

दूसरी रचनाएँ अध्यात्मरस सयुक्त हैं, जिनमे राग से विराग उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। उनमे आत्म-सम्बोधजनक उपदेश की प्रधानता है। जैसा कि कुवलयमाला के उक्त 'चर्चरी रास' मे अङ्कित है। देवभक्ति रूप रचनाएँ भी जहा देव मे अनुरागवर्धक है वहा देह-भोगो से विराग की भी ससूचक हैं। इसी से उनकी गणना अलग नही की है। आध्यात्मिक रचनाओ मे कवि विनयचन्द्र का चूनडीरास, निर्झरपचमीकहा रास तथा पण्डित योगदेव का 'सुव्रतानुप्रेक्षारास' और जल्हिगका अनुप्रेक्षा रास आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कवि लक्ष्मीचन्द का दोहा अनुपेक्खारास भी महत्वपूर्ण कृति है, जो सवेग-निर्वेद भाव की ससूचक है। इन रचनाओ मे ससार और शरीर के स्वरूप का निर्देश करते हुए वैराग्य की अनुपम छटा को जागृत किया गया है, और कर्मास्रव तथा कर्मबन्ध से छुडाने का यत्न किया गया है। साथ ही बारह भावनाओ द्वारा वस्तुतत्त्व का विवेक कराते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

तीसरी प्रकार की रासक रचनाओ मे किसी व्यक्ति विशेष राजा, देवी, देवता या सामान्य पुरुष का जीवन-परिचय अकित किया हुआ मिलता है। ऐसे अनेक रास लिखे गये हैं, जैसे जबूसामिरास, बाहुबलीरास, सुकमालसामिरास, पृथ्वीराज रासो और अम्बादेवीरास आदि। ये सब रास ग्रन्थ एक प्रकार के चरित रास है। एक व्यक्ति विशेष के जीवन की मुख्यता से लिखे गए है। परन्तु उनमे से जैन चरित रासो मे जीवन-घटनाओ के परिचय के साथ सासारिक देह-भोगो से विरक्ति दिखलाते हुए आत्म-साधना की ओर ले जाने का स्पष्ट प्रयास किया गया है।

छन्द ग्रन्थ

अपभ्रश के प्रबन्ध काव्यो, मुक्तक-काव्यो और चरितात्मक, स्तुत्यात्मक तथा रास आदि ग्रन्थो मे अनेक छन्दो का प्रयोग मिलता है। सस्कृत मे वर्णवृत्तो का और अपभ्रश मे मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। पर वहाँ वर्ण-वृत्तो का सर्वथा अभाव भी नही है। अपभ्रश कवियो ने सस्कृत के उन्ही छन्दो को ग्रहण किया है, जिसमे उन्हे विशेष प्रकार की गति मिली है और इसीसे उन्होने सस्कृत वर्ण-वृत्तो मे अपनी कुछ इच्छानुसार सुधार या परिवर्तन और परिवर्धन कर उन्हे गान तथा लय के अनुकूल बना लिया है। छन्दो मे अन्त्यानुप्रास की परम्परा अपभ्रश कवियो की देन है। इससे पद्य की गेयरूपता अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई। अपभ्रश के कवियो ने अन्त्यानुप्रासका प्रयोग प्रत्येक चरण के अन्त मे तो किया ही है, किन्तु उसका प्रयोग कही-कही मध्य मे भी हुआ है। तुकान्त या तुक का प्रयोग लय को उत्पन्न करना या उसे गति प्रदान करना है। अथवा ऐसी शब्द योजना का नाम ही तुक है। प्राकृत कवियो ने प्राय मातृक-छन्दो का ही प्रयोग किया है उनमे तुक का प्रयोग नही पाया जाता। हिन्दी के तुलसीदास आदि कवियो की रचनाओ मे चौपाई या दोहा छन्द ही आता है किन्तु अपभ्रश कवियो की कडवक शैली मे सभी वर्ण और मात्रिक-छन्दो को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इतना ही नही किन्तु सस्कृत के वर्ण वृत्तो से उन्होने एक ही छन्द मे नवीनता उत्पन्न कर अनेक नूतन छन्दो की सृष्टि भी की है। सस्कृत के

१ सदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहणु न जाइ।
जो कालगुलि मूदडउ, सो बाहडी समाइ॥ सदेश रासक

मालिनी छन्द में प्रत्येक पक्ति मे ८ और ७ अक्षरो के वाद यति के क्रम से १५ अक्षर होते है। उसे अपभ्रश भापा के कवि ने प्रत्येक पक्ति को दो भागो मे विभाजित कर यति के स्थान पर तथा पक्ति की समाप्ति पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर छन्द को नवीन रूप मे ढाल दिया है यथा—

"विविह रस विसाले, णेय कोऊ हलाले। ललिय वयण माले, अत्थ सदोह साले।
भुवण-विदिद णामे, सव्व-दोसो वसामे। इह खलु कह कोसे, सुन्दरे दिण्ण तोसे॥"
खलयण सिर सूल सज्जणाणाद मूले। पसरइ अविरोल मागहाण सुरोल।
सिरि णविय जिणिंदो, देह वाय वणिंदो। वसु हय जुइ जुत्तो, मालिणी छदु वुत्तो॥ सुद० ३-४।

दो छन्दो को मिलाकर अनेक नये छन्द भी बनाये गए है, जैसे छप्पय कुडलिया, चान्द्रायन और वस्तु आदि।

अपभ्रश भाषा के काव्यो मे विविध छन्दो का प्रयोग हुआ है उनके कुछ नाम इस प्रकार है—

पज्झटिका, पादाकुलिक, अलिल्लाह, रड्ढा, प्लवगम, भुजग प्रयात, कामिनी, तोटक, दोधक, सग्गिणी, घत्ता, दोहा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वसस्थ, आरणाल, तोमर, दुवई, मदनावतार, चन्द्रलेखा, कुवलयमालिनी, मोत्तियदाम, उपजाइ विलासिनी, शालिभजिका, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, प्रियवद, अनत-कोकिला, रथोद्धता, मदारदाम, आवली, नागकन्या, पृथिवी, विद्युन्माला, अशोकमालिनी और निसेणी आदि।

इससे यह सहज ही ज्ञात होता है कि अपभ्रश कवि छन्दो की विशेषताओ से परिचित थे, इसी से वे अपने ग्रन्थो मे विविध छन्दो का प्रयोग कर सके। कवि नयनन्दी ने अपने 'सकल विधि-विधान काव्य' मे ६२ मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया है। इससे प्रमाणित होता है कि नयनन्दी छन्द-शास्त्र के महान वेत्ता थे।

कवि श्रीचन्द ने 'रयणकरण्ड सावयायार' की १२वी सधि के तीसरे कडवक मे कुछ अपभ्रश छन्दो का नामोल्लेख किया है।

णिरयाल, आवली, चर्चरीरास, रासक, ध्रुवक, खडय, उपखडय, घत्ता, वस्तु, अवस्तु, अडिल, पद्धडिया, दोहा, उपदोहा, हेला, गाहा, उपगाहा, आदि छन्दो के नाम दिये है[1]।

इसी तरह कवि लक्ष्मण ने अपने 'जिनदत्तचरिउ' की चार सधियो मे वर्णवृत्त और मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है उनके नाम निम्न प्रकार है—

विलासिणी, मदनावतार, चित्तगया, मोत्तियदाम, पिगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जभेटिया, भुजगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमिणी, चच्चर, पचचामर, णाराच, निभगिणिया, रमणीलता, चित्तिया, भमरपय, मोणय, अमरपुर, सुन्दरी और लहुमत्तिय आदि।

अपभ्रश मे अनेक छन्द ग्रथ भी लिखे गये होगे। परन्तु वे आज उपलब्ध नही है। केवल स्वयभू का छन्द ग्रथ प्राप्त है वह अपभ्रश की महत्वपूर्ण देन है। परन्तु वह जनरलो मे प्रकाशित होने के कारण लोगो के पठन-पाठन मे वहुत कम आ सका है, अतएव बहुत से लोग उसकी महत्ता से अनभिज्ञ ही है। इस ग्रथ की

---

१ छदणिरयाल आवलियहिं, चच्चरि रासय रासहि ललियहिं।
वत्थु अवत्थू जाइ विसेसहिं, अडिल मडिल पद्धडिया अर्सहि।
दोहय उवदोहय अवभसहिं, दुवई हेला गाहु व गाहिंहि।
धुवय खड उवखडय घत्तहिं, सम-विसमद्ध समेहि विचित्तहिं॥ रयणकरडसावयायार

एक अपूर्ण प्रति रामनगर मे स० १५२७ की लिखी हुई प्रो० एच० डी० वेलकर महोदय को प्राप्त हुई थी और उन्होने उसे सम्पादित कर प्रकाशित कराया[1]। इस छन्द ग्रथ के पहले तीन अध्यायो मे प्राकृत के वर्ण वृत्तो का और अन्त के ५ अध्यायो मे अपभ्रश के छन्दो का कथन किया गया है। और छन्दो के अनेक उदाहरण भी पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ से तथास्वोपज्ञ ग्रन्थो से भी दिये गये हैं। इस ग्रथ का प्रारम्भिक अश नही है, और न परिचयात्मक अन्तिम प्रशस्ति ही है। हा, ग्रथ के अतिम अध्याय मे गाहा, अडिल्ला, पद्धडिया आदि छन्दो के जिनदेव की स्तुतिपरक स्वोपज्ञ उद्धरण भी दिए हुए हैं[2]। छन्द ग्रथ के सातवे अध्याय का जो २७वा पद्य घत्ता छन्द के उदाहरण मे दिया गया है वह 'पउमचरिउ' की पाचवी सधि का पहला पद्य है[3]। ६-४२ का 'वम्महतिलअ' का जो उद्धरण है वह राम कथा की ६५वी सन्धि का प्रथमपद्य है[4]। इसी तरह ६-७४ मे 'रणावली' का जो उदाहरण दिया है वह पउमचरिउ की ७७वी सधि के १३वे कडवक का अन्तिम पद्य है[5]। और छटे अध्याय का ७१वा पद्य पउमचरिउ की ७७वी सधि का प्रारम्भिक पद्य है[6]। इनसे स्पष्ट है कि कवि ने अपने ग्रथ के भी उद्धरण दिए है[7]। और अन्य कवियो के ग्रथो पर से उद्धरण देकर कवि ने अपने छन्द नैपुण्य को सूचित किया है।

कविवर जयकीर्ति ने छन्दोनुशासन मे स्वयभूदेव के मत का उल्लेख करते हुए नन्दिनी छन्द "तौ ज्रौ तथा पद्मनिधिर्जतौ जरौ। स्वयम्भूदेवेश मते तु नन्दिनी।" वाक्य के साथ दिया है जिससे जयकीर्ति के सामने स्वयभू का छन्द ग्रथ रहा है। जयकीर्ति कन्नड प्रान्त के निवासी दिगम्बर विद्वान् थे। इनका समय विक्रम की दशवी शताब्दी या उससे पूर्व होना चाहिए, क्योकि दशवी शती के कवि असग ने इनका उल्लेख किया है। इनके छन्दोऽनुशासन की प्रति स० ११९२ की लिखी हुई जैसलमेर के भडार मे मिली है।[8] इस से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वयभू का उक्त छन्द ग्रथ ७वी शताब्दी की रचना है। स्वयभू

---

१ देखो, रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे जनरल सन् १९३५ पृ० १८-५८।
और बोम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जिल्द ५ न० ३ नवम्बर १९३६।"

२ "तुम्ह पअ कमल मूले अम्ह जिण दु ख भावत विआइ।
ढुरु ढुरुल्लियाइ जिणवर ज जाणसु त करेज्जासु ॥३८
जिणणामें छिंदे बि मोहजालु, उप्पज्जइ देवल समिसालु।
जिण णामें कम्मइ णिद्दलेवि, मोक्खग्गे पइसिअ सुह-लहेवि ॥"४४

३ "अक्खइ गउतमसामि, तिहुअण लद्ध पससहो।
सुण सेणिय उप्पत्ति, रक्खस-वाणर-वसहो ॥"

४ "हणुवतरणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिं।
ण गयणयले बाल दिवायरु जलहरेंहि ॥

५ "सुरवर डामरु रावणु दट्ठु जासु जग कपइ।
अण्णुकहि महु चुक्कइ एवणाइ सिंहिजपइ ॥"

६ "भाइ विओए जिह जिह करइ विहीसणु सोउ।
तिह तिह दुक्खेण सहरि बाल वाणर लोउ ॥

७ इस ग्रथ का विशेष परिचय जैन साहित्य और इतिहास में पृष्ठ २०५ से २०७ तक देखे।

८ सवत् ११९२ आषाढ सुदि १० शनौ लिखितम्।

का यह छन्द ग्रंथ हिन्दी अनुवाद के साथ सम्पादित होकर प्रकट होना चाहिए, जिससे छन्द शास्त्र;के रसिक जन लाभ उठा सकें ।

अपभ्रंश व्याकरण

अपभ्रंश भाषा के जो व्याकरण दृष्टिगोचर हो रहे है वे अधिक प्राचीन नही है। प्राचीन समय मे अपभ्रश भाषा में व्याकरण अवश्य लिखे गए होगे, किन्तु वे वर्तमान मे उपलब्ध नही है। स्वयभूदेव के पउम-चरिउ के ५ वे पद्य मे यह बतलाया है कि—अपभ्रश वाला मदोन्मत्त हाथी तब तक ही स्वच्छन्दता से विचरण करता है जब तक कि उस पर स्वयभू-व्याकरणरूप अकुश नही पडता[1] । त्रिभुवनस्वयभू के इस उल्लेख से कि स्वयभूदेव ने अपभ्रश का व्याकरण भी बनाया था, परन्तु खेद है कि वह इस समय उपलब्ध नही होता । उसीके छठे पद्य में स्वयभू को पचानन (सिह) की उपमा दी गई है। जिसकी सच्छन्दरूप विकट दाढे, जो छन्द और अलकाररूप नखो से दुष्प्रेक्ष्य है और व्याकरणरूप जिसकी केसर (अयाल) है[2] । इससे भी उनके व्याकरण ग्रन्थ होने की सूचना मिलती है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि स्वयभू ने छंद और अलकार के ग्रन्थ भी बनाये थे । जिनमे छन्द ग्रन्थ तो उपलब्ध भी है । शेष नही ।

अपभ्रश के प्रचलित व्याकरणों में हेमचन्द्र का व्याकरण सबसे अच्छा है। इस व्याकरण का अध्ययन करने से यह विदित है कि उसमे कई भाषाओ का मिश्रण है। प्राकृत और शौरसैनी इन दो भाषाओ का मिश्रण तो ग्रन्थकर्ता ने स्वय ही स्वीकार किया है जैसाकि उनके निम्न वाक्यो से प्रकट है[3]—"प्रायो ग्रहणाद्यस्यापभ्रशे विशेपो वक्षते तस्यापि क्वचित् प्राकृत शौरसैनी वच्च कार्य भवति ।" हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण मे अपभ्रश के स्वपरिवर्त्तन में काफी स्वतत्रता दी है किन्तु परमात्मप्रकाश के कर्त्ता जोइन्दु ने यह स्वतत्रता नही दी है। व्यजनो के परिवर्तन मे (४-३९६ सूत्र मे) असयुक्त 'क-ख, त-थ, प-फ, के स्थान मे क्रम से 'ग-घ, द-ध, ब-भ' होते है। किन्तु उसका निर्वाह उनके द्वारा उद्धृत उदाहरणो मे नही हो सका है फिर भी यह व्याकरण अपनी विशेषता रखता ही है।

नाटकों में अपभ्रंश का प्रयोग

विक्रम की द्वितीय शताब्दी के विद्वान अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण नाटक मे 'मक्कट हो' रूप उल्लिखित मिलता है जो 'मर्कटस्य' का अपभ्रश रूप माना जा सकता है। चतुर्थ शताब्दी के भास के 'पचरात्र, नाटक मे ग्वालो के सवाद मे मागधी का प्रयोग होने से उसे भी मागधी अपभ्रश कहा जा सकता है। जैसे षट्टमडलु षुय्यो...शतमण्डलः सूर्य. ।

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'ओ' विभक्ति का अपभ्रश की विभक्ति मे परिवर्तित होने का समय ईसा की तृतीय शताब्दी अनुमानित किया है[4]।

---

१ तावच्चि सच्छदो भमइ अवब्भस-मच्च (त्त) मायगो ।
जाव ण सयभु-वायरण-अकुसो तच्छिरे पडइ ।५।

२ सच्छद-वियड-दाढो, छदो (दा) लकार-गहर-दुप्पिच्छो ।
वायरण-केसरऽड्ढो सयभु-पचाणणो जयउ ।६।

३. देखो, हेमचद्र का प्राकृतव्याकरण ४।३२९ सूत्र ।

४ इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृष्ठ ९९

मुद्रा राक्षस के (लगभग चतुर्थ शताब्दी) दूसरे अक मे माथुर ने जिस बोली का प्रयोग किया वह मागधी होते हुए भी उकार बहुला होने के कारण मागधी अपभ्रश कहा जा सकता है। यद्यपि टीकाकारो ने उसे 'टक्की' बतलाया है, किन्तु उसका शुद्ध रूप 'ठक्की' जान पडता है[1]।

कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक (ई० स० चतुर्थ शताब्दी) के चतुर्थ अक मे सोलह पद्य अपभ्रश भाषा के दिये हुए है जिनमे के एक दो पद्य विभिन्न छन्दो के निम्न प्रकार हैं —

मइँ जाणियइँ मिअलोअणी णिसिअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ।

अर्थात् 'जब तक नई बिजली से युक्त श्यामलमेघ वरसने लगा, तब तक मैने यही समझा था कि मेरी मृगलोचनी (प्रिया) को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है।

'रे-रे हसा किं गोविज्जइ, गइ अणुसारे मइ लक्खिज्जइ।
कइ पइ सिक्खिउ ए गइ-लालस, सापइ दिठ्ठी जहण-मरालस ॥'

अपभ्रश के इन पद्यो से यह स्पष्ट जाना जाता है कि ईसा की चतुर्थ शताब्दी के समय अपभ्रश मे विभिन्न छन्दो मे पद्य रचना होने लगी थी। यह बात और भी ध्यान मे रखने लायक है कि प्राकृत भाषा मे प्राय तुकान्त छन्दो का प्रयोग नही मिलता, जबकि अपभ्रश भाषा मे इसकी बहुलता है, ध्वनि और पद-गठन भी इसी ओर सकेत करते है।

देशी भाषाये ही अपने शुद्ध अशुद्ध पदो के साथ अपभ्रश मे परिणित हुई है। उनका शुद्ध प्रतिष्ठित रूप प्राकृत कहलाता था और अपभृष्ट रूप अपभ्रश। देशी भाषा के शब्दो का प्रयोग भी अपभ्रश मे मिल जाता है—वह विरूप नही जान पडता, इसीसे कविजनो ने देशी भाषा को अपभ्रश बतलाया है।

अपभ्रंश-साहित्य-सूची

अबदेव सूरि	समरारास (रचना स० १३७१) (मुद्रित)
अब्दुल रहमान	सदेश रासक (मुद्रित)
अभयगणि	सुभद्राचरित (र० स० १३६१)
अभयदेवसूरि	जयतिहुअणस्तोत्र (र० च० १११९) (मुद्रित)
अमरकीर्तिगणी	नेमिनाथचरिउ (र०च० १२४४) षट्कर्मोपदेश (र०च० १२४७) पुरदरविहाण कहा, महावीरचरिउ जसहरचरिउ, झाणपईव (अनुपलब्ध)
आसवाल	पासनाहचरिउ (र० च० १४७९)
उद्योतनसूरि	कुवलयमाला (वि० स० ८३५) (मुद्रित)

कण्हपा आदि चौरासी बौद्ध सिद्धो की दोहा कोष आदि रचनाए प्रकाशित

कनककीर्ति	नन्दीश्वर जयमाला
कनकामर	करकडुचरिउ (मुद्रित)
गुणभद्र भट्टारक	(वि० की १५वी १६वी शताब्दी) अणतवयकहा, सवणवारसिविहाणकहा, पक्खवइ कहा, णहपचमी कहा, चदायणकहा, चदणछट्ठी कहा, णरय उतारी दुद्धारसकहा, णिद्दुहसत्तमी कहा, मउडसत्तमी कहा, पुप्फजलिवय कहा,

१ डा० कीथकृत सस्कृत ड्रामा पृ० ८९,१४१,१६६, पजाब का वह प्रदेश 'ठक्क' ही कहलाता है।

	रयणत्तयविहाण कहा, दहलक्खणवय कहा, लद्धविहाण कहा, सोलहकारण वयविहि, सुयंधदहमीकहा। (भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित) हो रही है
चउमुंह (चतुर्मुख)	पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, पंचमी कहा (अनुपलब्ध)
जयदेव	भावनासधि (र० स० १६०६)
जल्हिग	अनुप्रेक्षारास
जिनदत्तसूरि	उपदेस रसायन (सं० ११३२-१२१०)
जिनदत्तसूरि	चर्चरी (रास)
जिनपद्मसूरि	स्थूलभद्रफाग (स० १२५७ के आस-पास) मुद्रित
जिनप्रभसूरि	अनाथसधि, अतरगरास, अतरगविवाह।
जिनप्रभसूरि	आत्मसम्वोधनकुलक
जिनप्रभसूरि	मोहराजविजय
जिनप्रभसूरि	वज्रस्वामिचरिउ (स० १३१६)
जिनभद्र	सुभाषितकुलक
जिनवरदेव	बुद्धिरसायण
तेजपाल	सभवनाथचरिउ, वरागचरिउ (र० स० १५०७), पार्श्वपुराण
त्रिभुवनस्वयभू	पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ पचमीकहा (विक्रम ९वी शताब्दी का अन्त)
दामोदर	णेमिणाहचरिउ (र० स० १२८७)
दामोदर	सिरिपालचरिउ, णेमिणाहचरिउ, चदप्पहचरिउ
देवचन्द	पासणाहचरिउ (लिपि० स० १४९४)
देवदत्त	वरागचरिउ, शान्तिनाथपुराण, अबादेवीरास (अनुपलब्ध) रचनाकाल स० १०५० के लगभग
देवनन्दि	रोहिणीवयकथा
देवसूरि	उपदेशकुलिक
देवसेन	सुलोयणाचरिउ
देल्हड	गयसुकमालरास (स० १३००) के लगभग
धनपाल	भविसदत्तपचमीकहा (वि० की १०वी शताब्दी)
धनपाल	बाहुवलीचरिउ (र० स० १४५४)
धर्मसूरि	जबूस्वामि रास (र० स० १२६६)
धवलकवि	हरिवस पुराण (सभवत विक्रमी ११वी शताब्दी
धाहिल	पउमसिरिचरिउ (मुद्रित)
नयनन्दी	सुदंसणचरिउ, सयलविहिविहाणकव्व (र० सं० ११०० के आस-पास)
नरसेन	सिद्धचक्कविहि, जिणरत्तिविहाण कहा (लिपि० स० १५१२ से पूर्ववर्ती)
नेमचन्द	रविवउकहा, अनन्तवयकहा
पद्मकीर्ति	पासणाहचरिउ (वि० स० ९९९)
पुष्पदंत	महापुराण, (वि० स० १०१६-१०२२) नागकुमारचरिउ, जसहरचरिउ मुद्रित

पूर्णभद्रमुनि	सुकमालचरिउ
प्रज्ञातिलक	कच्छूलीरास (स० १३६२)
वालचन्द्रमुनि	निरय-दुह-सत्तमीकहा
बूचिराज (वल्ह)	मयणजुज्झ (वि० स० १५८९)
भगवतीदास	मृगाककलेखाचरिउ, (१७००), मउडसत्तमीकहा, सुयध दसमी कहा।
महणसिंह	त्रिशत् जिनचउवीसी
महाचन्द	शान्तिनाथपुराण (र० स० १५८७)
महेश्वरसूरि	सयममजरी
माणिकचन्द	अमरसेनचरिउ (स० १५७७) णागकुमारचरिउ (स० १५७६)
यश कीर्ति	चदप्पहचरिउ (सभवत १२वी १३वी शताब्दी)
यश कीर्ति	पाण्डवपुराण (र० स० १४९७) हरिवसपुराण (र० स० १५००) जिनरत्तिविहाण कहा रविवउकहा (आदित्यवय कहा)
योगीन्द्रदेव	परमप्पयासु, जोयसार
रइधू	पउमचरिउ (बलहद्दचरिउ) हरवसपुराण, आदिपुराण, (अनुपलब्ध) पासपुराण, सम्मत्तगुणनिधान, मेहेसरचरिउ, जीवधरचरिउ, जसहरचरिउ, पुण्णासवकहाकोस, धनकुमारचरिउ, सुकोसलचरिउ, सम्मइ जिनचरिउ, सिद्धचक्क वयविहि, वृत्तसार, सिद्धान्तार्थसार आत्मसम्बोहकव्व, अणथमीकहा, सम्मत्तकउमदी, (करकडुचरिउ, सुदसणचरिउ, अनुपलब्ध) दशलक्षण जयमाला, षोडसकारण जयमाला, सोहथुदि, मुद्रित अनेकात वर्ष १३ कि० ४) सम्यक्त्व भावना तेरापथीमदिर जयपुर गु० न० २५७१)
राजशेखरसूरि	नेमिनाथफाग (स० १३७१)
रामसेनमुनि	दोहापाहुड (वि० १० वी शताब्दी)
रत्नप्रभसूरि	अतरगसधि (स० १३६२)
लक्ष्मण (लाखू)	जिणदत्तचरिउ, (स० १२७५) अणुवयरयणपईव (स० १३१३)
लक्ष्मण	नेमिनाथचरिउ (आसाइयपुरी)
लक्ष्मीचन्द	दोहाणुप्रेक्षारास (अनेकान्त वर्ष १२ किरण ९ पृ० २०२)
विजयसिंह	अजितनाथपुराण (१५०५)
विजयसेनसूरि	रेवतगिरिरास (वि० स० १२८८) मुद्रित
विद्यापति	कीर्तिलता मुद्रित
विनयचन्द	चूनडीरास, निर्झरपचमीकहारास कल्याणकरास लिपि० स० १४४५ दुद्धारसकहा
विनयचन्द्रसूरि	नेमिनाथचउपई (स० १२५७)
विमलकीर्ति	सोखवइविहाणकहा, सुयधदसमी कहा
वीरकवि	जबूस्वामीचरिउ (र० स० १०७६)
वीरकवि	णाणसारकीपाथडी

विबुधश्रीधर	पासपुराण(र०स० ११८९), वड्ढमाणचरिउ (र०स० ११९०), चदप्पहचरिउ (अनुपलब्ध)
शालिभद्रसूरि	पचपडवचरितरास (स० १४१०)
शालिभद्रसूरि	भरतबाहुवलीरास (स० १२४१) मुद्रित
शुभकीर्ति	शान्तिनाथचरिउ
श्रीचन्द	कहाकोसु, रयणकरडसावयायार (र० स० ११२०)
श्रीधर	सुकमालचरिउ (र० स० १२०८)
श्रीधर	भविसदत्त पचमीकहा (र० स० १२३०)
श्रुतकीर्ति	हरिवस पुराण(स०१५५२) परमेष्ठीप्रकाशसार, धर्मपरीक्षा, जोगसार (१५५२)
सहणपाल	सम्यक्त्व कौमुदी
सागरदत्तसूरि	जबूस्वामीचरित्र (स० १०६०)
साधारण ब्रह्म	कोकिला पचमीकहा, मुकुट सत्तमी, दुधारसी कथा, आदित्यवारकथा, तीन चउवीसीकथा पुष्पांजलिवयकहा, निर्दुहसत्तमी कथा निज्झरपचमी कहा, अनुप्रेक्षा (स० १५०८ से पूर्व)
सिद्धकवि	पज्जुण्णचरिउ, खडित
सिंहकवि	" पूर्ण (उद्धारित, सभवत १२वी १३वी शताब्दी)
सुप्रभाचार्य	सुप्पयदोहा (वैराग्यसार)
सोमप्रभसूरि	कुमारपाल प्रतिबोध (स० १२४१) मुद्रित
स्वयंभू	पउमचरिउ, हरिवसपुराण, पचमीकहा, स्वयभू व्याकरण (अनुपलब्ध)
हरइंद (अग्रवाल)	अणत्थमीकहा
हरइद (हल्ल या जयमित्र)	वड्ढमाणकव्व, मल्लिनाथकव्व
हरिदेव	मदन पराजय सभवत वि० की १५वी शताब्दी
हरिभद्र	सनत्कुमारचरिउ (स० १२१६)
हरिभद्र	णेमिकुमारचरिउ मुद्रित
हरिषेण	धम्मपरिक्खा (स० १०४४)
हेमचन्द	हेमशब्दानुशासन देशीनाममाला मुद्रित

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

पहली और दूसरी प्रशस्तिया क्रमश 'पउमचरिउ और रिट्ठणेमिचरिउ' की हैं। उनके कर्ता कवि स्वयभू व त्रिभुवन स्वयभू है। स्वयभू की रामकथा पउमचरिउ या रामायण बहुत ही सुन्दर कृति है। इसमे ९० सन्धिया है, जो पाच काण्डो मे विभक्त है। विद्याधर काण्ड मे २०, अयोध्याकाण्ड मे २२, सुन्दर काण्ड मे १४, और उत्तर काण्ड मे १३ सन्धिया है। जिनमे स्वयभूदेव रचित ८३ सन्धियां हैं, शेष उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयभू द्वारा रची गई है। ग्रन्थ मे प्रारम्भिक पीठिका के अनन्तर जम्बूद्वीप की स्थिति, कुलकरो की उत्पत्ति, अयोध्या मे ऋषभदेव की उत्पत्ति तथा जीवन-परिचय; लका मे देवताओ और विद्याधरो के वश का वर्णन, अयोध्या मे राजा दशरथ और राम-लक्ष्मण आदि की उत्पत्ति, बाल्यावस्था, जनक पुत्री सीता से

विवाह, राम-लक्ष्मण-सीता का वनवास, सबूकमरण, सीताहरण, रावण से राम-लक्ष्मण का युद्ध, सुग्रीव आदि से राम का मिलाप, लक्ष्मण के शक्ति का लगना, और उपचार आदि। विभीषण का राम से मिलना, रावणमरण, लका-विजय, विभीषण को राज्य प्राप्ति, राम-सीता-मिलाप, अयोध्या को प्रस्थान, भरतदीक्षा व तपश्चरण, सीता का लोकापवाद से निर्वासन, लव-कुश उत्पत्ति, सीता की अग्नि परीक्षा, दीक्षा और तपश्चरण, लक्ष्मण मरण, राम का शोकाकुल होना, और प्रबुद्ध होने पर दीक्षा लेकर तपश्चरण करके केवल्य प्राप्ति, और निर्वाण लाभ, आदि का सविस्तार कथन दिया हुआ है।

इस ग्रन्थ मे रामकथा का वही रूप दिया हुआ है, जो विमलसूरि के पउमचरिउ मे और रविषेण के पद्मचरित मे पाया जाता है। ग्रन्थ मे रामकथा के उन सभी अगो की चर्चा की गई है जिनका कथन एक महाकाव्य मे आवश्यक होता है। इस दृष्टि से पउमचरिउ को महाकाव्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ग्रन्थ मे कोई दुरूहता नही है, वह सरल और काव्य-सौन्दर्य की अनुपम छटा को लिए हुए है। समूचा वर्णन काव्यात्मक-सौन्दर्य और सरसता से ओत-प्रोत है, पढने के साथ ही मन रमने लगता है।

कविता की शैली जहा कथा-सूत्र को लेकर आगे बढती है और वहा वह सरलता और स्वाभाविकता का निर्वाह करती है। किन्तु जहा कवि प्रकृति का चित्रण करने लगता है। वहा एक से एक अलकृत सविधान का आश्रय कर ऊँची उडाने भरता है। गोदावरी की उपमा द्रष्टव्य है—गोदावरी नदी वसुधारूपी नायिका की बकित फेनावली के वलय से अलकृत दाहिनी वाह ही हो। जिसे उसने वक्षस्थल पर मुक्ताहार धारण करने वाले पति के गले मे डाल रक्खा है।[1]

कवि को कुछ पक्तिया वसुधा की रोम-राजि सदृश जान पडती है।[2]

युद्ध मे लक्ष्मण के शक्ति लगने पर अयोध्या के अन्त पुर मे स्त्रियो का विलाप कितना करुण है 'दु खातुर होकर सभी रोने लगे, मानो सर्वत्र शोक ही भर दिया हो। भृत्यजन हाथ उठा उठाकर रोने लगे, मानो कमलवन हिम पवन से विक्षिप्त हो उठा हो। राम की माता सामान्य नारी के समान रोने लगी, सुन्दरी उर्मिला हतप्रभ रोने लगी, सुमित्रा व्याकुल हो उठी, रोती हुई सुमित्रा ने सभी जनो को रुला दिया—कवि कहता है कि कारुण्यपूर्ण काव्य-कथा से किसके आसू नही आ जाते[3]। भरत और राम का

१ "फेणावलि बकियवलयालकिय, ण महि बहु अहे तणिया।
जण णिहि भत्तार हो मोत्तिय-हार हो, बाह पसारिय दाहिणिया॥
२ "कत्थवि णाणा विह रुक्खराइ, ण महिकुल बहु अहिं रोम-राइँ॥"
—पउमचरिउ
३ "दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ, ण चप्पिवि चप्पिवि भरिउ सोउ।
रोवइ भिच्च-यणु समुद्दहत्थु, ण कमल-सडु हिम-पवण घत्थु।
रोवइ अवरा इव राम जणणि, केवकय दाइय तरु सूल खणणि।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय, रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गओसि, किह सत्तिएँ वच्छ थलें हओसि।
हा पुत्तु ! मरतुम जो हओसि, दइवेण केण विच्छो इओसि।
घत्ता—रोवतिएँ लक्खण-मायरिएँ समल लोउ रोमा वियउ।
कारुणणइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण असु मुआवियउ॥" १३
—पउमचरिउ ६९, १३

विलाप किसे अश्रु विगलित नही करता [1]। इसी तरह रावरण की मृत्यु होने पर विभीषरण और मन्दोदरी के विलाप का वर्णन केवल पाठको के नेत्रो को ही सिक्त नही करता, प्रत्युत रावरण-मन्दोदरी और विभीषरण के उदात्त भावो का स्मरण कराता है[2]। इसी तरह अजना सुन्दरी के वियोग मे पवनजय का विलाप-चित्ररण भी ससार को विचलित किये बिना नही रहता।

ग्रन्थ मे ऋतुओ का कथन तो नैसर्गिक है ही, किन्तु प्रकृति के सौदर्य का विवेचन भी अपूर्व हुआ है। नारी-चित्ररण मे राष्ट्र कूट नारी का चित्ररण बडा ही सुन्दर है।

कवि ने राम और सीता के रूप मे पुरुप और नारी का रमणीय और स्वाभाविक चित्ररण किया है। पुरुष और नारी के सम्बन्धो का जैसा उदात्त और याथातथ्य चित्ररण सीता की अग्नि परीक्षा के समय हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रथ मे सीता के अमित धैर्य, साहस और उदात्त गुणो का वर्णन नारी की महत्ता का द्योतक है, उसके सतीत्व की आभा ने नारी के कलक को धो दिया है।

ग्रन्थ का कथा भाग कितना चित्ताकर्षक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नही है। सहस्रार्जुन की जल क्रीड़ा का वर्णन अद्वितीय है[3]। युद्ध के वर्णन करने में भी कवि ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है जिसे पढते ही सैनिको के प्रयारण की पग-ध्वनि कानो मे गूजने लगती है और शब्द योजना तो उनके उत्साह की सवर्द्धक है ही[4]।

ग्रथ मे वीर, शृङ्गार, करुरण और शात रसो का मुख्य रूप से कथन है। वीर रस के साथ शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति अपभ्रश काव्यो मे ही दृष्टिगोचर होती है। अलकारो मे उपमा और श्लेष का प्रयोग किया गया है।

दूसरी प्रशस्ति 'रिट्ठणेमिचरिउ' (हरिवश पुरारण) की है। जिसमे ११२ सन्धिया और १६३७ कडवक है। इनमे ७७ सधिया स्वयभू द्वारा रची गई है। शेष १३ सधिया स्वयभू के पुत्र त्रिभुवनस्वयभू की बनाई हुई है, किन्तु अतिम कुछ सधिया खडित हो जाने के कारण भट्टारक यश कीर्तिने अपने गुरु गुरण-कीर्ति के सहाय से गोपाचल के समीप स्थित कुमार नगर के परिणयार चैत्यालय मे उनका समुद्धार किया था और परिरणामस्वरूप उन्होने उक्त स्थानो मे अपना नाम भी अकित कर दिया। ग्रथ मे चार काण्ड है यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर काड।

प्रथम काड मे १३ सधियाँ है। जिनमे कृष्ण जन्म, बाल-लीला विवाह-कथा, प्रद्युम्न आदि की कथाए और भगवान् नेमिनाथ के जन्म की कथा दी हुई है। ये समुद्र विजय के पुत्र और कृष्ण के चचेरे भाई थे। दूसरे काड मे १६ सधिया है, जिनमे कौरव-पाडवो के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा आदि का कथन,

---

१. देखो पउमचरिउ सधि ६७।३-४। सधि ६६, १०-१२।

२. देखो पउमचरिउ ७६, ४-११, ७६-२-३

३ देखो सधि १४, ६।

४ केवि जस लुद्ध, सण्णद्ध कोह। केवि सुमित्त-पुत्त, सुकलत्त-चत्त-मोह।
केवि णीसरत्तिवीर। भूधरव्व तुग धीर।
सायरव्व अप्पमाण, कुजरव्व दिण्णणाण।
केसरिव्व उद्धकेस, चत्त सव्व-जीवियास।
केवि सामि-भत्ति-वत, मच्छिरग्गि-पज्जलत।
केवि आहवे अभग, कुँ कुम पसाहि अग। —पउमचरिउ ५७-२

परस्पर का वैमनस्य, युधिष्ठिर का जुआ खेलना और पराजित होना, द्रोपदी का चीर हरण, तथा पाडवो के वारह वर्ष के वनवास आदि का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय काड मे ६० सधिया हैं कौरव-पाडवो के युद्ध वर्णन मे पाडवो की विजय और कौरवों की पराजय आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है और उत्तर काड की २० सधियो मे कृष्ण की रानियो के भवातर, गजकुमारका निर्वाण, द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारिका-दाह, कृष्ण-निधन, बलभद्र-शोक, हलधर दीक्षा, जरत्कुमार का राज्य लाभ, पाडवो का गृह-वास, मोह-परित्याग, दीक्षा, तपश्चरण और उपसर्ग सहन, तथा उनके भवातर आदि का कथन, भगवान नेमिनाथ के निर्वाण के वाद ७७वी सधि के पश्चात् दिया हुआ है। रिट्ठेणेमिचरिउ की सधि पुष्पिकाओ मे स्वयभू को धवलइया का आश्रित, और त्रिभुवन स्वयभू को बन्दइया का आश्रित बतलाया है।

मत्स देश के राजा विराट का साला कीचक जिस समय सबके सामने द्रोपदी का अपमान करता हैं। कवि कल्पना द्वारा उसे मूर्तिमान बना देता है।

यम दूत की तरह कीचक ने द्रोपदी का केश-पाश पकडकर खीचा और उसे लात मारी। यह देख कर राजा युधिष्ठिर मूर्छित हो गए। भीम रोष के मारे वृक्ष की ओर देखने लगे किस तरह मारे। किन्तु युधिष्ठिर ने पैर के अगूठे से उन्हे मना कर दिया। उधर पुर की नारिया व्याकुल हो कहने लगी कि इस दग्ध शरीर को धिक्कार है इसने ऐसा जघन्य कार्य क्यो किया ? कुलीन नारियो का तो अब मरण ही हो गया, जहा राजा ही दुराचार करता हो वहा सामान्य जन क्या करेंगे ?

सो तेण विलक्खी हूवएण, अणुलग्गे जिह जम दूयएण।
विहुरे हि धरेवि चलणेंहि हय, पेक्खतह रायह मुच्छ गय।
मणि रोस पवट्टिय वल्लभ हो, किर देइ दिट्ठ तरु पल्लव हो।
मरु मारमि मच्छु स-मेहुणउ, पट्ठवमि कयत हो पाहुणउ।
तो तव-सुएण आरुट्टएण, विणिवारिउ चलणगुट्ठएण।
ओसारिउ विओयरु सण्णियउ, पुर-वर णारिउ आदण्णियउ।
धि धि दट्ढ सरीरे काइ किउ, कुल-जायह-जायह मरणथिउ।
जहि पहु दुच्चारिउ समायरइ, नहि जण तम्मण्णु काइ करइ।

—सधि २८-७

इसी सधि के १५वे कडवक मे द्रोपदी के अपमान से क्रुद्ध भीम का और कीचक का परस्पर बाहु युद्ध (कुश्ती) का वर्णन भी सजीव हुआ है—

रण मे कुशल भीम और कीचक दोनो एक दूसरे से भिड गए। दोनो ही हजारो युवा हाथियो के समान वल वाले थे। दोनो ही पर्वत के वडे शिखर के समान लम्बे थे। दोनो ही मेघ के समान गर्जना वाले थे। दोनो ने ही अपने-अपने ओठ काट रखे थे, उनके मुख क्रोध से तमतमा रहे थे। नेत्र गुजा (चिरमटी घुघची) के समान लाल हो गये थे। दोनो के वक्षस्थल आकाश के समान विशाल और दोनो के भुजदड परिघि के समान प्रचड थे[३]।

---

३ 'तो भिडिवि परोधप रण कुसल, विण्णि वि णयणाय सहस्स-वल।
विण्णि वि गिरि तुग-सिग सिहर, विण्णि वि जल हरख गहिर गिर।
वि ण्णिवि दट्टोट्ठ रुट्ठ वयण, विण्णिवि गुजाहल सम-णयण।
विण्णिवि णहयल णिरु-वच्छ थल, विण्णिवि परिहोवम-भुज-जुयल। —रिट्ठणेमिचरिउ २८-१५

इस तरह कवि ने शरीर की असारता का दिग्दर्शन करते हुए लिखा है कि मानव का यह शरीर कितना घिनावना और शिराओ-स्नायुओ से बधा हुआ अस्थियो का एक ढाचा या पोट्ठल मात्र है। जो माया और मद रूपी कचरे से सड रहा है, मल पुज है, कृमि-कीटों से भरा हुआ है, पवित्र गध वाले पदार्थ भी इससे दुर्गन्धित हो जाते है, मास और रुधिर से पूर्ण चर्मवृक्ष से घिरा हुआ है—चमडे की चादर से ढका हुआ है, दुर्गन्धकारक है, आतो की यह पोटली और पक्षियो का भोजन है, कलुषता से भरपूर इस शरीर का कोई भी अग चगा नही है। चमडी उतार देने पर यह दुष्प्रेक्ष्य हो जाता है, जल विन्दु तथा सुर धनु के समान अस्थिर और विनश्वर है। ऐसे घृणित शरीर से कौन ज्ञानी राग करेगा ? यह विचार ही ज्ञानी के लिए वैराग्यवर्द्धक है।[1]

कवि परिचय

स्वयभू कुल से ब्राह्मण थे परन्तु जैनधर्म पर आस्था हो जाने के कारण उनकी उस पर पूरी निष्ठा एव भक्ति थी। कवि के पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था।[2] स्वय कवि ने अपने छन्द ग्रथो मे मारुतदेव का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि वे कवि के पिता ही हो। पुत्र द्वारा पिता की कृति का उल्लिखित होना आश्चर्य की बात नही है।

कवि की तीन पत्निया थी। आदित्य देवी जिसने अयोध्या काड लिपि किया था।[3] दूसरी आमिअव्वा, (अमृताम्बा) जिसने पउमचरिउ के विद्याधरकाड की २० सधियाँ लिखवाई थी और तीसरी सुअव्वा, जिसके पवित्र गर्भ से 'त्रिभुवन स्वयभू' जैसा प्रतिभा सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो अपने पिता समान ही विद्वान् और कवि था।[4] इसके सिवाय अन्य पुत्रादिक का कोई उल्लेख नही मिलता। कविवर का शरीर दुबला-पतला और उन्नत था। उनकी नाक चपटी और दात विरल थे।[5]

कवि स्वयभू कोशल देश के निवासी थे। जिन्हे उत्तरीय भारत के आक्रमण के समय राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का मत्री रयडा धनजय मान्यखेट ले गया था। राजा ध्रुव का राज्य काल वि० स० ८३७ से ८५१ तक रहा है।[6] पउमचरिउ मे स्वयभू देव ने अपने को धनजय के आश्रित बतलाया है और रिट्ठणेमिचरिउ मे धवलइया के आश्रित। और त्रिभुवन स्वयभू ने अपने को वदइया के आश्रित।

धनजय, धवलइया और वदइया ये तीनो ही पिता पुत्र आदि के रूप मे सम्बद्ध जान पडते है। उनका कवि के ग्रथ निर्माण मे सहायक रहना श्रुत भक्ति का परिचायक है।

समय-विचार

कवि ने ग्रन्थ मे अपना कोई समय नही दिया है। परतु पद्मचरित के कर्ता रविषेण का स्मरण जरूर

---

१ देखो, रिट्ठणेमिचरिउ ५४-११।

२ पउमिणि जणणि गब्भ सभूए, मारुयएव—रूप-अणुराए। —पउमचरिउ प्रशस्ति

३ आइच्चु एवि पडिमोवमायें आइच्चम्बियाए।
बीउ अउज्झा-कड सयभू घरिणीय लेहविय ॥ सधि ४२

४ सव्वे वि सुआ पजर सुअव्व पडिअक्खराइ सिक्खति।
कइरा अस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ सभूओ ॥

५ अइ तणुएण पईहर गत्तें छिव्वरणासें पविरल दतें। —पउम० प्रशस्ति

६ हिन्दी काव्य-धारा पृ० २३

किया है। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित को वीर निर्वाण स० १२०३ वि० स० ७३३ में बनाकर समाप्त किया है। अत स्वयभू वि० स० ७३३ के बाद किसी समय हुए हैं। श्रद्धेय प्रेमी जी ने लिखा है कि—स्वयभू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे हरिवश पुराण के कर्ता पुन्नाट सघीय जिनसेन का उलेख नही, किया हो सकता है कि उक्त उल्लेख किसी कारण से छूट गया हो, या उन्हे लिखना स्वय याद न रहा हो। रिट्ठणेमिचरिउ का ध्यान से समीक्षण करने पर या अन्य सामग्री से अनुसधान करने पर यह स्पष्ट जरूर हो जाएगा कि ग्रन्थ कर्ता ने उसकी रचना मे उसका उपयोग किया या नही। भ० यश कीर्तिके उद्धार काल से पूर्वकी कोई प्रति १५वी शताब्दी की लिखी हुई कही मिल जाय तो उक्त समस्या का हल शीघ्र हो सकता है।

स्वयभू के पुत्र त्रिभुवन स्वयभू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' की १०४वी सधि मे प्राकृत सस्कृत और अपभ्रश के जो ७० के लगभग पूर्ववर्ती कवियो के नाम गिनाये है। उनमे जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्य का भी नामोल्लेख किया है। उनका उल्लेख निम्न प्रकार है—

देविल, पचाल, गयन्द, ईश्वर, णील, कठाभरण, मोहाकलस (मोहकलश) लोलुय (लोलुक) बन्धुदत्त, हरिदत्त, दोल्ल, बाण पिगल, कलमियक, कुलचन्द्र, मदनोदर, गौड, श्री सघात, महाकवितुग, चारुदत्त, रुद्दड, (रुद्रट) रज्ज, कविल अहिमान, गुणानुराग, दुग्गह, ईसान, इद्रक, वस्त्रादन, णारायण, महट्ट, सीहप्प, कीतिरण, पल्लवकित्ति, गुणिद्ध, गणेश, भासड, पिशुन, गोबिन्द, वेयाल, (वेताल) विसयड, णाग, पण्डणत्त, सुग्रीव, पतजलि, वरसेन, मल्लिषेण, मधुकर, चतुरानन (चउमुख) सँघसेन, बकुय, वर्द्धमान, सिद्धसेन, जीव या जीवदेव, दयावरिंद, मेघाल, विलालिय पुण्डरीक, वसुदेव, भीउय कुण्डरीक, दृढमति, गृहत्थि, भावक्ष, यक्ष, द्रोण पणभद्र, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, दिनकर, णाग, धर्म, गुणभद्र, कुशल, स्वयभूदेव, शीलभद्र, वीरवदक, सर्वनन्दि, कलिकाभद्र, णागदेव और भवनदि।[1]

---

१ पह दइ सन्नभाव कइ देविल पचाल गइधया।
ईसर णील कठाभरण मोहाकलस इधया॥
लोलुय बधुयत्त हरियत्त दोल्ल वाणाय पिगला।
दढहड कलमियक मयणोउर गयउड विवक दुज्जला॥
सिरि सघाय तुग महकइ परसेय चारु दत्तया।
वाडा सग्गु अक्खवहि बधण रुद्दडरज्ज इदया॥
वत्थायण वि यह हरि कुटि गुण सुढुब्वि मड्ढया।
णारायण महट्ट सीहप्प कित्ति रण दियट्ठया॥
कविल गुणाणुराय दुग्गह दीसाणहिमाण अचया।
जिणयत्त(त्ता) कलक करविस पल्लव कित्तडि गुणिद्धया।
मण मोहावरुद्ध धम्मीयणर गणेश भासडा॥
पिसुण सुयउ मणेह गोविंदकइ वेयालविसयडा।
णवि णागह पडणत्त सुग्गीव पडजलिय वरसेणया॥
करि कण्णय कण्णा सदीस मणोहर मल्लिसेणया।
महुयर मूलहट्ट चउराणण महकइसघसेणया॥
वेकुय वद्धमाण सघायरियाहिय सिद्धसेणया।
जीददयावरिंद मेघाल विलालिय पुडरीया॥

इन कवियों मे जैन जैनेतर प्राकृत-सस्कृत और अपभ्रश भापा के कवि शामिल है। जैसे गोविद, मल्लिपेरण, चतुराानन, सघसेन, वर्द्धमान, सिद्धसेन, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, जिनदत्त, गुणभद्र, स्वयभूदेव, सर्वनन्दि, नागदेव और भवनन्दि आदि जैन कवि प्रतीत होते है। सभव है, इनमे और भी चार-पाँच नाम हो। क्योकि उनका ग्रथ परिचादि के बिना ठीक परिज्ञान नही होता। इससे यह भी स्पष्ट है कि उनसे पूर्व अनेक कवि अपभ्रश के भी हो गए थे।

इनमे उल्लिखित गुणभद्राचार्य राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय के शिक्षक थे। गुणभद्र का समय विक्रम की १०वी शताब्दी का पूर्वार्ध है। हो सकता है कि स्वयभू गुणभद्र के समय नही रहे हो, किन्तु त्रिभुवन स्वयभू तो मौजूद थे। इसीसे उन्होने उनका नामोल्लेख किया है। जिनसेन ने अपना हरिवशपुराण शक स० ७०५ वि० स० ८४० मे बनाकर समाप्त किया है। स्वयभू ने अपना ग्रन्थ जब बनाया उस समय गुणभद्र नही होगे। किन्तु हरिवशपुराण के कर्ता के समय तक वे अवश्य रहे होगे। अत रिट्ठणेमिचरिउ के रचयिता स्वयभूदेव के समय की पूर्वावधि वि० स० ८०० और उत्तरावधि वि० स० ९०० मानने मे कोई बाधा नही जान पडती। इस कारण स्वयभू विक्रम की ९वी शताब्दी के विद्वान होने चाहिये। यदि रयडा-धनजय वाली बात स्वीकृत की जाय, तो राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का राज्यकाल वि० स० ८३७ से ८५१ तक रहा है। इससे भी स्वयभूदेव का समय विक्रम की ९वी० शताब्दी का मध्यकाल सुनिश्चित होता है। इससे वे पुन्नाटसघीय जिनसेन के प्राय समकालीन जान पडते है।

कन्नड कवि जयकीर्ति ने 'छन्दो-नुशासन' नामक ग्रथ बनाया है जिसकी हस्तलिखित प्राति स० ११९२ को जैसलमेर के शास्त्र भडार मे सुरक्षित है। यह ग्रन्थ एच० डी० वेलकर द्वारा सम्पादित हो चुका है। इस ग्रन्थ मे कवि ने स्वयभू छन्द के 'नन्दिनी' छन्द का उल्लेख किया है। कवि जयकीर्ति का समय विक्रम की दशवी शताब्दी का पूर्वार्ध या नौवी शताब्दी का उपान्त्य समय होना चाहिए। क्योकि दशवी शताब्दी के कवि असग ने जयकीर्ति का उल्लेख किया है। इस कथन से भी स्वयभू का समय ९वी शताब्दी होना चाहिये।

तीसरी और सत्रहवी प्रशस्तियाँ क्रम से 'सुदसणचरिउ' और 'सयल विहिविहाणकव्व' नामक ग्रथो की है जिनके कता कवि नयनन्दी है। सुदर्शनचरित अपभ्रश भाषा का एक खण्ड काव्य है, जो महाकाव्यो की श्रेणी मे रखने योग्य है। जहाँ उसका चरित भाग रोचक और आकर्षक है वहा वह सालकार-काव्य-कला की दृष्टि से उच्चकोटि का है कवि ने उसे सरस और निर्दोप बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। ग्रथकार ने स्वय लिखा है कि रामायण मे राम और सीता का वियोग तथा शोकजन्य व्याकुलता के दर्शन होते है, और महाभारत मे पाण्डव तथा धृतराष्ट्रादि कौरवो के परस्पर कलह एव मारकाट के दृश्य अकित

वसुवसुएव खेणाए सरभीउय कुडरीरया।
दिड़मइ गहत्थि पहुडोवकरुणभाववख जवखया॥
दोणय पणभद्दसि सिरिदत्त धम्म-जिणसेण दक्खया।
दिणयर णाय-धम्म गुणभद्दहि व मुणि सयल वंदया॥
कुसल सयभूदेव जइसीलहद्द गुरु वीरवदया।
सुदर सव्वणदि साहुव वहुव णिंदया॥
सिरिकलिकालहद्द सिंह इय णागदेव भवणदिया।

—हरिवशपुराण १०४वी सधि, पृ०,३०१ नारयणा प्रति

मिलते है। तथा लोकशास्त्र मे भी कौलिक, चोर, व्याधे आदि की कहानिया सुनने मे आती है, किन्तु इस सुदर्शनचरित मे ऐसा एक भी दोष नही है। जैसा कि उसके निम्न वाक्य से प्रकट है —

रामो सीय-विओय-सोय-विहुर सपत्तु रामायणे,
जाद पाण्डव-धायरट्ठ सदद गोत्त कली-भारहे।
डेडा-कोलिय-चोर-रज्जु-णिरदा आहासिदा सुद्दये,
णो एक्क पि सुदसणस्स चरिदे दोस समुब्भासिद ॥

कवि ने काव्य के आदर्श को व्यक्त करते हुए लिखा है कि रस और अलकार से युक्त कवि की कविता मे जो रस मिलता है वह न तरुणिजनो के विद्रुम समान रक्त अधरो मे, न आम्रफल मे, न ईख मे, न अमृत मे, न हाला (मदिरा) मे, न चन्दन मे और न चन्द्रमा मे ही मिलता है[1]।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे सुदर्शन के निष्कलक चरित की गरिमा ने उसे और भी पावन एव पठनीय बना दिया है। ग्रन्थ मे १२ सन्धिया है जिनमे सुदर्शन के जीवन परिचय को अकित किया गया है। परन्तु इस कहाकाव्य मे कवि की कथन शैली, रस और अलकारो की पुट, सरस कविता, शान्ति और वैराग्य रस तथा प्रसगवश कला का अभिव्यजन, नायिका के भेद, ऋतुओ का वर्णन और उनके वेष-भूषा आदि का चित्रण, विविध छन्दो की भरमार, लोकोपयोगी सुभाषित[2] और यथास्थान धर्मोपदेशादि का विवेचन इस काव्य-ग्रन्थ की अपनी विशेषता के निर्देशक है और कवि की आन्तरिक भद्रता के द्योतक है।

प्रस्तुत ग्रथ मे पचनमस्कार मत्र का फल प्राप्त करने वाले सेठ सुदर्शन के चरित्र का चित्रण किया गया है। चरितनायक यद्यपि वणिक श्रेष्ठी है, तो भी उसका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा मेरुवत् निश्चल है उसका रूप लावण्य इतना चित्ताकर्षक था कि उसके बाहर निकलते ही युवतिजनो का समूह उसे देखने के लिए उत्कठित होकर मकानो की छतो, द्वारो तथा झरोखो मे इकट्ठा हो जाता था, वह कामदेव का कमनीय रूप जो था। साथ ही वह गुणज्ञ और अपनी प्रतिज्ञा के सम्यक्पालन मे अत्यन्त दृढ था। धर्माचरण करने मे तत्पर था, सबसे मिष्टभाषी और मानव जीवन की महत्ता से परिचित था और था विषय-विकारो से विहीन।

ग्रथ का कथा भाग बडा ही सुन्दर और आकर्षक है और वह इस प्रकार है—

अग देश के चम्पापुर नगर मे, जहा राजा धाडीवाहन राज्य करता था, वहा वैभव सम्पन्न ऋषभदास सेठ का एक गोपालक (ग्वाला) था जो गगा मे गायो को पार करते समय पानी के वेग से डूब कर मर गया था और मरते समय पच नमस्कार मत्र की आराधना के फलस्वरूप उसी सेठ के यहा पुत्र हुआ था। उसका नाम सुदर्शन रक्खा गया। सुदर्शन को उसके पिता ने सब प्रकार से सुशिक्षित एव चतुर

---

१ णो सजाद तरुणिअहरे विद्दुमारत्तसोहे।
णो साहारे भमिय भमरे णेव पुडिच्छु डडे ॥
णो पीयूसे हले खिहिणे चन्दणे णेव चन्दे।
सालकारे सुकइ भणिदे ज रस होदि कव्वे ॥

२ करे ककणु कि आरिसे दीसए ? हाथ कगन को आरसी क्या ?
एर्के हत्थें ताल कि वज्जइ। ताली क्या एक हाथ से बजती है ?
कि मारवि पचमु गाइज्जइ। ताडन से क्या पाचवा स्वर गाया जाता है। —सुदक्षणचरिउ

वना दिया और उसका विवाह सागरदत्त सेठ की पुत्री मनोरमा से कर दिया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह अपने कार्य का विधिवत् सचालन करने लगा। सुदर्शन के रूप की चारो ओर चर्चा थी, उसके रूपवान शरीर को देखकर उस नगर के राजा धाड़ीवाहन की रानी अभया उस पर आसक्त हो जाती है और उसे प्राप्त करने की अभिलाषा से अपनी चतुर पडिता दासी को सेठ सुदर्शन के यहां भेजती है पडिता दासी रानी की प्रतिज्ञा सुनकर रानी को पातिव्रत धर्म का अच्छा उपदेश करती है और सुदर्शन की चरित्र-निष्ठा की ओर भी सकेत करती है, किन्तु अभया अपने विचारो से निश्चल रहती है और पण्डिता को उक्त कार्य की पूर्ति के लिए खासतौर से प्रेरित करती है। पडिता सुदर्शन के पास कई वार जाती है और निराश होकर लौट आती है, पर एक वार वह दासी किसी कपट-कला द्वारा सुदर्शन को राजमहल में पहुंचा देती है। सुदर्शन के राजमहल मे पहुँच जाने पर भी अभया अपने कार्य मे असफल रह जाती है—उसकी मनोकामना पूरी नही हो पाती। इससे उसके चित्त मे असह्य वेदना होती है और वह उससे अपने अपमान का बदला लेने पर उतारू हो जाती है, वह अपनी कुटिलता का माया-जाल फैलाकर अपना सुकोमल शरीर अपने ही नखो से रुधिर-प्लावित कर डालती है और चिल्लाने लगती है कि दोडो लोगो मुझे बचाओ, सुदर्शन ने मेरे सतीत्व का अपहरण किया है, राजकर्मचारी सुदर्शन को पकड़ लेते है और राजा अज्ञानता-वश क्रोधित हो रानी के कहे अनुसार सुदर्शन को सूली पर चढाने का आदेश दे देता है, पर सुदर्शन अपने शीलव्रत की निष्ठा से विजयी होता है—एक देव प्रकट होकर उसकी रक्षा करता है। राजा धाडीवाहन का उस व्यन्तर से युद्ध होता है और राजा पराजित होकर तथा सुदर्शन की शरण में पहुँचता है। राजा घटना के रहस्य का ठीक हाल जानकर अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता है और सुदर्शन को राज्य देकर विरक्त होना चाहता है, परन्तु सुदर्शन ससार-भोगो से स्वय ही विरक्त है, वह दिगम्बर दीक्षा लेकर तपश्चर्या द्वारा कर्मसमूह का विनाशकर मुक्त हो जाता है। सुदर्शन का तपस्वी जीवन बडा ही सुन्दर रहा है उसे कवि व्यक्त करने मे सफल हुआ है। अभयारानी और पडिता दासी भी आत्मघात कर मर जाती है और वे अपने कर्मानुसार कुगति मे जाती हैं। इस तरह इस ग्रथ मे पच नमस्कार मत्र के फल की महत्ता अङ्कित की गई है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना अवन्ति देश स्थित धारा नगरी के जिनवर विहार मे राजा भोज के राज्यकाल में स० ११०० मे की है।

ग्रथकर्ता ने ग्रथ की अन्तिम प्रशस्ति मे अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए जो परम्परा दी है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की वस्तु है। कुन्दकुन्दाचार्य के वंश मे पद्मनदी, विष्णुनन्दी, विश्वनन्दी, वृषभनन्दी, रामनन्दी, त्रैलोक्यनन्दी, माणिक्यनन्दी का नामोल्लेख किया है, इन्ही माणिक्यनन्दी के प्रथम विद्या शिष्य नयनन्दी हैं।

दूसरी कृति 'सयल-विही-विहाण' नाम का महाकाव्य है, जो ५८ सधियो मे समाप्त हुआ है। परंतु खेद है कि वह अपूर्ण उपलब्ध हुआ है, क्योकि उसमे १६ सधियां नही है, वे ग्रन्थ से कैसे त्रुटित हुई इसके जानने का भी कोई साधन नही है। प्रारभ की दो तीन सन्धियो मे ग्रंथ के अवतरण आदि पर प्रकाश डालते हुए १२ वी से १५ वी सधि तक मिथ्यात्व के काल मिथ्यात्व और लोक-मिथ्यात्व आदि अनेक मिथ्यात्वो का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए क्रियावादि और अक्रियावादि भेदो का विवेचन किया है। परन्तु खेद है कि १५वी सन्धि के पश्चात् ३२ वी सन्धि तक १६ सन्धियाँ आमेर भण्डार प्रति मे नही हैं। हो सकता है कि वे लिपि-कर्ता को न मिली हो।

कवि ने इस ग्रंथ मे विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है उनमे से कुछ छन्दो के नाम मय पत्र नम्बर के निम्न प्रकार हैं—

१ विलासनी, (३२) २. भुजगप्रिया, (२९) ३ मजरी, (३०) ४ वशस्थल, (४४) ५ चन्द्रलेखा (५२) ६ सिंधुरगति, (५८) ७ दोधक, (७४) ८ मौक्तिकमाला, (७७) ९. सगिणी, (८३) १० पादाकुला, (९६) ११ मदनलीला, (९८) १२ द्विपदी, (९८) १३ विद्युन्माला, (९९) १४ रासाकुलक, (१०२) १५ कुवलयमालिनी, (१०२) १६ तुरगगति मदन, (१०३) १७ समानिका, (११८) १८ रथोद्धता,(११९) १९ प्रमाणिका, (१७५) २० नाग कन्या, (१७६) २१, सगीतगधर्व, (२००) २२ शृगार, (२००) २३ वालभुजग ललित, (२०१) २४ अजनिका, (२५०) आदि

इनके अतिरिक्त दोहा, घत्ता, गाहा, दुपदी, पद्धडिया, चौपाई, मदनावतार भुजगप्रयात आदि अनेक छन्दो का एक से अधिक बार प्रयोग हुआ है। अतएव छन्दशास्त्र की दृष्टि से भी ग्रन्थ अध्ययन, मनन और प्रकाशन के योग्य है। ग्रन्थकी भाषा प्रौढ और कविके अपभ्रश भाषाके साधिकारको सूचित करती है।

कवि ने ग्रन्थ के सन्धि-वाक्य भी पद्य मे निबद्ध किये हैं। यथा—

मुणिवर णयणदी सण्णिवद्धे पसिद्धे, सयल विहिविहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।
समवसरणससि सेणिए सपवेसो, भणिउ जण मणुज्जो एस सधी तिइज्जो ॥३॥

ग्रथ की ३२ वी सन्धि मे मद्य-मास-मधु के दोष उदबरादि पचफलो के त्याग का विधान और फल बतलाया है। ३३ वी सन्धि मे पच अणुव्रतो की विशेषताओ का उल्लेख है और उनमे प्रसिद्ध पुरुषो के आख्यान भी यथा स्थान दिए गए है शेष सन्धियो मे भी इसी तरह का कथन किया गया है। ५६ वी सधि के अन्त मे सल्लेखना (समाधिमरण) का स्पष्ट उल्लेख है और विधि मे आचार्य समन्त भद्र के कथन-क्रम को अपनाया गया है। इस तरह ग्रन्थ मे गृहस्थोपयोगी व्रतो का सुन्दर विधान किया गया है।

ग्रन्थ की दूसरी सधि मे अबाइय और कचीपुर का उल्लेख किया है। अनन्तर वल्लभराज का भी उल्लेख किया है, जिसने दुर्लभ जिन प्रतिमाओ का निर्माण कराया था और जहा पर रामनन्दी, जयकीर्ति और महाकीर्ति प्रधान थे[१]। आगे कवि ने रामनन्दी को आचार्य प्रकट किया है। और रामनन्दी के शिष्य वालचन्द्र ने नयनन्दी से कहा कि सकलविधिविधान काव्य अविशेषित है। कवि ने उसे कुछ दिनो के बाद वनाना प्रारम्भ किया था, क्योकि किसी कारण विशेष से कवि का चित्त उद्विग्न था, चित्त की अस्थिरता में ऐसे महाकाव्य का निर्माण कैसे सम्भव हो सकता है? उद्विग्नता दूर होनेपर ही प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान् है, कवि ने ग्रन्थ बनाने मे प्रेरक मुनि हरिसिह का उल्लेख करते हुए अपने से पूर्ववर्ती जैन जैनेत्तर और कुछ सम सामयिक विद्वानो का भी नामोल्लेख किया है—वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, बाण, मयूर जिनसेन वादरायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पादलिप्त पिंगल, वीरसेन, सिंहनन्दी, सिंहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलक,

---

१ अबाइय कचीपुर विरत्त, जहि भमइ भव्य भत्तिहि पसत्त।
जहिं वल्लभराए वल्लहेण, कराविउ कित्तण दुल्लहेण।
जिणि पडिमा लकिउ गच्छुमाणु, ण केण वियभिउ सुरविमाणु।
जहिं रामणदि गुणमणि-णिहाणु, जयकित्ति महाकित्ति वि पहाणु।
—सयलविहिविहाण काव्य सन्धि २

रुद्र गोविन्द, दण्डी, भामह, माघ, भरत, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र प्रभाचन्द्र, और श्रीकुमार जिन्हें सरस्वतीकुमार भी कहते थे।

इन कवियो में जिनसेन, जयराम, वीरसेन, सिहनन्दी, सिहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलक, गोविद, चउमुह, स्वयभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और श्रीकुमार ये १५ कवि जैन हैं। वे जिनसेन से पुष्पदन्त तक सभी कवि ग्रंथ कर्ता से पूर्ववर्ती है और शेष सम सामयिक। इनमें जयराम वही प्रतीत होते है जो प्राकृत धर्मपरीक्षा के कर्ता थे और जिनका उल्लेख बुधहरिषेण ने स० १०४४ मे रचीजाने वाली धर्म परीक्षा मे किया। श्रीचन्द्र प्रभाचद्र श्रीकुमार और हरिसिंह मुनि सम समयवर्ती हैं।

इस तरह कवि ने ग्रथ मे बहुमूल्य सामग्री सकलित की है, कथनशैली चित्ताकर्षक है। ससार की असारता और मनुष्य की उन्नति अवनति का हृदयग्राही वर्णन किया है और बतलाया है कि जब एक ही दिन मे सूर्य जैसे पराक्रमी को भी उदय, उपरिगमन और पतन इन तीन अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ता है, तब अन्य का क्या कहना। यौवन, धनादि सब अस्थिर है।

यथा—उयय चडण पडण तिण्णि वि ठाणाइ इक्क दिणहंमि।
सूरस्स य एसगई अण्णस्स य केत्तिय थाम।

कवि नयनन्दी अपने समय के उच्चकोटि के कवि थे, और अपभ्रश के छन्दो के मर्मज्ञ के। ग्रथ की महत्ता का अन्दाज उसके अध्ययन से लगता है।

कवि ने ग्रथ-प्रशस्ति मे लिखा है कि वराड या वराट देश में प्रसिद्ध कीर्ति, लक्ष्मी और सरस्वती से मनोहर वाट ग्राम के महान महल शिखर मे जिणिंद विराजमान है जिनकी कांति से चन्द्र-सूर्य भी लज्जित हो गए है। जहा पर जिनागम का उत्सव सम्पन्न होता था और वहीं पर वीरसेन जिनसेन ने धवला और जयधवला टीकाओं का निर्माण किया था, वहां ही पुडरीक कवि धनजय हुए थे[1]।

कवि-परिचय

प्रस्तुत कवि नयनन्दी कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा के विद्वान थे। त्रैलोक्यनन्दि के प्रशिष्य और माणिक्यनदि के प्रथम विद्या शिष्य थे, माणिक्यनदि दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड पडित थे। उन्ही से नयनदि ने अध्ययन किया था। इनके दीक्षा गुरु कौन थे और वह कहां के निवासी थे, इनका जीवन-परिचय क्या है ? इसे कवि ने ही नही दिया है। परतु कवि काव्य-शास्त्र में निष्णात थे, साथ ही सस्कृत प्राकृत और अपभ्रश भाषा के विशिष्ट विद्वान् थे। छन्द शास्त्र के भी परिज्ञानी थे। कवि ने धारा नगरी मे ही अध्ययन किया था और वही रहते हुए परमारवशी राजा जयसिह के राज्य में वि० सं० ११०० मे सुदर्शन चरित की

१. वर वराडदेसे पसिद्धए, कित्ति-लच्छि सरसइ-मणोहरे।
वाडगामि महि महिल सेहरे, जहिं जिणिंद-हर पह-पराजिया।
चंद-सूर णेह जंत लज्जिया, तहिं जिणागमुच्छव अलेवहि।
वीरसेण-जिणसेण देवहि, णामधवल जयधवल सय।
महाबंध तिण्णि सिद्धत सिव-पहा, विरइऊण भवियह सुहाविया।
सिद्ध-रमणि-हाराच दाविया पुडरीउ जहिं कवि धणजउ।
—सकल विधि विधान प्रशस्ति

रचना की थी। उसके बाद किसी समय सकलविधिविधान की रचना की गई है। प्रस्तुत ग्रथ ५८ सधियों का था किन्तु उसके मध्य की १६ सन्धियाँ अनुपलब्ध है। कवि ने अन्य किन ग्रन्थो की रचना की, यह कुछ ज्ञात नही हो सका। इन्होंने विविध देशों मे भ्रमण कर जैनधर्म का भी प्रचार किया था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख सुदसण चरिउ मे किया है, जिसे उस ग्रथ का परिचय देते समय दे दिया है।

चौथी प्रशस्ति 'पार्श्व पुराण'की है, जिसके कर्त्ता कवि पद्मकीर्ति हैं। प्रस्तुत ग्रथ मे १८ सधियाहै। सधियो मे कडवको की सख्या निश्चित नही है, उदाहरणार्थ चौथी-पाचवी सधि मे वारह-बारह कडवक है। तो चउदहवी सधि मे ३० कडवक दिये हैं। जिनमे जैनियो के तेईसवे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अङ्कित किया गया है। वे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) से ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए है। और ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनकी ऐतिहासिकता को ऐतिहासिक विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। ग्रन्थ मे अन्य सब कथन परम्परा के अनुकूल ही किया गया है।

हा, कवित्व की दृष्टि से छठी, दशवी और ग्यारहवी सधिया उल्लेखनीय हैं। छठी सधि मे ग्रीष्म काल और उसमे होने वाली जलक्रीडा, वर्षा काल और हेमन्त आदि का सुन्दर वर्णन दिया हुआ है। दसवी सधि मे सूर्यास्त, रजनी और चन्द्रोदय आदि का कथन दृष्टव्य है। ग्यारहवी सधि मे युद्धादि का वर्णन भी चित्तार्षक हुआ है। भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ देखने मे आता है और जो स्वाभाविक है। मात्रिक छन्दो के अतिरिक्त भुजगप्रयात, स्रग्विणी आदि वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुये हैं। ११वी सधि के प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ मे पहले एक दुवई और फिर उसके बाद दोहय या दोहे का प्रयोग भी किया गया है[1]। एक व्यक्ति विशेष के परिचय की मुख्यता इसे खण्ड-काव्य कहा जाता है। पर उसमे महाकाव्यत्व की क्षमता भी दृष्टिगत होती है।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० स० ६६६ मे कार्तिक की अमावस्या के दिन बनाकर समस्त किया है[2]।

ग्रथकर्त्ता ने अपनी गुरु परम्परा निम्न रूप से व्यक्त की है। भूमण्डल मे प्रसिद्ध माथुरगच्छ के विद्वान चन्द्रसेन नाम के ऋषि हुए। उनके शिष्य, महायती कामजयी माधवसेन हुए। उनके शिष्य जिनसेन हुए, और उनके शिष्य उक्त पद्मकीर्ति या पद्यसेन है। जिन्होने इस ग्रन्थ को 'भमिया पुहमी' जिनालय मे बैठकर वनाया था। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। ग्रन्थ की श्लोक सख्या २३२३ बतलाई गई है।

५वी प्रशस्ति 'धर्म परीक्षा' की है जिसके कर्त्ता कवि हरिषेण हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ११ सधिया और २३८ कडवक हैं। जिसे कवि ने बुध सिद्धसेन के प्रसाद से बनाया था। ग्रन्थ मे मनोवेग और पवनवेग का रोचक सम्वाद दिया हुआ है। ग्रथ का कथानक मनोरजक है, और वह पौराणिक कथानको के अविश्वसनीय असम्बद्ध चरित्र चित्रण से भरा हुआ है और उन आख्यानो को असगत बतलाते हुए जैनधर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है, किन्तु उनमे स्मृत-पुराण-ग्रन्थो के मूल वाक्यो का कोई उल्लेख नही है। ग्रन्थ की

१ चडि वि महारहि भउ सहिउ, वइरिपमाण ममद्दु।
अहि मुह चल्लिउ परबलहो सण्णज्झे वि णरेंदु॥११-१

२ णवसय णउ वा णुइये कत्तियमासे अमावसी दिवसे।
लिहिय पासपुराण कइणा इह पउम णामेण॥

भाषा अपभ्रंश है। कवि ने ससार की असारता का सुन्दर वर्णन किया है[1] और बतलाया है कि—संसार असार है, कोई कभी दुख नही चाहता, सभी सुख चाहते है। ससार में धन धान्यादि कोई भी वस्तु इस जीवन के साथ नही जाती, कुटुम्बीजन स्मशान भूमि तक अवश्य जाते है, किन्तु धर्म अधर्म जीव के साथ परलोक मे भी जाते है, दु.ख सुख भी साथ जाते है। ऐसा विचारकर मानसिक सताप को दूर कर, जिससे शुभ गति मिले ऐसा, प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति मे कवि ने अपने से पूर्ववर्ती ३ कवियों—चतुर्मुख, स्वयभू और पुष्पदन्त का नामोल्लेख किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ काष्ठासघ के आचार्य अमितगति की धर्मपरीक्षा से, जो वि० स० १०७० मे सस्कृत में रची गई है, उससे यह ग्रन्थ २६ वर्ष पूर्व बना है। डा० एन० उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है[2]।

कवि परिचय

कविवर हरिषेण मेवाड़ देश मे स्थित चित्रकूट (चित्तौड) के निवासी थे। इनका वंश धक्कड या धर्कट था, जो उस समय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। इस वश मे अनेक कवि हुए है। इनके पिता का नाम गोवर्द्धन और माता का नाम गुणवती था, यह किसी कारणवश चित्रकूट को छोड़कर (अचलपुर) में रहने लगे थे। और वहा उन्होने अपने से पूर्व बनी हुई जयराम की प्राकृत गाथा बद्ध धर्म परीक्षा को देख कर वि० स० १०४४ मे पद्धडिया छन्द मे धर्मपरीक्षा नाम का ग्रन्थ बनाया था[3]।

छठवीं प्रशस्ति 'जबू स्वामी चरित' की है। जिसके कर्ता कवि वीर है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शृङ्गार वीर महाकाव्य' है[4]। कवि ने इस नाम को ग्रन्थ की प्रत्येक संधि पुष्पिकाओ में व्यक्त किया है और ग्रथ को महाकाव्य भी सूचित किया है। ग्रन्थ में ११ सधिया अथवा अध्याय है। जिनमे 'जबूस्वामी के चरित का चित्रण किया है। चरित्र चित्रण करते हुए कवि ने महाकाव्यो मे विहित रस और अलकारो का सरस वर्णन करके ग्रन्थ को अत्यन्त आकर्षक और पठनीय बना दिया है। कथा पात्र भी उत्तम है, जिनके जीवन-परिचय से ग्रन्थ की उपयोगगिता की अभिवृद्धि हुई है। शृंगार रस, वीर रस और शान्त रस का यत्र-तत्र विवेचन दिया हुआ है। कही कही शृगारमूलक वीर रस है। ग्रथ मे अलकारो का चयन दो प्रकार का पाया जाता है एक चमत्कारिक, दूतरा स्वाभाविक। प्रथम का उदाहरण निम्न प्रकार है।

---

१. भणिउ ताम ससार असारए, कोवि ण कासु वि दुह—गरु पारए।
भुय मणुएँ सहु अत्थु ण गच्छइ, समणु मसाणु जार मणु मच्छइ।
धम्माहम्मु णवरु अणुलग्गउ, गच्छइ जीवहु सुह-दुह संगउ।
इय जाणे वि ताय दाणुल्लउ, चिंतिउ नइ सुपत्ते अइ भल्लउ।
इट्ठकेउ णिय-मणि झाइज्जइ। सुह-गइ-गमणु जेण पाविज्जइ।

२. देखो हरिषेण की धम्मपरिक्खा, एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना भा० २३ पृ० ५७२-६०८

३. विक्कम णिय परिवत्तिय कालए, गणए वरिस सहस चउतालए।
इउ उप्पण्णु भवियजण सुहयरु डभरहिय धम्मासय सायरु॥
—धर्मपरीक्षा पूना वाली प्रति।

४ इय जबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइ देवयत्त सुय 'वीर' विरइये सामि उप्पत्ती कुमार-विजय नाम चउत्थी सधी समत्तो।

'भारह-रण-भूमिव स-रहभीस[१], हरिग्रज्जुण[२] णउलसिहडिदीस ।
गुरु[३] ग्रासस्थाम कलिगचार, गयगज्जिर[४] ससर महीससार ॥
लकाणयरी व स-रावणीय[५], चदणपहि[६] चार कलहावणीय ।'
सपलास[७] सकचण ग्रक्खघट्ट, स विहीसण[८] कइकुल फल रसट्ट ॥

इन पद्यो मे विध्याटवी का वर्णन करते हुए श्लेष प्रयोग से दो ग्रर्थ ध्वनित होते हैं—स रह—रथ सहित ग्रौर एक भयानक-जीव हरि—कृष्ण ग्रौर सिंह, ग्रर्जुन ग्रौर वृक्ष, नहुल ग्रौर नकुल जीव, शिखडि ग्रौर मयूर ग्रादि ।

स्वाभाविक विवेचन के लिए पाचवी सधि से शृ गार मूलक वीर रस का उदाहरण निम्न प्रकार है—केरलनरेश मृगाक की पुत्री विलासवती को रत्नशेखर विद्याधर से सरक्षित करने के लिए जबू कुमार ग्रकेले ही युद्ध करने जाते हैं। युद्ध वर्णन मे कवि ने वीर के स्थायीभाव 'उत्साह' का ग्रच्छा चित्रण किया है। पीछे मगध के शासक श्रेणिक या बिम्बसार की सेना भी सजधज के साथ युद्धस्थल मे पहुँच जाती है, किन्तु जम्बू कुमार ग्रपनी निर्भय प्रकृति ग्रौर ग्रसाधारण धैर्य के साथ युद्ध करने को प्रोत्तेजन देने वाली वीरोक्तिया भी कहते हैं तथा ग्रनेक उदात्त भावनाग्रो के साथ सैनिको की पत्निया भी युद्ध मे जाने के लिए उन्हे प्रेरित करती हैं। युद्ध का वर्णन कवि के शब्दो मे यो पढिए ।

'ग्रक्क मियक सक्क कपावणु, हा मुय सीयहे कारणे रावणु ।
दलियदप्प दप्पिय मइमोहणु, कवणु ग्रणत्थु पत्तु दोज्जोहणु ।
तुज्झु ण दोसु वइव किउ धावइ, ग्रणउ करतु महावइ पावइ ।
जिह जिह दड करविउ जपइ, तिह तिह खेयरु रोसहि कपइ ।
घट्ट कठ सिरजालु पलित्तउ, चडगड पासेय पसित्तउ ।
दट्ठाहरु गुजज्जलुलोयणु, पुरुदुरतणासउड भयावणु ।
पेक्खेवि पहु सरोसु सण्णामहि, वुत्तु वग्रोहरू मतिहि तामहि ।
ग्रहो ग्रहा हूयहूय सासस गिर, जपइ चावि उद्दण्ड गब्भिउ किर ।
ग्रण्णाहो जीहएह कहो वग्गए, खयर वि सरिस णरेस हो ग्रग्गए ।

१ रथसमन्विता भीसा भयानका, विंध्याटवीपक्षे सरभैरष्टापदैर्भयानका ।

२ वासुदेवादय दृश्या, विंध्याटव्या हरि सिंह, ग्रर्जुनो वृक्षविशेष वकुल प्रसिद्ध शिखडी मयूर ।

३. भारतरण-भूमौ गुरु' द्रोणाचार्य तत्पुत्र ग्रश्वत्थामा, कलिगा कलिंग देशाधिपति राजा एतेषा चारा श्रेष्टा विंध्याटव्या गुरु महान्, ग्रस्वत्थ पिप्पल ग्रामः ग्राद्र कलिगवल्यचार वृक्ष विशेषा ।

४ भारतरणभूमौ गजगर्जित ससरबाण समन्विता महीसा राजान तै सारा भवति, विंध्याटव्यां तु गजगर्जित ससरा सरोवरसमन्विता महीससारा महिषा सारा यस्या ।

५ रावण सहिता पक्षे रयणवृक्ष सहिता ।

६ लकानगरी चन्द्रनखा चारेण चेष्टा विशेषेण कलहकारिणी पक्षे चन्दनवृक्षविशेषै मनोज्ञलघुहस्तिभिर्युक्ता ।

७ पलासै राक्षसै युक्ता सकाचन ग्रक्षयकुमारो रावणपुत्र तेन युक्ता, पक्षे पलासवृक्ष सकाचन मदनवृक्ष ग्रक्ष विभीतिक वृक्षा ते तक्का यत्र ।

८ लकानगरी विभीषणेन कपीना वानराणा कुलै समन्विता, फलानि रसाढ्यानि यत्र-नानाभयानकाना वानराणा सघातै फलरसढ्या च ।

भरणइ कुमारू एहु रइ लुद्धउ, वसरण महण्णवि तुम्महि छुद्धउ ।
रोसन्ते रिउहि यच्छु वि रण सुरणइ, कज्जाकज्ज वलावलु रण मुरणइ ।'

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा बहुत प्राजल, सुबोध,सरस और गम्भीर अर्थ की प्रतिपादक है और इसमे पुष्पदन्तादि महाकवियो के काव्य-ग्रन्थो की भाषा के समान ही प्रौढ़ता और अर्थगौरव की छटा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है ।

जम्बूस्वामी अन्तिम केवली हैं। इसे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदाय निर्विवाद रूप से मानते है और भगवान महावीर के निर्वारण से जम्बूस्वामी के निर्वारण तक की परम्परा भी उभय सम्प्रदायो में प्राय. एक-सी है, किन्तु उसके बाद दोनों मे मतभेद पाया जाता है[1] । जम्बूस्वामी अपने समय के ऐतिहासिक महापुरुष हुए है । वे काम के असाधारण विजेता थे । उनके लोकोत्तर जीवन की पावन झाकी ही चरित्र-निष्ठा का एक महान आदर्श रूप जगत को प्रदान करती है । इनके पवित्रतम उपदेश को पाकर ही विद्युच्चर जैसा महान् चोर भी अपने चोरकर्मादि दुष्कर्मो का परित्याग कर अपने पाँच सौ योद्धाओ के साथ महान् तपस्वियों मे अग्रणीय तपस्वी हो जाता है और व्यतरादि कृत महान् उपसर्गो को ससंघ साम्यभाव से सहकर सहिष्णुता का एक महान् आदर्श उपस्थित करता है ।

उस समय मगध देश का शासक राजा श्रेणिक था, जिसे बिम्बसार भी कहते है । उसकी राजधानी 'रायगिह' (राजगृह) कहलाती थी, जिसे वर्तमान मे लोग राजगिर के नामसे पुकारते है । ग्रन्थकर्ता ने मगधदेश और राजगृह का वर्णन करते हुए, और वहा के राजा श्रेणिक का परिचय देते हुए, उसके प्रतापादि का जो संक्षिप्त वर्णन किया है, उसके तीन पद्य यहा दिये जाते है—

'चड भुजदड खडिय पयंडमडलियमडली वि सड्ढे ।
धारा खडरण भीयव्व जयसिरी वसइ जस्स खग्गके ॥१॥
रे रे पलाह कायर मुहइ पेक्खइ न सगरे सामी ।
इय जस्स पयावद्योसणाए विहडति वइरिणो दूरे ॥२॥
जस्स रक्खिय गोमडलस्स पुरुसुत्तमस्स पढाए ।
के केसवा न जाया समरे गय पहरणा रिउणो ॥३॥

अर्थात् जिनके प्रचड भुजदड के द्वारा प्रचड माडलिक राजाओ का समूह खडित हो गया है, (जिसने अपनी भुजाओ के बल से माडलिक राजाओ को जीत लिया है) और धारा-खडन के भय से ही मानो जयश्री जिसके खड्गाङ्क मे बसती है ।

राजा श्रेणिक सग्राम मे युद्ध से सत्रस्त कायर पुरुषों का मुख नही देखते, रे, रे कायर पुरुषो ! भाग जाओ'—इस प्रकार जिसके प्रताप वर्णन से ही शत्रु दूर भाग जाते हैं। गोमन्डल (गायो का समूह) जिस तरह पुरुषोत्तम विष्णु के द्वारा रक्षित रहता है । उसी तरह यह पृथ्वीमडल भी पुरुषों मे उत्तम राजा श्रेणिक के द्वारा रक्षित रहता है, राजा श्रेणिक के समक्ष युद्ध मे ऐसे कौन शत्रु-सुभट है, जो मृत्यु को प्राप्त नही हुए, अथवा जिन्होने केशव (विष्णु) के आगे आयुध रहित होकर आत्म समर्पण नही किया ।'

१ दिगम्बर जैन परम्परा मे जम्बूस्वामी के पश्चात् विष्णु, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु थे पाच श्रुत केवली माने जाते हैं, किन्तु श्वेताम्बरी परम्परा मे प्रभव, शय्यभव, यशोभद्र, आर्यसभूतिविजय, और भद्रबाहु इन पाच श्रुतकेवलियों का नामोल्लेख पाया जाता है । इनमे भद्रबाहु को छोडकर चार नाम एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं ।

ग्रन्थ का कथा भाग बहुत ही सुन्दर, सरस और मनोरजक है और कवि ने उसे काव्योचित सभी गुणो का ध्यान रखते हुए उसे पठनीय बनाने का यत्न किया है उसका सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

कथासार

जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र मे मगध नामका देश है उसमे श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन राजा श्रेणिक अपनी सभा मे बैठे हुए थे कि वनमाली ने चलकर विपुलाचल पर्वत पर महावीर स्वामी के समवसरण आने की सूचना दी। श्रेणिक सुनकर हर्षित हुआ और उसने सेना आदि वैभव के साथ भगवान का दर्शन करने के लिए प्रयाण किया। श्रेणिक ने समवसरण मे पहुचने से पूर्व ही अपने समस्त वैभव को छोड कर पैदल समवसरण मे प्रवेश किया और वर्द्धमान भगवान को प्रणाम कर धर्मोपदेश सुना। इसी समय एक तेजस्वी देव आकाश मार्ग से आता हुआ दिखाई दिया। राजा श्रेणिक द्वारा इस देव के विषय मे पूछे जाने पर गौतम स्वामी ने बतलाया कि इसका नाम विद्युन्माली है और यह अपनी चार देवांगनाओ के साथ यहाँ वन्दना करने के लिए आया है। यह आज से ७वे दिन स्वर्ग से चयकर मध्यलोक मे उत्पन्न होकर उसी मनुष्य भव से मोक्ष प्राप्त करेगा। राजा श्रेणिक ने इस देव के विषय मे विशेष जानने की अभिलाषा व्यक्त की, तब गौतम स्वामी ने कहा कि—'इस देश मे वर्द्धमान नाम का एक नगर है। उसमे वेदघोष करने वाले, यज्ञ मे पशुवलि देनेवाले, सोमपान करने वाले, परस्पर कटु वचनो का व्यवहार करने वाले, अनेक ब्राह्मण रहते थे। उनमे अत्यन्त गुणज्ञ एक ब्राह्मण-दम्पत्ति श्रुतकण्ठ आर्यवसु रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमशर्मा था। उनसे दो पुत्र हुए थे। भवदत्त और भवदेव। जब दोनो की आयु क्रमश १८ और १२ वर्ष हुई, तब आर्यवसु पूर्वोपार्जित पापकर्म के फल-स्वरूप कुष्ट रोग से पीडित हो गया और जीवन से निराश होकर चिता बनाकर अग्नि मे जल मरा। सोम-शर्मा भी अपने प्रिय विरह से दु खित होकर चिता मे प्रवेश कर परलोकवासिनी हो गई। कुछ दिन बीतने के पश्चात् उस नगर मे 'सुधर्म' मुनिका आगमन हुआ। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया, भवदत्त ने धर्म का स्वरूप शान्त भाव से सुना, भवदत्त का मन ससार मे अनुरक्त नही होता था, अत उसने आरम्भ परिग्रह से रहित दिगम्बर मुनि बनने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। और वह दिगम्बर नुनि हो गया। और द्वादश-वर्ष पर्यन्त तपश्चरण करने के पश्चात् भवदत्त एक बार सघ के साथ अपने ग्राम के समीप पहुचा। और अपने कनिष्ठ भ्राता भवदेव को सघ मे दीक्षित करने के लिए उक्त वर्धमानग्राम मे आया। उस समय भव-देव का दुर्मर्षण और नागदेवी की पुत्री नागवसु से विवाह हो रहा था। भाई के आगमन का समाचार पाकर भवदेव उससे मिलने आया, और स्नेहपूर्ण मिलन के पश्चात् उसे भोजन के लिये घर मे ले जाना चाहता था परन्तु भवदत्त भवदेव को अपने सघ मे ले गया और वहा मुनिवर से साधु दीक्षा देने को कहा। भवदेव असमजस मे पड गया, क्योकि उसे विवाह कार्य सम्पन्न करके विषय-सुखो का आकर्षण जो था, किन्तु भाई की उस सदिच्छा का अपमान करने का उसे साहस न हुआ। और उपायान्तर न देख प्रवज्या (दीक्षा) लेकर भाई के मनोरथ को पूर्ण किया, और मुनि होने के पश्चात् १२ वर्ष तक सघ के साथ देश-विदेशो मे भ्रमण करता रहा। एक दिन अपने ग्राम के पास से निकला। उसे विषय-चाह ने आकर्षित किया और वह अपनी स्त्री का स्मरण करता हुआ एक जिनालय मे पहुचा, वहा उसने एक अर्जिका को देखा, उससे उन्होने अपनी स्त्री के विषय मे कुशल वार्ता पूछी। अर्जिका ने मुनि के चित्त को चलायमान देखकर उन्हे धर्म मे स्थिर किया और कहा कि वह आपकी पत्नी मैं ही हूँ। आपके दीक्षा समाचार मिलने पर मैं

भी दीक्षित हो गई थी। भवदेव पुनः छेदोपस्थापना पूर्वक सयम का अनुष्ठान करने लगा। अन्त में दोनों भाई मरकर सनत्कुमार नामक स्वर्ग मे देव हुए और सात सागर की आयु-तक वहाँ वास किया।

भवदत्त स्वर्ग से चयकर पुण्डरीकिनी नगरी मे वज्रदन्त राजा के घर सागरचन्द नाम का और भवदेव वीतशोका नगरी के राजा महापद्म चक्रवर्ती की वनमाला रानी के शिवकुमार नाम का पुत्र हुआ। शिवकुमार का १०५ कन्याओ से विवाह हुआ, करोडो उनके अगरक्षक थे, जो उन्हें बाहर नही जाने देते थे। पुण्डरीकिनी नगरी मे चारण मुनियो से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर सागरचन्द्र ने देह-भोगो से विरक्त हो मुनिदीक्षा ले ली। त्रयोदश प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करते हुए वे भाई को सम्बोधित करने वीतशोका नगरी मे पधारे। शिवकुमार ने अपने महलो के ऊपर से मुनियो को देखा, उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया, उसके मन मे देह-भोगो से विरक्तता का भाव उत्पन्न हुआ, उससे राजप्रासाद मे कोलाहल मच गया। और उसने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। पिता ने बहुत समझाया और कहा कि घर मे ही तप और व्रतो का अनुष्ठान हो सकता है, दीक्षा लेने की आवश्यकता नही, पिता के अनुरोध-वश कुमार ने तरुणीजनो के मध्य मे रहते हुए भी विरक्त भाव से नव प्रकार से ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान किया। और दूसरो से भिक्षा लेकर तप का आचरण किया। और आयु के अन्त मे वह विन्द्युन्माली नाम का देव हुआ। वहां दस सागर की आयु तक चार देवागनाओ के साथ सुख भोगता रहा। अब वही विद्युन्माली यहां आया था जो सातवे दिन मनुष्य रूप से अवतरित होगा। राजा श्रेणिक ने विद्युन्मालो की उन चार देवागनाओ के विषय मे पूछा। तब गौतम स्वामी ने बताया कि चपा नगरी में सूरसेन नामक सेठ की चार स्त्रियाँ थी जिनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा और यशोमती। वह सेठ पूर्वसचित पाप के उदय से कुष्ट रोग से पीड़ित होकर मर गया, उसकी चारो स्त्रियाँ अर्जिकाएँ हो गईं और तप के प्रभाव से वे स्वर्ग मे विद्युन्माली की चार देविया हुईं।

पश्चात् राजा श्रेणिक ने विद्युच्चर के विषय मे जानने की इच्छा व्यक्त की। तब गौतम स्वामी ने कहा कि मगध देश मे हस्तिनापुर नामक नगर के राजा विसन्धर और श्रीसेना रानी का पुत्र विद्युच्चर नाम का था। वह सब विद्याओ और कलाओ में पारंगत था एक चोर विद्या ही ऐसी रह गई थी जिसे उसने न सीखा था। राजा ने विद्युच्चर को बहुत समझाया, पर उसने चोरी करना नही छोडा। वह अपने पिता के घर मे ही पहुच कर चोरी कर लेता था और राजा को सुषुप्त करके उसके कटिहार आदि आभूषण उतार लेता था। और विद्याबल से चोरी किया करता था। अब वह अपने राज्य को छोड़कर राजगृह नगर मे आ गया, और वहा कामलता नामक वेश्या के साथ रमण करता हुआ समय व्यतीत करने लगा। गौतम गणधर ने बतलाया कि उक्त विद्युन्माली देव राजगृह नगर मे अर्हद्दास नाम श्रेष्ठिका पुत्र होगा जो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा।

यह कथन हो ही रहा था कि इतने मे एक यक्ष वहा आकर नृत्य करने लगा। राजा श्रेणिक ने उस यक्ष के नृत्य करने का कारण पूछा। तब गौतम स्वामी ने बतलाया कि यह यक्ष अर्हद्दास सेठ का लघु भ्राता था। यह सप्तव्यसन मे रत था। एक दिन जुए मे सब द्रव्य हार गया और उस द्रव्य को न दे सकने के कारण दूसरे जुआरियो ने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। सेठ अर्हद्दास ने उसे अन्त समय नमस्कार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से वह मर कर यक्ष हुआ। यक्ष सुनकर हर्ष से नृत्य कर रहा है कि उसके भाई सेठ अर्हद्दास के अन्तिम केवली का जन्म होगा।

ग्रन्थ-निर्माण में प्रेरक

इस ग्रन्थ की रचना मे किनकी प्रेरणा को पाकर कवि प्रवृत्त हुआ है, उसका परिचय ग्रन्थकार ने निम्न रूप से दिया है —

मालव देश मे धक्कड या धर्कट[1] वश के तिलक महासूदन के पुत्र तक्खडु श्रेष्ठी रहते थे। यह ग्रन्थकार के पिता महाकवि देवदत्त के परम मित्र थे। इन्होने ही वीर कवि से जबू स्वामीचरित के निर्माण करने की प्रेरणा की थी और तक्खडु श्रेठी के कनिष्ठ भ्राता भरत ने उसे अधिक सक्षिप्त और अधिक रूप से न कहकर सामान्य कथा वस्तु को ही कहने का आग्रह अथवा अनुरोध किया था और तक्खडु श्रेठी ने भरत के कथन का सर्थन किया था और इस तरह ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ बनाने का उद्यम किया।

ग्रन्थकार

इस ग्रन्थ के कर्ता महाकवि वीर हैं, जो विनयशील विद्वान और कवि थे। इनकी चार स्त्रियाँ थी। जिनवती, पोमावती, लीलावती और जयादेवी तथा नेमचन्द्र नाम का एक पुत्र भी था[2]। महाकवि वीर विद्वान और कवि होने के साथ-साथ गुणग्राही न्याय-प्रिय और समुदार व्यक्ति थे। उनकी गुणग्राहकता का स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ की चतुर्थ सन्धि के प्रारम्भ मे पाये जाने वाले निम्न पद्य से मिलता है —

अगुणा ण मुणति गुण गुणिणो न सहति परगुणे दट्ठु।
वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कइ वीर-सारिच्छा॥

अर्थात्—"अगुण अथवा निर्गुण पुरुष गुणो को नही जानता और गुणीजन दूसरे के गुणो को भी नही देखते—उन्हे सहन भी नही कर सकते, परन्तु वीर-कवि के सदृश कवि विरले हैं, जो दूसरे गुणो को समादर की दृष्टि से देखते है।"

कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए लिखा है कि—"सुकवित्त करणमणावावडेण" १-३। इसमे कवि ने अपने को काव्य बनाने के अयोग्य बतलाया है। फिर भी कवि ने अपनी सामर्थ्यानुसार काव्य को सरस और सालकार बनाने का यत्न किया है और कवि उसमे सफल हुआ है।

कवि का वश और माता-पिता

कविवर वीर के पिता गुडखेड देश के निवासी थे और इनका वश अथवा गोत्र 'लालबागड' था।

---

१ यह वश १०वी, ११वी और १२वी शताब्दियो मे खूब प्रसिद्ध रहा। इस वश मे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो ही सप्रदायो की मान्यता वाले लोग थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के कई दिगम्बर विद्वान् ग्रन्थकार इस वश मे हुए हैं जैसे भविष्यदत्त पचमीकथा के कर्ता कवि धनपाल, और धर्मपरीक्षा के कर्ता हरिषेण ने अपनी धर्मपरीक्षा वि० स० १०४४ मे बनाकर समाप्त की थी। अत यह धर्कट या धक्कड वश इससे भी प्राचीन जान पडता है। देलवाडा के वि० सं० १२८७ के तेजपाल वाले शिलालेख मे भी धर्कट या धक्कड जाति का उल्लेख है।

२ जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पुणो बीया।
लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी॥८॥
पढमकलत्त गरुहो सताण कयत्त विडवि पा रोहो।
विणयगुणमणिणिहाणो तणओ तह णेमिचन्दोत्ति॥९॥

—जबूस्वामीचरित प्रशस्ति

यह वंश काष्ठासंघ की एक शाखा है[1]। इस वंश मे अनेक दिगम्बराचार्य और भट्टारक हुए हैं, जैसे जयसेन, गुणाकारसेन, और महासेन[2] तथा सं० ११४५ के दूवकुण्ड वाले शिलालेख में उल्लिखित देवसेन आदि। इससे इस वंश की प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। इनके पिता का नाम देवदत्त था। यह 'महा-कवि' विशेषण से भूपित थे और सम्यक्त्वादि गुणों से अलंकृत थे। और उन्हे सरस्वति देवी का वर प्राप्त था। उन्होने पद्धड़िया छन्द मे 'वराग-चरित' का उद्धार किया था। और कविगुणों को अनुरजित करने वाली वीर कथा, तथा 'अम्वादेवीचर्चरीरास' नाम की रचना वनाई थी, जो ताल और लय के साथ गाई जाती थी, और जिन चरणो के समीप नृत्य किया जाता था। जैसा कि कवि के निम्न वाक्यो से प्रकट है :—

"सिरिलाडवग्गुतहिंविमलजसु, कइदेवयत्तुनिव्वुढ्यकसु
वहुभावहिं जे वरगचरिउ, पद्धडिया वधे उद्धरिउ।
कविगुण-रस-रजिय विउससह, वित्थारिउ सुद्दयवीरकहा
तच्चरिय वंधि विरइउ सरसु, गाइज्जइ सतिउ तारुजसु
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयहिं किउ रासउ अम्वादेवयहि।
सम्मत्त महाभरधुरधरहो, तहो सरसइदेवि लद्धवरहो॥"

कविवर देवदत्त की ये सव कृतियां इस समय अनुपलब्ध है, यदि किसी शास्त्र भण्डार मे इनके अस्तित्व का पता चल जाय, तो उससे कई ऐतिहासिक गुत्थियो के सुलझने की आशा है. कविवर देवदत्त की ये सब कृतियाँ सम्भवत. १०५० या इसके आस-पास रची गई होगी, क्योकि उनके पुत्र वीर कवि स० १०७६ के ग्रन्थ मे उनका उल्लेख कर रहे है। अत. इनकी खोज का प्रयत्न होना चाहिए, सम्भव है प्रयत्न करने पर किसी शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध हो जाय। वीर कवि की माता का नाम 'सन्तु' अथवा 'सन्तुव' था, जो शीलगुण से अलकृत थी। इनके तीन लघु सहोदर और थे जो बडे ही बुद्धिमान् थे और जिनके नाम 'सीहल्ल' लक्खणक, और जसई थे, जैसा कि प्रशस्ति के निम्न पद्यो से प्रकट है :—

जस्स कइ-देवयत्तो जणयो सच्चरियलद्धमाहप्पो।
सुहसीलसुद्धवसो जणणी सिरि सतुआ भणिया॥ ६॥
जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ ससहोयरा तिण्णि।
सीहल्ल लक्खणका जसइ णामेत्ति विक्खाया॥ ७॥

चूकि कविवर वीर का वहुतसा समय राज्यकार्य, धर्म, अर्थ और काम की गोष्ठी मे व्यतीत होता था. इसलिए इन्हे इस जम्वूस्वामी चरित नामक ग्रन्थ के निर्माण करने में पूरा एक वर्ष[3] का समय लग गया

१. काष्ठासघो भुवि ख्यातो जानन्ति नृसुरासुरा।
तत्र गच्छाश्चत्वारो राजन्ते विश्रुता क्षितौ॥
श्रीनन्दितटसज्ञश्च मायुरावागडाभिध.।
लाड वागड इत्येते विख्याता क्षितिमण्डले॥
—पट्टावली भ० सुरेन्द्रकीर्ति

२ देखो, महासेन प्रद्युम्नचरित प्रशस्ति जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह प्रथम भाग वीरसेवा मन्दिर से प्रकाशित।

३ वहुरायकज्जधम्मत्थकाम गोट्ठी विहत्तसमयस्स।
वीरस्स चरियकरणे इक्को संवच्छरो लग्गो॥ —जंबू० च० प्र०

था। कवि 'वीर' केवल कवि ही नही थे, बल्कि भक्तिरस के भी प्रेमी थे इन्होने मेघवन[1] में पत्थर का एक विशाल जिनमन्दिर बनवाया था और उसी मेघवन पट्ट मे वर्द्धमान जिनकी विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी की थी[2]। कवि ने प्रशस्ति मे मन्दिर-निर्माण और प्रतिमा-प्रतिष्ठा के सवतादि का कोई उल्लेख नही किया। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि जम्बू-स्वामि-चरित ग्रथ की रचना से पूर्व ही उक्त दोनो कार्य सम्पन्न हो चुके थे।

पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख

ग्रन्थ मे कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान कवियो का उल्लेख किया है, शान्ति कवि[3] होते हुए भी वादीन्द्र थे और जयकवि[4] जिनका पूरा नाम जयदेव मालूम होता है, जिनकी वाणी अदृष्ट अपूर्व अर्थ मे स्फुरित होती है।

यह जयकवि वही मालूम होते है, जिनका उल्लेख जयकीर्ति ने अपने छन्दोनुशासन मे किया है[5]। इनके सिवाय, स्वयभूदेव, पुष्पदन्त और देवदत्त का भी उल्लेख किया है[6]।

ग्रन्थ का रचनाकाल

भगवान महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम काल की उत्पत्ति होती है और विक्रम-काल के १०७६ वर्ष व्यतीत होने पर माघ शुक्ला दशमी के दिन इस जम्बूस्वामी चरित्र का आचार्य परम्परा से सुने हुए बहुलार्थक प्रशस्त पदो मे सकलित कर उद्धार किया गया है जैसा कि ग्रन्थप्रशस्ति के निम्न पद्य से प्रकट है—

---

१ प्रयत्न करने पर भी 'मेघवन' का कोई विशेष परिचय उपलब्ध नही हो सका।

२ सो जयउ कई वीरो वीरजिणदस्स कारिय जेण।
पाहाणमय भवण विइरूद्देसेण मेहवणे ॥१०॥
इत्थेवदिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाण जिणपडिमा।
तेणा वि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥
जम्बूस्वामी-चरित प्र०

३ सति कई वाई विहु वण्णुक्करिसेसु फुरियविण्णाणो।
रस-सिद्धि सचयत्थो विरलो वाई कई एक्को ॥४॥

४ विजयन्तु जए कइणो जाणवाण अइट्ठ पुव्वत्थे।
उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्टिव्व णिव्ववडई ॥४॥
जम्बूस्वामी-चरित प्रशस्ति

५ माण्डव्य-पिंगल-जनाश्रय-सेतवाख्य,
श्रीपूज्यपाद-जयदेव बुधादिकानाम्।
छन्दासि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्
छन्दोनुशासनमिद जयकीर्तिनोक्तम् ॥
—जैसलमेर-भण्डार ग्रन्थसूची

६ सते सयभू एए वे एक्को कइत्ति विन्नि पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि ॥
—देखो, जबूस्वामिचरित, सधि ५ का आदिभाग।

वरिसाण सयचउक्के सत्तरिजुते जिणेंदवीरस्स ।
णिव्वाणा उववण्णा विक्कमकालस्स उप्पत्ती ।।१।।
विक्कमणिवकालाओ छाहत्तर दससएसु वरिसाण ।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसमी दिवसम्मि सतम्मि ।।२।।
सुणियं आयरिय परपराए वीरेण वीरणिद्दिट्ठ ।
बहुलत्थ पसत्थपय पवरमिण चरियमुद्धरिय ।।३।।

इस प्रकार यह ग्रन्थ जीवन-परिचय के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियो के उल्लेखो और उनके सामान्य परिचयों से परिपूर्ण है। इसमे भगवान महावीर और उनके समकालीन व्यक्तियो का परिचय उपलब्ध होता है, जो इतिहासज्ञो और अन्वेषण-कर्त्ताओ के लिए बडा ही उपयोगी होगा।

ग्रन्थ का लिपि समय

यह ग्रन्थ-प्रति भट्टारक महेन्द्र कीर्ति अम्बेर या आमेर (जयपुर) के शास्त्रभंडार की है, जो पहले किसी समय जयपुर राज्य की राजधानी थी। इस प्रति की लेखक-प्रशस्ति के तीन ही पद्य उपलब्ध है; क्योकि ७६वे पत्र से आगे का ७७ वा पत्र उपलब्ध नही है, उन पद्यो में से प्रथम व द्वितीय पद्य मे प्रतिलिपि स्थान का नाम-निर्देश करते हुए 'झुझुना' के उत्तुग जिन-मदिरों का भी उल्लेख किया है और तृतीय पद्य मे उसका लिपि समय विक्रम सवत् १५१६ मगसिर शुक्ला त्रयोदशी बतलाया है, जिससे यह प्रति पाच सौ वर्ष के लगभग पुरानी जान पड़ती है। इस ग्रन्थ प्रति पर एक छोटा सा टिप्पण भी उपलब्ध है जिसमे उसका मध्यभाग कुछ छूटा हुआ है[1]।

सातवी और आठवी प्रशस्तियां 'कथाकोष और रयणकरण्डसावयायार (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की है, जिनके रचयिता कवि श्रीचन्द्र हैं। इन्होने अपने को 'मुनि' 'पडित' और 'कवि' विशेषणो के साथ उल्लेखित किया है। इनकी दोनो कृतियो के नाम ऊपर दिये गये है। उनमे प्रथम कृति कथा कोष है, जिसमे विविध व्रतो के अनुष्ठान द्वारा फल प्राप्त करने वालो की कथाओ का रोचक ढग से संकलन किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ मे मगल और प्रतिज्ञा वाक्य के अनतर ग्रथकार कहते है कि मैंने इस ग्रथ में वही कहा है जिसे गणधरने राजा श्रेणिक या बिम्बसार से कहा था, अथवा शिवकोटि मुनीन्द्र ने भगवती आराधना मे जिस तरह उदाहरणस्वरूप अनेक कथाओ के सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किए हैं। उसी तरह गुरुक्रम से और सरस्वती के प्रसाद से मै भी अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। मूलाराधना मे स्वर्ग और अपवर्ग के सुख साधन का—अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयका—गाथाओ में जो अर्थ प्ररूपित किया गया है, उसी अर्थ को मै कथाओ द्वारा व्यक्त करूँगा, क्योकि सम्बन्ध विहीन कथन गुणवानो को रस प्रदान नही

---

१ मन्ये वय पुण्यपुरी बभाति, सा झुझणेति प्रकटी बभूव ।
प्रोत्तुगतन्मडन-चैत्यगेहाः सोपानवद्दृश्यति नाकलोके ।।१।।
पुरस्सराराम जलप्रकूपा हर्म्याणि तत्रास्ति रतीव रम्या. ।
दृश्यन्ति लोका घनपुण्यभाजो ददातिदानस्य विशालशाला ।।२।।
श्री विक्रमार्केन गते शताब्दे षडेक पचैक सुमार्गशीर्षे ।
त्रयोदशीया तिथिसर्वशुद्धा. श्री जबूस्वामीति च पुस्तकोऽय ।।३।।

करता, अतएव गाथाओ का प्रकट अर्थ कहता हू तुम सुनो[1]। ग्रन्थकार ने देह-भोगो की असारता को व्यक्त करते हुए ऐन्द्रिक सुखो को सुखाभास बतलाया है। साथ ही धन, यौवन और शारीरिक सौदर्य वगैरह को अनित्य बतलाकर मन को विषय-वासना के आकर्षण से हटने का सुन्दर एव शिक्षाप्रद उपदेश दिया है और जिन्होने उनको जीतकर आत्म-साधना की है उनकी कथा वस्तु ही प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय है।

अणहिलपुर मे प्रसिद्ध प्राग्वाट कुल मे समुत्पन्न सज्जनोत्तम सज्जन नाम का एक श्रावक था, जो धर्मात्मा था और मूलराजनृपेन्द्रकी गोष्ठी मे बैठता था। अपने समय मे वह धर्म का एक आधार था, उसका कृष्ण नाम का एक पुत्र था, जो धर्म कर्म मे निरत, जन शिरोमणी और दानादिद्वारा चतुर्विध सघ का सपोषक था। उसकी 'राणू' नामक साध्वी पत्नी से तीन पुत्र और चार पुत्रिया उत्पन्न हुई थी। इसी कृष्ण श्रावक की प्रेरणा से कवि ने उक्त कथाकोष बनाया था। प्रस्तुत ग्रथ विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी मे बनाया गया था।

कवि श्रीचन्द्र ने अपना यह कथा ग्रन्थ मूलराज नरेश के राज्य काल मे समाप्त किताथा। इतिहास से ज्ञात होता है कि मूलराज सोलकी ने स० ९९८ मे चावडा वशीय अपने मामा सामतसिह (भूयड) को मार कर राज्य छीन लिया[2] और स्वय गुजरात की राजधानी पाटन (अणहिलवाडे) की गद्दी पर बैठ गया, इसने वि० सवत् १०१७ से १०५२ तक राज्य किया है[3]। मध्य मे इसने धरणीवराह पर भी चढाई की थी, तब उसने राष्ट्रकूट राजा धवल की शरण ली, ऐसा धवल के वि० स० १०५३ के शिलालेख से स्पष्ट है[4]। मूलराज सोलकी राजा भीमदेव का पुत्र था, उसके तीन पुत्र थे, मूलराज क्षेमराज और कर्ण। इनमे मूलराज का देहान्त अपने पिता भीमदेव के जीवन काल मे ही हो गया था और अन्तिम समय मे क्षेमराज को राज्य देना चाहा, परन्तु उसने स्वीकार नही किया, तब उसने लघु पुत्र कर्ण को राज्य देकर सरस्वती नदी

---

१ गणहरहो पयासिउ जिणवइणा,
सेणियहो आसि जिह गणवइणा ॥
सिवकोडि मुणिदि जेमजए, कह कोसु कहिउ पचम समए।
तिह गुरु कमेण अहमविकहमि, नियबुद्धि विसेसु नेव रहमि।
महु देवि सरासइ सम्मुहिया, सभवउ समत्थु लोयं महिया।
आमण्णहो मूलाराहणहें, सग्गापवग्गासुसाहणहे।
गाह सरियाउ सुसोहणउ, बहु कहउ अत्थि रजिय जणउ।
धम्मत्थकाम मोक्खासयउ, गाहासु जासु सठियउ तउ।
ताणत्थ भणिऊणपुरउ, पुणु कहमि कहाउ कयायरउ।
घत्ता—सवध विहूणु सव्वुवि जाणरसु न देइ गुणवन्त हँ।
तेणिय गाहाउ पयडिवि ताउ कहम कहाउ सुणत हँ।

२ य मूलादुद मूल यद गुरु बल श्रीमूलराजोनृपो,
दर्पान्धो धरणी वराहन्टपति यद्व द्वि (द् द्वि) प पादपम्।
आयात भुवि कादि शीकमभिको यस्त शरण्यो दधौ
दष्ट्रायामिवरूढ महिमा को लो मही मण्डलम् ॥ —एपि ग्राफिया इडिका जि० १ पृ० २१

३ देखो, राजपूताने का इतिहास दूसरा सस्करण भा० १, पृ० २४१

४ देखो, राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द दूसरा स० पृ० १९२।

के तट पर स्थित मङ्गकेश्वर मे तपश्चरण करने लगा। अतः श्रीचन्द्र ने अपना यह कथाकोष वि० स० १०५२ मे या उसके एक दो वर्ष पूर्व ही बनाया होगा। जिससे ग्रथ का विषय स्पष्ट हो गया है।

आठवी प्रशस्ति 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार की है' जो स्वामी समन्तभद्र के रत्नकरण्डक नामक उपासकाध्ययन रूप गभीर कृति का व्याख्यान मात्र है। कवि ने इस आधार ग्रथ को २१ सधियो में विभाजित किया है। जिसकी आनुमानिक श्लोक सख्या चार हजार चार सौ अट्ठाईस वतलाई गई है। कथन को पुष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण और कथाओ को प्रस्तुत किया गया है।

प्रशस्ति मे हरिनन्दि मुनीन्द्र, समन्तभद्र, अकलक, कुलभूषण पाद पूज्य (पूज्यपाद) विद्यानन्दि, अनन्तवीर्य, वरषेण, महामति वीरसेन, जिनसेन, विहगसेन, गुणभद्र, सोमराज, चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदंत श्रीहर्ष, और कालिदास नाम के पूर्ववर्ती विद्वानो का उल्लेख किया गया है।

इस श्रावकाचार को कवि ने सवत् ११२३ मे कर्ण नरेन्द्र के राज्यकाल मे श्रीबालपुर मे पूर्ण किया था[१]। यह कर्ण देव वही कर्णदेव ज्ञात होते है जो राजा भीमदेव के लघु पुत्र थे और जिनका राज्य काल 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के कर्त्ता मेरूतुग के अनुसार स० ११२० से ११५० तक उन्नीसवर्ष आठ महीना और इक्कीस दिन माना जाता है। इन दोनो ग्रन्थो के अतिरिक्त कवि की अन्य रचनाएँ अन्वेषणीय है।

कवि पदिचय

कवि श्रीचन्द्र कुदकुदान्वय देशीगण के आचाय सहस्रकीर्ति के प्रशिष्य थे और सहस्रकीर्ति के (देवचद, वासवमुनि, उदयकीर्ति, शुभचद्र और वीरचद्र इन) पाच शिष्यो में से यह वीरचद्र अतिम शिष्य थे। इन पाचो का समय भी प्राय सहस्रकीर्ति के सम सामयिक होना चाहिए। सहस्रकीर्ति के गुरु का नाम श्रुतिकीर्ति और श्रुतिकीर्ति के शिष्य श्रीकीर्ति थे। इनका समय विक्रम की ११वी शताब्दी के मध्य भाग से लेकर बारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध है।

८वी प्रशस्ति 'रयणकरण्डसावयायार' (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की है जिसका परिचय सातवी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

९वी प्रशस्ति 'सुकमाल चरिउ' की है, जिसके कर्त्ता कवि विबुध श्रीधर है। प्रस्तुत ग्रथ मे छह सधियाँ और २२४ कडवक है, जिनमे सुकमाल स्वामी का जीवन-परिचय दिया हुआ है। कवि ने सुकमाल के पूर्वजन्म का वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि वे पहले जन्म में कौशाम्बी के राजा के राजमत्री पुत्र थे और उनका नाम वायुभूति था, उन्होने रोष मे आकर अपनी भाभी के मुख मे लात मारी थी, जिससे कुपित हो उसने निदान किया था कि मैं तेरी इस टाग को खाऊगी। अनन्तर अनेक पर्याये धारण कर जैनधर्म के प्रभाव से उज्जैनी मे सेठ-पुत्र हुए थे, वे बाल्यावस्था से ही अत्यन्त सुकुमार थे, अतएव उनका नाम सुकमाल रक्खा गया। पिता पुत्र का मुख देखते ही दीक्षित हो गया और आत्म-साधना मे लग गया। माता ने बडे यत्न से पुत्र का लालन-पालन किया और उसे सुन्दर महलो मे रख कर सांसारिक भोगोपभोगों मे अनुरक्त किया। उसकी ३२ सुन्दर स्त्रिया थी, जब उसकी आयु अल्प रह गई, तब उसके मामा ने, जो साधु थे, महल के पीछे जिन मदिर मे चातुर्मास किया और अन्त में स्तोत्र पाठ को सुनते ही सुकमाल का मन देह-भोगादि से विरक्त हो गया और वह एक रस्सी के सहारे महल से नीचे उतरा और जिन मंदिर मे जाकर मुनिराज को नमस्कार कर प्रार्थना की कि भगवन् आत्म-कल्याण का मार्ग बताइये। उन्होने कहा कि तेरी आयु तीन दिन की शेष रह गई है। अत शीघ्र ही आत्म-साधना मे तत्पर हो। सुकमाल ने जिनदीक्षा लेकर और प्रायोपगमन सन्यास लेकर कठोर तपश्चरण किया। वे शरीर से जितने सुकोमल थे, उपसर्ग-

परीषहो के जीतने मे वे उतने ही कठोर थे। वन मे समाधिस्थ थे, एक श्यालनी ने अपने बच्चे सहित आकर उसके दाहिने पैर को खाना शुरू किया और बच्चेने बाये पैर को, उन्होने उस अमित कष्ट को शातिसे बारह भावनाओ का चिन्तन करते हुए सहन किया और सर्वार्थसिद्धि मे देव हुए। ग्रथ का चरित भाग बडा ही सुन्दर है।

कवि ने यह ग्रथ वलडइ (अहमदाबाद) गुजरात नगर के राजा गोविन्दचन्द्र के काल मे साहूजी के सुपुत्र पुरवाड कुलभूषण कुमार की प्रेरणा से बनाया है। राजा गोबिन्दचन्द्र कौन थे और उन्होने कितने वर्ष राज्य किया है, यह अभी अज्ञात है। हा, कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि के शुरू मे सस्कृत पद्यो में कुमार की मगल कामना की है और बतलाया है कि वे जिनेन्द्रभक्त थे, ससार के देह-भोगो से विरक्त थे, उन्हे दान देने का ही एक व्यसन था और विद्वानो मे प्रीति थी, इस तरह वह जितेन्द्रियकुमार जयवन्त रहे[1] और प्रस्तुत ग्रन्थ कवि ने उक्त कुमार के ही नामाकित किया है। कवि ने ग्रन्थमे नारी के स्वरूप-चित्रण मे परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग किया है। कथन-शैली रोचक और प्रवाह युक्त है।

कवि श्रीधर ने ग्रन्थ प्रशस्ति में अपना कोई परिचय प्रस्तुत नही किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा का उल्लेख किया जा सके। किन्तु कवि ने लिखा है कि बलडइ ग्राम के जिनमदिर मे पोमसेण (पद्मसेन) नाम के मुनि अनेक शास्त्रो का व्याख्यान करते थे। श्रीधर ने इस ग्रन्थ को वि० स० १२०८ (सन् ११५१) मे मगशिर कृष्णा तृतीया के दिन समाप्त किया है।

१० वी प्रशस्ति 'हरिवस पुराण' की है, जिसके कर्ता कवि धवल है। इस ग्रन्थ में जैनियो के २२ वे तीर्थंकर यदुवशी भगवान नेमिनाथ की जीवन-गाथा अकित की गई है, साथ ही महाभारत के पात्र कौरव और पाण्डव एव श्रीकृष्ण आदि महापुरुषो का भी जीवन चरित्र १२२ सधियो मे दिया हुआ है। जिससे महाभारत काल का ऐतिहासिक परिचय सहज ही मिल जाता है। ग्रथ की रचना प्रधानत अपभ्रश भाषा के 'पज्झटिका' और अलिल्लह' छन्द मे हुई है। तथापि उसमे पद्धडिया, सोरठा, घत्ता, जाति, नाशिनी, विलासिनी और सोमराजी आदि छन्दो का भी स्पष्ट प्रयोग हुआ है। काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ के कितने ही वर्णन सजीव है। रसो मे श्रृगार, वीर, करुण और शान्त रसो के अभिव्यजक अनेक स्थल दिए हुए है। श्रीकृष्ण और कस के युद्ध का वर्णन भी सजीव हुआ है।

'महा चड चित्ता भडा छिण्ण गत्ता, धनुबाणहत्था सकुता समत्था।
पहारति सूराण भज्जति धीरा, सरोसा सतोसा सहासा सआसा ॥—सधि ९०, ४

प्रचण्ड चित्तवाले योद्धाओ के गात्र टूक-टूक हो रहे है, और धनुषबाण हाथ मे लिए हुए भाला चलाने मे समर्थ सूर प्रहार कर रहे हैं, परन्तु क्रोध, सन्तोष, हास्य और आशा से युक्त धीर वीर योद्धा विचलित नही हो रहे हैं। युद्ध की भीषणता से युद्ध स्थल विषम हो रहा है, सैनिको की मारो मारो की ध्वनि से आकाश गूज रहा है—रथ वाला रथवाले की ओर, अश्व वाला अश्व वाले की ओर, और गज-गज की ओर दौड रहा, धानुष्क वाला धानुष्क वाले की ओर झपट रहा है, वाद्य जोर से शब्द कर रहे हैं,

१ भक्तिर्यस्य जिनेन्द्रपाद युगले धर्मे मति सर्वदा।
वैराग्य भव-भोगबन्धविषये वाछाजिनेशागमे ॥
सद्दाने व्यसने गुरौ विनयिता प्रीतिर्बुधा विद्यते,
स श्रीमानृजयताज्जितेन्द्रियरिपु श्रीमत्कुमाराभिघ ॥ —सुकमालचरिउ ३—१

घोड़े हिनहिना रहे है और हाथी चिंघाड रहे है[1]। इस तरह युद्ध का सारा वर्णन ही सजीव है।

ससार की नश्वरता का वर्णन भी दृष्टव्य है।

'सबल राज्य तत्क्षरण नष्ट हो जाता है, अत्यधिक धन से क्या किया जाय। राज्य भी धनादि से हीन, और वचे खुचे जनसमूह अत्यधिक दीनतापूर्ण वर्तन करते हुए देखे जाते हैं। सुखी बान्धव पुत्र, कलत्र, मित्र सदा किसके बने रहते हैं, जैसे उत्पन्न होते है वैसे ही मेघ वर्षा से जल के बुलबुलो के समान विनष्ट हो जाते हैं और फिर चारो दिशाओं में अपने अपने निवास स्थान को चले जाते है। जिस तरह पक्षी रात्रि में एक जगह इकट्ठे हो जाते है और फिर चारो दिशाओ मे अपने-अपने निवास स्थान को चले जाते हैं, अथवा जिस प्रकार बहुत से पथिक (नदी पार करते हुए) नौका पर मिल जाते हैं, फिर अपने अभीष्ट स्थान को चले जाते है। इसी तरह इष्ट प्रियजनों का समागम थोड़े समय के लिए होता है। कभी धन आता और कभी दारिद्र्य, स्वप्न समान भोग आते और नष्ट हो जाते है, फिर भी अज्ञानी जन इनका गर्व करते है, जिस यौबन के साथ जरा (बुढापे) का सम्बन्ध है उससे किसको सन्तोष हो सकता है? ७ (—सधि ९१—७)

ग्रन्थकार का जहा लौकिक वर्णन सजीव है, वहा वीर रस का शान्त रस में परिणत हो जाना भी चित्ताकर्षक है ग्रथ पठनीय और प्रकाशन के योग्य है। इसकी प्रतियां कारंजा जयपुर और दिल्ली के पचायती मदिर में है, परन्तु दिल्ली की प्रति अपूर्ण है।

ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है[2]।

कवि चक्रवर्ती धीरसेन सम्यक्त्व युक्त प्रमाण ग्रन्थ विशेष के कर्ता, देवनदी (जैनेन्द्र व्याकरण कर्ता) वज्रसूरि प्रमाण ग्रन्थ के कर्ता, महासेन का सुलोचना ग्रन्थ, रविषेण का पद्मचरित, जिनसेन का हरिवश पुराण, जटिल मुनि का वरागचरित, दिनकरसेन का अनगचरित, पद्मसेन का पार्श्वनाथ चरित अबसेन की अमृताराधना, धनदत्त का चन्द्रप्रभचरित, अनेक चरित ग्रन्थों के रचयिता विष्णुसेन, सिंहनन्दि की अनुप्रेक्षा, नरदेव का णवकार मत्र, सिद्धसेन का भविक विनोद, रामनदि के अनेक कथानक, जिनरक्षित (जिनपालित)—धवलादि ग्रन्थ प्रख्यापक, असग का वीरचरित, गोविन्दकवि (श्वे०) का सनत्कुमारचरित, शालिभद्र का जीवउद्योत, चतुर्मुख, द्रोण, सेढु महाकवि का पउमचरिउ, आदि विद्वानों और उनकी कृतियो का उल्लेख किया है। इनमें पद्मसेन (पद्मकीर्ति) और असग कवि दोनो का उल्लेख ग्रन्थ कर्ता के समय को बताने में किञ्चित् सहकारी होते है असग कवि का समय सं० ९१० है और पद्मसेन का समय वि० स० ९९९ है जिससे स्पष्ट है कि धवल कवि का समय स० ९९९ से पश्चात् वर्ती है। पद्मकीर्ति की एकमात्र कृति पार्श्वनाथ पुराण उपलब्ध है। इन दोनों की रचनाओ का उल्लेख होने से प्रस्तुत धवल कवि का समय विक्रम की ११ वी शताब्दी का पूर्वकाल या मध्यकाल हो सकता है। यद्यपि असग कवि का महावीर

---

१ . . .. हणु हणु मारु मारु पभणतिहि।
दलिय धरत्ति रेणुणहि धायउ, लहु पिस लुद्धउलूद्धउ आयउ॥
× × ×
रहवेंउ रहहु गयहु गउ धाविउ, धाणुक्कहु धाणुक्कु परायउ।
तुरंउ तुरग कुखग्ग विहत्थउ, असिवक्खरहु लग्गुभय चत्तउ।
वज्जहिं गहिर तूर हयहिंमहिं, गुलुगुलत गयवर बहु दीसहिं॥
—सधि ८९—१०

२ देखो, हरिवश पुराण प्रशस्ति।

चरित मूलरूप मे प्रकाशित नही हुआ, और न पद्मसेन का पार्श्वपुराण ही प्रकाशित हो सका है। अतः ये दोनो रचनाए अपने मूलरूप मे प्रकाशित होनी चाहिए।

११वी, १२वी और १३वी प्रशस्तिया क्रमश 'छक्कम्मोवएस', 'पुरदर विहाणकहा' और 'णेमिणाहचरिउ' की है। जिनके कर्त्ता कवि अमरकीर्ति है। प्रस्तुत षट्कर्मोपदेश मे १४ सधिया और २१५ कडवक है, जो २०५० श्लोक प्रमाण सख्या को लिए हुए हैं। कवि ने इस ग्रथ मे गृहस्थो के षट्कर्मों का—देव पूजा गुरु-सेवा, स्वाध्याय (शास्त्राभ्यास) सयम (इन्द्रियदमन) और षट्-काय (जीव रक्षा) इच्छा निरोध रूप तप, तथा दानरूप षट्-कर्मो का—कथन दिया हुआ है। और उसे विविध कथाओ के सरस विवेचन द्वारा वस्तु तत्त्व को स्पष्ट किया गया है। दूसरी से नौवी सधि तक देव-पूजा का सुन्दर विवेचन दिया गया है, और उसे नूतन कथा रूप दृष्टांतो के द्वारा सुगम तथा ग्राह्य बना दिया गया है। दशवी सधि मे जिन पूजा पुरदर विधि कथा दी गई है और उसकी विधि बतलाकर उद्यापन विधि को भी अङ्कित किया है। शेष ११ वी से से लेकर १४वी सधि तक शेष कर्मों का विवेचन दिया हुआ है।

ग्रथ मे कवि ने इससे पूर्ववर्ती अपनी निम्न रचनाओ का उल्लेख किया है। णेमिणाहचरिउ, महावीरचरिउ, जसहरचरिउ, धर्मचरित टिप्पण, सुभाषितरत्ननिधि, धर्मोपदेश चूडामणि, और झाणपईव (ध्यान प्रदीप)।

कवि ने इस ग्रथ की रचना गोध्रा[1] मे चालुक्य वशी राजा वदिग्गदेव के पुत्र कण्ह या कृष्ण नरेन्द्र के राज्य मे सवत् १२४७ के भाद्रपद महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन समाप्त की थी।

दूसरी प्रशस्ति 'पुरदरविधान कथा' की है, जो षट्कर्मोपदेश का ही एक अश है। इस कथा को भी कवि ने अम्बाप्रसाद के निमित्त से बनाया है। प्रस्तुत कथा मे पुरदरव्रत का विधान बतलाया गया है। यह व्रत किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष मे किया जा सकता है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तक प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस व्रत का फल मनोरथ प्राप्ति, दारिद्र्य विनाश, धन प्राप्ति और व्यसनादि का परित्याग है।

तीसरी कृति 'नेमिनाथ चरित' है ग्रन्थ मे २५ सन्धिया हैं जिनकी श्लोक सख्या छह हजार आठ सौ पच्चाणवे है। इसमे जैनियो के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे, जीवन परिचय दिया गया है। इस ग्रथ को कवि ने सवत् १२४४ में भाद्रपद शुक्लाचतुर्दशी को समाप्त किया था। यह प्रति स० १५१२ की लिखी हुई है और सोनागिर भट्टारकीय शास्त्र भडार मे सुरक्षित है।

भट्टारक अमरकीर्ति काष्ठासघान्तर्गत उत्तर माथुर सध के विद्वान मुनि चन्द्रकीर्ति के शिष्य एव अनुज थे। इनकी माता का नाम 'चर्चिणी' और पिता का नाम 'गुणपाल' था। इनकी गुरु परम्परा मे अमितगति द्वितीय हुए, जिनका रचना काल स० १०५० से १०७० है, उनके शिष्य शान्तिषेण हुये, शातिषेण के अमरसेन, अमरसेन के श्रीषेण और श्रीषेण के चन्द्रकीर्ति, जिनका समय स० १२१६ के लगभग है और अमरकीर्ति का सवत् १२४४ से १२४७।

ग्रथकर्ता ने अपने ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे 'महीयडु' देश के गोध्रा नगर मे चालुक्य वशीय कण्ह या कृष्ण का राज्य बतलाया है। उस समय गुजरात मे चालुक्य अथवा सोलकी वश का राज्य था, जिसकी राजधानी अनहिलवाडा थी, परन्तु इतिहास मे वदिगदेव और उनके पुत्र कृष्ण नरेन्द्र का कोई उल्लेख मेरे

१ गोध्रा गुजरात का एक छोटा-सा नगर है, जो बडौदा से गिरनार जी जाते समय रास्ते मे मिलता है। यहाँ पहले दिगम्बर मन्दिर था अब नही है।

देखने में नहीं आया। उस समय अनहिलवाड़ा के सिहासन पर भीम द्वितीय का राज्य शासन था इनके बाद बघेल वश की शाखा ने अपना राज्य प्रतिष्ठित किया है। इनका राज्य स० १२३६ से १२३९ तक बतलाया जाता है। संवत् १२२० से १२३६ तक कुमारपाल, अजयपाल और मूलराज द्वितीय बहां के शासक रहे है। भीम द्वितीय के शासन समय से पूर्व ही चालुक्य वश की एक शाखा महीकाठा प्रदेश मे प्रतिष्ठित होगी, जिसकी राजधानी गोध्रा थी। इस सम्बन्ध मे और भी अन्वेषण करने की आवश्यकता है जिससे यह पता चल सके कि इस वश की प्रतिष्ठा गोध्रा मै कब हुई[1]। ये तीनो ही ग्रन्थ अप्रकाशित है, उन्हे प्रकाश में लाने का प्रयत्न होना चाहिए। और कवि के अन्य ग्रन्थो की खोज करना जरूरी है।

१२वी प्रशस्ति 'पुरदरविहाण कहा' की है, जिसका परिचय ११ वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१३वी और १८वी प्रशस्तियाँ 'जिनदत्तचरित' और 'अणुवयरयणपईव' की हैं। जिनके कर्त्ता कवि लाखू या लक्ष्मण हैं। प्रस्तुत जिनदत्तचरित्र में छह सधियां है और जो चार हजार श्लोको मे निबद्ध है। जिसमे जीवदेव और जीवयशा श्रेष्ठी के सुपुत्र जिनदत्त का चरित अङ्कित है। कवि की यह रचना एक सुन्दर काव्य है। इसमे आदर्श प्रेम को व्यक्त किया गया है। कवि काव्य-शास्त्र मे निष्णात विद्वान् था। ग्रथ का यमकालंकार युक्त आदि मंगल पद्य कवि के पाण्डित्य का सूचक है।

सप्पय-सर-कलहस हो, हियकलहंस हो, कलहंस हो सेयंसवहा।
भणमि भुवण कलहस हो, णविवि जिण हो जिणयत्त कहा॥

अर्थात्—'मोक्ष रूपी सरोवर के मनोज्ञ हस, कलह के अश को हरने वाले, करिशावक (हाथी के बच्चे) के समान उन्नत स्कध और भुवन मे मनोज्ञ हस, आदित्य के समान जिनदेव की वदना कर जिनदत्त की कथा कहता हूँ।'

ग्रथ कर्त्ता ने इस ग्रथ मे विविध छन्दों का उपयोग किया है। ग्रंथ की पहली चार सधियो मे कवि ने मात्रिक और वर्णवृत्त दोनो प्रकार के निम्न छन्दो का प्रयोग किया है—विलासिणी, मदनावतार, चित्तगया, मोत्तियदाम, पिगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जभेट्टिया, भुजगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमणी, चच्चर, पंचचामर, णाराच, तिभगिणिया, रमणीलता, समाणिया, चित्तया भमरपय, मोणय, और ललिता आदि। इन छन्दो के अवलोकन से यह स्पष्ट पता चलता है कि अपभ्रश कवि छन्द विशेषज्ञ होते थे।

प्रस्तुत चरित्र मे मगध राज्यान्तर्गत वसन्तपुर नगर के राजा शशिशेखर और उसकी रानी मयना सुन्दरीके कथनके अनन्तर उस नगरके श्रेष्ठी जीवदेव और जीवयशाके पुत्र जिनदत्त का चरित्र अङ्कित किया गया है। वह क्रमश बाल्यावस्था से युवावस्था को प्राप्त कर अपने रूप-सौदर्य से युवति-जनो के मन को मुग्ध करता है—और अङ्ग देश में स्थित चम्पानगर के सेठ की सुन्दर कन्या विमलमती से उसका विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् दोनो वसन्तपुर आकर सुख से रहते है।

जिनदत्त जुआरियो के चगुल में फसकर ग्यारह करोड़ रुपया हार गया। इससे उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने अपनी धर्मपत्नी की हीरा-माणिक आदि जवाहरातो से अङ्कित कचुली को नौ करोड़ रुपये मे जुआरियों को बेच दिया। जिनदत्त ने धन कमाने का बहाना बनाकर माता-पिता से चम्पापुर जाने की आज्ञा ले ली। और कुछ दिन बाद धर्मपत्नी को अकेली छोड़ जिनदत्त दशपुर (मन्दसौर) आ गया।

१ History of Gujrat in Bombay Gageteer Vol I

वहा उसकी सागरदत्त से भेंट हुई। सागरदत्त उसी समय व्यापार के लिये विदेश जाने वाला था, अवसर देख जिनदत्त भी उसके साथ हो गया और वह सिंहल द्वीप पहुच गया। वहा के राजा की पुत्री श्रीमती का विवाह भी उसके साथ हो गया। जिनदत्त ने उसे जैनधर्म का उपदेश दिया। जिनदत्त प्रचुर धनादि सम्पत्ति को साथ लेकर स्वदेश लौटता है, परन्तु सागरदत्त ईर्षा के कारण उसे धोखे से समुद्र मे गिरा देता है और स्वय उसकी पत्नी से राग करना चाहता है। परन्तु वह अपने शील मे सुदृढ रहती है। वे चम्पानगरी पहुचते है और श्रीमती चम्पा के 'जिन चैत्य' मे पहुचती है। इधर जिनदत्त भी भाग्यवश बच जाता है और मणिद्वीप मे पहुचकर वहा के राजा अशोक की राजकुमारी शृङ्गारमती से विवाह करता है। कुछ दिन बाद सपरिवार चम्पा आ जाता है। वहा उसे श्रीमती और विमलमती दोनो मिल जाती है। वहा से वह सपरिवार वसतपुर पहुचकर माता-पिता से मिलता है। वे उसे देखकर बहुत हर्षित होते हैं। इस तरह जिनदत्त अपना काल सुखपूर्वक बिताता है। अत मे मुनि होकर तपश्चरण द्वारा कर्म, बधन का विनाशकर पूर्ण स्वाधीन हो जाता है।

कवि ने इसमे काव्योचित अनुप्रास, अलकार और प्राकृतिक सौंदर्य का समावेश किया है। किन्तु भौगोलिक वर्णन की विशेषता और शब्द योजना सुदर तथा श्रुति-सुखद है[१]।

कवि ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक जैन-जैनेतर कवियो का आदरपूर्वक उल्लेख किया है—अकलक, चतुर्मुख, कालिदास, श्रीहर्ष, व्यास, द्रोण, बाण, ईशान, पुष्पदत, स्वयभू और वाल्मीकि।[१]

एक दिन अवसर पाकर श्रीधर ने लक्ष्मण से कहा कि हे कविवर तुम जिनदत्तचरित्र की रचना करो, तब कवि ने श्रीधर श्रेष्ठी की प्रेरणा एव अनुरोध से जिनदत्तचरित्र की रचना की हैं। और उसे वि० स० १२७५ के पूसवदी षष्ठी रविवार के दिन बनाकर समाप्त किया था।

दूसरी कृति 'अणुवयरयणपईव' है, जिसमे ८ सधिया और २०६ पद्धडिया छन्द है, जिनकी श्लोक सख्या ३४०० के लगभग है। ग्रथ मे सम्यग्दर्शन के विस्तृत विवेचन के साथ श्रावक के द्वादश व्रतो का कथन किया गया है। श्रावकधर्म की सरल विधि और उसके परिपालन का परिणाम भी बतलाया गया है। ग्रथ की रचना सरस है। कवि ने इस ग्रथ को ६ महीने मे बनाकर समाप्त किया है।

कवि ने प्रस्तुत ग्रथ की रचना रायवद्दिय नगर मे निवास करते हुए की थी, वहा उस समय चौहान वश के राजा आहवमल्ल राज्य करते थे[२]। उनकी पट्टरानी का नाम ईसरदे था, आहवमल्ल ने तात्कालिक मुसलमान शासको से लोहा लिया था और उसमे विजय प्राप्त की थी। किसी हम्मीर वीर ने उनकी सहायता भी की थी।

कवि के आश्रयदाता कण्ह का वश 'लम्बकचुक या लमेचू' था। इस वश मे 'हल्लण' नामक श्रावक नगर श्रेष्ठी हुए, जो लोकप्रिय और राजप्रिय थे। उनके पुत्र अमृत या अमयपाल थे जो राजा अभय पाल के प्रधान मत्री थे। उन्होने एक विशाल जिनमन्दिर बनवाया था और उसकी शिखर पर सुवर्ण कलश

---

१ णिक्कलकु अकलकु चउम्मुहो, कालिदासु सिरिहरिसु कयसुहो।
वय विलासु कइवासु असरिसो, दोणु वाणु ईसाणु सहरिसो।
पुप्फयत सुसयभु भल्लउ, वालमीउ समइ सुरंमिल्लउ। —जिणदत्तचरित, १-६

२ राजा आहवमल्ल की वश पम्परा चन्द्रवाड नगर से बतलाई गई है। चौहान वशी राजा भरतपाल उनके पुत्र अभयपाल। उनके जाहड, उनके श्री बल्लाल के आहवमल्ल हुए। इनके समय मे राजधानी 'रायवद्दिय' या रायभा हो गई थी। चन्द्रवाड और रायवद्दिय दोनो ही नगर यमुनातट पर वसे हुये थे।

चढाया था। उनके पुत्र साहू सोढु थे, जो जाहड नरेन्द्र और उनके पश्चात् श्रीवल्लाल के मंत्री बने। इनके दो पुत्र थे। रत्नपाल और कण्हड। इनकी माता का नाम 'मल्हादे' था। रत्नपाल स्वतन्त्र और निरर्गल प्रकृति के थे। किन्तु उनका पुत्र शिवदेव कला और विद्या मे कुशल था। जो अपने पिता की मृत्यु के बाद नगर सेठ के पद पर आरूढ़ हुआ था। और राजा आहवमल्ल ने अपने हाथ से उसका तिलक किया था। कण्हड (कृष्णादित्य) उक्त राजा आहवमल्ल के प्रधान मत्री थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम 'सुलक्षणा' था, वह बडी उदार धर्मात्मा पतिभक्ता और रूपवती थी। इनके दो पुत्र हुए। हरिदेव और द्विजराज। इन्हीं प्रस्तुत कण्ह की प्रार्थना से कवि ने इस ग्रथ को वि० स० सवत् १३१३ कार्तिक कृष्णा ७ सप्तमी गुरुवार के दिन पुष्यनक्षत्र और साहिज्ज योग मे समाप्त किया था। कवि ने प्रशस्ति मे कृष्णादित्य के परिवार का अच्छा परिचय दिया है।

कवि-परिचय

कवि लक्ष्मण जायव जादव या जायस कुल में उत्पन्न हुआ था[1]। इनके प्रपिता का नाम कोसवाल था, जिनके यश से दिकचक्र व्याप्त था। उनके सात पुत्र थे, अल्हण, गाहल, साहुल, सोहण, मइल्ल, रतन और मदन। ये सातो ही पुत्र कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले और महामति थे। इनमे से कवि के पिता साहुल श्रेष्ठी थे। ये सातो भाई और कवि लक्ष्मण अपने परिवार के साथ पहले त्रिभुवनगिरि या तहनगढ के निवासी थे। उस समय त्रिभुवनगिरि जन-धन से समृद्ध तथा वैभव से युक्त था, परन्तु कुछ समय वाद त्रिभुवनगिरि की समृद्धि विनष्ट हो गई थी—उसे म्लेच्छाधिप मुहम्मदगोरी ने बल पूर्वक घेरा डालकर नष्ट-भ्रष्ट कर आत्मसात् कर लिया था[2]। अतः कविवर लक्ष्मण त्रिभुवनगिरि से भागकर यत्र-तत्र भ्रमण करते हुए 'बिलरामपुर' मे आये। यह नगर आज भी अपने इसी नाम से एटा जिले मे वसा हुआ है। उस

१. यादव, जायव या जायस अथवा यदुकुल एक क्षत्रिय कुल है। यदुकुल ही यादव कहलाता था, बिगड कर वही जायव या जायस बन गया है। यह प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश है, इसी कुल मे श्रीकृष्ण और नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म भी हुआ था। इस कुल मे जैनधर्म के धारक अनेक श्रेष्ठी और विद्वान, राजा, मंत्री आदि हुए हैं। वर्तमान मे यह क्षत्रिय वश वैश्य कुल मे परिवर्तित हो गया है।

२. यह स्थान वयाना से १४ मील और करोली से उत्तर-पूर्व २४ मील की दूरी पर अवस्थित है। इसे तहनगढ या त्रिभुवनगिरि के नाम से उल्लेखित किया जाता था, क्योकि इसे त्रिभुवनपाल नाम के राजा ने बसाया था। जो सूरसेन वश का था, यह त्रिभुवनगढ ही अपभ्रष्ट होकर बाद मे 'तहनगढ़' कहा जाने लगा। त्रिभुवनपाल के पिता का नाम 'तहनपाल' था, जिसका समय १०४३ ईस्वी था और उसके पुत्र त्रिभुवनपाल या तहनपाल का समय सन् १०७५ हो सकता है। जिस तरह पिता ने विजयगढ (वयाना) या श्रीपथ वसाया था उसी प्रकार पुत्र ने तहनगढ या त्रिभुवनगिरि वसाया था। मुहम्मद गौरी ने इस पर सन् ११९६ (वि० स० १२५३) मे अधिकार किया था। मुसलमानी तवारीख 'जुलमासीर मे हसन निजामी ने लिखा है—कि हिजरी सन् ५७२ (वि०सं० १२५२) मे मुहम्मदगौरी ने तहनगढ पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया था। उस समय वहा कुमारपाल नाम का राजा राज्य करता था। कुमारपाल स० १२१० या १२११ के आस-पास गद्दी पर बैठा था। जब गौरी ने इसे अधिकृत किया तब वहाँ के निवासी हिन्दु सभ्य परिवार नगर छोड़कर यत्र तत्र भाग गए। उनके साथ जैनी लोग भी भाग गए। उस समय यह नगर अत्यधिक सम्पन्न था, और वहाँ पर मूर्तिपूजा का बडा जोर था। अत यहाँ बड़ा अन्याय एव आत्याचार किया गया। गौरी ने यहा का शासक वहरुद्दीन तुमरीन या

समय विलरामपुर मे सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर निवास करते थे। इन्होने कविवर को मकान आदि की सुविधा प्रदान की। यह कविवर के परम मित्र बन गए। साहू विल्हण का वश प्राग्वाट या पुरवाड था, और श्रीधर उस वशरूपी कमलो को विकसित करनेवाले सूर्य थे। और इस तरह कविवर उनके प्रेम और सहयोग से वहा सुखपूर्वक रहने लगे। वहा कुछ समय विताने के पश्चात् वे चौहानवशी राजा अभयपाल की राजधानी 'रायवद्दिय' रपरी या रायभा मे आकर रहे और वहां अभयपाल के प्रधान मत्री कृष्णादित्य की प्रेरणा से स० १३१३ मे अणुवय रयणपईव की रचना की। कवि ने अपने इतने लम्बे जीवन मे अन्य कितनी रचनाए रची, यह कुछ ज्ञात नही होता। अन्वेषण करने पर कवि की अन्य रचनाओ का भी पता चल सकेगा।

तुगरिक को नियुक्त किया था। नगर व्यापारियो से रिक्त हो गया था। अतएव जगह-जगह से बडे-बडे व्यापारियो को बुलाया गया था। खुरासान से भी लोग वसने को आये थे। प्रस्तुत ग्रथकर्ता और उनका परिवार भागकर विलरामपुर जिला एटा मे आये। वहा के निवासी सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर सेठ ने इन्हे ठहरने के लिए मकान दिया। कवि ने जिनदत्तचरित्र मे त्रिभुवनगिरि के विनष्ट होने का उल्लेख स० १२७५ मे किया है किन्तु त्रिभुवनगिरि के विनाश का समय 1196 A D (वि० स० १२५३ है। इससे स्पष्ट है कि कवि स० १२५३ मे वहा से भागे थे।

—देखो, आर्किलाजिकलसर्वे रिपोर्ट भा० २०

श्वेताम्वरीय खरतरगच्छ की प्रधान गुर्वावली मे भी त्रिभुवनगिरि का उल्लेख है और जिनदत्तसूरि द्वारा कुमारपाल राजा को सम्बोधित करने तथा वहा के शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है। घटना को स० १२०३ से पूर्व की बतलाया है। साथ ही स० १२०३ मे अजमेर मे फाल्गुन सुदी ९ के दिन दीक्षित जिनचन्दसूरि स०१२१४ मे त्रिभुवनगिरि पधारे और वहा उनके द्वारा शान्तिनाथ मन्दिर मे सुवर्णदण्ड, कलश और ध्वजारोपणादि कार्यों का उल्लेख किया है, गणिनी हेमदेवी को प्रवर्त्तिनी पद प्रदान करने का भी निर्देश है। (ततस्त्रिभुवनगिरौ, प्रतिबोधितस्तत्र कुमारपालो नाम राजा। कुतस्तत्र प्रचुरतर यतिजन विहार। प्रतिष्ठितो भगवान् शान्तिनाथ देव। ततः स (जिनदत्तसूरि स० १२०३ अजयमेरौ फाल्गुन सुदी ९ जिनचन्द्रसूरि दीक्षा)। —(खतरगच्छ युग प्रधान गुर्वावली पृ० १९-२०) स० १२१४ श्री जिनचन्द्रसूरिभिस्त्रिभुवनगिरौ श्री शान्तिनाथ शिखरे सज्जनमनोमन्दिर प्रमोदारोपणामिव सौवर्ण्णदण्ड कलश ध्वजारोपण महता विस्तरेण कृत्वा हेमदेवी गणिन्या प्रवर्तिनी पद दत्वा ...।

—खरतर गच्छयुगप्रधान गुर्वावली पृ० २०

ये सब उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्त्यनीय हैं। क्योकि गुर्वावली के अनुसार कुमारपाल का वहाँ राजा होना स० १२०३ से पूर्ववर्ती है। अत उसके सम्बोधन की घटना स० १२०३ से पहले की है।

इसके पश्चात् भी त्रिभुवनगिरि सम्पन्न हो गया जान पडता है। सम्भव है वहाँ पुन उस वश का शासन हो गया हो। विक्रम की १३ वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे या १४ वी के पूर्वार्ध मे उसकी समृद्धि पुन हो गई थी और वहाँ अनेक जैनमुनि और विद्वान निवास करने लगे थे। माथुरसघ के विद्वान उदयमुनि के प्रशिष्य और भ० बालचन्द्र मुनि के शिष्य विनयचन्द्र ने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल नरेश के विहार मे बैठकर चूनडी रास बनाया था और उसकी स्वोपज्ञ टीका भी रची थी। उन्होंने उसी नगर की तलहटी मे बैठकर 'निर्झर पचमी कथारास' का भी निर्माण किया था। इससे स्पष्ट है कि मुसलमान शासको के समय मे भी जैन विद्वान अपने साहित्य की श्री वृद्धि करते रहे हैं।

१४ वी प्रशस्ति 'सुलोयणाचरिउ' की है, जिसके कर्ता गरिगदेवसेन है। प्रस्तुत ग्रन्थ की २८ सन्धियो में भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार की धर्मपत्नी सुलोचना का, जो हस्तिनापुर के राजा अकम्पन और सुप्रभा देवी की सुपुत्री थी, चरित अकित किया गया है । सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी, इसके स्वयवर मे अनेक देशो के बडे-बडे राजागरण आए थे। सुलोचना को देखकर वे मुग्ध हो गए। उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्ति की प्रबल इच्छा करने लगे । स्वयवर मे सुलोचना ने जयकुमार को चुना। परिणाम स्वरूप चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो उठा, और उसने इसमे अपना अपमान समझा। अपने अपमान का बदला लेने के लिए अर्ककीर्ति और जय मे युद्ध होता है और अन्त मे जय की विजय होती है।

उस युद्ध का वर्णन कवि के शब्दों में निम्न प्रकार है—

भडो को वि खग्गेरण खग्ग खलतो, रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणतो।
भडो को वि वाणेण वाणो दलतो, समुद्धाइ उदुद्धरो ण कयतो ॥
भडो को वि कोतेरण कोत सरतो, करे गाढ चक्को अरी स पहुतो।
भडो को वि खडेहि खंडी कयंगो, लडत्त ण मुक्को सगा जो अहगो ॥
भडो को वि सगाम भूमि घुलंतो, विवण्णोह गिद्धवली णीयअतो।
भडो को वि धाएण णिव्वट्टि सीसो, असिवावरेई अरीसाण भीसो ॥
भडो को वि रत्तप्पवाहे तरतो, फुरतप्पएणं तडि सिग्घ पत्तो।
भडो को वि मुक्का उहे वन्न इत्ता, रहे दिण्णयाउ विवण्णोह इत्ता ॥
भडो को वि इत्थी विसारोहिं भिण्णो, भडो कोवि कंठोट्ठ छिण्णो णिसण्णो ॥
घत्ता—तहिं अवसरि णिय सेण्णु पेच्छिबि सर जज्जरियउ।
धावइ भुयतोलतु जउ बकु मच्छर भरियउ ॥ ६—१२

युद्ध के समय सुलोचना ने जो कुछ विचार किया था, उसे ग्रंथकार ने गूथने का प्रयत्न किया है। सुलोचना को जिन मन्दिर मे बैठे हुए जब यह मालूम हुआ कि महतादिक पुत्र, बल और तेज सम्पन्न पाच सौ सैनिक शत्रु पक्ष ने मार डाले है, जो तेरी रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। तब वह अपनी आत्म-निदा करती हुई विचार करती है कि यह सग्राम मेरे कारण ही हुआ है जो बहुत से सैनिको का विनाशक है। अत मुझे ऐसे जीवन से कोई प्रयोजन नही। यदि युद्ध मे मेघेश्वर (जयकुमार) की जय हो और मैं उन्हे जीवित देख लूगी तभी शरीर के निमित्त आहार करूगी। इससे स्पष्ट है कि उस समय सुलोचना ने अपने पति की जीवन-कामना के लिए आहार का भी परित्याग कर दिया था। इससे उसके पातिव्रत्य का उच्चादर्श सामने आता है। यथा—

इम जपिऊण पउत्त जयेण, तुमं एह कण्णा मनोहार वण्णा।
सुरक्खेह णूण पुरेणेह ऊण, तउ जोइ लक्खा अणेया असखा।
सुसत्था वरिण्णा मह दिक्ख दिण्णा, रहा चारु चिंधा गया जो मयंधा।
महताय पुत्ता बला-तेय जुत्ता, सया पच सखा हया वैरि-पक्खा।
पुरीए णिहाण वर तुग गेह, फुरंतीह णील मणील कराल।
पिया तत्थ रम्मो वरे चित्त कम्मे, अरभीय चिता सुउ हुल्लवत्ता।
णिय सोययती इण चिंतवती, अह पाव-यम्मा अलज्जा अधम्मा।

महु कज्ज एय रण अज्ज जाय,........................ . ... ।
बहूण णराण विणास करेण, महु जीविएण ण कज्ज अरोण ।
जया हसताउ स-मेहेसराई, सहे मगवाई इमो सोमराई ।
घत्ता—ए सयलवि सगामि, जीवियमाण कुमार हो। पेच्छमि होइ पवित्ति, तो सरीर आहार हो ॥

इस तरह ग्रथ का विपय और भाषा सुन्दर है ।

प्रस्तुत ग्रथ एक प्रामाणिक कृति है, क्योकि इसे कवि ने आचार्य कुन्दकुन्द के सूलोचनाचरित (प्राकृत गाथा बद्ध) का पद्धडिया आदि छन्दो मे अनुवाद मात्र किया है। ग्रथ गत चरित भाग बडा ही सुन्दर है, क्योकि जयकुमार और सुलोचना का चरित स्वय ही पावन रहा है। कवि ने इस काव्य-ग्रन्थ का निर्माण राक्षस सवत्सर मे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवार के दिन किया है। ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति मे मे कवि ने अपने से पूर्ववर्ती बाल्मीकि व्यास, श्रीहर्ष, कालिदास, बाण, मयूर, हलिय, गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदत और भूपाल नामक कवियो का उल्लेख किया है ।

ग्रन्थ कर्ता ने ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति मे अपनी गुरु परम्परा निम्न प्रकार दी है। वे निबडिदेव के प्रशिष्य और विमलसेन गणधर के शिष्य थे। इस ग्रन्थ की रचना मम्मलपुरी मे हुई है। राक्षस सम्वतसर साठ सम्बतो मे ४६ वा है। ज्योतिष की गणनानुसार एक राक्षस सम्वतसर १०७५ A D वि० स० ११३२ २६ जुलाई को श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवार के दिन पडता है। दूसरा सन् १६३५ (वि० स० १३७२) मे १६ जुलाई को उक्त चतुर्दशी और बुधवार पडता है। इन दोनो समयो मे २४० वर्ष का अन्तर है । इनमे पहला समय (वि० स० ११३२) ही इस ग्रन्थ की रचना का सूचक ज्ञात होता है, ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है।

१५वी प्रशस्ति 'पजुण्णचरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि सिद्ध और सिंह है। प्रस्तुत ग्रन्थ एक अप्रकाशित खण्ड काव्य है। जिसमे १५ सन्धिया है और जिनकी श्लोक सख्या साढे तीन हजार से कम नही है। इसमे यदुवशी श्रीकृष्ण के सुपुत्र प्रद्युम्नकुमार का जीवन-परिचय गुफित किया गया है, जो जैनियो मे प्रसिद्ध २४ कामदेवो मे से २१वे थे और जिन्हे उत्पन्न होते ही पूर्व जन्म का वैरी एक राक्षस उठाकर ले जाता है और उसे एक शिला के नीचे रख देता है। पश्चात् कालसवर नाम का एक विद्याधर उसे ले जाता है और उसे अपनी पत्नी को सौप देता है। वहा उसका लालन-पालन होता है तथा वहा वह अनेक प्रकार की कलाओ की शिक्षा पाता है। उसके अनेक भाई भी कलाविज्ञ बनते है, परन्तु उन्हे इसकी चतुरता रुचकर नही होती, उनका मन भी इससे नही मिलता, वे उसे अपने से दूर करने अथवा मारने या वियुक्त करने का प्रयत्न करते है। पर पुण्यात्मा जीव सदा सुखी और सम्पन्न रहते है। अतएव वह कुमार भी उनसे सदा विजयी रहा। बारह वर्ष के बाद कुमार अनेक विद्याओ और कलाओ से सयुक्त होकर वैभव सहित अपने माता-पिता से मिलता है। उस समय पुत्र-मिलन का दृश्य बडा ही करुणाजनक और द्रष्टव्य है। वह वैवाहिक बन्धन मे बद्ध होकर सासारिक सुख भी भोगता है और भगवान नेमिनाथ द्वारा यह जानकर कि १२ वर्ष मे द्वारावती का विनाश होगा, तब भोगो से विरक्त हो दिगम्बर साधु हो जाता है और तपश्चरण कर पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करता है। इसी से कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि पुष्पिका मे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय से भूषित बतलाया है। ग्रन्थ की भाषा मे स्वाभाविक माधुर्य और पद लालित्य है ही। रस अलकार और अनेक छन्द भी उसकी सरसता मे सहायक है।

ग्रथ-प्रशस्ति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतिभाषित होता है कि इस ग्रथ के दो रचयिता विद्वान् जान पडते हैं। उनमे ग्रथ की प्रथम रचना करने वाले विद्वान् का नाम सिद्ध कवि है। जो पपाइय

और देवरण का पुत्र था[1]। उसका यह ग्रन्थ किसी तरह खडित हो गया था और उसी अवस्था में कवि सिह को प्राप्त हुआ और सिंह कवि ने उसका समुद्धार किया था[2]। कवि सिद्ध ने यह ग्रंथ कब रचा, यह प्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नही होता। समुद्धारक सिंह कवि ने भी उसका समय नहीं दिया, परन्तु वह अन्य प्रमाणों से निश्चित हो जाता है।

कवि सिंह ने ग्रन्थ को विविध छन्दो मे गूथ कर उसे और भी सरस तथा मनोहर बना दिया है। कवि स्वयं प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश और देशी इन चार भाषाओ मे निपुण था और उसका कुल गूजर था। यह एक प्रतिष्ठित कुल है जिसमे अनेक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हो चुके है। कवि के पिता का नाम 'बुध रल्हण' था[3]। और वह प्राकृत सस्कृत रूप भाषाद्वय मे निपुण थे—कवि के पिता विद्वान् थे, और सभवत. उन्होने भी कोई ग्रन्थ बनाये हो, पर वे अभी उपलब्ध नही है। माता का नाम जिनमती था, जो शीलादि सद्गुणो से विभूषित थी। कवि के तीन भाई और भी थे, जिनका नाम शुभकर, गुणप्रवर और साधारण था। ये तीनो भाई धर्मात्मा और सुन्दर शरीर वाले थे।

कवि सिंह ने इस ग्रन्थ को अन्य किसी की सहायता के बिना ही बनाया था, उसने अपने को भव-भेदन मे समर्थ, शमी तथा कवित्व के गर्व सहित प्रकट किया है। कविता करने मे जिसकी कोई समानता न कर सके ऐसा असाधारण काव्य-प्रतिभावाला विद्वान् व्यक्त किया है। साथ ही वस्तु के सार-असार के विचार करने मे सुन्दर बुद्धिवाला, समीचीन, विद्वानो में अग्रणी, सर्व विद्वानों की विद्वता का सम्पादक, सत्कवि था, उसी ने आनन्दप्रद इस काव्य-ग्रन्थ का निर्माण किया है[4]।

---

१. "पुण पपाइय देवण णदणु, भवियण जणयणणयणाणदणु।
बुहयण जणपय पकय छप्पउ, भणइ 'सिद्धु' पणमिय परमप्पउ॥"
× × ×

२ 'कइ सिद्ध हो विरयत हो विणासु, मपत्तउ कम्मवसेण तासु।'
'पर कज्ज परकव्व विहडत जेहिं उद्धरिय'।
—पज्जुण्णचरिउ प्रशस्ति

३. जात श्री निजधर्मकर्मनिरत शास्त्रार्थ सर्वप्रियो,
भाषाभि' प्रवणश्चतुर्भिरभवच्छ्री सिंहनामा कवि।
पुत्रो रल्हण पडितस्य मतिमान् श्री गूर्जरागोमिह
दृष्टि-ज्ञान-चरित्रभूषिततनुवंशे विशालेऽवनौ॥
पज्जुण्णचरिउ की १३वी सधि के प्रारंभ का पद्य।

४ 'साहाय्य समवाप्य नात्र सुकवे प्रद्युम्नकाव्यस्य य.'
कर्ताऽभूद् भवभेदनैकचतुर श्री सिंहनामा शमी
साम्य तस्य कवित्व गर्व्वसहित को नामजातोऽवनौ
श्रीमज्जैनमतप्रणीतसुपथे सार्थ प्रवृत्ते क्षम.॥" —चौदहवी सधि के अन्त मे
'सारासारविचारचारुधिषण सद्धीमतामग्रणी
र्जातः सत्कविरत्रसर्वविदुषा वैदुष्य संपादक।
येनेद चरित प्रगल्भमनसा शात प्रमोदास्पद,
प्रद्यूम्नस्य कृत कृतीवता जीयात् स सिंहः क्षितौ॥' —९वी संधि के अन्त मे

साथ ही कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को छद अलङ्कार और व्याकरण शास्त्र से अनभिज्ञ, तर्कशास्त्र को नही सुनने वाला और साहित्य का नाम भी जिसके कर्णगोचर नही हुआ, इतना तक व्यक्त किया है और लिखा है कि ऐसा कवि सिंह सरस्वती देवी के प्रसाद को प्राप्त कर सत्कवियो मे अग्रणी मान्य तथा मनस्वी प्रिय हुआ है[५]।

गुरु परम्परा

कविवर सिंह के गुरु मुनि पुङ्गव भट्टारक अमृतचन्द्र थे, जो तप, तेजरूपी दिवाकर, और व्रत नियम तथा शील के रत्नाकर (समुद्र) थे। तर्क रूपी लहरो से जिन्होने परमत को झकोलित कर दिया था—डगमगा दिया था—जो उत्तम व्याकरण रूप पदो के प्रसारक थे, जिनके ब्रह्मचर्य के तेज के आगे काम देव दूर से ही वकित (खडित) होने की आशका से मानो छिप गया था—वह उनके समीप नही आ सकता था—इससे उनके पूर्ण ब्रह्मचर्य निष्ठ होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[६]।

प्रस्तुत भट्टारक अमृतचद्र उन आचार्य अमृतचद्र से भिन्न हैं, जो आचार्य कुंदकुन्द के समयसारादि प्राभृतत्रय के टीकाकार और पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रथो के रचयिता थे। वे लोक मे 'ठक्कुर' उपनाम से प्रसिद्ध थे। इनकी समस्त रचनाओ का जैन समाज मे बडा समादर है। यह विक्रम की दशवी शताब्दी के विद्वान थे। उनकी गुरु परम्परा यद्यपि अज्ञात है। परन्तु पट्टावली मे उनका समय स० ९६२ दिया हुआ है, वह प्राय ठीक जान पडता है[७]।

किन्तु उक्त भट्टारक अमृतचद्र के गुरु माधवचद्र थे, जो प्रत्यक्ष धर्म, उपशम, दम, क्षमा के धारक और इन्द्रिय तथा कषायो के विजेता थे और जो उस समय 'मलधारी देव' के नाम से प्रसिद्ध थे, और यम तथा नियम से सम्बद्ध थे। 'मलधारी' एक उपाधि थी जो उस समय के किसी-किसी साधु सम्प्रदाय मे प्रचलित थी। इस उपाधि के धारक अनेक विद्वान् आचार्य हो गए हैं। वस्तुत यह उपाधि उन मुनि पुगवो को प्राप्त होती थी, जो दुर्धर परिषहो, विविध घोर उपसर्गों और शीत-उष्ण तथा वर्षा की वाधा सहते हुए भी कभी कष्ट का अनुभव नही करते थे। और पसीने से तर-बतर शरीर होने पर धूलि के कणो के ससर्ग से मलिन शरीर को साफ न करने तथा पानी से धोने या नहाने जैसी घोर बाधा को भी हसते हुए सह लेते थे। ऐसे ऋषि पुगव ही उक्त उपाधि से अलकृत किए जाते थे।

---

५. 'छन्दोऽलङ्कृति-लक्षण न पठित नाऽश्रावि तर्कागमो,
जात हत न कर्ण गोचरचर साहित्यनामाऽपि च।
सिंह सत्कविरग्रणी समभवत् प्राप्य प्रसाद पर,
वाग्देव्या सुकवित्वजातयशसा मान्यो मनस्विप्रियः॥'

६ तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु, वय-तव-णियम-सील-रयणायरु।
तक्क-लहरि-झकोलिय-परमउ, वर वायरण पवर पसरिय पउ।
जासु भुवण दूरतरु वकिवि, दिढ पच्छण्णु मयणु आसकिवि।
अभयचद नामेण भडारउ, सो विहरतु पत्तु बुह सारउ॥ —पज्जुण्णचरिउ प्रशस्ति

७ देखो, 'अमृतचद्र का समय' शीर्षक मेरा लेख, अनेकान्त वर्ष ८ किरण ४-५।

रचना समय

यद्यपि ग्रन्थ मे रचनाकाल दिया हुआ नही है, फिर भी अन्य प्रमाणों के आधार पर ग्रन्थ का रचना समय बतलाने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रंथ प्रशस्ति में 'बम्हणवाड' नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय वहां रणधोरी या रणधीर का पुत्र बल्लाल था जो अर्णोराजका क्षय करने के लिए कालस्वरूप था और जिसका माडलिक भृत्य अथवा सामन्त गुहिलवशीय क्षत्रीय भुल्लण उस समय बम्हणवाडका शासक था[1]। परन्तु इस उल्लेख पर से उक्त राजाओ का राज्यकाल ज्ञात नही होता। अतः उसे अन्य साधनो से जानने का प्रयत्न किया जाता है।

मत्री तेजपाल के आबू के लूणवसति गत स० १२८७ के लेख मे मालवा के राजा बल्लाल को यशोधवल के द्वारा मारे जाने का उल्लेख है[2]। यह यशोधवल विक्रमसिह का भतीजा था और उसके कैद हो जाने के बाद गद्दी पर बैठा था। यह कुमारपाल का मांडलिक सामन्त अथवा भृत्य था, मेरे इस कथन की पुष्टि अचलेश्वर मदिर के शिलालेख गत निम्न पद्य से भी होती है—

"तस्मान्मही......विदितान्यकलत्रपात्र, स्पर्शो यशोधवल इत्यवलम्बते स्म।
यो गुर्जरक्षितिपतिप्रतिपक्षमाजौ, बल्लालमालभत मालवमेदिनीद्रम्॥"

यशोधवल का वि० सं० १२०२ (११४५ A.D.) का एक शिलालेख अजरी गाँव से मिला है जिसमें 'प्रमारवशोद्भवमहामण्डलेश्वरश्रीयशोधवलराज्ये' वाक्य द्वारा यशोधवल को परमारवश का मण्डलेश्वर सूचित किया है। यशोधवल रामदेव का पुत्र था, इसकी रानी का नाम सौभाग्यदेवी था। इसके दो पुत्र थे, जिनमे एक का नाम धारावर्ष और दूसरे का नाम प्रह्लाददेव था। इनमे यशोधवल के बाद राज्य का उत्तराधिकारी धारावर्ष था। वह बहुत ही वीर और प्रतापी था, इसकी प्रशसा वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति के ३६वे पद्य मे पाई जाती है[3] ? धारावर्ष का स० १२२० का एक लेख 'कायद्रा' गांव के बाहर, काशी, विश्वेश्वर के मदिर से प्राप्त हुआ है[4]। यद्यपि इसकी मृत्यु का कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिला, फिर भी उसकी मृत्यु उक्त सं० १२२० के समय तक या उसके अन्तर्गत जानना चाहिये।

जब कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा, तब मालवा का राजा बल्लाल, चन्द्रावती का परमाल विक्रमसिह और सपादलक्ष (सांभर) का चौहान अर्णोराज ये तीनों राजा परस्पर में मिल गये और इन्होने कुमारपाल के विरुद्ध जबरदस्त प्रतिक्रिया की, परन्तु उनका यह सब प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमारपाल ने

१. सरि-सर-णदण-वण-सछण्णउ, मठ-विहार-जिण-भवणरवण्णउ।
बम्हणवाडउ णामे पट्टणु, अरिणरणाह-सेणदलवट्टणु।
जो भुजइ अरिणखयकालहो, रणधोरियहो सुअहो बल्लालहो।
जासु भिच्चु दुज्जण-मणसल्लणु, खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु॥ —प्रद्युम्नचरित प्रशस्ति।

२. यश्चौलुक्यकुमारपालनृपति प्रत्यर्थितामागत।
मत्वा सत्वरमेव मालवपति बल्लालमालब्धवान्॥

३ शत्रु श्रेणीगलबिदलनोन्निद्रनिर्स्त्रिशधारो, धारावर्ष समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्य।
क्रोधाकान्तप्रधनवसुधा निश्चले यत्र जाता, श्चोतन्नेत्रोत्पलजलकण कोकणाधीशपत्न्यः॥३६॥

४. देखो, भारत के प्राचीन राजवश भा० १ पृ० ७६-७७।

विक्रमसिंह का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया, जिसने बल्लाल को मारा था, और इस तरह मालवा को गुजरात मे मिलाने का प्रयत्न किया गया[१]।

बल्लाल की मृत्यु का उल्लेख अनेक प्रशस्तियो मे मिलता है। बडनगर से प्राप्त कुमारपाल प्रशस्ति के १५ श्लोको मे बल्लाल की हार और कुमारपाल की विजय का उल्लेख किया गया है और लिखा है कि कुमारपाल ने बल्लाल का मस्तक महल के द्वार पर लटका दिया था। चू कि कुमारपाल का राज्यकाल वि० स० ११९९ से वि० स० १२२९ तक पाया जाता है और इस बडनगर प्रशस्ति का काल सन् ११५१ (वि०स० १२०८) है। अत बल्लाल की मृत्यु ११५१ A D (वि० स० १२०७) से पूर्व हुई है[२]।

ऊपर के इस कथन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि कुमारपाल, यशोधवल, बल्लाल और अर्णोराज ये सब राजा समकालीन हैं। अत ग्रथ-प्रशस्ति गत कथन को दृष्टि मे रखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत प्रद्युम्नचरित की रचना वि० स० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी। अत इस ग्रन्थ का रचनाकाल विक्रम की १३वी शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिये।

प्रद्युम्नचरित की अधिकाश प्रतियो मे अन्तिम प्रशस्ति ही दी हुई नही है और जिन प्रतियो मे प्राप्त थी उनमे वह त्रुटित एव खण्डित अवस्था मे प्राप्त हुई थी, किंतु यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि भ० महेन्द्रकीर्ति आमेर के शास्त्रभण्डार की कई प्रतियो मे यह प्रशस्ति पूर्णरूप से उपलब्ध है। उक्त भण्डार मे इस ग्र थ की छह प्रतियाँ पाई जाती हैं। जो विविध समयो मे लिखी गई है। उनमे से स० १५७७ की प्रति पर से उक्त ग्रथ की अन्तिम प्रशस्ति इस सग्रह मे दी गई है।

१६ वी प्रशस्ति 'पासनाह चरिउ' की है। जिसके कर्ता कवि देवचन्द्र हैं। इस ग्रन्थ की अभी तक एक ही खडित प्रति प्राप्त है, जिसमे ७, ७९ और ८१ वा ये तीन पत्र नही हैं। ग्रन्थ मे ११ सधियाँ हैं जिनमे २०२ कडवको मे कवि ने पार्श्वनाथ के चरित को बडी खूबी के साथ चित्रित किया है। साथ मे पूर्व भवान्तरो का कथन भी अकित किया है। कवि ने दोधक छन्द मे भगवान पार्श्वनाथ की ध्यान-मुद्रा को निम्न वाक्यो मे चित्रित किया है उससे पाठक ग्रन्थ की भाषा शैली से भी परिचित हो सकेंगे।

"तत्थ सिलायले थककु जिणिदो, सतु महतु तिलोय हो वदो।
पच-महव्वय-उद्दय कधो, निम्ममु चत्त चउव्विह बधो।
जीव दयावरु सग विमुक्को, ण दहलक्खणु धम्मु गुरुक्को।
जम्म-जरा मरणुज्झिय दप्पो, बारस भेय तवस्स महप्पो।
मोह-तमध-पयाव-पयगो, खति लया रुहणे गिरि तुगो।
सजम-सील-विहूसिय देहो, कम्म-कसाय हुआसण मेहो।
पुप्फधणु वर तोमर धसो, मोक्ख-महासरि-कीलण हसो।
इन्दिय - सप्पह विसहर मतो, अप्पसरूव-समाहि-सरतो।
केवलनाण - पयासण-कखू, घाण पुरम्मि निवेसिय चक्खू।
णिज्जिय सासु पलबिय वाहो, णिच्चल देह विसज्जिय-वाहो।
कचणसेलु जहा थिर चित्तो, दोधक छद इमो बुह वुत्तो।"

१ Epigraphica Indica V L VIII P 200

२ देखो, सन् ११५१ की लिखित बडनगर प्रशस्ति।

इसमें बतलाया गया है कि भगवान पार्श्वनाथ एक शिला पर ध्यानस्थ बैठे हुए है। वे सन्त महन्त त्रिलोकवर्ती जीवों के द्वारा वन्दनीय है, पच महाव्रतो के धारक है, निर्ममत्व है, और प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग रूप चार प्रकार के बन्ध से रहित हैं, दयालु और सग (परिग्रह) से मुक्त है। दशलक्षणधर्म के धारक है। जन्म, जरा और मरण के दर्प से रहित हैं। तप के द्वादश भेदो के अनुष्ठाता है। मोहरूपी अधकार को दूर करने के लिए सूर्य समान है। क्षमा रूपी लता के आरोहणार्थ वे गिरि के समान उन्नत है। जिनका शरीर सयम और शील से विभूषित है, जो कर्म रूप कषाय हुताशन के लिए मेघ है। कामदेव के उत्कृष्ट बाण को नष्ट करने वाले तथा मोक्ष रूप महासरोवर मे क्रीड़ा करने वाले हस है। इन्द्रिय रूपी विषधर सर्पो को रोकने के लिए मत्र है। आत्म-समाधि मे चलने वाले है। केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले सूर्य है, नासाग्र दृष्टि है, श्वास को जीतने वाले है, जिनके बाहु लम्बायमान है और व्याधियो से रहित जिनका निश्चल शरीर है। जो सुमेरु पर्वत के समान स्थिर चित्त है।" यह पार्श्वनाथ की उस ध्यान-समाधि का परिचायक है जो कर्मावरण की नाशक है।

कवि ने अपना यह खण्ड काव्य गुदिज्ज नगर के पार्श्वनाथ मदिर मे बनाकर समाप्त किया है। गुदिज्ज नगर दक्षिण मे ही कही अवस्थित होगा। कवि देवचन्द मूलसघ देशी गच्छ के विद्वान वासवचन्द के शिष्य थे। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे गुरुपरम्परा का निम्न प्रकार उल्लेख है—श्रीकीर्ति, देवकीर्ति, मौनीदेव, माधवचन्द्र, अभयनन्दी, वासवचन्द्र और देवचन्द्र।

ग्रन्थ मे रचनाकाल दिया हुआ नही है, जिससे यह बतलाना कठिन है कि ग्रथ कब बना है। क्योकि तद्विषयक सामग्री सामने नही है। ग्रथ की यह प्रति स० १४९८ के दुर्मति नाम सवत्सर के पूस महीने के कृष्ण पक्ष में अलाउद्दीन के राज्य काल मे भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के पदाधिकारी भट्टारक प्रतापकीर्ति के समय मे देवगिरि महादुर्ग मे अग्रवाल श्रावक पण्डित गागदेव के पुत्र पासराज के द्वारा लिखाई गई है।

अब तक मुझे वासवचन्द्र नाम के दो विद्वानो का पता चला है, जिनमे एक का उल्लेख खजुराहा के स० १०११ वैशाखसुदी ७ सोमवार के दिन उत्कीर्ण किये गये जिननाथ मदिर के शिलालेख मे दिया हुआ है जो वहा के राजा धग के राज्यकाल मे खोदा गया था[1]।

दूसरे वासवचन्द्र का उल्लेख श्रवण बेलगोल के शिललेख न० ५५ मे पाया जाता है जो शक सं० १०२२ (वि० स० ११५७) का है। उस लेख के २५ वे पद्य मे वासवचन्द्र मुनीन्द्र स्याद्वादविद्या के विद्वान थे, कर्कश तर्क करने मे उनकी बुद्धि चलती थी। उन्होने चालुक्य राजा की राजधानी मे बालसरस्वति की उपाधि प्राप्त की थी[2]। इनमे द्वितीय वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हो सकते है। यदि यही वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हो तो इनका समय विक्रम की १२ वी शताब्दी हो सकता है।

१७वी प्रशस्ति 'सयलविहिविहाणकव्व' की है, जिसके कर्त्ता कविनयनन्दी है, जिनका परिचय तीसरी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१८वी प्रशस्ति 'अणुवय-रयण-पईब' की है जिसका परिवय १३ वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

---

1. See Epigraphica Indica VOLT Page 136

२. वासवचन्द्र मुनीन्द्रो रुन्द्र स्याद्वादनर्क्क-कर्कश-धिषण ।
चालुवय कटकमध्ये बालसरस्वति रिति प्रसिद्धि प्राप्त. ॥ —श्रवण वेल्लोल शिलालेख २५

१९वी प्रशस्ति 'बाहुबलीचरित' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे अठारह सधिया है। कवि कथा सम्बन्ध के बाद सज्जन दुर्जन का स्मरण करता हुआ कहता है कि 'नीम को यदि दूध से सिंचन किया जाय तो भी वह अपनी कटुकता का परित्याग नही करती। ईख को यदि शस्त्र से काटा जाय तो भी वह अपनी मधुरता नही छोडती। उसी तरह सज्जन-दुर्जन भी अपने स्वभाव को नही छोडते। सूर्य तपता है और चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है[1]।' ग्रन्थ मे आदि ब्रह्मा ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली का, जो सम्राट् भरत के कनिष्ठ भ्राता और प्रथम कामदेव थे, चरित्र दिया हुआ है। बाहुबली का शरीर जहा उन्नत और सुन्दर था वहा वह बल पौरुष से भी सम्पन्न था। वे इन्द्रिय विजयी और उग्र तपस्वी थे। वे स्वाभिमानपूर्वक जीना जानते थे, परतु पराधीन जीवन को मृत्यु से कम नही मानते थे। उन्होंने भरत सम्राट् से जल-मल्ल और दृष्टि युद्ध मे विजय प्राप्त की थी, परिणाम स्वरूप भाई का मन अपमान से विक्षुब्ध हो गया और बदला लेने की भावना से उन्होने अपने भाई पर चक्र चलाया, किन्तु देवोपुनीत अस्त्र 'वश-घात' नही करते। इससे चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर वापिस लौट गया—वह उन्हे कोई नुकसान न पहुचा सका। बाहुबली ने रणभूमि मे भाई को कधे पर से नीचे उतारा और विजयी होने पर भी उन्हे ससार-दशा का बडा विचित्र अनुभव हुआ।

वे सोचने लगे कि भाई को परिग्रह की चाहने अधा कर दिया है और अहकार ने उनके विवेक को भी दूर भगा दिया है। पर देखो, दुनिया मे किसका अभिमान स्थिर रहा है? अहकार की चेष्टा का दण्ड ही तो अपमान है। तुम्हे राज्य की इच्छा है तो लो इसे सम्हालो और जो उस गद्दी पर बैठे उसे अपने कदमो मे झुकालो, उस राज्य सत्ता को धिक्कार है, जो न्याय अन्याय का विवेक भुला देती है। भाई-भाई के प्रेम को नष्ट कर देती है और इन्सान को हैबान बना देती है। अब मैं इस राज्य का त्याग कर आत्म-साधना का अनुष्ठान करना चाहता हूँ और सबके देखते-देखते ही वे तपोवन को चले गये, जहा दिगम्बर मुद्रा द्वारा एक वर्ष तक कायोत्सर्ग मे स्थित रहकर उस कठोर तपश्चर्या द्वारा आत्म-साधना की, पूर्ण ज्ञानी वन स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त हुए।

ग्रथ मे अनेक स्थल काव्यमय और अलकृत मिलते हैं। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक कवियो और उनकी रचनाओ का भी उल्लेख किया है।

कवि ने इस ग्रन्थ का नाम 'कामचरिउ' कामदेवचरित भी प्रकट किया है और उसे गुणो का सागर बतलाया है। ग्रन्थ मे यद्यपि छदो की बहुलता नही है। फिर भी ११वी सधि मे दोहो का उल्लेख अवश्य हुआ है। ग्रन्थ रचना उस समय की है जब हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। कवि ने इसे वि० स० १४५४ मे वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को स्वाति नक्षत्र मे स्थित सिद्धि योग मे सोमवार के दिन, जबकि चद्रमा तुलारासी पर स्थित था, पूर्ण किया है।

ग्रन्थ निर्माण मे प्रेरक

प्रस्तुत ग्रथ चद्रवाड नगर के प्रसिद्ध राज श्रेष्ठी और राजमत्री, जो जायस या जैसवाल वश के भूषण थे, साहूवासाधर की प्रेरणा से की है और उक्त ग्रथ उन्ही के नामाकित किया है। वासाधर के पिता

१ णिंवु को वि जइ खीरहिं सिंचइ, तो वि ण सो कुडुवत्तणु मुचइ।
उच्छु को वि जह सत्थे खडइ, तो वि ण सो महुरत्तणु छडइ।
दुज्जण सुअण सहावें तप्परु, सूरुतवइ ससहरु सीयरकरु॥
—बाहुवलिचरिउ

का नाम सोमदेव था, जो सभरी नरेंद्र कर्णदेव के मत्री थे। कवि ने साहु वासाधर को सम्यक्त्वी, जिन चरणो के भक्त जिनधर्म के पालन मे तत्पर, दयालु, बहु-लोकमित्र, मिथ्यात्व रहित और विशुद्ध चित्त वाला बतलाया है। साथ ही आवश्यक दैनिक षट्कर्मों मे प्रवीण, राजनीति मे चतुर और अष्टमूल गुणो के पालन मे तत्पर प्रकट किया है। इनकी पत्नी का नाम उभयश्री था, जो पतिव्रता और शीलव्रत का पालन करने वाली तथा चतुर्विध संघ के लिए कल्पनिधि थी। इनके आठ पुत्र थे, जसपाल, जयपाल, रतपाल, चद्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहड और रूपदेव। ये सभी पुत्र अपने पिता के समान ही सुयोग्य चतुर और धर्मात्मा थे। इन आठ पुत्रो के साथ साहु वासाधर अपने धर्म का साधन करते थे।

इस ग्रथ में कवि ने अपने से पूर्व होने वाले कुछ खास विद्वानों का और उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियो के नामोल्लेख के साथ उल्लेख किया है। जैसे कवि चक्रवर्ती धीरसेन, जैनेन्द्र व्याकरणकर्ता देवनंदी (पूज्यपाद) श्री वज्रसूरि और उनके द्वारा रचित षट्दर्शन प्रमाण ग्रथ, महासेन सुलोचनाचरित, रविषेण-पद्मचरित, जिनसेन हरिवशपुराण, मुनिजटिल वरांगचरित, दिनकरसेन कदर्पचरित, पद्मसेन-पार्श्वनाथचरित, अमृताराधना गणि अम्बसेन, चद्रप्रभचरित, धनदत्तचरित, कवि विष्णुसेन, मुनिसिंहनदि-अनुप्रेक्षा, णवकार मत्र-नरदेव, कवि असग-वीरचरित, सिद्धसेन, कवि गोविंद, जयधवल, शालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयभू, पुष्पदत, और सेढु कवि का उल्लेख किया गया है।

कवि परिचय

कवि धनपाल गुजरात देश के मध्य मे 'पल्हणपुर'[1] या पालनपुर के निवासी थे। वहाँ वीसलदेव राज्य करते थे, जो पृथ्वी के मण्डन और सकल उपमाओ से युक्त थे। उसी नगर मे निर्दोष पुरवाड वश मे, जिसमे अगणित पूर्व पुरुष हो चुके है, 'भोवइ' नाम के एक राजश्रेष्ठी थे, जो जिन भक्त और दया गुण

१ पालनपुर (पल्हणपुर) Palanpur आबू राज्य के परमारवशी धारावर्ष स० १२२० (११६३ ई०) से १२७६ ई० सन् १२१९ तक आबू का राजा धारावर्ष था, जिसके कई लेख मिल चुके है। उसके कनिष्ठ भ्राता यशोधवल के पुत्र प्रल्हादन देव (पालनसी) ने अपने नाम पर बसाया था। यह बडा वीर योद्धा था और विद्वान भी था। इसी से इसे कवियो ने पालणपुर या पल्हणपुर लिखा है। यह गुजरात देश की राजधानी थी। यहां अनेक राजाओ ने शासन किया है। आबू के शिलालेखो मे परमार वश की उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन है और प्रह्लादनदेव की प्रशसा का भी उल्लेख है। जिस समय कुमारपाल शत्रुजयादि तीर्थों की यात्रा को गया, तब प्रह्लादन देव भी साथ मे था। पुरातन-प्रबध सग्रह पृ० ४३)

प्रह्लादन देव की प्रशसा प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी मे और तेजपाल मत्री द्वारा बनवाए हुए लूणवसही की प्रशस्ति मे की है। यह प्रशस्ति वि० स० १२८७ मे आबू पर देलवाडा गाव के नेमिनाथ मदिर मे लगाई गई थी। मेवाड़ के गुहिल वशी राजा सामतसिंह और गुजरात के सोलकी राजा अजयपाल की लडाई मे, जिसमे वह घायल हो गया था प्रह्लादन ने बड़ी वीरता से लड़कर गुजरात की रक्षा की थी।

प्रस्तुत पालनपुर मे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदाय के लोग रहते थे। धनपाल के पितामह तो वहा के राज्य श्रेष्ठी थे। श्वेताम्बर समाज का तो यह प्रमुख केन्द्र ही था। यहां उनके अनेक ग्रथ लिपि किये गए। जिनदत्त सूरि भी वहा रहे हैं।

से युक्त थे। यह कवि धनपाल के पितामह थे, इनके पुत्र 'सुहडप्रभ' श्रेष्ठी थे, जो धनपाल के पिता थे। कवि की माता का नाम 'सुहडा देवी' था इनके दो भाई और भी थे, जिनका नाम सतोष और हरिराज था। इनके गुरु प्रभाचद्र थे, जो अपने बहुत से शिष्यो के साथ देशाटन करते हुए उसी पल्हणपुर मे आये थे, धनपाल ने उन्हे प्रणाम किया, और मुनि ने आशीर्वाद दिया कि तुम मेरे प्रसाद से विचक्षण होगे। मस्तक पर हाथ रखकर बोले कि मैं तुम्हे मत्र देता हूँ। तुम मेरे मुख से निकले हुए अक्षरो को याद करो। आचार्य प्रभाचद्र के वचन सुनकर धनपाल का मन आनन्दित हुआ, और उसने विनय से उनके चरणो की वन्दना की, और आलस्य रहित होकर गुरु के आगे शास्त्राभ्यास किया, और सुकवित्व भी पा लिया। पश्चात् प्रभाचद्र गणी खभात धारनगर और देवगिरि (दौलताबाद) होते हुए योगिनी पुर आये। देहली निवासियो ने उस समय एक महोत्सव किया और भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर उन्हे प्रतिष्ठित किया। भट्टारक प्रभाचद्र ने मुहम्मदशाह तुगलक के मन को अनुरजित किया था और विद्या द्वारा वादियो का मनोरथ भग्न किया था[1]। मुहम्मदशाह ने वि० स० १३८१ से १४०८ तक राज्य किया है।

भट्टारक प्रभाचद्र का भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का समर्थन भगवती आराधना की पजिका टीका की उस लेखक प्रशस्ति से भी होता है जिसे सवत् १४१६ मे इन्ही प्रभाचद्र के शिष्य ब्रह्म-नाथूराम ने अपने पढने के लिए दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलग के शासनकाल मे लिखवाया था, उसमे भ० रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का स्पष्ट उल्लेख है[2]। फीरोजशाह तुगलक ने स० १४०८ से १४४५ तक राज्य किया है। इससे स्पष्ट है कि भ०प्रभाचद्र स० १४१६ से कुछ समय पूर्व भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित हुये थे और सकल उपमाओ से युक्त थे।

कविवर धनपाल गुरु आज्ञा से सौरिपुर तीर्थ के प्रसिद्ध भगवान नेमिनाथ जिनकी वन्दना करने के लिये गए थे। मार्ग मे इन्होने चन्द्रवाड[3] नाम का नगर देखा, जो जन धन से परिपूर्ण और उतुग जिनालयो से विभूषित था, वहा साहु वासाधर का बनवाया हुआ जिनालय भी देखा और वहा के श्री अरहनाथ जिनकी वन्दना कर अपनी गर्हा तथा निदा की और अपने जन्म-जरा और मरण का नाश होने की कामना व्यक्त की। इस नगर मे कितने ही ऐतिहासिक पुरुष हुए है जिन्होने जैनधर्म का अनुष्ठान करते हुए वहा के राज्य मत्री रह कर प्रजा का पालन किया है। कवि का समय पन्द्रहवी शताब्दी है।

२०वी प्रशस्ति (चदप्पहचरिउ) नाम के ग्रन्थ की है, जिनके कर्ता कवि यश कीर्ति है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ग्यारह सधियाँ है जिनमे जैनियो के आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवन परिचय अकित किया गया है। ग्रन्थ का चरित भाग उडा ही सुन्दर और प्राजल है। इसका अध्ययन करने से जैन तीर्थंकर की आत्म-साधना की रूपरेखा का जहा परिज्ञान होता है वहा आत्म-साधना के सुन्दर उपाय की भी जानकारी हो जाती है।

---

१ तहिं भव्वहिं सुमहोच्छव विहियउ, सिरि रयणकित्ति पट्टें णिहिउ।
महमदसाहि मणुरजियउ, विज्जहिं वाइय मणु भजियउ। —बाहुबलि चरिउ प्रशस्ति

२ सवत् १४१६ वर्षे चैत्र सुदि पञ्चम्या सोमवासरे सकलराज शिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृत चरण कमल पादपीठस्य श्रीपेरोजसाहे सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्री दिल्या श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री रत्नकीर्ति देव पट्टोदयाद्रितरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणिरण (णः) भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव शिष्याणा ब्रह्मनाथूराम। इत्याराधना पजिकाया ग्रथ आत्म पठनार्थं लिखापितम्। —आरा० पजि० प्रश० व्यावर भवन प्र०

३. देखो, चन्द्रवाड का इतिहास नाम का मेरा लेख, अनेकान्त वर्ष ८।

कवि ने अपना सभी कथन काव्य-शैली से किया है, किन्तु साध्य-चरित भाग को सरल शब्दों मे रखने का प्रयत्न किया गया है। इसमे विविध छन्दो की भरमार नही है। कवि ने इस ग्रन्थ को 'हुंबड' कुलभूषण कुमरसिह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध से बनाया था, वे उन्मत्त ग्राम के निवासी थे। अतएव ग्रन्थ सिद्धपाल के ही नामाकित किया गया है।

समय विचार

ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्य मे रचनाकाल नही दिया, किन्तु आद्य प्रशस्ति में निम्न विद्वानों का उल्लेखमात्र किया है। साथ ही, आचार्य समन्तभद्र के मुनि जीवन के समय घटने वाली और आठवे तीर्थंकर के स्तोत्र की सामर्थ्य से चन्द्रप्रभ की मूर्ति के प्रकट होने की घटना का उल्लेख करते हुए अकलक, पूज्यपाद, जिनसेन और सिद्धसेन नाम के अपने से पूर्ववर्ती विद्वानो का उल्लेख किया है। जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि प्रस्तुत ग्रथ भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य यश कीर्ति की कृति नही है। ग्रन्थका भाषा साहित्य भी पाण्डवपुराण के कर्ता यश कीर्ति से गम्भीर प्रौढ और प्रभावक है। कुछ विद्वान इसे उक्त यश कीर्ति को और पाण्डवपुराण के कर्ता यश कीर्ति, दोनो को एक बतलाते है, परन्तु वे इसका कोई प्रमाण नही देते है।

साथ ही, दोनो ग्रन्थो की सन्धि-पुष्पिकाओ मे भी भारी अन्तर है। भट्टारक यश कीर्ति अपने प्रत्येक ग्रन्थ की सन्धि पुष्पिका मे 'सिरि गुणकीर्ति सिस्स मुणि जसकित्ति विरइए' वाक्य के साथ उल्लेखित करते है, जिससे स्पष्ट है कि उक्त कृति भ० गुणकीर्ति के शिष्य यश कीर्ति की रची हुई है। किंतु चन्द्रप्रभ चरित्र के कर्ता ने अपने ग्रन्थ की किसी भी सधि मे गुणकीर्ति के शिष्य यश कीर्ति का कोई उल्लेख नही किया है। जिससे प्रस्तुत यशःकीर्ति पाण्डवपुराणादि के कर्ता भ० यश कीर्ति से भिन्न हो जाते है। जैसा कि ग्रन्थ के निम्न सधि वाक्य से प्रकट है —"इय सिरि चदप्पहचरिए महाकव्वे महाकइ जसकित्ति विरइए महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे चदप्पहसामिणिव्वाण गमण वण्णणोणाम एयारहमो-सधी परिच्छेउ समत्तो।"

गुणकीर्ति के शिष्य यश कीर्ति ने कही भी अपने को महाकवि सूचित नही किया है, किन्तु चन्द्रप्रभ चरित के कर्त्ता ने अपने को 'कहाकवि' भी प्रकट किया है।

अत ऊपर के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता इनसे भिन्न और पूर्ववर्ती है। इनका समय सम्भवत ११वी-१२वी शताब्दी ज्ञात होता है। ग्रथ अभी अप्रकाशित है और उसे प्रकाश मे लाने की आवश्यकता है।

२१वी, २२वी, २३वी और २४वी प्रशस्तियाँ क्रम से 'पाण्डवपुराण' हरिवश पुराण, जिनरात्रिकहा, और रविवउकथा की है। जिनके कर्त्ता भ० यश कीर्ति है।

पाण्डवपुराण मे ३४ सधिया है जिनमे भगवान् नेमिनाथ की जीवन-गाथा के साथ युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, और कौरवो के परिचय से युक्त कौरवो से होने वाले युद्ध मे विजय, नेमिनाथ, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की तपश्चर्या तथा निर्वाण प्राप्ति, नकुल, सहदेव का सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करना और बलदेव का ५वे स्वर्ग मे जाने का उल्लेख किया है। कवि यश कीर्ति विहार करते हुए नवगांव नाम के नगर मे आए, जो दिल्ली के निकट था, वहा उन्होने इसकी रचना वि० स० १४९७ में समाप्त की है। ग्रथ में नारी का वर्णन परम्परागत उपमानो से अलकृत है, किन्तु शारीरिक सौदर्य का अच्छा वर्णन किया गया है—'जाहे णियतिहे रइवि उक्खिज्जइ'—जिसे देखकर रति भी खीज उठती है। इतना ही नही किन्तु उसके सौदर्य से इन्द्राणी भी खिन्न हो जाती है—'लायण्णे वासवपिय जूरइ' कवि ने जहा शरीर के

बाह्य सौदर्य का कथन किया है वहा उसके अन्तर प्रभाव की भी सूचना की है। छन्दो मे पद्धडिया के अतिरिक्त आरणाल, दुवई, खडय, हेला, जभोट्टिया, रचिता, मलयविलासिया, आवली, चतुष्पदी, सुन्दरी, वशस्थ, गाहा, दोहा और वस्तु छन्द का प्रयोग किया है। कही-कही भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी मिलता है[1]। कवि ने यह ग्रन्थ शाह हेमराज के अनुरोध से बनाया है जो दिल्ली के बादशाह मुबारिक शाह के मत्री थे। इन्होने दिल्ली मे एक चैत्यालय भी बनवाया था[2], जिसकी प्रतिष्ठा स० १४६७ से पूर्व हो चुकी थी, क्योकि स० १४६७ मे निर्मित ग्रथ मे उसका उल्लेख किया है। ग्रथ की सधियो के सस्कृत पद्यो मे ग्रन्थ निर्माण मे प्रेरक हेमराज की मगल कामना की गई है और यह ग्रन्थ उन्ही के नामाकित किया गया है। ग्रथ की अन्तिम प्रशस्ति मे हेमराज के परिवार का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

२२वी प्रशस्ति 'हरिवशपुराण' की है जिसमे १३ सधिया और २६७ कडवक है जो चार हजार श्लोको के प्रमाण को लिए हुए हैं। इनमे कवि ने भगवान् नेमिनाथ और उनके समय मे होने वाले कौरव पाण्डव युद्ध और विजय का सक्षिप्त परिचय दिया गया है अर्थात् महाभारत कालीन जैन मान्यता सम्मत पौराणिक आख्यान दिया हुआ है। ग्रन्थ मे काव्यमय अनेक स्थल अलकृत शैली से वर्णित हैं। उसमे नारी के बाह्य रूप का ही चित्रण नही किया गया, किन्तु उसके हृदय-स्पर्शी प्रभाव को भी अङ्कित किया है। कवि ने ग्रथ को यद्यपि पद्धडिया छन्द मे रचने की घोषणा की है, किन्तु आरणाल, दुवई, खडय, जभोट्टिया, वस्तुबध और हेला आदि छन्दो का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया गया है। ऐतिहासिक कथनो की प्रधानता है, परतु सभी वर्णन सामान्य कोटि के हैं उनमे तीव्रता की अभिव्यक्ति नही है। यह ग्रन्थ हिसार निवासी अग्रवाल वशी गर्गगोत्री साहु दिवढ्ढा के अनुरोध से बनाया गया था, साहु दिवड्ढा परमेष्ठी आराधक, इन्द्रिय-विषय-विरक्त, सप्तव्यसनरहित, अष्टमूलगुणधारक तत्त्वार्थश्रद्धानी, अष्ट अग परिपालक, ग्यारह प्रतिमा आराधक, और बारहव्रतो का अनुष्ठापक था, उसके दान-मान की कवि यशकीर्ति ने खूब प्रशसा की[3] है। उसी के अनुरोधवश यह ग्रन्थ वि० स० १५०० मे भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन 'इदउरि' इन्द्रपुर या इन्द्रपुरी (दिल्ली) मे जलालखाँ के राज्य मे समाप्त हुआ है।

२३वी प्रशस्ति 'जिनरात्रिकथा' की है, जिसमे शिवरात्रि कथा की तरह भगवान महावीर ने जिस रात्रि मे अवशिष्ट अघाति कर्म का विनाश कर पावापुर से मुक्ति पद प्राप्त किया था उसी का वर्णन प्रस्तुत कथा मे किया गया है। उस दिन और रात्रि मे व्रत करना, तथा तदनुसार आचार का पालन करते हुए आत्म-साधना द्वारा आत्म-शोधन करना कवि की रचना का प्रमुख उद्देश्य है।

२४वी प्रशस्ति रविव्रत कथा की है, जिसमे रविवार के व्रत से लाभ और हानि का वर्णन करते हुए, रविव्रत के अनुष्ठापक और उसकी निन्दा करने वाले दोनो व्यक्तियो की अच्छी बुरी परिणतियो से निष्पन्न फल का निर्देश करते हुए व्रत की सार्थकता, और उसकी विधि आदि का सुन्दर विवेचन किया गया है।

---

१ झ झणण झणण झल्लरि वि सद्द, ट ट करत करि वीर थट।
कसाल ताल सद्दइ करति, मिहुणइ इव विहडिवि पुणु मिलति।
डम डम डम डमरू सद्दियाइ, बहु ढोल निसाणइ वज्जियाइ।

२ जेण करावउ जिण-चेयालउ, पुण्णहेउ चिर-रय-पक्खालिउ।
धय-तोरण-कलसेहिं अलकिउ, जसु गुरुत्ति हरिजणु वि सकिउ।

३ दाणेण जासु कित्ती पर उवयारसु सपया जस्स।
णिय पुत्त कलत्त सहिउ णदउ दिवढाल्य इह भुवणे॥ —हरिवश पुराण प्रथम सधि

कवि परिचय

भट्टारक यश. कीर्ति काष्ठासङ्घ माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक गुणकीर्ति (तपश्चरण से जिनका शरीर क्षीण हो गया था) के लघु भ्राता और पट्टधर थे[1]। यह उस समय के सुयोग्य विद्वान् और कवि थे, तथा सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषा के अच्छे विद्वान् थे। इन्होने स० १४८६ मे बिबुध श्रीधर के सस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रश भाषा का 'सुकमालचरित' ये दोनो ग्रन्थ लिखवाये थे[2]। इन्होने अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी कराई थी। ग्वालिर के भ० मदिर में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां विराजमान है। यह ग्वालियर के शासक तोमर वशीय राजा डूगरसिंह के समय मे हुए है जिसने स० १४८१ से स० १५१० तक राज्य किया है। यह जैनधर्म का श्रद्धालु था। इसने उस समय सैकड़ो मूर्तिया ग्वालियर के किले में उत्कीर्ण कराई थी, जिनकी खुदाई का कार्य ३३ वर्ष पर्यन्त चला था। इनके महाकवि रइधू जैसे शिष्य थे। रइधू ने अपने 'सम्मइ जिनचरिउ' नामक ग्रन्थ-प्रशस्ति मे यश.कीर्ति का निम्न शब्दो मे गुण-गान किया है—

> "ताहि कमागयतव तवियंगो, णिच्चुब्भासिय-पवयण-सगो।
> भव्व-कमल-सबोह-पयगो, वदिवि सिरि जसकित्ति असगो।
> तस्स पसाएँ कव्वु पयासमि, चिरभवि विहिउ असुर णिण्णासमि॥"

भट्टारक यश कीर्ति को महाकवि स्वयभू देव का 'हरिवश पुराण' (रिट्ठणेमिचरिउ) जीर्ण-शीर्ण दशा मे प्राप्त हुआ था और जो खडित भी हो गया था, जिसका उन्होने ग्वालियर के कुमार नगर के जैन मदिर मे व्याख्यान करने लिए उद्धार किया था[3] और इसमे अपना नाम भी अङ्कित कर दिया था यह कवि रइधू के तो गुरु थे ही, इनकी और इनके शिष्यो की प्रेरणा से कवि रइधू ने अनेक ग्रथो की रचना की है। इनका समय विक्रम की १५वी शताब्दी है।

---

१. तहो सीसु सिद्धु गुण कित्तिणासु, तव तावें जासु सरीस खामु।
तहो बधवु जस मुणि सीसु जाउ, आयरिउ पणासिय दोसु-राउ। —हरिवशपुराण प्रश०

२ "स० १४८६ वर्षे अश्वणिवदि १३ सोमदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूगरेन्द्रसिंह देव विजयराज्य प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्रीभावसेनदेवास्तत्पट्टे श्रीसहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री गुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्येण श्रीयश कीर्तिदेवेन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थं इद सुकमालचरित लिखापित कायस्थ याजन पुत्र थलू लेखनीय।"
"स० १४८६ वर्षे आषाढ वदि ७ गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूगरसी (सिं) ह राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री सहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे आचार्य गुणकीर्ति देवास्तिच्छिष्य श्रीयश कीर्तिदेवास्तेन निज ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थं इदभविष्यदत्त पचमीकथालिखापितम्।"

३ त जसकित्ति-मुणिहि उद्धरयिउ, णिए वि सत्तु हरिवसच्छरिउ।
णिय-गुरु-सिरि-गुण-कित्ति-पसाएँ, किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएँ।
सरह सणेद (?) सेठि आएसें, कुमरि-णयरि आविउ सविसेसें।
गोवग्गिरिहे समीवे विसालए, पणियारहे जिणवर-चेयालए।
सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ, दिढुमिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ।
—हरिवश पुराण प्रशस्ति नरायणा प्रति

२५वी प्रशस्ति 'पासणाहचरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ एक खण्ड काव्य है। ग्रन्थ मे १२ सन्धियाँ हैं जिनकी श्लोक सख्या ढाई हजार से ऊपर है। ग्रन्थ मे जैनियो के तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अकित किया गया है। कथानक वही है जो अन्य प्राकृत-सस्कृत के ग्रथो मे उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कवि ने दिल्ली नगर का अच्छा परिचय दिया है। उस समय दिल्ली जोयणिपुर, योगिनीपुर के नाम से विख्यात थी, जन-धन से सम्पन्न, उत्तुग साल (कोट) गोपुर, विशालपरिखा, रणमडपो, सुन्दर मन्दिरो, समद गज-घटाओ, गतिशील तुरगो, ध्वजाओ से अलकृत थी, तथा स्त्रियो की नूपुर ध्वनि को सुन्दर नाचते हुए मयूरो और विशालहट्ट मार्गों से विभूषित थी। और वह हरियाना देश मे थी।

कवि ने ग्रथ की समाप्ति-सूचक सन्धि-पुष्पिका गद्य मे न देकर स्वयभू और नयनन्दी कवि के समान पद्य मे दी है[1]।

श्रीधर ने इस ग्रन्थ की रचना दिल्ली मे उस समय की, जब वहा तोमरवशी क्षत्रिय अनगपाल तृतीय का राज्य शासन चल रहा था। यह अनगपाल अपने दो पूर्वजो से भिन्न था। बडा प्रतापी एव वीर था। इसने हम्मीर वीर की सहायता की थी। ये हम्मीर वीर अन्य कोई नही, ग्वालियर के परिहार वश की द्वितीय शाखा के हम्मीरदेव जान पडते हैं, जिन्होने स० १२१२ से १२२४ तक ग्वालियर मे राज्य किया है। पर अनगपाल से इनका क्या सम्बन्ध था, यह कुछ ज्ञात नही हो सका। उस समय दिल्ली वैभव सम्पन्न थी, उसमे विविध जाति और धर्म वाले लोग बसते थे।

ग्रंथ रचना में प्रेरक

साहु नट्टल के पिता का नाम 'आल्हण' था। इनका वश अग्रवाल था, और वह सदा धर्म-कर्म मे सावधान रहते थे। इनकी माता का नाम 'मेमडिय' था, जो शीलरूपी सत् आभूषणो से अलकृत थी, और बाधवजनो को सुख प्रदान करती थी। साहू नट्टल के दो ज्येष्ठ भाई और भी थे, राघव और सोढल। इनमे राघव बडा ही सुन्दर एव रूपवान् था। उसे देखकर कामिनियो का चित्त द्रवित हो जाता था। और सोढल विद्वानो को आनन्ददायक, गुरु भक्त तथा अरहतदेव की स्तुति करने वाला था, जिसका शरीर विनय रूपी आभूपणो से अलकृत था, तथा बडा बुद्धिमान और धीर-वीर था। नट्टलसाहु इन सबमे लघु पुण्यात्मा सुन्दर और जनवल्लभ था। कुलरूपी कमलो का आकार और पापरूपी पाशु (रज) का नाशक, तीर्थंकर का प्रतिष्ठापक, बन्दीजनो को दान देने वाला, परदोषो के प्रकाशन से विरक्त, रत्नत्रय से विभूषित, और चतुर्विध सघ को दान देने मे सदा तत्पर रहता था। उस समय दिल्ली के जैनियो मे वह प्रमुख था, व्यसनादि-रहित हो श्रावक के व्रतो का अनुष्ठान करता था। साहु नट्टल केवल धर्मात्मा ही नही थे, किन्तु उच्च-कोटि के कुशल व्यापारी भी थे। उस समय उनका व्यापार अग-बग, कलिङ्ग, कर्नाटक, नेपाल, भोट, पाचाल, चेदि, गौड, ठक्क, (पजाब), केरल, मरहट्ट, भादानक, मगध, गुर्जर, सोरठ और हरियाना आदि देशो और नगरो मे चल रहा था। यह व्यापारी ही नही थे, किन्तु राजनीति के चतुर पडित भी थे। कुटुम्बीजन तो नगर सेठ थे, और आप स्वय तोमरवशी अनगपाल (तृतीय) के आमात्य थे। आपने

१ इस सिरि पासचरित्त, रइयं बुहसिरिहरेण गुण भरिय।
अणुमण्णिय मणोज्ज, णट्टल नामेण भव्वेण ॥१॥
विजयत विमाणाओ वामादेवीइ णदणो जाओ।
कणयप्पहु चविऊण पढमो सधी परिसमत्तो ॥२॥

कवि श्रीधर से, जो हरियाना देश से यमुना नदी को पार कर उस समय दिल्ली में आये थे, ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा की थी, तब कवि ने इस सरस खण्ड-काव्य की रचना वि० स० ११८९ अगहन वदी अष्टमी रविवार के दिन समाप्त की थी।

नट्टलसाहु ने उस समय दिल्ली मे आदिनाथ का[1] एक प्रसिद्ध जिन मन्दिर भी बनवाया था, जो अत्यन्त सुन्दर था। जैसा कि ग्रथ के निम्न वाक्यों से प्रकट है :—

"कारावेवि णाहेयहो णिकेउ, पविइण्णु पचवण्णं सुकेउ।
पइ पुणु पइट्ठ पविरइयजेम, पासहो चरित्तु जइ पुणवि तेम॥"

आदिनाथ के इस मन्दिर की उन्होने प्रतिष्ठा विधि भी की थी, उस प्रतिष्ठोत्सव का उल्लेख उक्त ग्रथ की पाचवी सन्धि के बाद दिये हुए निम्न पद्य से प्रकट है .—

येनाराध्य विशुध्य धीरमतिना देवाधिदेव जिन,
सत्पुण्य समुपार्जित निजगुणै सतोषिता बाधवा।
जैन चैत्यमकारि सुन्दर तरं जैनी प्रतिष्ठां तथा,
स श्रीमान्विदित. सदैव जयतात्पृथ्वीतले नट्टल॥

इस तरह कवि ने साहु नट्टल की मगल कामना की है।

कवि परिचय

प्रस्तुत कवि श्रीधर हरियाना देश के निवासी थे, और अग्रवाल कुल मे उत्पन्न हुए थे। आपके पिता का नाम 'गोल्ह' था और माता का नाम 'बील्हादेवी' था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा और जीवनादि घटना का कोई उल्लेख नही किया। ग्रथ की आद्य प्रशस्ति मे अपनी एक अन्य रचना 'चदप्पहचरिउ' (चन्द्रप्रभचरित) का उल्लेख किया है, परन्तु वह अभी तक अनुपलब्ध है। कवि की अन्य क्या-क्या कृतियाँ है, यह कुछ ज्ञात नही हो सका। परंतु कवि की तीसरी रचना 'वर्धमानचरित' है। जो संवत् ११९० मे रचा गया था, जिसकी अपूर्ण प्रशस्ति परिशिष्ट नं० ३ में दी गई है। देखिये परिचय परिशिष्ट नं० ३। कवि का समय विक्रम की १२वी शताब्दी का उत्तरार्ध है। कवि की उक्त कृति अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश मे लाने का प्रयत्न होना चाहिये।

२६वी और १०४वी प्रशस्ति 'सेणियचरिउ' या 'वड्ढमाणकव्व' और 'मल्लिणाह कव्व' नामक ग्रन्थो की है, जिनके कर्ता कविहल्ल या हरिइद अथवा हरिचन्द है।

प्रथम ग्रन्थ मे ११ सधियां है, जिनमें जैनियो के अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान भगवान का जीवन-परिचय अङ्कित किया गया है। साथ ही, उनके समय मे होने वाले मगध के शिशुनाग वशी सम्राट् बिम्बसार या श्रेणिक की जीवन गाथा भी दी हुई है। यह राजा बडा प्रतापी था और राजनीति मे कुशल था। इसके सेनापति श्रेष्ठि पुत्र जबूकुमार ने केरल के राजा मृगाक पर विजय कर उसकी पुत्री विलासवती से श्रेणिक का विवाह सम्बन्ध कराया था। इसकी पट्टमहिषी चेलना वैशाली गणतत्र के अध्यक्ष राजा चेटक की सुपुत्री थी। जो जिनधर्म पालिका और पतिव्रता थी। उक्त राजा श्रेणिक पहले बुद्ध धर्म का अनुयायी था किन्तु वह चेलना के सहयोग से दिगम्बर जैनधर्म का भक्त और महावीर का प्रमुख श्रोता हो गया था। ग्रन्थ की भाषा

१. पहले मेरे लेख मे इसे पार्श्वनाथ का मन्दिर लिखा गया था, पर वह पार्श्वनाथ का मन्दिर नही था किन्तु आदिनाथ का मन्दिर था, जिसे ऋषदेव का मन्दिर भी कहते थे। उस समय वहा जैनियों के और मन्दिर भी बने हुए थे।

विक्रम की १५वी शताब्दी की ज्ञात होती है। और उसका रचना स्थल राजस्थान है। यह ग्रन्थ देवराय के पुत्र सघाधिप होलिवम्म के अनुरोध से रचा गया है। ग्रन्थ मे रचनाकाल नही दिया।

१०४ वी प्रशस्ति 'मल्लिणाह काव्य'की है। इसमे जैनियो के १९वे तीर्थंकर मल्लिनाथका जीवन-चरित दिया हुआ है। आमेर शास्त्र भण्डार की यह प्रति अपूर्ण है। आदि के तीन पत्र उपलब्ध नही है। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने पुहमि (पृथ्वी नामक) राजा के राज्य मे स्थित साहू आल्हा के अनुरोध से की है। आल्हा साहू के ४ पुत्र थे, जिनके नाम बाह्यसाहू, तुम्वर रतणऊ और गल्हग थे। इन्होने ही उस मल्लिनाथ चरित को लिखवाकर प्रसिद्ध किया था।

गुरु परम्परा और समय

कवि ने इस ग्रथ मे भी रचनाकाल नही दिया, परतु कवि ने अपनी जो गुरु परम्परा दी है उससे ग्रन्थ के रचनाकाल पर अच्छा प्रकाश पडता है। ग्रथकर्ता के गुरु पद्मनन्दि भट्टारक थे, जो मूलसघ बलात्कार गण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान् और भट्टारक प्रभाचन्द्र के पट्टधर थे। यह उस समय के अत्यत प्रभावक और प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। आपकी अनेक कृतिया उपलब्ध है। पद्मनन्दि श्रावकाचार, भावना पद्धति, वर्धमान चरित और अनेक स्तवन। आपके अनेक शिष्य थे, उनमे कितने ही शिष्यो ने ग्रन्थ रचना की है। इनका समय विक्रम की १४वी शताब्दी का उत्तरार्ध और १५वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

पार्श्वनाथ चरित के कर्ता कवि अग्रवाल (स० १४७९) ने अपने ग्रथ की अन्तिम प्रशस्ति में स० १४७१ की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—करहल[1] के चौहानवशी राजा भोजराज (भोयराय) थे। उनकी पत्नी का नाम णाइक्कदेवी था। उससे ससारचद या पृथ्वीराज नाम का एक पुत्र था। उसके राज्य मे स० १४७१ की माघ कृष्णा चतुर्दशी शनिवार के दिन रत्नमयी जिनबिम्ब की स्थापना की गई थी। उस समय यदुवशी अमरसिंह भोजराज के मत्री थे। उनके पिता का नाम ब्रह्मदेव और माता का नाम पद्मलक्षणा था, जो इनकी तृतीय पत्नी थी। इनके चार भाई और भी थे जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिह और लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिह की पत्नी का नाम कमलश्री था, जो पातिवृत्य और शीलादि सद्गुणो से विभूषित थी। उससे तीन पुत्र हुए थे। णदन, सोणिग(सोना साहु) और लोणिव (लोणासाहु)। इनमे लोणिव या लोणासाहू जिन यात्रादि प्रशस्त कार्यो मे द्रव्य का विनिमय करते थे, अनेक विधान और उद्यापनादि कार्य कराते थे। उन्होने कवि 'हल्ल' की प्रशसा की थी, जिन्होने 'मल्लि-नाथ' का चरित्र बनाया था। उस समय भ० पद्मनदि के शिष्य भ० प्रभाचन्द्र पट्टधर थे[2]।

ऊपर के इस कथन पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि हल्ल (जयमित्रहल) ने अपना मल्लिनाथ काव्य स० १४७१ से कुछ समय पूर्व बनाया है। सभवत वह स० १४६० के आस-पास की रचना है। इससे कवि १५वी शताब्दी के मध्य के विद्वान् जान पडते है।

२७वी प्रशस्ति 'भविसयत्त कहा' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर है। प्रस्तुत ग्रथ मे छह सधियाँ और १४३ कडवक दिये हुए हैं, जिनमे ज्येष्ठ शुक्ला पचमी (श्रुत पचमी) व्रत का फल और महात्म्य वर्णन करते हुए व्रत सपालक भविष्यदत्त के जीवन-परिचय को अङ्कित किया है और वह पूर्व परपरा के अनुसार

१ करहल इटावा से १३ मील की दूरी पर बसा हुआ है। यहा पर चौहान वशी राजाओ का राज्य रहा है, जो चन्द्रवाड के चौहानो के वशज थे। यहा चार शिखरबन्द मन्दिर हैं, जैनी लोग रहते हैं। यहा शास्त्र भडार भी अच्छा है।

२. देखो, कवि असवाल के 'पासणहचरिउ' की प्रशस्ति।

ही दिया गया है। यह ग्रन्थ कवि ने चन्द्रवाड नगर के निवासी माथुरवंशी साहु नारायण की धर्मपत्नी रुप्पिणी (रूपणी) देवी के अनुरोध से बनाया था, अतएव कवि ने उसे उसी के नामांकित किया है और ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि के प्रारंभ मे कवि ने सस्कृत पद्यों मे रूप्पिणी की मगल कामना की है। जो इन्द्र-वज्रा और शार्दूल विक्रीडित आदि छदो मे निबद्ध हैं जैसा कि उसके निम्न पद्य से स्पष्ट है—

'या देव-धर्म्म-गुरुपाद पयोज-भक्ता, सर्वज्ञदेवं सुखदायि-मतानु-रक्ता ।
ससारकारि कुकथा कथने विरक्ता, सा रूप्पिणी बुधजनै र्न कथं प्रशस्या ।। सधि २-१

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना वि० सवत् १२३० (सन् ११७३ ई०) में फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की दशवी रविवार के दिन समाप्त की है। ग्रन्थ कर्ता कवि श्रीधर ने अपना कोई परिचय देने की कृपा नही की। श्रीधर नाम के अनेक कवि हो गये है[1], उनमे प्रस्तुत श्रीधर कौन है यह विचारणीय है। यदि वे अपने कुलादि का परिचय प्रस्तुत कर देते तो इस समस्या का सहज ही समाधान हो जाता। पर कवि ने ऐसा कुछ भी नही किया। अतएव कवि का निवास स्थान, जोवन-परिचय और गुरु परम्परा अभी अज्ञात ही है। कवि ने चूंकि अपना यह ग्रन्थ वि० स० १२३० मे बनाकर समाप्त किया है, अत: वे विक्रम की १३वी शताब्दी के विद्वान् थे।

९८वी, ९९वी और १००वी ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ क्रमशः 'सभवणाह-चरिउ' वराग-चरिउ, और पासणाह-चरिउ की है। जिनके कर्ता कवि तेजपाल है। सभवणाह चरिउ मे छह सन्धियाँ और १७० कडवक है। जिनमे जैनियो के तीसरे तीर्थंकर सभवनाथ की जीवन-गाथा दी हुई है। रचना सक्षिप्त और बाह्याडम्बर से रहित है। यह भी एक खण्ड काव्य है।

ग्रन्थ-निर्माण में प्रेरक

उक्त ग्रथ की रचना भादानक देश के श्री प्रभ नगर मे दाऊदशाह के राज्यकाल मे हुई है। श्री प्रभ नगर के अग्रवाल वशीय मित्तल गोत्रीय साहु लखमदेव के चतुर्थ पुत्र थील्हा जिनकी माता का नाम महादेवी था, प्रथम धर्मपत्नी का नाम कोल्हाही, और दूसरी पत्नी का नाम आसाही था, जिससे त्रिभुवन पाल और रणमल नामके पुत्र उत्पन्न हुए थे। साहु थील्हा के पांच भाई और भी थे, जिनके नाम खिउसी, होलू, दिवसी, मल्लिदास और कुन्थदास है। ये सभी भाई धर्मनिष्ठ, नीतिमान तथा जैनधर्म के उपासक थे।

लखमदेव के पितामह साहु होलू ने जिनबिम्ब प्रतिष्टा कराई थी, उन्ही के वशज थील्हा के अनुरोध से कवि तेजपाल ने उक्त सभवनाथ चरित्रकी रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना सभवत सवत् १५०० के आस-पास कभी हुई है।

९९वी प्रशस्ति 'वरगचरिउ' की है जिसमे कुलचार सन्धियाँ है। उनमें राजा वराग का जीवन-परिचय दिया गया है। राजा वरांग बाईसवे तीर्थंकर यदुवशी नेमिनाथ के शासन काल मे हुआ है। वरांग राजा का चरित बडा ही सुन्दर रहा है। रचना साधारण और सक्षिप्त है, और हिन्दी भाषा के विकास को लिए हुए है। कवि तेजपाल ने इस ग्रथ की रचना विक्रम स० १५०७ वैसाख शुक्ला सप्तमी के दिन समाप्त की थी। और उसे उन्होने विपुलकीर्ति मुनि के प्रसाद से पूर्ण किया था।

१००वी प्रशस्ति 'पासपुराण'की है। यह भी एक खण्ड काव्य है, जो पद्धडिया छन्दमें रचा गया है। जिसे कवि ने यदुवशी साहु शिवदास के पुत्र घूघलि साहु की अनुमति से रचा था। ये मुनि पद्मनदि के शिष्य

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ८, किरण १२।

शिवनदि भट्टारक की आम्नायके थे। जिनधर्मरत, श्रावकधर्म प्रतिपालक, दयावत और चतुर्विधि सघके सपोषक थे। मुनि पद्मनदि ने शिवनदी को दीक्षा दी थी। दीक्षा से पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था, जो ससार से विरक्त और निरतर बारह भावनाओ का चिन्तन करते थे। उन्होने दीक्षित होने के बाद कठोर तपश्चरण किया, मासोपवास किये, और निरन्तर धर्मध्यान मे लीन रहते थे। प्रशस्ति मे साहु सुरजन के परिवार का भी परिचय दिया हुआ है। कवि तेजपाल ने इस ग्रन्थ को वि० स० १५१५ मे कार्तिक कृष्णापचमी के दिन समाप्त किया था।

कवि-परिचय

कवि मूलसघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय का था। वासवपुर नामक गाव मे वरसावडह् वश मे जाल्हउ नाम के एक साहु थे। उनके पुत्र का नाम सूजउ साहू था, वे दयावत और जिनधर्म मे अनुरक्त रहते थे। उनके चार पुत्र थे, रणमल, बल्लाल, ईसरू और पोल्हणु ये चारो ही भाई खडेलवाल कुल के भूषण थे। प्रस्तुत रणमल साहु के पुत्र ताल्हुय साहु हुए। उनका पुत्र कवि तेजपाल था, जिसने उक्त तीनो खण्ड काव्य-ग्रन्थो की रचनाए की है। ये तीन ही ग्रथ अप्रकाशित हैं, उन्हे प्रकाश मे लाना चाहिए।

३०वी प्रशस्ति 'सुकमाल चरिउ' की है। जिसके कर्ता मुनि पूर्णभद्र है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे छह परिच्छेद या सन्धियाँ हैं जिनमें अवन्ती नगरी के सुकमाल श्रेष्ठी का जीवन-परिचय अकित है। जिससे मालूम होता है कि उनका शरीर कितना सुकोमल था, परन्तु वे परिषहो और निस्पृह थे। उनकी उपसर्ग जन्य पीडा का ध्यान आते ही हमारे रोगटे खडे हो जाते है। परन्तु परीषह जयी उस साधु की सहिष्णुता पर आश्चर्य हुए बिना नही रहता, जब गीदडी और उसके बच्चो द्वारा शरीर के खाये जाने पर भी उन्होने पीडा का अनुभव नही किया, प्रत्युत सम परिणामो द्वारा नश्वर काया का परित्याग किया। ऐसे परीषह जयी योगी के चरणो मे मस्तक अनायास झुक ही जाता है। कवि ने इस ग्रथ की रचना कब की यह ग्रथ-प्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नही होता।

कवि-परिचय

कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार बतलाई है। वे गुजरात देश के नागर मण्डल नामक नगर के निवासी थे। वहाँ वीरसूरि नाम के एक महामुनि थे। उनके शिष्य मुनिभद्र, मुनिभद्र के शिष्य कुसुमभद्र कुसुमभद्र के शिष्य गुणभद्र, और गुणभद्र के शिष्य पूर्णभद्र। परन्तु प्रशस्ति मे कर्ता ने अपने सघ गण गच्छादिक का कही कोई उल्लेख ही नही किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा और समय पर प्रकाश डाला जाता। आमेर शास्त्र भडार की प्रति मे लिपि प्रशस्ति नही है। किन्तु दिल्ली के पचायती मदिर की यह प्रति स० १६३२ की लिखी हुई है। जिसकी पत्र सख्या ४३ है। इससे ग्रथ रचना बहुत पहले हुई है। कितने पूर्व हुई यह अभी विचारणीय है।

नेमिणाह चरिउ के कर्ता कवि दामोदर ने अपने गुरु का नाम पूर्णभद्र लिखा है, वह ग्रन्थ स० १२८७ मे रचा गया है। यदि ये पूर्णभद्र गुणभद्र के ही शिष्य हो, तो ऐसी स्थिति मे प्रस्तुत ग्रथ का रचना काल विक्रम की १३वी शताब्दी का मध्यभाग हो सकता है। और यदि वे पूर्णभद्र, गुणभद्र के शिष्य नही हैं तब, उनका समय अन्वेषणीय है।

३१वी प्रशस्ति 'णेमिणाह चरिउ' की है, जिसका परिचय ग्यारहवी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

३२ वीं प्रशस्ति 'णेमिणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण है। ग्रन्थ मे ४ संधियां या परिच्छेद और ८३ कडवक है जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या १३५० के लगभग है। ग्रन्थ मे चरित और धार्मिक उपदेश की प्रधानता होते हुए वह अनेक सुन्दर स्थलों से अलकृत है। ग्रन्थ की प्रथम सन्धि मे जिन और सरस्वती के स्तवन के साथ मानव जन्म की दुर्लभता का निर्देश करते हुए सज्जन-दुर्जन का स्मरण किया है और फिर कवि ने अपनी अल्पज्ञता को प्रदर्शित किया है। मगध देश और राजगृह नगर के कथन के पश्चात् राजा श्रेणिक अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए गणधर से नेमिनाथ का चरित वर्णन करने के लिए कहता है। वराडक देश मे स्थित वारावती या द्वारावती नगरी में जनार्दन नाम का राजा राज्य करता था, वही शौरीपुर नरेश समुदविजय अपनी शिवदेवी के साथ रहते थे। जरासन्ध के भय से यादव गण शौरीपूर छोडकर द्वारिका मे रहने लगे। वही उनके तीर्थकर नेमिनाथ का जन्म हुआ था। यह कृष्ण के चचेरे भाई थे। बालक का जन्मादि सस्कार इन्द्रादि देवो ने किया था। दूसरी सधि मे नेमिनाथ की युवावस्था, वसत वर्णन और जलक्रीडा आदि के प्रसगो का कथन दिया हुआ है। कृष्ण को नेमिनाथ के पराक्रम से ईर्षा होने लगती है और वह उन्हे विरक्त करना चाहते है। भूनागढ़ के राजा की पुत्री राजमती से नेमिनाथ का विवाह निश्चित होता है। बारात सज-धज कर भूनागढ़ के सन्निकट पहुचती है, नेमिनाथ बहुत से राजपुत्रो के साथ रथ मे बैठे हुए आस-पास की प्राकृतिक सुषमा का निरीक्षण करते हुए जा रहे थे। उस समय उनकी दृष्टि एक ओर गई तो उन्होंने देखा बहुत से पशु एक बाड़े मे बन्द हैं वे वहा से निकलना चाहते है किन्तु वहा से निकलने का कोई मार्ग नही है। नेमिनाथ ने सारथी से रथ रोकने को कहा और पूछा कि ये पशु यहा क्यो रोके गए है। नेमिनाथ को सारथि से यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि बरात मे आने वाले राजाओ के आतिथ्य के लिए इन पशुओ का वध किया जायगा, इससे उनके दयालु हृदय को बडी ठेस लगी, वे बोले—यदि मेरे विवाह के निमित्त इतने पशुओ का जीवन सकट मे है, तो धिक्कार है मेरे उस विवाह को, अब मैं विवाह नही करूगा। पशुओ को छुडवाकर तुरन्त ही रथ से उतर कर मुकट और ककण को फेक वन की ओर चल दिए। इस समाचार से बरात मे कोहराम मच गया। उधर भूनागढ के अन्त:पुर में जब राजकुमारी को यह ज्ञात हुआ, तो वह मूर्छा खाकर गिर पडी। बहुत से लोगो ने नेमिनाथ को लौटाने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। वे पास मे स्थित ऊर्जयन्त गिरि पर चढ गए और सहसाम्रवन मे वस्त्रालकार आदि परिधान का परित्याग कर दिगम्बर मुद्राधर आत्मध्यान मे लीन हो गए। तीसरी सधिमे वियोग का वर्णन है। राजमती ने भी तपश्चरण द्वारा आत्म-साधना की। अन्तिम सधि मे नेमिनाथ का पूर्ण ज्ञानी हो धर्मोपदेश और निर्वाण प्राप्ति का कथन दिया हुआ है। इस तरह ग्रथ का चरित विभाग बडा ही सुन्दर तथा सक्षिप्त है और कवि ने उक्त घटना को सजीव रूप मे चित्रित करने का उपक्रम किया है।

कवि ने ससार की विवशता का सुन्दर अकन करते हुए कहा है—जिस मनुष्य के घर मे अन्न भरा हुआ है उसे भोजन के प्रति अरुचि है। जिसमें भोजन करने की शक्ति है, उसके पास शस्य (धान्य) नही। जिसमें दान का उत्साह है उसके पास धन नही, जिसके पास धन है, उसे अति लोभ है। जिसमें काम का प्रभुत्व है उसके भार्या नही, जिसके पास स्त्री है उसका काम शान्त है। जैसा कि ग्रन्थ की निम्न पक्तियो से प्रकट है—

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाण छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु उइ लोहु अत्थि।
जसु मयणु राउ तसि णत्थि भाम, जसु भाम तासु उच्छवण काम। —णेमिमिणाह चरिउ ३-२

ग्रथकर्ता ने स्थान-स्थान पर अनेक सुन्दर सुभाषितो और सूक्तियो को उद्धृत किया है वे निम्न प्रकार हैं—

किं जीयइ धम्म विवज्जिएण—'धर्म रहित जीने से क्या प्रयोजन है।
किं सुडइ सगरि कायरेण—युद्ध मे कायर सुभटो से क्या ?
किं वयण असच्चा भासणेण, झूठ बचन बोलने से क्या प्रयोजन है ?
किं पुत्तइ गोत्त विणासणेण, कुल का नाश करने वाले पुत्र से क्या ?
किं फुल्लइ गध विवज्जिएण, गन्ध रहित फूल से क्या ?

ग्रन्थ मे कडवको के प्रारम्भ मे हेला, दुवई, वस्तु वध आदि छदो का प्रयोग किया है। किन्तु ग्रथ मे छन्दो की बहुलता नही हैं।

कवि ने इस ग्रथ को १० महीने मे समाप्त किया है। ग्रथ की सबसे पुरानी प्रति स० १५१० की लिखी हुई प्राप्त हुई है। इससे इसका रचना काल स० १५१० के बाद का नही हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है यह अन्वेषणीय है। सम्भवत यह कृति १२ वी या १३ वी शताब्दी की होनी चाहिए।

कवि परिचय

लक्ष्मणदेव का वश पुरवाड़ था और पिता का नाम था रयणदेव या रत्नदेब। इनकी जन्मभूमि मालव देशान्तर्गत गोनन्द नामक नगर मे थी। यह नगर उस समय जैनधर्म और विद्या का केन्द्र था वहा अनेक उत्तुग जिन मन्दिर तथा मेरु जिनालय भी था। कवि अत्यन्त धार्मिक, धन सम्पन्न और रूपवान था वहा पहले कवि ने किसी व्याकरण ग्रथ की रचना की थी, जो विद्वानो के कण्ठ का आभरण रूप था। परन्तु कौन सा व्याकरण ग्रन्थ था, और उसका क्या नाम था, यह प्रयत्न करने पर भी ज्ञात नही हो सका। हो सकता है कि वह अपभ्रश का व्याकरण हो या सस्कृतका हो। गोनन्द नगरके अस्तित्वका भी मुझे पता नही चला। पर इतना जरूर मालूम होता है कि यह नगरी मालव देश मे थी, और उज्जैन तथा भेलसा के मध्यवर्ती किसी स्थान पर होनी चाहिए। सभव है वर्तमान मे उसके नाम पर कोई अन्य नगर बस गया हो। कवि वहा रहकर जिन-वाणी के रस का पान किया करते थे। इनके भाई का नाम 'अम्बदेव' था, जो कवि थे, उन्होने भी किसी ग्रन्थ की रचना की थी, पर वह भी अनुपलब्ध है। मालव प्रात के किसी शास्त्र-भडार मे इसकी तलाश होनी चाहिए।

३३ वी ३४ वी प्रशस्तिया क्रमश अमरसेनचरित और नागकुमार चरित की हैं, जिनके कर्ता कवि माणिक्यराज है।

प्रथम ग्रन्थ अमरसेनचरित मे ७ परिच्छेद या सन्धिया हैं जिनमे अमरसेन की जीवन गाथा दी हुई है राजा अमरसेन ने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया था। वह धर्मनिष्ठ और सयमी था, वह देह भोगो से उदास हो आत्म-साधना के लिए उद्यत हुआ, उसने वस्त्राभूषण का परित्याग कर दिगम्बर दीक्षा ले ली, और शरीर से भी निष्पृह हो अत्यन्त भीषण तपश्चरण किया। आत्म-शोधन की दृष्टि से अनेक यातनाओ को साम्यभाव से सहा। उनकी कठोर साधना का स्मरण आते ही रोगटे खडे हो जाते हैं। यह १६वी शताब्दी का अच्छा खण्ड-काव्य है। आमेर शास्त्र भडार की इस प्रति का प्रथम पत्र त्रुटित है। इसकी अपभ्रश भाषा होते हुए भी हिन्दी भाषा के विकास के अत्यधिक नजदीक है।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना रोहतक नगर[1] में की है, जहाँ के पार्श्वनाथ मंदिर में दो विद्वान निवास करते थे। उनका नाम गरवउ और जसमलु था, जो गुणों के निधान थे। उनका लघुबान्धव शातिदास था, जो ग्रन्थ के अर्थ का जानकार था। इस चरित ग्रन्थ का निर्माण कराने वाले चौधरी देवराज थे। जिनका कुल अग्रवाल और गोत्र था सिंघल या सिंगल। और वे चौधरी पद से अलंकृत थे। उनके पिता का नाम साह महणा था। यह ग्रन्थ देवराज चौधरी की प्रेरणा से बनाया गया है, अतएव उन्ही के नामाकित किया गया है। प्रशस्ति मे देवराज के कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

कवि ने इस ग्रथ की रचना विक्रम सवत् १५७६ की चैत्र शुक्ला पंचमी शनिवार के दिन कृतिका नक्षत्र के शुभयोग मे की है। और आमेर भडार की यह प्रति स० १५७७ कार्तिक वदी चतुर्थी की लिपि की हुई है, जो सुनपत मे लिखी गई थी।

३४ वी ग्रन्थ प्रशस्ति—नागकुमारचरित की है, जिसमे दो सन्धिया है, जिनकी श्लोक संख्या ३३०० के लगभग है जिनमे नागकुमार का पावन चरित अकित किया गया है। चरित वही है जिसे पुष्पदन्तादि कवियो ने लिखा है, उसमे कोई खास वैशिष्ठ्य नही पाया जाता। ग्रन्थ की भाषा सरल और हिन्दी के विकास को लिये हुए है। इस खण्ड काव्य के भी प्रारभ के दो पत्र नही है, जिससे प्रति खडित हो गई है और उससे आद्य प्रशस्ति का कुछ ऐतिहासिक भाग भी त्रुटित हो गया है। कवि ने यह ग्रथ साहू जयसी के पुत्र साहू टोडरमल की प्रेरणा से बनाया है। साहू टोडरमल का वश इक्ष्वाकु था और कुल जायसवाल[2]। वह दान-पूजा आदि धार्मिक कार्यो मे सलग्न रहता था[3] और प्रकृतितः दयालु था। अतएव वह

---

१. रोहतक पजाब का एक नगर है। वर्तमान मे भी उसका वही नाम है। वहा आज भी जैनियो की अच्छी सख्या है।

२. जायस या यादव वश का इतिवृत्त अति प्राचीन है। परन्तु उसके सम्बन्ध मे कोई अन्वेषण नही हुआ। इस जाति का निकास जैसा से कहा जाता है। भले ही लोग जैसा से जैसवालो की कल्पना करें, किन्तु ग्रंथ प्रशस्तियो मे इन्हे यादव वशी लिखा मिलता है। जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये लोग यदुवंशियो की सन्तान थे। उसी यदु या यादव शब्द का अपभ्रश रूप जादव या जायस बन गया जान पडता है। यदु वश एक क्षत्रिय वश है, यदु वशियो का विशाल राज्य रहा है। शौरीपुर से लेकर मथुरा और उसके आस-पास के प्रदेश उनके द्वारा शासित रहे हैं। यादव वंशी जरासध के भय से शौरीपुर को छोड कर वारावती (द्वारावती या द्वारिका) मे बस गए थे। जैनियो के २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई श्रीकृष्ण का जन्म उसी यादव कुल मे हुआ था। जायस वश मे अनेक प्रतिष्ठित और राज्य मान्य व्यक्ति हो गये हैं, जो तोमर और चौहान वशी राजाओ के राजमत्री रहे है। ग्वालियर के तोमर वशी राजा वीरसिंह के प्रधान मत्री जायस वशी सेठ कुशराज थे। जो राजनीति के साथ धर्मनिष्ठ और राज्य के सवर्द्धन सरक्षण की कला मे कुशल थे। इन्होने पद्मनाभ नामक कायस्थ विद्वान् से, जो जैनधर्म का श्रद्धालु था, 'यशोधरचरित्र' ग्रन्थ का निर्माण कराया था। चन्द्रवाड और रपरी के चौहानवशी राजाओ के राज्य मत्री भी जायसवाल श्रावक रहे हैं। वर्तमान मे यद्यपि उनका प्रभाव क्षीण हो गया है। फिर भी मदिर, मूर्तियो और जैनग्रन्थो के निर्माण मे उनका बहुत कुछ योग रहा है। दूबकुण्ड (ग्वालियर) के भग्न मन्दिर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि विक्रम सवत् ११४५ मे कच्छप वशी महाराज विक्रमसिह के राज्यकाल मे मुनि विजयकीर्ति के उपदेश से जैसवाल वशी पाहड, कूकेक, सूर्पट, देवधर और महीचन्द्र आदि चतुर श्रावको ने ७५० फीट लम्बे और ४०० वर्गफीट चौड़े अडाकार क्षेत्र मे इस विशाल

उन्ही के नामाकित किया गया है। ग्रथ की कुछ सधियो मे कतिपय सस्कृत पद्य भी पाये जाते हैं, जिनमे साहू टोडर का खुला यशोगान किया गया हैं। उसे कर्ण के समान दानी, विद्वज्जनो का सपोषक, रूपलावण्य से युक्त और विवेकी बतलाया है।

कवि ने इस ग्रथ की चौथी सधि के आदि मे साहू टोडरमल का जयघोष करते हुए लिखा है कि वह राज्य सभा मे मान्य था, अखण्य प्रतापी स्वजनो का विकासी और भ्रात-पुत्रो से अलकृत था, जैसा कि निम्न पद्य से प्रकट है—

''नृपति सदसिमान्यो योह्यखण्डप्रताप, स्वजनजनविकासी सप्ततत्त्वावभासी।
विमलगुण-निकेतो भ्रातृ पुत्रो समेत, स जयति शिवकाम साधुटोडरुत्ति नामा ।।''

कवि ने इस ग्रन्थ को पूरा कर जब साहू टोडरमल के हाथ मे दिया, तब उसने उसे अपने शीश पर रखकर कवि माणिक्यराज का खूब आदर सत्कार किया, उसने कवि को सुन्दर वस्त्रो के अतिरिक्त ककण, कुडल और मुद्रिका आदि आभूषणो से भी अलकृत किया था। उस समय गुणी जनो का आदर होता था। किन्तु आज गुणीजनो का निरादर करने वाले तो बहुत हैं किंतु गुण-ग्राहक बहुत ही कम हैं। क्योकि स्वार्थतत्परता और अहकार ने उसका स्थान ले लिया है। अपने स्वार्थ अथवा कार्य की पूर्ति न होने पर उनके प्रति अनादर की भावना जागृत हो जाती है। 'गुण न हिरानो किन्तु गुण-गाहक हिरानो की नीति के अनुसार खेद है कि आज टोडरमल जैसे गुण ग्राहक धर्मात्मा श्रावको की सख्या विरल है—वे थोडे हैं। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना विक्रम सवत् १५७९ फाल्गुन शुक्ला ९वी के दिन पूर्ण की है।

कवि-परिचय

कवि माणिक्य राज जैसवाल कुलरूपी कमलो को प्रफुल्लित करने के लिए 'तरणि' (सूर्य) थे। इनके पिता का नाम बुधसूरा था और माता का नाम 'दीवा' था। कवि ने अमरसेन चरित मे अपनी गुरु परम्परा निम्न प्रकार दी है—क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दी। ये सब भट्टारक मूल-सघ के अनुयायी थे। कवि के गुरु पद्मनदी थे। वे बडे तपस्वी शील की खानि, निर्ग्रन्थ, दयालु और अमृत-वाणी थे। इस ग्रथ की अन्तिम प्रशस्ति मे पद्मनन्दि के एक शिष्य का और उल्लेख किया गया है। जिनका नाम देवनन्दी था, और जो श्रावक की एकादश प्रतिमाओ के सपालक, राग-द्वेश के विनाशक, शुभध्यान मे अनुरक्त और उपशम भावी था। कवि ने अपने गुरु का अभिवदन किया है।

३५वी प्रशस्ति से लेकर ४९वी प्रशस्ति तक १५ प्रशस्तियाँ, और ९९वी और १०६वी प्रशस्तिया क्रमश निम्न ग्रन्थो की है, जिनके कर्ता कवि रइधू हैं। सम्मइजिनचरिउ, सुकोशलचरिउ पासणाहचरिउ,

मन्दिर का निर्माण कराया था। और उसके पूजन, सरक्षण एव जीर्णोद्धार आदि के लिए उक्त कच्छप वशी विक्रमसिंह ने भूमिदान दिया था। (See Epigraphica India Vol 11 p 237-240) किन्तु बाद मे मराठा सरदादर अमरसिंह ने धर्मान्ध होकर इस जैन सस्कृति के स्तम्भरूप मन्दिर को भग्न कर दिया था। वि० स० ११९० मे जैसवाल वशी साहू नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर अग्रवाल से 'वर्धमान चरित' नाम का ग्रन्थ वनवाया था। कवि लक्ष्मण जैसवाल ने जिनदत्त चरित्र की रचना स० १२७५ मे और अणुवइ रयण पईव की रचना स० १३१३ मे की थी। आज भी इस जाति मे सम्पन्न और विद्वान् व्यक्ति पाये जाते हैं। इही सब कार्यो से इस जाति की महत्ता का भान होता है।

२ ''जइसवाल कुल सम्पन्नः दान-पूय-परायण।
जगसी नन्दन श्रीमान् टोडरमल्ल चिर जिय ।।''

पउमचरिउ,मेहेसरचरिउ, सम्मत्तगुणनिहाण, रिट्ठणेमिचरिउ, धणकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, अणथमी कहा, अप्पसम्बोहकव्व, सिद्धतत्थसार, वित्तसार, पुण्णासवकहा, जीवधरचरिउ, सिरिपालचरिउ और र सम्यत्तकउमदी।

इनमें पहला ग्रन्थ 'सम्मइ जिनचरिउ' है। जिसमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन-परिचय दिया हुआ है। यद्यपि उसमें कवि असग के महावीर चरित से कोई वैशिष्ट्य नही दिखाई देता, किन्तु फिर भी अपभ्रश भाषा का यह चरित ग्रन्थ पद्धडिया आदि छन्दो मे रचा गया है। ग्रन्थ १० सधियो और २४६ कडवकों मे पूरा हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतश[1] गोयल गोत्रीय साहु सहजपाल के पुत्र और सघाधिप साहु सहदेव के लघु भ्राता साहु तोसउ की प्रेरणा से बनाया

१. 'अग्रवाल' यह शब्द एक क्षत्रिय जाति का सूचक है। जिसका विकास अग्रोहा या अग्रोदक जनपद से हुआ है। यह स्थान हिसार जिले मे है। अग्रोहा एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। यहा एक टीला ६० फुट ऊँचा था, जिसकी खुदाई सन् १९३९ या ४० मे हुई थी। उससे प्राचीन नगर के अवशेष, और प्राचीन सिक्को आदि का ढेर प्राप्त हुआ था। २६ फुट से नीचे प्राचीन आहत मुद्रा का नमूना, चार यूनानी सिक्के और ५१ चौखूटे ताबे के सिक्के भी मिले है। ताबे के सिक्को मे सामने की ओर वृषभ' और पीछे की ओर सिह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति है। सिक्को के पीछे ब्राह्मी अक्षरो मे—'अगोद के अगच जनपदस' शिलालेख भी अकित है, जिसका अर्थ 'अग्रोदक मे अगच जनपद का सिक्का' होता है। अग्रोहे का नाम अग्रोदक भी रहा है। उक्त सिक्को पर अकित वृषभ, सिह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति जैन मान्यता की ओर सकेत करती है। (देखो, एपिग्राफिका इडिका जि० २ पृ० २४४। इडियन एण्टीक्वेरी भाग १५ के पृ० ३४३ पर अग्रोतक वैश्यो का वर्णन दिया है।

कहा जाता है कि अग्रोहा मे अग्रसेन नाम के एक क्षत्रिय राजा थे। उन्ही की सन्तान परम्परा अग्रवाल कहलाते है। अग्रवाल शब्द के अनेक अर्थ हैं। किन्तु यहा उन अर्थों की विवक्षा नही है, यहाँ अग्रदेश के रहने वाले अर्थ ही विवृक्षित है। अग्रवालो के १८ गोत्र बतलाये जाते हैं। जिनमे गर्ग, गोयल, मित्तल जिन्दल, सिहल आदि नाम हैं। अग्रवालो मे दो धर्मों के मनाने वाले पाये जाते हैं। जैन अग्रवाल और वैष्णव अग्रवाल। श्री लोहाचार्य के उपदेश से उस समय जो जैनधर्म मे दीक्षित हो गए थे, वे जैन अग्रवाल कहलाये और शेष वैष्णव, परन्तु दोनो में रोटी-बेटी व्यवहार होता है, रीति-रिवाजो मे कुछ समानता होते हुये भी उनमे अपने-अपने धर्मपरक प्रवृत्ति पाई जाती है, हाँ सभी अहिंसा धर्म के मानने वाले हैं। उपजातियो का इतिवृत्त १०वी शताब्दी से पूर्व का नही मिलता, हो सकता है कि कुछ उप-जातिया पूर्ववर्ती रही हो। अग्रवालो की जैन परम्परा के उल्लेख १२वी शताब्दी तक के मेरे देखने मे आए हैं। यह जाति खूब सम्पन्न रही है। ये लोग धर्मज्ञ, आचारनिष्ठ, दयालु और जन-धन से सम्पन्न तथा राज्यमान्य रहे हैं। तोमर वशी राजा अनंगपाल तृतीय के राजश्रेष्ठी और आमात्य अग्रवाल कुलावतश साहू नट्टल ने दिल्ली मे आदिनाथ का एक विशाल सुन्दरतम मदिर बनवाया था, जिसका उल्लेख कवि श्रीधर अग्रवाल द्वारा रचे गये 'पार्श्वपुराण मे, जो सवत् ११८९ मे दिल्ली मे उक्त नट्टल साहू के द्वारा बनवाया गया था और जिसकी सं० १५७७ की लिखित प्रति आमेर भडार मे सुरक्षित है। और अनेक मन्दिरो का निर्माण, तथा ग्रन्थो का निर्माण, और उनकी प्रतिलिपि करवाकर साधुओ, भट्टारको आदि को प्रदान करने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इससे इस जाति की सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा और परोपकारवृत्ति का परिचय मिलता है। हाँ, इनमे शासक वृत्ति अधिक पाई जाती है।

गया था। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्ति मे साहू तोसउके वश का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। जिसमें उनके परिवार द्वारा सम्पन्न होने वाले धार्मिक-कार्यों का परिचय दिया गया है। प्रशस्ति मे तात्कालिक-ऐतिहासिक उल्लेख भी अकित किए गए है।

कवि ने साहु तोसउ का उल्लेख करते हुए, उन्हे जिनेन्द्र-चरणो का भक्त पचेन्द्रियो के भोगो से विरक्त, दान देने मे तत्पर, पाप से शकित—भयभीत और सदा तत्त्वचिंतन मे निरत बतलाया है। और लिखा है कि उसकी लक्ष्मी दुखी जनो के भरण-पोषण मे काम आती थी। वाणी श्रुत का अवधारण करती थी। मस्तक जिनेन्द्र को नमस्कार करने मे प्रवृत्त होता था। वह शुभमती था, तथा सम्भाषण मे उसके कोई दोष न होता था। चित्त तत्त्वो के विचार मे रहता था और दोनो हाथ जिन-पूजा-विधि से सतुष्ट रहते थे। ऐसा वह तोसउ साहु लोक मे आनद को प्राप्त हो, जैसा कि दूसरी और तीसरी सधि के प्रारम्भ के निम्न पद्यो से स्पष्ट है—

जो णिच्च जिण-पाय-कज भसलो जो णिच्च दाणे रदो।
जो पचेंदिय-भोय-भाव-विरदो जो चिंतए सहिदो।
जो ससार-महोहि-पातन-भिदो जो पावदो सकिदो।
एसो णदउ तोसडो गुणजुदो सतत्थ वेई चिर ॥२॥
लच्छी जस्स दुही जणाण भरणे वाणी सुय धारणे।
सीस सन्नई कारणे सुभमई दोस ण सभासणे।
चित्त तत्त्व-वियारणे करजुय पूया-विहि स दद।
सोऽय तोसउ साहु एत्थ धवलो स णदओ भूयले ॥३॥

प्रशस्ति मे हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतश खेल्हा नामक ब्रह्मचारी द्वारा निर्मित चन्द्रप्रभ भगवान की विशाल मूर्ति का उल्लेख किया गया है, जिसे उन्होने उक्त दुर्ग मे निर्माण कराया था। ब्रह्मचारी खेल्हा श्री सम्पन्न थे, वस्तुस्वरूप को समझते थे और देह-भोगो से विरक्त थे।

सम्मइ जिन चरिउ के निर्माण मे ब्रह्मचारी खेल्हा का खास सहयोग रहा है, यह साहू तोसउ के पुत्र थे। इन्होने कवि से उक्त ग्रन्थ रचने की स्वय प्रेरणा नही की, किन्तु भट्टारक यश.कीर्ति से अनुरोध करवाया था, सम्भवत उन्हे यह सन्देह था कि कवि मेरे निवेदन पर ग्रन्थ न बनावे, इसी से उन्होने कवि को यश कीर्ति से प्रेरित करवाया था। कवि भट्टारक यश कीर्ति के आदेश को कभी नही टाल सकते थे। अस्तु ब्रह्मचारी खेल्हा की भावना सफल हुई और कवि ने ग्रथ निर्माण करना स्वीकृत कर लिया। इससे ब्रह्मचारी खेल्हा को हर्ष होना स्वाभाविक है। खेल्हा ने उस समय अपनी त्यागवृत्ति का क्षेत्र बढा लिया था और ग्यारह प्रतिमा धारी उत्कृष्ट श्राबक के रूप मे आत्म-साधना करने लगे थे।

हिसार के अग्रवाल वशी साहु नरपति के पुत्र साहु वील्हा, जो जैनधर्मी और पाप रहित तथा दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलक द्वारा सम्मानित थे।

सघाधिप सहजपाल ने, जो सहदेव का पुत्र था, जिनेन्द्र मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। साहू सहज पाल के पुत्र ने गिरनार की यात्रा का सघ भी चलाया था, और उसका सब व्यय भार स्वय वहन किया था। ये सब ऐतिहासिक उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। और अग्रवालो के लिए गौरवपूर्ण है।

कवि ने ग्रन्थ मे काष्ठासघ की भट्टारक परम्परा का उल्लेख किया है देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन,

भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति (स० १४६८ से १४८६), यश कीर्ति १४८६—१५१०, मलयकीर्ति (१५१० से १५२५,) भ० गुणभद्र (१५२५ से १५४०)।

कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न साहित्यकारों का भी उल्लेख किया है, चउमुह, स्वयभू, पुष्पदन्त और वीर कवि। इनमें समय की दृष्टि वीर कवि सब से बाद के (स० १०७६ के) है।

साथ ही, इस ग्रन्थ में इससे पूर्व रची जाने वाली अपनी निम्न रचनाओ का उल्लेख किया है। पासणाहचरिउ, मेहेसरचरिउ, सिद्धचक्कमाहप्प, बलहद्दचरिउ, सुदसणचरिउ, धणकुमारचरिउ। परन्तु प्रशस्ति मे ग्रथ का रचना काल नही दिया है।

३६वी प्रशस्ति 'सुकौशल चरिउ' की है। जिसमें ४ सधिया और ७४ कडवक है। पहली दो सधियो मे कथन क्रमादि की व्यवस्था व्यक्त करते हुए तीसरी संधि मे चरित्र का चित्रण किया है, और चौथी सधि मे चरित्र का वर्णन करते हुए काव्यमय वर्णन उच्चकोटि का किया है। किन्तु शैली विषय वर्णनात्मक ही है। कवि ने इस खण्ड-काव्य मे सुकौशल की जीवन-गाथा को अङ्कित किया है। कथानक इस प्रकार है—

इक्ष्वाकुवश मे कीर्तिधर नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। उन्हे उल्कापात के देखने से वैराग्य हो गया था, अतएव वे साधु जीवन व्यतीत करना चाहते थे, परन्तु मन्त्रियो के अनुरोध से पुत्रोत्पत्ति के समय तक गृही जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। कई वर्षो तक उनके कोई सन्तान न हुई। उनकी रानी सहदेवी एक दिन जिन मन्दिर गई, वहा जिन दर्शनादि क्रिया सम्पन्न कर उसने एक मुनि से पूछा कि मेरे पुत्र कब होगा? तब साधु ने कहा कि तुम्हारे एक पुत्र अवश्य होगा, परन्तु उसे देखकर राजा दीक्षा ले लेगा और पुत्र भी दिगम्बर साधु को देखकर साधु बन जायगा। कुछ समय पश्चात् रानी के पुत्र हुआ। रानी ने पुत्रोत्पत्ति को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु राजा को उसका पता चल गया और राजाने तत्काल ही राज्य का भार पुत्र को सौंप कर जिन दीक्षा ले ली। राजा ने पुत्र के शुभ लक्षणों को देखकर उसका नाम सुकौशल रक्खा। रानी को पति-वियोग का दुःख असह्य था, साथही पुत्रके भी साधु हो जाने का भय उसे आतंकित किए हुए था। युवावस्था मे कुमार का विवाह ३२ राज कन्याओ से कर दिया गया और वह भोग-विलासमय जीवन बिताने लगा, उसे महल से बाहर जाने का कोई अधिकार न था। माता इस बात का सदा ध्यान रखती थी कि पुत्र कही किसी मुनि को न देख ले। अतएव उसने नगर मे मुनियो का आना निषिद्ध कर दिया था।

एक दिन कुमार के पिता मुनि कीर्तिधवल नगर मे आये, किन्तु उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया गया। जव राजकुमार को यह बात ज्ञात हुई, तो उसने राज्य का परित्याग कर उनके समीप ही साधु दीक्षा लेकर तप का अनुष्ठान करने लगा। माता सहदेबी पुत्र वियोग से अत्यत दुखी हुई और आर्त परिणामो से मरकर व्याघ्री हुई।

एक दिन उसने अत्यत भूखी होने के कारण पर्वत पर ध्यानस्थ मुनि सुकौशल को ही खा लिया। सुकौशल ने समताभाव से कर्म-कालिमा नष्ट कर स्वात्म लाभ किया। इधर मुनि कीर्तिधवल ने उस व्याघ्री को उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसे जातिस्मरण हो गया, और अन्त मे उसने सन्यास पूर्वक शरीर छोड़ा और स्वर्ग प्राप्त किया, कीर्ति धवल भी अक्षयपद को प्राप्त हुए।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० स० १४९६ में माघ कृष्णा १०मी के दिन ग्वालियर में राजा डूगरसिह के राज्य मे समाप्त किया है।

३७वी प्रशस्ति 'पासणाहपुराण या पासणाहचरिउ' की है, जिसकी रचना उक्त कवि रइधू ने की है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ७ सन्धियाँ और १३६ के लगभग कडवक हैं, जिनमे जैनियो के तेवीसवे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय दिया हुआ है। पार्श्वनाथ के जीवन-परिचय को व्यक्त करने वाले अनेक ग्रथ प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश भाषा मे तथा हिन्दी मे लिखे गये हैं। परन्तु उनसे इसमे कोई खास विशेषता ज्ञात नही होती। इस ग्रन्थ की रचना मणिपुर (दिल्ली) के निवासी साहू खेऊ या खेमचन्द की प्रेरणा से की गई है, इनका वश अग्रवाल और गोत्र एँडिल था। खेमचद के पिता का नाम पजण साहु, और माता का नाम बील्हादेवी था। और धर्मपत्नी का नाम धनदेवी था, उससे चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। सहसराज, पहराज, रघुपति कौर होलिवम्म। इनमे सहसराज ने गिरनार की यात्रा का सघ चलाया था, साहू खेमचद सप्त व्यसन रहित और देव-शास्त्र गुरु के भक्त थे। प्रशस्ति मे इनके परिवार का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। अतएव उक्त ग्रथ उन्ही के नामाकित किया गया है। ग्रथ की आद्यन्त प्रशस्ति बडी ही महत्वपूर्ण है, उससे तात्कालिक ग्वालियर की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियो का यथेष्ट परिचय मिल जाता है। और उससे यह स्पष्ट जान पडता है कि उस समय ग्वालियर मे जैन समाज का नैतिक स्तर बहुत ऊचा था, और वे अपने कर्तव्य पालन के साथ-साथ अहिसा, परोपकार और दयालुता का जीवन मे आचरण करना श्रेष्ठ मानते थे।

ग्रथ बन जाने पर साहू खेमचन्द ने कवि रइधू को द्वीपातरो से आये हुए विविध वस्त्रो और आभरणादिक से सम्मानित किया था, और इच्छित दान देकर सतुष्ट किया था।

३८वी प्रशस्ति 'बलहद्दचरिउ' (पउमचरिउ) की है, जिसके कर्ता उक्त कवि रइधू हैं। ग्रथ मे ११ सधियाँ और २४० कडवक हैं। जिनमे बलभद्र, (रामचन्द्र), लक्ष्मण और सीता आदि की जीवन-गाथा अकित की गई है, जिसकी श्लोक सख्या साडे तीन हजार के लगभग है। ग्रथ का कथानक बडा ही रोचक और हृदयस्पर्शी है। यह १५वी शताब्दी की जैन रामायण है। ग्रथ की शैली सीधी और सरल है, उसमे शब्दाडम्बर को कोई स्थान नही दिया गया, परन्तु प्रसगवश काव्योचित वर्णनो का सर्वथा अभाव भी नही है। राम की कथा बडी लोकप्रिय रही है। इससे इस पर प्राकृत सस्कृत, अपभ्रश और हिन्दी मे अनेक ग्रथ विविध कवियो द्वारा लिखे गए हैं।

यह ग्रथ भी अग्रवालवशी साहु बाटू के सुपुत्र हरसी साहु की प्रेरणा एव अनुग्रह से बनाया गया है। साहु हरसी जिन शासन के भक्त और कषायो को क्षीण करने वाले थे। आगम और पुराण-ग्रथो के पठन-पाठन मे समर्थ, जिन पूजा और सुपात्रदान मे तत्पर, तथा रात्रि और दिन मे कायोत्सर्ग मे स्थित होकर आत्म-ध्यान द्वारा स्व-पर के भेद-विज्ञान का अनुभव करने वाले, तथा तपश्चरण द्वारा शरीर को क्षीण करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। आत्म-विकास करना उनका लक्ष्य था। ग्रथ की आद्य प्रशस्ति मे हरसी साहू के कुटुम्ब का पूरा परिचय दिया हुआ है। ग्रथ मे रचनाकाल दिया हुआ नही है।

३९ वी प्रशस्ति 'मेहेसरचरिउ' की है, प्रस्तुत ग्रथ मे १३ सधिया और ३०४ कडवक है। जिनमे भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार और उनकी धर्मपत्नी सुलोचना के चरित्र का सुन्दर चित्रण किया गया है। जयकुमार और सुलोचना का चरित बडा ही पावन रहा है। ग्रथ की द्वितीय-तृतीय सधियो मे आदि ब्रह्मा-ऋषभदेवका गृह त्याग, तपश्चरण और केवलज्ञान की प्राप्ति, भरत की दिग्विजय, भरत बाहुबलि युद्ध, बाहुबलि का तपश्चरण और कैवल्य प्राप्ति आदि का कथन दिया हुआ है। छठवी सन्धि के २३ कडवको मे सुलोचनाका स्वयम्बर, सेनापति मेघेश्वर(जयकुमार) का भरत चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिके साथ युद्ध करना

वर्णन दिया है। और ७वी सन्धि में सुलोचना और मेघेश्वर के विवाह का कथन दिया हुआ है। और ८वी से १३वी संधि तक कुबेर मित्र, हिरण्यगर्भ का पूर्वभव वर्णन तथा भीम भट्टारक का निर्वाण गमन, श्रीपाल चक्रवर्ती का हरण और मोक्ष गमन, एव मेघेश्वर का तपश्चरण, निर्वाण गमन आदि का सुन्दर कथन दिया हुआ है। ग्रथ काव्य-कला की दृष्टि से उच्चकोटि का है। ग्रथ मे कवि ने दुवई, गाहा, चामर, घत्ता, पद्धडिया, समानिका और मत्तगयद आदि छन्दो का प्रयोग किया है। रसो में शृगार, वीर, बीभत्स और शान्त रस का, तथा रूपक उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलकारो की भी योजना की गई है। इस कारण ग्रथ सरस और पठनीय बन गया है।

कवि ने ग्रथ में अपने से पूर्ववर्ती निम्न कवियो और उनकी कृतियो का उल्लेख किया हैं। कवि चक्रवर्ती धीरसेन, देवनन्दी अपर नाम पूज्यपाद (ईस्वी सन् ४७५ से ५२५ ई०) जैनेन्द्र व्याकरण, वज्रसेन और उनका षड्दर्शन प्रमाण नाम का जैन न्याय का ग्रंथ। रविषेण (वि० स० ७३४) तथा उनका पद्म-चरित, पुन्नाटसघी जिनसेन (वि० सं० ८४०) और उनका हरिवश, महाकवि स्वयभू, चतुर्मुख तथा पुष्प-दन्त, देवसेन का मेहेसरचरिउ (जयकुमार-सुलोचना चरित) दिनकरसेन का अनगचरित।

ग्रथ की आद्यन्त प्रशस्तियो मे ग्रन्थ रचना मे प्रेरक ग्वालियर नगर के सेठ अग्रवाल कुलावतश साहू खेऊ या खेमसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। और ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि के प्रारम्भ मे कवि ने सस्कृत श्लोको मे आश्रयदाता उक्त साहू की मंगल कामना की है। द्वितीय सधि के प्रारम्भ का निम्न पद्य दृष्टव्य है।

तीर्थेशो वृषभेश्वरो गणनुतो गौरीश्वरो शंकरो,
आदीशो हरिणाचितो गणपति श्रीमान्युगादिप्रभुः।
नाभेयो शिववार्द्धिवर्धन शशि कैवल्यभाभासुरः,
क्षेमाख्यस्य गुणान्वितस्य सुमतेः कुर्याच्छिव सो जिन ॥

इस पद्य मे ऋषभदेव के विशेषण प्रयुक्त हुए है वे जहाँ उनकी प्राचीनता के द्योतक है, वहाँ वे ऋषभदेव और शिव की सादृश्यता की झाकी भी प्रस्तुत करते है। ग्रन्थ सुन्दर है और इसे प्रकाश में लाना चाहिये।

४० वी प्रशस्ति 'सम्मत्तगुणनिधान' की है। ग्रथ मे ४ सधिया और १०८ कडवक दिये हुए हैं। जिनकी आनुमानिक श्लोक सख्या तेरहसौ पचहत्तर के करीब है। जिनमें सम्यक्त्व का स्वरूप, उनका माहात्म्य तथा सम्यक्त्व के आठ अगो मे प्रसिद्ध होने वाले प्रमुख पुरुषो की रोचक कथाएँ बहुत ही सुन्दरता से दी गई है। जो पाठको को अत्यन्त सुचिकर और सरस मालूम होती है।

प्रस्तुत ग्रथ गोपाचल (ग्वालियर) निवासी साहु खेमसिंह के सुपुत्र साहु कमलसिह के अनुरोध से वनाया गया है, और उन्ही के नामाकित भी किया गया है। इस ग्रथ की प्रथम सधि के १७वे कडवक से स्पष्ट है कि साहु खेमसिह के पुत्र कमलसिह ने भगवान आदिनाथ की एक विशालमूर्ति का निर्माण कराया था, जो ग्यारह हाथ ऊँची थी, और जो दुर्गति के दुःखो की विनाशक, मिथ्यात्वरूपी गिरीन्द्र के लिये वज्र समान, भव्यो के लिए शुभ गति प्रदान करने वाली, तथा दुःख, रोग, शोक की नाशक थी। अर्थात् जिसके दर्शन, चिन्तन से भव्यो की भव-बाधा सहज ही दूर हो जाती थी। इस महत्वपूर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा कर उसने महान् पुण्य का सचय किया था और चतुर्विध सघ की विनय भी की थी। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्ति मे साहु कमलसिह के कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। ग्रन्थ-गत कथाओ का आधार आचार्य

सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू का छठा आश्वास रहा जान पड़ता है। ग्रथ का रचनाकाल वि० सवत् १४९२ है।

४१ वी प्रशस्ति 'रिट्ठणेमिचरिउ' या 'हरिवश पुराण' की है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे १४ सन्धियाँ और ३०२ कडवक हैं तथा १६०० के लगभग पद्य होगे, जिनमे ऋषभ चरित, हरिवशोत्पत्ति, वसुदेव और उनका पूर्वभव कथानक, बन्धु-बान्धवो से मिलाप, कस बलभद्र और नारायण के भवो का वर्णन, नारायण जन्म, कसवध, पाण्डवो का जुए मे हारना द्रोपदी का चीर हरन, पाण्डवो का अज्ञातवास, प्रद्युम्न को विद्या प्राप्ति और श्रीकृष्ण से मिलाप, जरासध वध, कृष्ण का राज्यादि सुखभोग, नेमिनाथ का जन्म, बाल्यक्रीडा यौवन, विवाहमैं वैराग्य, दीक्षा तथा तपश्चरण केवलज्ञान और निर्वाण प्राप्ति आदिका कथन दिया है। ग्रथ मे जैनियो के बाईसवे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की जीवन-घटनाओ का परिचय दिया हुआ है। नेमिनाथ यदुवशी क्षत्री थे। और थे कृष्ण के चचेरे भाई। उन्होने पशुओ के बधन खुलवाए। और ससार की असारता को देख, वैरागी हो तपश्चरण द्वारा आत्म-शोधन किया, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने, और जगत को आत्महित करने का सुन्दरतम मार्ग बतलाया। उनका निर्वाण स्थान ऊर्जयन्त गिरि या रैवतगिरि है जो आज भी नेमिनाथ के अतीत जीवन की झाँकी को प्रस्तुत करता है। तीर्थंकर नेमिकुमार की तपश्चर्या और चरण रज से वह केवल पावन ही नही हुआ, किन्तु उसकी महत्ता लोक मे आज भी मौजूद है।

इस ग्रथ की रचना योगिनीपुर (दिल्ली) से उत्तर की ओर बसे हुए किसी निकटवर्ती नगर का नाम था, जो पाठ की अशुद्धि के कारण ज्ञात नही हो सका। ग्रथ की रचना उस नगर के निवासी गोयल गोत्रीय अग्रवाल वशी महाभव्य साहु लाहा के पुत्र सघाधिप साहु लोणा की प्रेरणा से हुई है। ग्रथ की आद्यन्त प्रशस्तियो मे साहु लोणा के परिवार का सक्षिप्त परिचय कराया गया है।

कवि ने ग्रन्थ मे अपने से पूर्ववर्ती विद्वानो और उनके कुछ ग्रथो का उल्लेख किया है, देवनन्दि (पूज्यपाद) जैनेन्द्र व्याकरण, जिनसेन (महापुराण) रविषेण (जैन रामायण-पद्मचरित) कमलकीर्ति और उनके पट्टधर शुभचन्द्र का नामोल्लेख है। जिनका पट्टाभिषेक कनकगिरि वर्तमान सोनागिरि मे हुआ था। साथ ही कवि ने अपने रिट्ठणेमिचरिउ से पहले बनाई हुई अपनी निम्न रचनाओ के भी नाम दिए हुए हैं। महापुराण, भरत-सेनापति चरित (मेघेश्वर चरित) जसहरचरिउ (यशोधरचरित) वित्तसार, जीवधर चरिउ और पासचरिउ का नामोल्लेख किया है। ग्रथ मे रचनाकाल नही दिया, इसलिए यह निश्चित बतलाना तो कठिन है कि यह ग्रथ कब बना ? फिर भी अन्य सूत्रो से यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रथ विक्रम की १५ वी शताब्दी के अन्तिम चरण या १६ वी के प्रथम चरण मे रचा गया है।

४२ वी प्रशस्ति 'धणकुमार चरिउ' की है जिसमे चार सन्धिया और ७४ कडवक है। जिनकी श्लोक सख्या ८०० श्लोको के लगभग है। जिनमे धनकुमार की जीवन-गाथा अकित की गई है। प्रस्तुत ग्रथ की रचना आरौन जिला ग्वालियर निवासी जैसवाल वशी साहु पुण्यपाल के पुत्र साहु भुल्लण की प्रेरणा एव अनुरोध से हुई है। अतएव उक्त ग्रथ उन्ही के नामाकित किया गया है। ग्रथ की आद्य प्रशस्ति मे साहु भुल्लण के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है।

इस ग्रथ की रचना कब हुई ? यह ग्रथप्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नही होता, क्योकि उसमे रचना काल दिया हुआ नही है। किन्तु प्रशस्ति मे इस ग्रथ के पूर्ववर्ती रचे हुए ग्रंथो के नामो मे 'णेमिजिणिद चरिउ' (हरिवश पुराण) का भी उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रथ उसके बाद बनाया गया है।

४३ वी प्रशस्ति 'जसहर चरिउ' की है जिसके कर्ता भी उक्त कवि रइधू है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ४ सन्धियाँ और १०४ कडवक है। जिनकी श्लोक संख्या९०० के लगभग है। ग्रथ मे योधेय देशके राजा यशोधर और चन्द्रमती का जीवन परिचय दिया हुआ है। ग्रथ का कथानक सुन्दर और हृदय-ग्राही है और वह जीव दया की पोषक वार्ताओ से ओत-प्रोत है। यद्यपि राजा यशोधर के सम्बध मे सस्कृतभाषा मे अनेक चरित ग्रन्थ लिखे गए है जिनमें आचार्य सोमदेव का 'यशस्तिलक चम्पू' सबसे उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ है। परतु अपभ्रंश भापा की यह दूसरी रचना है। प्रथम ग्रन्थ महाकवि पुष्पदन्त का है। यद्यपि भ० अमरकीर्ति ने भी 'जसहर चरिउ' नाम का ग्रथ लिखा था, परतु वह अभी तक अनुपलब्ध है।

इस ग्रन्थ की रचना भट्टारक कमलकीर्ति के अनुरोध से तथा योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अग्रवाल वशी साहु कमलसिह के पुत्र साहु हेमराज की प्रेरणा से हुई है। अतएव ग्रथ उन्ही के नाम किया गया है। उक्त साहु परिवार ने गिरनार जी की तीर्थयात्रा का सघ चलाया था। ग्रथ की आद्यन्त प्रशस्ति मे साहु कमलसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है। कवि ने यह ग्रथ लाहडपुर के जोधा साहु के विहार मे बैठकर बनाया है, और उसे स्वय 'दयारसभर गुणपवित्त'—पवित्र दयारूपी रस से भरा हुआ वतलाया है।

४४ वी प्रशस्ति 'अणथमी कहा' की है। इस कथा में रात्रिभोजन के दोषो और उससे होने वाली व्याधियो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि दो घडी दिन के रहने पर श्रावक लोग भोजन करे; क्योकि सूर्य के तेज का मद उदय रहनेपर हृदय-कमल सकुचित हो जाता है, अत. रात्रि भोजनके त्याग का विधान धार्मिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से किया गया है जैसा कि उसके निम्न दो पद्यों से प्रकट है'—

"जि रोय-दलद्दिय दीण अणाह, जि कुट्ठ-गलिय कर करण सवाह।
दुहग्गु जि परियणु वग्गु अणेहु, सु-रयणिहि भोयणु फलु जि मुणहु।
घडी दुइ वासरु थक्कइ जाम, सुभोयण सावय भुजहिं ताम।
दिवायरु तेज जि मदउ होइ, सकुच्चइ चित्तहु कमलु जिव सोइ।"

कथा रचने का उद्देश्य भोजन सम्बन्धी असयम से रक्षा करना है, जिससे आत्मा धार्मिक मर्यादाओ का पालन करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाये रखे।

४५ वी प्रशस्ति 'अप्प-सबोह-कव्व' की है। यह एक छोटा सा काव्य-ग्रथ है जिसे कवि ने आत्म-सम्बोधनार्थ वनाया है। आत्म-हित को दृष्टि मे लक्ष्य रखते हुए हिसादि पच पापो और सप्त व्यसनादि से आत्म-रक्षा करने का उपाय वतलाया गया है—हिंसादि पापो का त्याग कर आत्म-कर्तव्य की ओर दृष्टि रखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे मानव इस लोक तथा परलोक मे सुख-शान्ति प्राप्त कर सके। ग्रथ बहुत सुन्दर है, पर अभी तक अप्रकाशित है।

४६ वी प्रशस्ति 'सिद्धातार्थसार' की है, इस ग्रंथ का विषय भी सैद्धातिक है और अपभ्रंश के गाथा छद मे रचा गया है। इसमे सम्यग्दर्शन, जीव स्वरूप, गुणस्थान, व्रत, समिति, इद्रिय-निरोध आदि आवश्यक क्रियाओ का स्वरूप, अट्ठाईस मूलगुण, अष्टकर्म, द्वादशागश्रुत, लब्धिस्वरूप, द्वादशानुप्रेक्षा दशलक्षणधर्म, और ध्यानो के स्वरूप का कथन दिया गया है। इस ग्रथ की रचना वणिकवर श्रेष्ठी खेमसी साहु या साहु खेमचद्र के निमित्त की गई है। परतु खेद है कि उपलब्ध ग्रंथ का अतिम भाग खडित है। लेखक ने कुछ जगह छोडकर लिपि पुष्पिका की प्रतिलिपि कर दी है। ग्रथ के शुरू में कवि ने लिखा है

कि यदि मैं उक्त सभी विषयो के कथन मे स्खलित हो जाऊँ तो छल ग्रहण नही करना चाहिए। यह ग्रंथ भी तोमर वशी राजा कीर्तिसिंह के राज्य मे रचा गया है।

४७ वी प्रशस्ति 'वृत्तसार' नामक ग्रथ की हैं। जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। प्रस्तुत ग्रथ मे छह सर्ग या अक (अध्याय) हैं। ग्रथ का अन्तिम पत्र त्रुटित है जिसमे ग्रथकार की प्रशस्ति उल्लिखित होगी। यह ग्रथ अपभ्रश के गाथा छद मे रचा गया है, जिनकी सख्या ७५० है। बीच बीच मे सस्कृत के गद्य-पद्यमय वाक्य भी ग्रन्थातरो से प्रमाण स्वरूपमे उद्धृत किये गये है। प्रथम अधिकार मे सम्यग्दर्शन का सुन्दर विवेचन है, और दूसरे अधिकार मे मिथ्यात्वादि छह गुणस्थानो का स्वरूप निर्दिष्ट किया है। तीसरे अधिकार मे शेप गुण-स्थानो का और कर्मस्वरूप का वर्णन है। चौथे अधिकार मे बारह भावनाओ का कथन दिया हुआ है। पाँचवे अक मे दशलक्षण धर्म का निर्देश है और छठवे अध्याय मे ध्यान की विधि और स्वरूपादि का सुन्दर विवेचन दिया हुआ है। इस तरह इस ग्रन्थ मे जैनधर्म के तात्त्विक स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है। ग्रन्थ सम्पादित होकर हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाश मे आने वाला है।

४८ वी प्रशस्ति 'पुण्णासव कहा कोश' की है। जिसमे १३ सधिया दी हुई है जिनमे पुण्य का आस्रव करने वाली सुन्दर कथाओ का सकलन किया गया है। प्रथम सन्धि मे सम्यक्त्व के दोषो का वर्णन है, जिन्हे सम्यक्त्वी को टालने की प्रेरणा की गई है। दूसरी सधि मे सम्यक्त्व के निश्शकितादि अष्ट गुणो का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए उनमे प्रसिद्ध होने वाले अजन चोर का चित्ताकर्षक कथानक दिया हुआ है तीसरी सधि मे निकाक्षित और निर्विचिकित्सा इन दो अगो मे प्रसिद्ध होने वाले अनन्तमती और उदितोदय राजा की कथा दी गई है। चौथी सधि मे अमूढदृष्टि और स्थितिकरण अग मे रेवती रानी और श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण का कथानक दिया हुआ है। पाचवी सन्धि मे उपगूहन अग का कथन करते हुए उसमे प्रसिद्ध जिनभक्त सेठ की कथा दी हुई है। सातवी सन्धि मे प्रभावना अग का कथन दिया हुआ है। आठवी सधि मे पूजा का फल, नवमी सधि मे पचनमस्कार मत्र का फल, दशवी सधि मे आगमभक्ति का फल और ग्यारहवी सधि मे सती सीता के शील का कथन दिया हुआ है। बारहवी सन्धि मे उपवास का फल और १३ वी सधि मे पात्रदान के फल का वर्णन किया है। इस तरह ग्रन्थ की ये सब कथाये बडी ही रोचक और शिक्षाप्रद है।

इस ग्रन्थ का निर्माण अग्रवाल कुलावतस साहु नेमिदास की प्रेरणा एव अनुरोध से हुआ है और यह ग्रथ उन्ही के नामाकित किया गया है। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्तियो मे नेमिदास और उनके कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। और बतलाया है कि साहु नेमिदास जोइणिपुर (दिल्ली) के निवासी थे और साहु तोसउ के चार पुत्रो मे से प्रथम थे। नेमिदास श्रावक व्रतो के प्रतिपालक, शास्त्रस्वाध्याय, पात्रदान, दया और परोपकार आदि सत्कार्यों मे प्रवृत्ति करते थे। उनका चित्त समुदार था और लोक मे उनकी धार्मिकता और सुजनता का सहज ही आभास हो जाता है, और उनके द्वारा अगणित मूर्तियो के निर्माण कराये जाने, मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठादि महोत्सव सम्पन्न करने का भी उल्लेख किया गया है। साहु नेमिदास चन्द्रवाड के राजा प्रतापरुद्र से सम्मानित थे[1]। वे सम्भवत उस समय दिल्ली से चन्द्रवाड चले गए थे, और वहा ही निवास करने लगे थे, और उनके अन्य कुटुम्बी जन उस समय दिल्ली मे ही रह रहे थे, राजा प्रतापरुद्र चौहान वशी राजा रामचद्र के पुत्र थे, जिनका राज्य विक्रम स० १४६८ मे वहा विद्यमान

१ णिय पयावरुद्द सम्माणिउ —पुण्यास्रव प्रशस्ति।

था[२]। ग्रन्थ में उसका रचनाकाल दिया हुआ नही है, परन्तु उसकी रचना पन्द्रहवी शताब्दी के अतिमचरण में हुई जान पड़ती है। क्योकि उसके वाद मुस्लिम शासको के हमलो से चन्द्रवाड़ की श्री सम्पन्नता को भारी क्षति पहुंची थी।

कवि ने ग्रथ की प्रत्येक सधि के प्रारम्भ मे ग्रथ रचना मे प्रेरक साहु नेमिदास का जयघोष करते हुये मगल कामना की है। जैसा कि उसके निम्नपद्यों से प्रकट है—

प्रतापरुद्रनृपराजविश्रुतस्त्रिकालदेवार्चनवचिता शुभा।
जैनोक्तशास्त्रामृतपानशुद्धधी चिर क्षितौ नन्दतु नेमिदास॰ ॥ ३
सत्कवि गुणानुरागी श्रेयान्निव पात्रदानविधिदक्ष.।
तोसउ कुलनभचन्द्रो नन्दतु नित्येव नेमिदासाख्य ॥४॥

ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश मे लाना आवश्यक है।

४६ वी प्रशस्ति 'जीवधर चरिउ' की है। जिसमे तेरह सधिया दी हुई है। प्रस्तुत ग्रथ मे दर्शन-विशुद्ध्यादि षोडशकारण भावनाओ का फल वर्णन किया गया है। और उनका फल प्राप्त करने वाले जीवधर तीर्थंकर की रोचक कथा दी गई है। प्रस्तुत जीवधर स्वामी पूर्व विदेह क्षेत्र के अमरावती देश मे स्थित गधर्वराउ (राज) नगर के राजा सीमधर और उनकी पट्ट महिषी महादेवी के पुत्र थे। इन्होने दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारण भावनाओ का भक्तिभाव से चिंतन किया था, जिसके फलस्वरूप वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर हुए। ग्रथका कथा भाग बडा ही सुदर है। परतु ग्रथ प्रति अत्यत अशुद्धरूप मे प्रतिलिपि की गई है, जान पडता है प्रतिलिपिकार पुरानी लिपि का अभ्यासी नही था, प्रतिलिपि करवा कर पुन. जाच भी नही की गई।

इस ग्रथ का निर्माण कराने वाले साहु कुन्थ दास है, जो सम्भवत. ग्वालियर के निवासी थे। कवि ने इस ग्रन्थको उक्त साहु को 'श्रवण भूषण' प्रकट किया है। साथही उन्हे आचार्य चरण सेवी, सप्त व्यसन रहित, त्यागी धवलकीर्ति वाला, शास्त्रों के अर्थ को निरतर अवधारण करनेवाला और शुभ मती बतलाते हुए उन्हे साहु हेमराज और मोल्हा देवी का पुत्र बतलाया गया है और कवि ने उनके चिरजीव होने की कामना भी की है। जैसा कि द्वितीय सधि के प्रथम पद्य से ज्ञात होता है।

---

२ चन्द्रवाड के सम्बन्ध मे लेखक का स्वतन्त्र लेख देखिए। स० १४६८ मे राजा रामचन्द्र के राज्य मे चन्द्र वाड मे अमरकीर्ति के षट्कर्मोपदेश की प्रतिलिपि की गई थी, जो अब नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भडार मे सुरक्षित है। यथा—

अथ सवत्सरे १४६८ वर्षे ज्येष्ठ कृष्ण पचदश्या शुक्रवासरे श्रीमच्चन्द्रपाट नगरे महाराजाधिराज श्रीराम चन्द देवराज्ये। तत्र श्री कुदकुदाचार्यान्वये श्री मूलसघे गूजरगोष्ठि तिहुयनगिरिया साहु श्री जग-सीहा भार्या सोमा तयो पुत्रा (चत्वारा) प्रथम उदैसीह (द्वितीय) अर्जैसहि तृतीय पहराज चतुर्थ खाह्मदेव। ज्येष्ठ पुत्र उदैसीह भार्या रतो, तस्य त्रयो पुत्रा, ज्येष्ठ पुत्र देल्हा द्वितीय राम तृतीय भीखम ज्येष्ठ पुत्र देल्हा भार्या हिरो (तयो.) पुत्रा. द्वयो. ज्येष्ठ पुत्र हालू द्वितीय पुत्र अर्जुन ज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थ इद षट्कर्मोपदेश लिखापित।

भग्नपृष्ठि कटिग्रीवा सच्च दृष्टि रधो मुखं।
कष्टेन लिखित शास्त्र यत्नेन परिपालयेत्॥

—नागौर भंडार

'जो भत्तो सूरिपाए विसरणसगसया जि विरत्ता स एयो ।
जो चाई पुत्त दाणे ससिपह धवली कित्ति वल्लिकु तेजो ।
जो नित्यो सत्थ-अत्थे विसय सुहमई हेमरायस्स ताओ ।
सो मोल्ही अग जाओ 'भवदु इह धुव कुथुयासो चिराओ ।'

९९वी प्रशस्ति 'सिरिपालचरिउ' या सिद्धचक्र विधि' की है। जिसके कर्ता कवि रइधू है। इस ग्रन्थ मे दश सधिया दी हुई है, और जिनकी आनुमानिक श्लोक सख्या दो हजार दो सौ बतलाई है। जिसमे चम्पापुर के राजा श्रीपाल और उनके सभी साथियो का सिद्धचक्रव्रत (अष्टाह्निका व्रत) के प्रभाव से कुष्ठ रोग दूर हो जाने आदि की कथा का चित्रण किया गया है और सिद्धचक्रव्रत का माहात्म्य ख्यापित करते हुए उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है। ग्रन्थ का कथाभाग बडा ही सुन्दर और चित्ता-कर्षक है। भाषा सरल तथा सुबोध है। यद्यपि श्रीपाल के जीवन परिचय और सिद्धचक्रव्रत के महत्व को चित्रित करने वाले सस्कृत, हिंदी गुजराती भाषा मे अनेक ग्र थ लिखे गए है। परतु अपभ्रश भाषा का यह दूसरा ग्रथ है। प्रथम ग्रथ पडित नरसेन का है।

प्रस्तुत ग्र थ ग्वालियर निवासी अग्रवाल वशी साहु बाढू के चतुर्थ पुत्र हरिसी साहु के अनुरोध से बनाया है और उन्ही के नामाकित किया है। प्रशस्ति मे उनके कुटुम्ब का सक्षिप्त परिचय भी अकित है। कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक सधियो के प्रारम्भ मे सस्कृत पद्यो मे ग्रथ निर्माण मे प्रेरक उक्त साहु का यशोगान करते हुए उनकी मगल कामना की है। जैसा कि ७ वी सधि के निम्न पद्य से प्रकट है।

य सत्य वदति व्रतानि कुरुते शास्त्र पठत्यादरात्
मोह मुञ्चति गच्छति स्व समय धत्ते निरीह पद ।
पाप लुम्पति पाति जीवनिवह ध्यान समालम्बते ।
सोऽय नदतु साधुरेव हरषी पुष्णाति धर्मं सदा ।

—सिद्धचक्र विधि (श्रीपालचरित सधि ७)

१०६वी प्रशस्ति 'सम्यक्त्व कौमुदी' की हैं। इसमे सम्यक्त्व की उत्पादक कथाओ का बडा ही रोचक वर्णन दिया हुआ है, इसे कवि ने ग्वालियर के राजा डूगरसिंह के पुत्र राजा कीर्तिसिंह के राज्य काल मे रचा है, इसकी आदि अन्त प्रशस्ति से मालूम होता है कि यह ग्रथ गोपाचल वासी गोला लारीय जाति के भूषण सेउसाहु की प्रेरणा से बनाया है। इसकी ७१ पत्रात्मक एक प्रति नागौर के भट्टारकीय ज्ञानभण्डार मे मौजूद है उक्त अपूर्ण प्रशस्ति उसी प्रति पर से दी गई है। उस ग्रन्थ की पूरी प्रशस्ति वहा के पचो तथा भट्टारक जी ने सन् ४४ मे नोट नही करने दी थी, इसीलिए वह अपूर्ण प्रशस्ति ही यहा दी गई है।

कवि की अन्य कृतियाँ

इन ग्रथो के अतिरिक्त कवि की 'दश लक्षण जयमाला और 'षोडशकारण जयमाला' ये दोनो पूजा ग्रथ भी मुद्रित हो चुके है। इनके सिवाय महापुराण, सुदसणचरिउ, करकण्डुचरिउ ये तीनो ग्रथ अभी अनुपलब्ध है। इनका अन्वेषणकार्य चालू है। 'सोऽह थुदि' नाम की एक छोटी-सी रचना भी अनेकात मे प्रकाशित हो चुकी है।

कवि रइधू ने अपने से पूर्ववर्ती कवियो का अपनी रचनाओ मे ससम्मान उल्लेख किया है[1]। जिन

१. विशेप परिचय के लिए देखिए, अनेकान्त वर्ष ९ किरण ९ मे प्रकाशित महाकवि रइधू नाम का लेख।

के नाम इस प्रकार है—१ देवनदी (पूज्यपाद) २ रविषेरण ३ चउमुह ४. द्रोरण ५ स्वयभूदेव ६ कविवर ७. वज्रसेन ८ जिनसेन ९. देवसेन १०. महाकवि पुष्पदन्त ।

कवि वंश-परिचय

कविवर रइधू संघाधिप देवराय के पौत्र और हरिसिघ के पुत्र थे, जो विद्वानो को आनन्ददायक थे। और माता का नाम 'विजयसिरि' (विजयश्री) था, जो रूपलावण्यादि गुरगो से अलकृत होते हुए भी शील सयमादि सद्गुणों से विभूपित थी। कविवर की जाति पद्मावती पुरवाल थी और कविवर उक्त पद्मावती कुलरूपी कमलों को विकसित करने वाले दिवाकर (सूर्य) थे जैसाकि 'सम्मइजिन चरिउ' ग्रथ की प्रशस्ति के निम्न वाक्यो से प्रकट है—

पोमावइ कुल कमल-दिवायरु, हरिसिघ बुहयरण कुल, आरणदरगु ।
जस्स धरिज रइधू बुह जायउ, देव-सत्थ-गुरु-पय-अरगुरायउ ॥

कविवर ने अपने कुल का परिचय 'पोमावइकुल' और पोमावइ 'पुरवाडवस' जैसे वाक्यो द्वारा कराया है। जिससे वे पद्मावती पुरवाल नाम के कुल मे समुत्पन्न हुए थे। जैनसमाज मे चौरासी उपजातियो के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है उनमे कितनी ही जातियो का अस्तित्व आज नही मिलता, किंतु इन चौरासी जातियो में ऐसी कितनी ही उपजातिया अथवा वश है जो पहले कभी बहुत कुछ समृद्ध और सम्पन्न रहे है, किंतु आज वे उतने समृद्ध एवं वैभवशाली नही दीखते, और कितने ही वश एव जातिया प्राचीन समय मे गौरवशाली रहे है किंतु आज उक्त सख्या मे उनका उल्लेख भी शामिल नही है। जैसे धर्कट १ आदि।

इन चौरासी जातियो मे पद्मावती पुरवाल भी एक उपजाति है, जो आगरा, मैनपुरी, एटा, ग्वालियर आदि स्थानो मे आबाद है, इनकी जन-सख्या भी कई हजार पाई जाती है। वर्तमान मे यह जाति वहुत कुछ पिछडी हुई है तो भी इसमे कई प्रतिष्ठित विद्वान है। वे आज भी समाज सेवा के कार्य मे लगे हुए है। यद्यपि इस जाति के विद्वान् अपना उदय ब्राह्मरगो से बतलाते है और अपने को देवनन्दी (पूज्यपाद) का सन्तानीय भी प्रकट करते हैं, परन्तु इतिहास से उनकी यह कल्पना केवल कल्पित ही जान पडती है। इसके दो काररग हैं। एक तो यह कि उपजातियो का इतिवृत्त अभी अधकार में हैं जो कुछ प्रकाश मे आ पाया है उसके आधार से उसका अस्तित्व विक्रम की दशमी शताब्दी से पूर्व का ज्ञात नही होता, हो सकता है कि वे उससे भी पूर्ववर्ती रही हो, परन्तु विना किसी प्रामारिगक अनुसधान के इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता।

पट्टावली वाला दूसरा काररग भी प्रामारिगक प्रतीत नही होता, क्योकि पट्टावली में आचार्य पूज्य पाद (देवनन्दी) को पद्मावती-पुरवाल लिखा है, परन्तु प्राचीन ऐतिहासिक प्रमारगो से उनका पद्मावती-पुरवाल होना प्रमारिगत नही होता, काररग कि देवनन्दी ब्राह्मरग कुल मे समुत्पन्न हुए थे।

---

१ यह जाति जैन समाज मे गौरव-शालिनी रही है। इसमे अनेक प्रतिष्ठित श्रीसम्पन्न श्रावक और विद्वान् हुए हैं जिनकी कृतिया आज भी अपने अस्तित्व से भूतल को समलकृत कर रही हैं। भविष्यदत्त कथा के कर्ता वुध धनपाल और धर्मपरीक्षा के कर्ता वुध हरिषेण ने भी अपने जन्म से 'धर्कट वश को पावन किया है। हरिषेण ने अपनी धर्मपरीक्षा वि० सं० १०४४ मे बनाकर समाप्त की है। धर्कट वश के अनुयायी दिगम्बर श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो मे रहे हैं।

जाति और गोत्रो का अधिकाश विकास अथवा निर्माण गाव, नगर और देश आदि के नामो पर से हुआ है। उदाहरण के लिए साभर के आस-पास के बघेरा स्थान से बघेरवाल, पाली से पल्लीवाल खण्डेला से खण्डेलवाल, अग्रोहा से अग्रवाल, जायस अथवा जैसासे जैसवाल और ओसासे ओसवाल जाति का निकास हुआ है। तथा चदेरी के निवासी होने से चन्देरिया, चन्दवाड से चादुवाड या चादवाड और पद्मावती नगरी से पद्मावतिया आदि गोत्रो एव मूरका उदय हुआ है। इसी तरह अन्य कितनी ही जातियो के सम्बध मे प्राचीन लेखो, ताम्रपत्रो, सिक्को, ग्रन्थ-प्रशस्तियो और ग्रथो आदि पर से उनके इतिवृत्त का पता लगाया जा सकता है।

उक्त कविवर के ग्रथो मे उल्लिखित 'पोमावइ' शब्द स्वय पद्मावती नाम की नगरी का वाचक है। यह नगरी पूर्व समय मे खूब समृद्ध थी, उसकी इस समृद्धि का उल्लेख खजुराहो के वि० स० १०५२ के शिलालेख मे पाया जाता है, जिसमे यह बतलाया गया है कि यह नगरी ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी भवनो एव मकानातो से सुशोभित थी, जिसके राजमार्गो मे बडे-बडे तेज तुरङ्ग दौडते थे और जिसकी चमकती हुई स्वच्छ एव शुभ्र दीवारे आकाश से बाते करती थी। जैसाकि उक्त लेख के निम्न पद्यो से प्रकट है—

सोधुत्तुगपतङ्गलङ्घनपथ प्रोत्तुगमालाकुला
शुभ्राभ्रकषपाण्डुरोच्चशिखरप्राकारचित्रा (म्व) रा
प्रालेयाचल श्रृङ्गसन्नि (नि) भशुभप्रासादसद्मावती
भव्यापूर्वमभूदपूर्वरचना या नाम पद्मावती ॥
त्वगत्तुगतुरगमोदगमक्षु (खु) रक्षोदाद्रज प्रो [द्ध] त,
यस्या जीर्न (र्ण) कठोर बभु (स्र) मकरो कूर्मोदराभ नम ।
मत्तानेककरालकुम्भि करटप्रोत्कृष्टवृष्ट्या [द भु] व ।
त कर्दम मुद्रिया क्षितितल ताब्रू (ब्रू) त किं संस्तुम ॥

—Epigraphica Indica V I P. 149

इस समुल्लेख पर से पाठक सहज ही मे पद्मावती नगरी की विशालता का अनुमान कर सकते है। इस नगरी को नागराजाओ की राजधानी बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था और पद्मावती कातिपुरी तथा मथुरा मे नौ नागराजाओ के राज्य करने का उल्लेख भी मिलता है[1]। पद्मावती नगरी के नागराजाओ के सिक्के भी मालवे मे कई जगह मिले है[2]। ग्यारहवी शताब्दी मे रचित 'सरस्वती कठाभरण' मे भी पद्मावती का वर्णन है और मालती-माधव मे भी पद्मावती का कथन पाया जाता है जिसे लेखवृद्धि के भय से छोडा जाता है, परतु खेद है कि आज यह नगरी वहा अपने उस रूप मे नही है किन्तु ग्वालियर राज्य मे उसके स्थान पर 'पवाया' नामक एक छोटा सा गाव बसा हुआ है, जो कि देहली से बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन पर 'देवरा' नाम के स्टेशन से कुछ ही दूर पर स्थित है। यह पद्मावती नगरी ही पद्मावती जाति के निकास का कारण है। इस दृष्टि से वर्तमान 'पवाया' ग्राम पद्मावती पुरवालो के लिए विशेष महत्व की वस्तु है। भले ही वहा पर आज पद्मावती पुरवालो का निवास न हो, किन्तु उसके आस पास तो आज भी वहा पद्मावतीपुर वालो का निवास पाया जाता है। ऊपर के इन सब उल्लेखो पर से ग्राम नगरादिक नामो पर उपजातियो की कल्पना को पुष्टि मिलती है।

---

१ नवनागा पद्मावत्या कातीपुर्यां मथुराया, विष्णु पु० अश ४ अ० २४।

२ देखो, राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द पृ० २३०।

श्रद्धेय प० नाथूरामजी प्रेमी ने 'परवारजाति के इतिहास पर प्रकाश' नाम के अपने लेख मे परवारो के साथ पद्मावती पुरवालो का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया था[1] और प० बखतराम के 'बुद्धि-विलास' के अनुसार सातवां भेद भी प्रकट किया है[2]। हो सकता है कि इस जाति का कोई सम्बन्ध परवारो के साथ भी रहा हो, किन्तु पद्मावती पुरवालो का निकास परवारो के सत्तम मूर पद्मावतिया से हुआ हो, यह कल्पना ठीक नही जान पडती और न किन्ही प्राचीन प्रमाणो से उसका समर्थन ही होता है और न सभी 'पुरवाडवश' परवार ही कहे जा सकते है। क्योकि पद्मावती पुरवालो का निकास पद्मावती नगरी के नाम पर हुआ है परवारो के सत्तममूर से नही। आज भी जो लोग कलकत्ता और देहली आदि से दूसरे शहरो मे चले जाते है उन्हे कलकतिया या कलकत्ते वाला देहलवी या दिल्ली वाला कहा जाता है, ठीक उसी तरह परवारों के सत्तममूर 'पद्मावतिया' की स्थिति है।

गाव के नाम पर से गोत्र कल्पना कैसे की जाती थी इसका एक उदाहरण प० बनारसीदासजी के अर्धकथानक से ज्ञात होता है और वह इस प्रकार है—मध्यप्रदेश के रोहतकपुर के निकट 'बिहोली' नाम का एक गाव था उसमे राजवशी राजपूत रहते थे, वे गुरु प्रसाद से जैनी हो गये और उन्होंने अपना पापमय क्रिया-काण्ड छोड दिया। उन्होने णमोकार मन्त्र की माला पहनी उनका कुल श्रीमाल कहलाया और गोत्र बिहोलिया रक्खा गया। जैसा कि उसके निम्न पद्यो से प्रकट है—

याही भरत सुखेत मे, मध्यदेश शुभ ठांउ।
वसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली-गाउ॥ ८
गांउ बिहोली में बसै, राजवश रजपूत।
ते गुरुमुख जैनी भए, त्यागि करम अघ-भूत॥ ९
पहिरी माला मत्र की पायो कुल श्रीमाल।
थाप्यो गोत्र बहोलिया, बीहोली रखपाल॥ १०॥

इसी तरह से उपजातियो और उनके गोत्रादि का निर्माण हुआ है।

कविवर रइधू भट्टारकीय प० थे, और तात्कालिक भट्टारको को वे अपना गुरु मानते थे और भट्टारकों के साथ उनका इधर-उधर प्रवास भी हुआ है और उन्होने कुछ स्थानों में कुछ समय ठहरकर कई ग्रंथों की रचना भी की है, ऐसा उनकी ग्रंथ-प्रशस्तियो पर से जाना जाता है। वे प्रतिष्ठाचार्य भी थे और उन्होने अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठा भी कराई थी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित एक मूर्ति का मूर्तिलेख आज भी प्राप्त है और जिससे यह मालूम होता है कि उन्होने उसकी प्रतिष्ठा सं० १४९७ में ग्वालियर के शासक राजा डूगरसिंह के राज्य मे कराई थी, वह मूर्ति आदिनाथ की है।[3]

कविवर विवाहित थे या अविवाहित, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख मेरे देखने मे नही आया और न कवि ने कही अपने को बालब्रह्मचारी ही प्रकट किया है इससे तो वे विवाहित मालूम होते है और जान

१. देखो, अनेकान्त वर्ष ३ किरण ७

२. सात खांप परवार कहावैं, तिनके तुमको नाम सुनावें।
अठसक्खा पुनि हैं चौसक्खा, ते सक्खा पुनि हैं दोसक्खा।
सोरठिया अरु गागज जानो, पद्मावतिया सत्तम मानो॥ —बुद्धिविलास

३ देखो, ग्वालियर गजिटियर जि० १, तथा अनेकान्त वर्ष १०

पड़ता है कि वे गृहस्थ-पडित थे और उस समय वे प्रतिष्ठित विद्वान् गिने जाते थे। ग्रन्थ-प्रणयन में जो भेटस्वरूप धन या वस्त्राभूषण प्राप्त होते थे, वही उनकी आजीविका का प्रधान आधार था।

बलभद्रचरित्र (पद्मपुराण) की अन्तिम प्रशस्ति के १७वे कडवक के निम्न वाक्यो से मालूम होता है कि उक्त कविवर के दो भाई और भी थे, जिनका नाम बाहोल और माहणसिह था। जैसा कि उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति के निम्न वाक्यो से प्रकट है—

सिरिपोमावइपुरवालवसु, णदउ हरिसिंघु सघवी जासुससु
घत्ता—बाहोल माहणसिह चिरु णदउ, इह रइधूकवि तीयउ वि धरा।
मोलिक्य समाणउ कलगुण जाणउ णदउ महियलि सो वि परा॥

यहा पर मैं इतना और भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मेघेश्वर चरित (आदिपुराण) की सवत् १८५१ की लिखी हुई एक प्रति नजीबाबाद जिला बिजनौर के शास्त्र-भण्डार मे है जो बहुत ही अशुद्ध रूप से लिखी गई है जिसके कर्ता ने अपने को आचार्य सिहसेन लिखा है और उन्होने अपने को सघवीय हरिसिह का पुत्र भी बतलाया है। सिंहसेन के आदिपुराण के उस उल्लेख पर से ही प० नाथूरामजी प्रेमी ने दशलक्षण जयमाला की प्रस्तावना मे कवि रइधू का परिचय कराते हुए फुटनोट मे श्री पडित जुगलकिशोरजी मुख्तार की रइधू को सिंहसेन का बडा भाई मानने की कल्पना को असगत ठहराते हुए रइध् और सिंहसेन को एक ही व्यक्ति होने की कल्पना की है। परन्तु प्रेमीजी की भी यह कल्पना सगत नही है और न रइधू सिंहसेन का बडा भाई ही है किन्तु रइधू और सिंहसेन दोनो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, सिंहसेन ने अपने को 'आइरिय' प्रकट किया है जबकि रइधू ने अपने को पण्डित और कवि ही सूचित किया है। उस आदिपुराण की प्रति को देखने और दूसरी प्रतियो के साथ मिलान करने से यह सुनिश्चित जान पडता है कि उसके कर्ता कवि रइधू ही हैं, सारे ग्रन्थ के केवल आदि अन्त प्रशस्ति मे ही कुछ परिवर्तन है।

शेष ग्रन्थ का कथा भाग ज्यो का त्यो है उसमे कोई अन्तर नही, ऐसी स्थिति मे उक्त आदिपुराण के कर्ता रइधू कवि ही प्रतीत होते है, सिंहसेन नही। हाँ, यह हो सकता है कि सिहसेनाचार्य का कोई दूसरा ही ग्रन्थ रहा हो, पर उक्त ग्रन्थ 'सिंहसेनायरिय' का नही किन्तु रइधू कविकृत ही है। सम्मइजिनचरिउ की प्रशस्ति मे रइधू ने सिहसेन नाम के एक मुनि का और भी उल्लेख किया है और उन्हे गुरु भी बतलाया और उन्ही के वचन से सम्मइजिनचरिउ की रचना की गई है। घत्ता—

"त णिसुणि वि गुरुणा गच्छहु गुरुणाइ सिंहसेण मुणे।
पुरुसठिउ पडिउ सील अखडिउ भणिउ तेण त तम्मि खणि॥५॥

गुरु परम्परा

कविवर ने अपने ग्रथो मे अपने गुरु का कोई परिचय नही दिया है और न उनका स्मरण ही किया है। हा, उनके ग्रन्थो मे तात्कालिक कुछ भट्टारको के नाम अवश्य पाये जाते है जिनका उन्होने आदर के साथ उल्लेख किया है। पद्मपुराण की आद्य प्रशस्ति के चतुर्थ कडवक की निम्न पक्तियो मे, उक्त ग्रन्थ के निर्माण मे प्रेरक साहु हरसी द्वारा जो वाक्य कवि रइधू के प्रति कहे गए है उनमे रइधू को 'श्रीपाल ब्रह्म आचार्य के शिष्य रूप से सम्बोधित किया गया है। साथ ही साहू सोढल के निमित्त 'नेमिपुराण' के रचे जाने और अपने लिए रामचरित के कहने की प्रेरणा भी की गई है जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि रइधू के गुरु ब्रह्म श्रीपाल थे वे वाक्य इस प्रकार हैं —

भो रइधू पडिउ गुण णिहाणु, पोमावइ वर वंसहं पहाणु।
सिरिपाल ब्रह्म आयरिय सीस, महु वयणु सुणहि भो बुह गिरीस ॥
सोढल णिमित्त णेमिहु पुराण, विरयउ जहं कइजण विहिय-माणु।
त रामचरित्तु वि महु भणेहि, लक्खण समेउ इय मणि मुणेहि ॥

प्रस्तुत ब्रह्म श्रीपाल कवि रइधू के गुरु जान पडते है, जो भट्टारक यश कीर्ति के शिष्य थे। 'सम्मइ-जिनचरिउ' की अन्तिम प्रशस्ति मे[1] मुनि यश कीर्ति के तीन शिष्यो का उल्लेख किया गया है, खेमचन्द, हरिषेण और ब्रह्म पाल्ह (ब्रह्म श्रीपाल)। उनमे उल्लिखित मुनि ब्रह्मपाल ही ब्रह्म श्रीपाल जान पडते है। अब तक सभी विद्वानो की यह मान्यता थी कि कविवर रइधू भट्टारक यश कीर्ति के शिष्य थे किन्तु इस समुल्लेख पर से वे यश कीर्ति के शिष्य न होकर प्रशिष्य जान पड़ते है।

कविवर ने अपने ग्रन्थों मे भट्टारक यश कीर्ति का खुला यशोगान किया है और मेघेश्वर चरित की प्रशस्ति मे तो उन्होने भट्टारक यशःकीर्ति के प्रसाद से विचक्षण होने का भी उल्लेख किया है। सम्मत्त गुण-णिहाण ग्रन्थ मे मुनि यश कीर्ति को, तपस्वी, भव्यरूपी कमलो को सबोधन करने वाला सूर्य, और प्रवचन का व्याख्याता भी वतलाया है और उन्ही के प्रसाद से अपने को काव्य करने वाला और पापमल का नाशक बतलाया है। जैसा कि उसके निम्न पद्यो से स्पष्ट है —

तह पुणु सुतव तावतवियंगो, भव्व-कमल-सबोह-पयंगो।
णिच्चोब्भासिय पवयण सगो, वदिवि सिरि जसकित्ति असगो।

तासु पसाए कव्वु पयासमि, आसि विहिउ कलि-मलु णिण्णासमि।

इसके सिवाय यशोधर चरित्र मे भट्टारक कमलकीर्ति का भी गुरु नाम से स्मरण किया है।

निवास स्थान और समकालीन राजा

कविवर रइधू कहा के निवासी थे और वह स्थान कहा है। और उन्होने ग्रथ-रचना का यह महत्वपूर्ण कार्य किन राजाओ के राज्यकाल मे किया है यह बात अवश्य विचारणीय है। यद्यपि कवि ने अपनी जन्मभूमि आदि का कोई परिचय नही दिया, जिससे उस सम्बन्ध मे विचार किया जाता, फिर भी उनके निवास स्थान आदि के सम्बन्ध मे जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है उसे पाठको की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है :—

उक्त कवि के ग्रन्थो से पता चलता है कि वे ग्वालियर मे नेमिनाथ और वर्द्धमान जिनालय में रहते थे और कवित्तरूपी रसायन निधि से रसाल थे। ग्वालियर १५वी शताब्दी में खूब समृद्ध था, उस समय वहा पर देहली के तोमर वश का शासन चल रहा था। तोमर वश बड़ा ही प्रतिष्ठित क्षत्रिय वश रहा है और उसके शासनकाल मे जैनधर्म को पनपने का बहुत कुछ आश्रय मिला है। जैन साहित्य में ग्वालियर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उस समय तो वह एक विद्या का केन्द्र ही बना हुआ था, वहां की मूर्तिकला और पुरातत्व की कलात्मक सामग्री आज भी दर्शको के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। उसके समवलोकन से ग्वालियर की महत्ता का सहज ही भान हो जाता है। कविवर ने स्वयं सम्यक्त्व-गुण-निधान

१ मुणि जसकित्ति हु सिस्स गुणायरु, खेमचदु हरिसेणु तवायरु।
मुणि त पाल्ह बभुए णदहु, तिण्णि वि पावहु भारु णिकदहु। —सम्मइ जिनचरिउ प्रशस्ति

नामक ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति मे ग्वालियर का वर्णन करते हुए वहा के तत्कालीन श्रावको की चर्या का जो उल्लेख दिया है उसे बतौर उदाहरण के नीचे दिया जाता है —

तहु रज्जि महायरण बहुधणट्ठ, गुरु-देव-सत्थ विणय वियट्ठ।
जहिं वियक्खण मणुव सव्व, धम्माणुरत्त-वर गलिय-गव्व ॥
जहिं सत्त-वसण-चुय सावयाइ, णिवसहिं पालिय दो-दह-वयाइ।
सम्मद्दसण-मणि-भूसियग, णिच्चोब्भासिय पवयण सुयग ॥
दारापेखण-विहि णिच्चलीण, जिण महिम महुच्छव णिरु पवीण।
चेयणगुण अप्पारुह पवित्त, जिण सुत्त रसायण सवण तित्त ॥
पचम दुस्समु अइ-विसमु-कालु, णिद्दलि वि तुरिउ पविहिउ रसालु।
धम्मज्झाणे जे कालु लिंति, णवयारमतु अह-णिसु गुणति ॥
ससार-महण्णव-वडण-भीय, णिस्सक पमुह गुण वण्णणीय।
जहिं णारीयण दिढ सीलजुत्त, दाणे पोसिय णिरु तिविह पत्त ॥
तिय मिसेण लच्छि अवयरिय एत्थु, गयरूव ण दीसइ का वि तेत्थ।
वर अवर कणयाहरण एहि, मडिय तणु सोहहिं मणि जडेहिं ॥
जिण-ण्हवण-पूय-उच्छाह चित्त, भव-तणु-भोयहिं णिच्च जि विरत्त।
गुरु-देव पाप-पकयाहिं लीण, सम्मद्दसणपालण पवीण ॥
पर पुरिस स-बधव सरिस जाहि, अह-णिसु पडिवण्णिय णिय मणाहिं।
किं वण्णमि तहि हउ पुरिस णारि, जहिं डिंभ वि सग वसणावहारि ॥
पव्वहि पव्वहि पोसहु कुणति, घरि घरि चच्चरि जिण गुण थुणति।
साहम्मि य वत्थु णिरु वहति, पर अवगुण झपहि गुण कहति ॥
एरिसु सावयहिं विहियमाणु, णेमीसुरजिण-हरि वड्ढमाणु।
णिवसइ जा रइधू कवि गुणालु, सुक्ति-रसायण-णिहि रसालु ॥५॥

इन पद्यो पर दृष्टि डालने से उस समय के ग्वालियर की स्थिति का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उस समय लोग कितने धार्मिक सच्चरित्र और अपने कर्त्तव्य का यथेष्ट पालन करते थे यह जानने तथा अनुकरण करने की वस्तु है।

ग्वालियर मे उस समय तोमर वशी राजा डूगरसिह का राज्य था। डूगरसिंह एक प्रतापी और जैनधर्म मे आस्था रखने वाला शासक था। उसने अपने जीवन काल मे अनेक जैन मूर्तियो का निर्माण कराया, वह इस पुनीत कार्य को अपनी जीवित अवस्था मे पूर्ण नही करा सका था, जिसे उसके प्रिय पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिह ने पूरा किया था। राजा डूगरसिंह के पिता का नाम गणेश या गणपतिसिंह था। जो वीरमदेव का पुत्र था। डूगरसिह राजनीति मे दक्ष, शत्रुओ के मान मर्दन करने मे समर्थ, और क्षत्रियोचित क्षात्र तेज से अलकृत था। गुण समूह से विभूषित, अन्याय रूपी नागो के विनाश करने मे प्रवीण, पचाँग मत्रशास्त्र मे कुशल, तथा असि रूप अग्नि से मिथ्यात्व-रूपी वश का दाहक था, जिसका यश सब दिशाओ मे व्याप्त था, राज्य-पट्ट से अलकृत विपुल, भाल और बल से सम्पन्न था। डूगरसिंह की पट्टरानी का नाम चँदादे था जो अतिशय रूपवती और पतिव्रता थी। इनके पुत्रका नाम कीर्तिपाल या कीर्तिपाल था, जो अपने पिता के समान ही गुणज्ञ, बलवान और राजनीति मे चतुर था। डूगरसिंह ने नरवर के किले पर

घेरा डाल कर अपना अधिकार कर लिया था। शत्रु लोग इसके प्रताप एव पराक्रम से भयभीत रहते थे। जैनधर्म पर केवल उसका अनुराग ही न था किन्तु उस पर वह अपनी पूरी आस्था भी रखता था, फलस्वरूप उसने जैन मूर्तियो की खुदवाई मे सहस्रों रुपये व्यय किए थे। इससे ही उसकी आस्था का अनुमान किया जा सकता है।

डूगरसिंह सन् १४२४ (वि० स० १४८१) मे ग्वालियर की गद्दी पर बैठा था। राज्य समय के दो मूर्ति लेख सम्वत् १४९७ और १५१० के प्राप्त हैं। सम्वत् १४८६ की दो लेखक प्रशस्तिया-प० विबुध श्रीधर के सस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रंश-भाषा के सुकमालचरित्र की प्राप्त हुई है। इनके सिवाय 'भविष्य दत्त पचमी कथा' की एक अपूर्ण लेखक प्रशस्ति कारजा के ज्ञान भण्डार की प्रति से प्राप्त हुई है। डूगरसिंह ने वि० स० १४८१ से स० १५१० या इसके कुछ बाद तक शासन किया है। उसके बाद राज्य सत्ता उसके पुत्र कीर्तिसिंह के हाथ मे आई थी।

कविवर रइधू ने राजा डूगरसिह के राज्य काल मे तो अनेक ग्रन्थ रचे ही हैं किन्तु उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्य काल मे भी सम्यक्त्व कौमुदी की रचना की है। ग्रथकर्ता ने उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति मे कीर्तिसिंह का परिचय कराते हुए लिखा है कि वह तोमर कुल रूपी कमलो को विकसित करने वाला सूर्य था और दुर्वार शत्रुओ के सग्राम से अतृप्त था और अपने पिता डूगरसिंह के समान ही राज्यभार को धारण करने में समर्थ और बदी-जनो ने जिसे भारी अर्थ समर्पित किया था और जिसकी निर्मल यश रूपी लता लोक मे व्याप्त हो रही थी, उस समय यह कलिचक्रवर्ती था जैसा कि उक्त ग्रथ प्रशस्ति के निम्न वाक्यो से प्रकट है—

तोमरकुलकमलवियास मित्त, दुव्वारवैरिसगर अतित्तु।
डूगरणिवरज्जधरा समत्थु, वदीयण समप्पिय भूरि-अत्थु॥
चउराय विज्जपालण अतदु, णिम्मल जसवल्ली भुवणकदु।
कलिचक्कवट्टि पायडणिहाणु, सिरिकित्तिसिंधु महिवइपहाणु॥

—सम्यक्त्व कौमुदी पत्र २ नागौर भण्डार

कीर्तिसिह वीर और पराक्रमी था उसने अपना राज्य अपने पिता से भी अधिक विस्तृत किया था। वह दयालु एव सहृदय था जैनधर्म के ऊपर उसकी विशेष आस्था थी। वह अपने पिता का आज्ञाकारी था उसने अपने पिता के जैनमूर्तियो के खुदाई के अवशिष्ट कार्य को पूरा किया था। इसका पृथ्वीपाल नाम का एक भाई और भी था जो लड़ाई मे मारा गया था। कीर्तिसिंह ने अपने राज्य को यहा तक पल्लवित कर लिया था कि उस समय उसका राज्य मालवे के सम-कक्षका हो गया था। और दिल्ली का बादशाह भी कीर्तिसिह की कृपा का अभिलाषी बना रहना चाहता था। सन् १४६५

१. सन् १४५२ (वि० सं० १५०९) मे जौनपुर के सुलतान महमूदशाह शर्की और देहली के बादशाह बहलोल लोदी के बीच होने वाले सग्राम मे कीर्तिसिंह का दूसरा भाई पृथ्वीराज महमूदशाह के सेनापति फतहखा हार्वी के हाथ से मारा गया था। परन्तु कविवर रइधू के ग्रथो मे कीर्तिसिंह के दूसरे भाई पृथ्वीराज का कोई उल्लेख नही पाया जाता।

—देखो टाड राजस्थान पृ० २५० स्वर्गीय महामना गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा कृत गवालियर के तवर वाली टिप्पणी।

(वि० स० १५२२) मे जौनपुर के महमूदशाह के पुत्र हुसैनशाह ने ग्वालियर को विजित करने के लिए बहुत वडी सेना भेजी थी, तव से कीर्तिसिंह ने देहली के बादशाह बहलोल लोदी का[1] पक्ष छोड दिया था और जौनपुर वालो का सहायक वन गया था।

सन् १४७८ मे हुसैनशाह दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी से पराजित होकर अपनी पत्नी और सम्पत्ति वगैरह को छोडकर तथा भागकर ग्वालियर मे राजा कीर्तिसिंह की शरणमे गया था तब कीर्तिसिह ने धनादि से उसकी सहायता की थी और कालपी तक उसे सकुशल पहुँचाया भी था। इसके सहायक दो लेख सन् १४६८ (वि० स० १५२५) और सन् १४७३ (वि० स० १५३०) के मिले है। कीर्तिसिह की मृत्यु सन् १४७९ (वि० स० १५३६) मे हुई थी। अत इसका राज्य काल सवत् १५१० के वाद से स० १५३६ तक पाया जाता है[2] इन दोनो के राज्यकाल मे ग्वालियर मे जैनधर्म खूब पल्लवित हुआ।

रचनाकाल

कवि रइधू के जिन ग्रन्थो का परिचय दिया गया है, यहा उनके रचनाकाल के सम्बन्ध मे विचार किया जाता है। रइधू के सम्मत्तगुणनिधान और सुकोसलचरिउ इन दो ग्रन्थो मे ही रचना समय उपलब्ध हुआ है। सम्मत्तगुणनिधान नाम का ग्रथ वि० स० १४९२ की भाद्रप्रद शुक्ला पूर्णिमा मगलवार के दिन बनाया गया है[3] और जो तीन महीने मे पूर्ण हुआ था और सुकोशलचरिउ उससे चार वर्ष बाद विक्रम स० १४९६ मे माघ कृष्णा दशमी को अनुराधा नक्षत्र मे पूर्ण हुआ है[4]। सम्मत्तगुणनिधान मे किसी ग्रन्थ के रचे जाने का कोई उल्लेख नही है, हा सुकोशलचरिउ मे पार्श्वनाथ पुराण, हरिवश पुराण और वलभद्रचरिउ इन तीन ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि ये तीनो ग्रन्थ भी सवत १४९६ से पूर्व रचे गये है और हरिवश पुराण मे त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (महापुराण) मेघेश्वरचरित, यशोधरचरित, वृत्तसार, जीवधरचरित और पार्श्वचरित इन छह ग्रन्थो के रचे जाने का उल्लेख है, जिससे जान पडता है कि ये ग्रथ भी हरिवश की रचना से पूर्व रचे जा चुके थे। सम्मइ जिनचरिउ मे, पार्श्वपुराण, मेघेश्वरचरित, त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित रत्नाकर (महापुराण) बलभद्रचरित (पउमचरिउ) सिद्धचक्र विधि, सुदर्शनचरित और धन्यकुमारचरित इन सात ग्रन्थो के नामो का उल्लेख किया गया है, जिससे यह ग्रन्थ भी उक्त सवत् से पूर्व रचे जा चुके थे।

---

१ बहलोल लोदी देहली का बादशाह था उसका राज्य काल सन् १४५१ (वि० स० १५०८) से लेकर सन् १४८९ (वि० स० १५४६) तक ३८ वर्ष पाया जाता है।

२ देखो, ओझा जी द्वारा सम्पादित टाड राजस्थान हिन्दी पृष्ठ २५४

३ 'चउदहसय वाणव उत्तरालि, वरिसइगय विक्कमरायकालि।
वक्खेयत्तु जि जिणवय-समक्खि, भद्दव मासम्मि स-सेय पक्खि।
पुण्णमिदिणि कुजवारे समोइ, मुहयारें सुहणामे जणेइ।
तिहु मास रयहि पुण्णहूउ, सम्मत्तगुणाहिणिहाणधूउ॥"

४ "सिरि विक्कम समयंतरालि, वट्टतइ इदु सम विसम कालि।
चउदहसय सवच्छरइ अण्ण छण्णउ अहिपुणु जाय पुण्ण।
माह दुजि किण्हदहमी दिणम्मि, अणुराहुरिक्ख पयडिय सकम्मि॥"

इसके अतिरिक्त करकण्डुचरिउ, सम्यक्त्व कौमुदी, आत्मसम्बोधकाव्य, अणथमीकथा, पुण्णासव कथा, सिद्धातार्थसार, दशलक्षण जयमाला और षोडशकारण जयमाला। इन आठ ग्रन्थो मे से पुण्यास्रव-कथा कोष को छोडकर शेष ग्रन्थ कहां और कब रचे गए, इसका कोई उल्लेख नही मिलता। रइधू ने प्राय. अधिकांश ग्रन्थो की रचना ग्वालियर में रहकर तोमर वश के शासक डूगरसिह और कीर्तिराज के समय मे की है। जिनका राज्यकाल संवत् १४८१ से स० १५३६ तक रहा है। अतएव कवि का रचनाकाल सं० १४८१ से १५३६ के मध्यवर्ती समय माना जा सकता है।

मैं पहले यह बतला आया हूं कि कविवर रइधू प्रतिष्ठाचार्य थे। उन्होने कई प्रतिष्ठाएँ कराई थी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित सवत् १४९७ की आदिनाथ की मूर्ति का लेख भी दिया था[1]। यह प्रतिष्ठा उन्होने गोपाचल दुर्ग मे कराई थी, इसके सिवाय, स० १५१० और १५२५ की प्रतिष्ठित मूर्तियो के लेख भी उपलब्ध है, जिनकी प्रतिष्ठा वहां इनके द्वारा सम्पन्न हुई है[2] सवत् १५२५ मे सम्पन्न होने वाली प्रतिष्ठाएँ रइधू ने ग्वालियर के शासक कीर्तिसिह या करणसिह के राज्य मे कराई है। जिनका राज्य सवत् १५३६ तक रहा है।

कुरावली (मैनपुरी) के मूर्तिलेखो मे भी, जिनका सकलन बाबू कामताप्रसादजी ने किया था[3]। उसमें भी स० १५०९ जेठ सुदि शुक्रवार के दिन चद्रवाड मे चौहान वशी राजा रामचद्र के पुत्र प्रतापसिह के राज्यकाल में अग्रवाल वंशी साहू गजाधर और भोलाने भगवान शातिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। अन्वेषण करने पर अन्य मूर्ति लेख भी प्राप्त हो सकते है। इन मूर्तिलेखो से कवि रइधू के जीवनकाल पर अच्छा प्रकाश पडता है। वे स० १५२५ तक तो जीवित रहे ही है, किंतु बाद मे और कितने वर्ष तक जीवित रहे, यह निश्चय करना अभी कठिन है, अन्य साधन-सामग्री मिलने पर उस पर और भी विचार किया जायगा। इस तरह कवि विक्रम की १५वी शताब्दी के उत्तरार्ध और १६वी शताब्दीके पूर्वार्ध के विद्वान् थे।

५०वी प्रशस्ति से लेकर क्रम से चौसठवी प्रशस्ति तक १५ प्रशस्तियाँ व्रत-सम्बन्धी कथा-ग्रथो की है। जिनके कर्ता भट्टारक गुणभद्र है। उन कथा-ग्रथों के नाम इस प्रकार हैं—

१ सवण वारसिकहा, २ पक्खवइकहा, ३ आयास पचमीकहा, ४ चदायणवयकहा, ५ चदण छट्ठी कहा, ६ दुग्धारसकहा, ७ णिद्दुहसत्तमीकहा, ८ मउडसत्तमीकहा, ९ पुप्फंजलिकहा, १० रयणत्तयकहा, ११ दहलवखणवयकहा, १२ अणतवयकहा, १३ लद्धिविहाणकहा, १४ सोलहकारणवयकहा, और १५ सुगध-दहमीकहा।

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष १०, किरण १०, तथा ग्वालियर गजिटियर जि० १

२ देखो, मेरी नोट कापी स० १५२५ मे प्रतिष्ठित मूर्तिलेख, ग्वालियर

३ स० १५०९ जेठ सुदि शुक्रे श्रीचन्द्रपाट दुर्गे पुरे चौहान वशे राजाधिराज श्रीरामचन्द्रदेव युवराज श्री प्रतापचन्द्रदेव राज्य वर्तमाने श्री काष्ठा सघे मथुरान्वये पुष्कर गणे आचार्य श्री हेमकीर्तिदेव तत्पट्टे भ० श्री कमलकीर्तिदेव। प० आचार्य रैधू नामधेय तदम्नाये आग्रोतकान्वये वासिल गोत्रे साहु त्योधर भार्या द्वौ पुत्रौ द्वौ सा० महराज नामानौ त्योध० भार्या श्रीपा तयो. पुत्राश्चत्वार सघाधिपति गजाधर मोल्हण जलकू रातू नामान सघाधिपतिगजे भार्या द्वे राय श्री गागो नाम्ने संघाधिपति मोल्हण भा० सोमश्री पुत्र तोहक, सघाधिपति जलकू भार्या महाश्री तयोः पुत्रौ कुलचन्द्र मेघचन्द्रौ सघपति रातू भा० अभया श्री सावु त्योधर पुत्र महाराज भार्या मदनश्री पुत्रौ द्वौ माणिक··· भार्या शिवदे··· ··सघपति जयपाल भार्या मुगापते सघाधिपति गजाधर सघा० भोला प्रमुख शान्तिनाथ बिम्ब प्रतिष्ठापित प्रणमित च। देखो, प्राचीन जैन लेख सग्रह, सम्पादक बा० कामताप्रसाद।

इन व्रतकथाओ मे, व्रतका स्वरूप, उनके आचरण की विधि, और फलका प्रतिपादन करते हुए व्रतकी महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। आत्म-शोधन के लिए व्रतो की नितात आवश्यकता है, क्योकि आत्म-शुद्धि के बिना हित-साधन सम्भव नही है। इन कथाओ मे से पक्खवइ कथा और अनन्तव्रत कथा ये दो कथाये तो ग्वालियर निवासी सघपति साहू उद्धरण के जिनमन्दिर मे निवास करते हुए साहु सारगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रची गई हैं और अणतवयकहा, पुप्फजलिवयकहा और दहलक्खण-वयकहा ये तीनो कथाएँ ग्वालियर निवासी जैसवालवशी चौधरी लक्ष्मणसिंह के पुत्र पण्डित भीमसेन के अनुरोध से बनाई गईं है। सातवी णिद्दुहसप्तमीकथा गोपाचलवासी साहू बीधा के पुत्र सहजपाल के अनुरोध से लिखी गई है। शेष ९ कथाएँ किनकी प्रेरणा से रची गई हैं, यह कुछ ज्ञात नही होता। सम्भव है वे धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हो।

भट्टारक गुणभद्र काष्ठासघ माथुरान्वय के भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य और भट्टारक यश कीर्ति के प्रशिष्य थे और मलयकीर्ति के बाद उनके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। उनकी ये १५ कथाएँ पचायती मदिर खजूर मस्जिद दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक मे सगृहीत है। इनकी अन्य क्या रचनाएँ हैं यह कुछ ज्ञात नही हो सका। यह भी प्रतिष्ठाचार्य थे और अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठा इनके द्वारा सम्पन्न हुई है।

गुणभद्र नाम के अनेक विद्वान् हो गए हैं। उनसे प्रस्तुत भट्टारक गुणभद्र भिन्न हैं। इन्होने अपने विहार द्वारा जिनधर्म का उपदेश देकर जनताको धर्म मे स्थिर किया है और जैनधर्म के प्रचार या प्रसार मे सहयोग दिया है। इनके उपदेश से अनेक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। यद्यपि इन्होने अपनी रचनाओ मे किसी राजा का उल्लेख नही किया। किन्तु अन्य सूत्रो से यह स्पष्ट जाना जाता है कि इनकी यह रचनाएँ ग्वालियर के तोमर वशी राजा डू गरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह के राज्यकाल मे बनाई गई हैं। इनका समय विक्रम की १५वी शताब्दी का अन्तिम चरण और १६वी शताब्दी के मध्य काल तक जान पडता है।

कारजा के सेनगढ भडार की समयसार की लिपि प्रशस्ति वि० सवत् १५१० वैशाख शुक्ला तीज की लिखी हुई है, जो गोपाचल मे डू गरसिंह के राज्यकाल मे भट्टारक गुणभद्र की आम्नाय के अग्रवाल वशी गर्ग गोत्रीय साहु जिनदास ने लिखवाई थी[1]। इससे भी गुणभद्र का समय १६वी शताब्दी जान पडता है।

५१वी, ५२वी, ५३वी, ५४वी, ५५वी, ५६वी, ५७वी, ५८वी, ५९वी, ६०वी, ६१वी, ६२वी, ६३वी, और ६४वी प्रशस्तियो का परिचय ५०वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

६५वी प्रशस्ति 'अनतव्रतकथा' की है, जिसमे कर्ता का नाम अभी अज्ञात है। प्रस्तुत रचना पचा-यती मन्दिर दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से दी गई हैं। रचनाकाल भी अज्ञात है। फिर भी यह रचना १५वी शताब्दी की जान पडती है।

६६वी प्रशस्ति 'आराहणासार' की है जिसके कर्ता कवि वीर हैं। प्रस्तुत रचना मे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपरूप चार आराधनाओ का स्वरूप सक्षेप मे दिया गया है। वीर कवि कब हुए और उनका समय तथा गुरु परम्परा क्या है ? यह रचना पर से कुछ ज्ञात नही होता। यह रचना आमेर शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से सगृहीत की गई है। वीर नाम के एक कवि वि० स० १०७६ मे हुए है जिन्होने उक्त सवत् मे जबू स्वामिचरित्र की रचना की थी। ये दोनो एक ही हैं या भिन्न है। यह अभी विचारणीय है।

---

१ देखो अनेकान्त वर्ष १४ किरण १० पृ० २६६

६७वीं प्रशस्ति 'हरिसेणचरिउ' की है, जिसके कर्ता अज्ञात है। प्रस्तुत ग्रन्थमे हरिषेण चक्रवर्ती का जीवन परिचय दिया हुआ है। चरित सुन्दर और शिक्षाप्रद है। यह चक्रवर्ती बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के समय मे हुए हैं। यह बडे वीर धर्मात्मा और अपनी माता के आज्ञाकारी पुत्र थे। चक्रवर्ती की माता जैनधर्म की श्रद्धालु और धर्मात्मा थी, उसकी भावना जैन रथोत्सव निकलवाने की थी, परन्तु कारणवश वह अपनी भावना को पूरा करनेमे समर्थ नही हो रही थी। हरिषेण चक्रवर्ती ने अनेक जिनमन्दिर बनवाए, प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न की और महोत्सवपूर्वक रथोत्सव निकलवाकर अपनी माता की चिरसाधना को सम्पन्न किया। इनके एक पुत्र ने कैलाश पर्वत पर तप धारण किया और कर्म-सन्तति का उच्छेदकर अविनाशीपद प्राप्त किया था। उससे चक्रवर्ती को भारी सन्ताप हुआ, किन्तु ज्ञान और विवेक से उसका शमन किया और अन्त मे स्वय चक्रवर्ती ने राज्य-वैभव को असार जान दीक्षा लेकर आत्म-साधना की और अविनाशी स्वात्म-लब्धि को प्राप्त किया। ग्रन्थ की रचना कब और कहाँ हुई ? यह कुछ ज्ञात नही होता, सम्भव है रचना १५वी शताब्दी या उससे पूर्ववर्ती हो।

६८ वी प्रशस्ति 'मयण पराजय' की है जिसके कर्ता कवि हरदेव है। प्रस्तुत ग्रन्थ के दो परिच्छेदों में से प्रथम में ३७ और दूसरे मे ८१ कुल ११८ कडवक हैं। जिनमे मदन को जीतने का सुन्दर सरस वर्णन किया गया है। यह एक छोटा-सा रूपक खण्ड काव्य है। इसमे पद्धडिया, गाथा और दुवई छन्द के सिवाय वस्तु (रड्ढा) छन्द का भी प्रयोग किया गया है। किन्तु इन छन्दों मे कवि को वस्तु या रड्ढा छन्द ही प्रिय रहा है[1] छन्द के साथ ग्रन्थ मे यथा स्थान अलकारो का भी सक्षिप्त वर्णन पाया जाना इस काव्य ग्रथ की अपनी विशेषता है। ग्रय मे अनेक सूक्तियां दी हुई हैं जिनसे ग्रथ सरस हो गया है। उदाहरणार्थ यहाँ तीन सूक्तियो को उद्धृत किया जाता है—

१ असिधारा पहेण को गच्छइ—तलवार की धार पर कौन चलना चाहता है
२. को भुयदर्डाहि सायरु लघहि—भुजदड से सागर कौन तरना चाहेगा
३. को पचाणणु सुत्तउ खवलइ—सोते हुए सिंह को कौन जगाएगा।

ग्रन्थ का कथानक परम्परागत ही है, कवि ने उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है, रचना का ध्यान से समीक्षण करने पर शुभचन्दाचार्य के ज्ञानार्णव का उस पर प्रभाव परिलक्षित हुआ जान पडता है। जो तुलना करने से स्पष्ट हो सकता है।

इस रूपक-काव्य मे कामदेव राजा, मोहमत्री, अहकार और अज्ञान आदि सेनापतियो के साथ भावनगर मे राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु है; क्योकि वे मुक्तिरूपी लक्ष्मी से अपना विवाह करना चाहते है। कामदेव ने राग-द्वेष नाम के दूत द्वारा जिनराज के पास यह सदेश भेजा कि आप या तो मुक्ति-कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड दे, और अपने ज्ञान, दर्शन-चरित्ररूप सुभटों को मुझे सोप दे, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अत मे कामदेव को पराजित कर अपना विचार पूर्ण किया।

---

१. प्राकृत-पिंगल मे रड्ढा छन्द का लक्षण इस तरह दिया है। जिसमे प्रथम चरण मे १५ मात्राएँ, द्वतीय चरण मे १२ तृतीय चरण मे १५, चतुर्थ चरण मे ११, और पांचवें चरण मे १५ मात्रा हो, इस तरह १५×१२×१५×११×१५, कुल ६८ मात्राओ के पश्चात् अन्त में एक दोहा होना चाहिए, तव प्रसिद्ध रड्ढा छन्द होता है। जिसे वस्तु छन्द भी कहा जाता है। (देखो, प्रा० पिं० १—१३३)

कवि-परिचय

यद्यपि कवि ने अपना कोई विशेष परिचय ग्रन्थ मे नही दिया, फिर भी प्रथम सधि के दूसरे-तीसरे कडवक से ज्ञात होता है कि कवि का नाम हरि या हरिदेव था। इनके पिता का नाम चङ्गदेव और माता का नाम चित्रा (देवी) था। इनके दो ज्येष्ठ और दो कनिष्ठ भाई भी थे। उनमे जेठे भाइयो का नाम किंकर और कृष्ण था। इनमे किंकर गुणवान और कृष्ण स्वभावतः निपुण था, कनिष्ठ भाइयो के नाम क्रमश द्विजवर और राघव थे, ये दोनो ही धर्मात्मा थे।

सस्कृत 'मदन पराजय' इसी रूपक-ग्रन्थ का सवर्द्धित अनुवादित रूप है। और जिसके कर्ता कवि नागदेव उन्ही के वशज तथा ५वी पीढी मे हुए थे। उन्होने ग्रथ प्रशस्ति मे जो परिचय दिया है उससे कवि के वश का परिचय निम्न प्रकार मिलता है—पृथ्वी पर शुद्ध सोमकुलरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य तथा याचको के लिए कल्पवृक्ष रूप चङ्गदेव हुए। उनके पुत्र हरि या हरदेव, जो असत्कवि रूपी हस्तियो के लिए सिंह थे। उनके पुत्र वैद्यराज नागदेव, नागदेव के 'हेम' और 'राम' नाम के दो पुत्र थे। जो दोनो ही वैद्य-विद्या मे निपुण थे। राम के पुत्र 'प्रियकर' हुए, जो दानी थे। प्रियकर के पुत्र 'मल्लुगि' थे, जो चिकित्सा महोदधि के परिगामी विद्वान् और जिनेन्द्र के चरण कमलो के मत्त भ्रमर थे। उनका पुत्र मैं अल्पज्ञानी नागदेव हूँ। जो काव्य, अलकार, और शब्द कोष के ज्ञान से विहीन हूँ। हरिदेव ने जिस कथा को प्राकृत वन्ध मे रचा था उसे मैं धर्मवृद्धि के लिए सस्कृत मे रचता हूँ[1]। कवि ने ग्रन्थ मे कोई रचना काल नही दिया। ग्रन्थ की यह प्रति स० १५७६ की लिखी हुई आमेर भडार मे सुरक्षित है। उससे यह ग्रन्थ पूर्व बना है।

इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति स० १५५१ मगशिर सुदि अष्टमी गुरुवार की लिखी हुई जयपुर के तेरापथी वडे मदिर के शास्त्र भडार मे मौजूद है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ स० १५५१ से पूर्ववर्ती है। ग्रन्थ के भाषा साहित्यादि पर से वह १४वी शताब्दी के उपान्त समय की और १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध की कृति जान पडती है।

६६वी और १०५वी प्रशस्तियाँ क्रमश 'सिद्धचक्ककहा' और 'जिणरत्तिविहाण कहा' की हैं, जिन के कर्ता कवि नरसेन है।

सिद्धचक्र कथा मे चपा नगरी के राजा श्रीपाल और उनकी धर्मपत्नी मैनासुन्दरी का चरित्र-चित्रण किया गया है। अशुभोदय वस राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियो को भयकर कुष्ठ रोग हो जाता है। रोग की वृद्धि हो जाने पर उनका नगर मे रहना असह्य हो गया, उनके शरीर की दुर्गन्ध से जनता का वहाँ रहना भी दूभर हो गया, तव जनता के अनुरोध से उन्होने अपना राज्य अपने चाचा अरिदमन को

---

२ य शुद्ध सोमकुलपद्मविकासनार्को, जातोर्थिना सुरतरुर्भुवि चङ्गदेव ।
तन्नन्दनो हरिरसत्कविनागसिंह, तस्मात् भिषग्जनपतिर्भुवि नागदेव ॥२॥
तन्नावुभौ सुभिषजाविह हेम-रामौ, रामात्प्रियङ्करइति प्रियदोऽर्थिना य ।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्वुधि पारमाप्त श्रीमल्लुगि जिनपदाम्वुज मत्तभृङ्ग ॥३॥
तज्जोऽह नागदेवाख्य स्तोकज्ञानेन सयुत ।
छन्दोऽलङ्कारकाव्यानि नाभिधानानि वेदम्यहम ॥४॥
कथा प्राकृतवन्धेन हरिदेवेन या कृता ।
वक्ष्ये सस्कृत वधेन भव्याना धर्मवृद्धये ॥५॥ —मदन पराजय

दे दिया और कहा कि जव मेरा रोग ठीक हो जाएगा, मै अपना राज्य वापिस ले लूगा। श्रीपाल अपने साथियो के साथ नगर छोडकर चले गए, और अनेक कष्ट भोगते हुए उज्जैन नगर के बाहर जंगल मे ठहर गए। वहा का राजा अपने को ही सब कुछ मानता था, कर्मो के फल पर उसका विश्वास नही था। उसकी पुत्री मैना सुन्दरी ने जैन साधुओ के पास विद्याध्ययन किया था, और कर्म-सिद्धान्त का उसे अच्छा परिज्ञान हो गया था, उसकी जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी, साथ ही साध्वी और शीलवती थी। राजा ने उससे अपना पति चुनने के लिए कहा, परन्तु उसने कहा कि यह कार्य शीलवती पुत्रियो के योग्य नही है। इस सम्बन्ध मे आप ही स्वय निर्णय करे। राजा ने उसके उत्तर से असतुष्ट हो उसका विवाह कुष्ठ रोगी श्रीपाल के साथ कर दिया। मत्रियो ने बहुत समझाया, परन्तु उस पर राजा ने कोई ध्यान न दिया। निदान कुछ ही समय मे मैनासुन्दरी ने सिद्धचक्र का पाठ भक्ति भाव से सम्पन्न किया, और जिनेन्द्र के अभिषेक जल से उन सबका कुष्ठ रोग दूर हो गया। और वे सुखपूर्वक रहने लगे। पश्चात् श्रीपाल बारह वर्ष के लिए विदेश चला गया, वहां भी उसने अनेक कर्म के शुभाशुभ परिणाम देखे, और बाह्य विभूति के साथ बारह वर्ष वाद मैना सुन्दरी से मिला, उसे पटरानी बनाया, और चपापुर जाकर चाचा से राज्य लेकर शासन किया। और अन्त में तप द्वारा आत्म लाभ किया। इस कथानक से सिद्धचक्रव्रत की महत्ता का आभास मिलता है। रचना सुन्दर और सक्षिप्त है।

दूसरी कृति 'जिनरात्रि कथा' है, जिसे वर्द्धमान कथा भी कहा जाता है। जिस रात्रि मे भगवान महावीर ने अविनाशी पद प्राप्त किया, उसी व्रत की कथा शिवरात्रि के ढग पर रची गई है। उस रात्रि मे जनता को इच्छाओ पर नियत्रण रखते हुये आत्म-शोधन का प्रयत्न करना चाहिए। रचना सरस है, कवि ने रचना में अपना कोई परिचय, गुरु परम्परा तथा समयादि का कोई उल्लेख नही किया। इससे कवि के सम्वन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नही हो सकी। 'सिद्धचक्क कथा' की प्रति स० १५१२ की लिखी हुई मिली है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त ग्रथ उससे पूर्व बन चुका था। कितने पूर्व यह अभी विचारणीय है। फिर भी यह रचना १४वी शताब्दी या उसके आस-पास की जान पड़ती है।

७० वी प्रशस्ति 'अणत्थमिय कहा' की है, जिसके कर्ता कवि हरिचन्द है। प्रस्तुत कथा में १६ कडवक दिये हुए है जिनमे रात्रिभोजन से होने वाली हानियों को दिखलाते हुए उसका त्याग करने की प्रेरणा की गई है और बतलाया गया है कि जिस तरह अन्धा मनुष्य ग्रास की शुद्धि अशुद्धि सुन्दरता आदि का अवलोकन नही कर सकता। उसी प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि मे भोजन करने वाले लोगो से कीड़ी, पतगा, झीगुर, चिउटी, डास, मच्छर आदि सूक्ष्म और स्थूल जीवों की रक्षा नही हो सकती। विजली का प्रकाश भी उन्हे रोकने मे समर्थ नही हो सकता। रात्रि मे भोजन करने से भोजन में उन विषैले जीवो के पेट मे चले जाने से अनेक तरह के रोग हो जाते है, उनसे शारीरिक स्वास्थ्य को बडी हानि उठानी पडती है। अत. धार्मिकदृष्टि और स्वास्थ्य की दृष्टि से रात्रि में भोजन का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है जैसा कि कवि के निम्न पद्य से स्पष्ट है—

जिहि दिट्ठि ण य सरइ अंधुजेम, नहिं गास-सुद्धि भणु होय केम।
किमि-कीड-पयंगइ झिगुराइं, पिप्पीलइं डसइं मच्छिराइं।
खज्जूरइ कण्ण सलाइयाइ, अवरइ जीवइ जे वहुसयाइं।
अन्नाणी णिसि भुजतएण, पसुसरि सुवरिउ अप्पाणु तेण।

घत्ता—ज वालि विदीरणउ करि उज्जोवउ अहिउ जीउ सभवइ परा।
भमराइ पयगइ बहुविह भगइ मडिय दीसइ जित्थु धरा ॥ ५ ॥

कवि का वश अग्रवाल है, उनके पिता का नाम जड्डू और माता का नाम वील्हा देवी था। कवि ने ग्रन्थ मे रचनाकाल नही दिया, परन्तु रचना पर से वह १५ वी शताब्दी की जान पडती है, क्योकि रचना जिस गुच्छक पर से सगृहीत की गई है, वह ३०० वर्ष से पूर्व का लिखा हुआ है।

७१ वी प्रशस्ति से लेकर ७३ वी प्रशस्ति तक तीनो प्रशस्तिया क्रमश चूनडीरास, निज्झरपचमी कहारास और कल्याणक रास की हैं जिनके कर्ता कवि विनयचन्द्र है।

प्रस्तुत चूनडी रास मे ३२ पद्य हैं। जिनमे चूनडी नामक उत्तरीय वस्त्र को रूपक बनाकर एक गीति काव्य के रूप मे रचना की गई है। कोई मुग्धा युवती हसती हुई अपने पति से कहती है कि हे सुभग! जिनमन्दिर जाइये और मेरे ऊपर दया करते हुए एक अनुपम चूनडी शीघ्र छपवा दीजिये, जिससे मे जिन-शासन मे विचक्षण हो जाऊँ। वह यह भी कहती है कि यदि आप वैसी चूनडी छपवा कर नही देंगे, तो वह छीपा मुझे तानाकशी करेगा। पति-पत्नी की बात सुनकर कहता है कि हे मुग्धे! वह छीपा मुझे जैन-सिद्धान्त के रहस्य से परिपूर्ण एक सुन्दर चूनडी छापकर देने को कहता है।

चूनडी उत्तरीय वस्त्र है, जिसे राजस्थान की महिलाएँ विशेष रूप से ओढती थी। कवि ने भी इसे रूपक बतलाते हुए चूनड़ी रास का निर्माण किया है, जो वस्तु तत्व के विविध वाग-भूषणो से भूषित है, और जिसके अध्ययन से जैनसिद्धात के मार्मिक रहस्यो का उद्घाटन होता है। वैसे ही वह शरीर को अलकृत करती हुई शरीर की अद्वितीय शोभा को बनाती है। उससे शरीर को अलकृत करती हुई बालाएँ लोक मे प्रतिष्ठा को प्राप्त होगी और और अपने कण्ठ को भूषित करने के साथ-साथ भेद-विज्ञान को प्राप्त करने मे समर्थ हो सकेंगी। रचना सरस और चित्ताकर्षक है इस पर कवि की एक स्वोपज्ञ टीका भी उपलब्ध है जिसमे चूनडी रास मे दिये हुए शब्दो के रहस्य को उद्घाटित किया गया है। ऐसी सुन्दर रचना को स्वोपज्ञ सस्कृत टीका के साथ प्रकाशित करना चाहिए।

कवि ने इस रचना को 'त्रिभुवनगढ' मे 'अजयनरेन्द्र' के विहार मे बैठकर बनाया है। उस समय त्रिभुवनगढ[1] या तहनगढ जन-धन से समृद्ध था, इसीसे कवि ने उसे 'सग्ग खड ण धरियल आयउ' वाक्य द्वारा उसे स्वर्गखण्ड के तुल्य बतलाया है। प्रस्तुत 'अजयनरेन्द्र' तहनगढ के राजा कुमारपाल का भतीजा था और उसके बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था। सवत् १२५३ में वहा कुमारपाल का राज्य था, उस समय मुहम्मद गौरी ने सन् ११४६ मे उस पर अधिकार कर लिया था। तब समस्त व्यापारी जन नगर छोडकर इधर-उधर भाग गये थे, नगर जन-धन से शून्य हो गया था। वहा अनेक मन्दिर और शिवालय थे। मूर्ति-पूजा का वहा बहुत प्रचार था, किन्तु मुसलमानो का अधिकार होते ही अनेक मन्दिर-मूर्तिया धराशायी करा दी गई थी, जिससे नगर श्रीहीन और वीरान-सा हो गया था। मुहम्मद गौरी ने वहा का शासक बहरुद्दीन तुग़रिक को नियुक्त किया था, उसने दूर-दूर से बसने के लिये व्यापारियो को बुलाया था,

१ त्रिभुवनगढ या तहनगढ राजस्थान के ऐतिहासिक स्थान है। जो 'बहनपाल' के द्वारा बसाया गया था बयाना 'तहनगढ़' और करौली ये तीनो स्थान इस वश के द्वारा शासित रहे हैं। प्रस्तुत अजयनरेन्द्र करौली के राजवश-सूची से कुमारपाल का भतीजा ज्ञात होता है। तहनगढ़ के सम्बन्ध मे अन्यत्र पाद टिप्पण मे विचार किया गया है, पाठक वहाँ देखें।

खुराशान से भी लोग वसने को आए थे। सम्भव है कुछ दिनों के वाद उसकी समृद्धि पुनः हो गई हो। मुनि विनयचन्द ने अपनी चूनडी अजयराजा के विहार मे बैठकर बनाई थी।

७२ वी प्रशस्ति 'निर्झरपचमीकहारास की हैं। जिसमे निर्झर पंचमी के व्रत का फल बतलाया गया है। जो व्यक्ति पचमी व्रत का निर्दोष रूप से पालन करता है, वह अविकल सिद्ध पद को पाता है। इस व्रत की विधि वतलाते हुए लिखा है कि 'आषाढ शुक्ला पचमी के दिन जागरण करे और उपवास करे तथा कार्तिक के महीने मे उसका उद्यापन करे अथवा श्रावण मे आरम्भ करके अगहन के महीने में उद्यापन करे और उद्यापन मे छत्र-चमरादि पांच-पाँच वस्तुएँ मन्दिर जी मे प्रदान करे[1]। यदि उद्यापन की शक्ति न हो, तो व्रत दूने समय तक करे।' इस रास को कवि ने त्रिभुवनगिरि की तलहटी मे बनाया था। रचना सुन्दर और सरस है।

७३ वी प्रशस्ति 'कल्याणक रास' की है, जिसमे जैन तीर्थंकरो के पंचकल्याणको की तिथियो का निर्देश किया गया है।

कवि परिचय

प्रस्तुत कवि विनयचन्द माथुरसघ के भट्टारक उदयचन्द के प्रशिष्य और बालचन्द मुनि के शिष्य थे। इन्होंने अपनी दोनो रचनाएँ त्रिभुवनगिरि मे बनाई थी। किन्तु तीसरी रचना में उसके स्थान का कोई निर्देश नही किया, जिससे यह कहना कठिन है कि वह कहा पर वनी है। रचना समय तीनो मे ही नही दिया है। सवत् १४५५ के गुच्छक मे[2] लिखी हुई कल्याणकरास की एक प्रति श्री प० दीपचद पाड्या केकडी के पास है, उससे इतना तो सुनिश्चित हो जाता है कि उक्त ग्रथ उससे पूर्व ही रचा गया है। चूनडीरास त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल के भतीजे अजयराज के विहार मे बैठकर बनाने का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। जिसका नाम करोली के शासको की सूची में दर्ज है। सवत् १२५३ मे त्रिभुवनगिरि का विनाश हुआ था, उसके बाद ही किसी समय 'चूनडीरास' रचा गया है। अजयराज के राज्य काल मे नही इससे जान पडता है कि कवि का रचनाकाल वि० की १३वी शताब्दी का मध्यकाल या १४वी शताब्दी का प्रथम चरण है।

यहा यह लिखना अप्रासगिक न होगा कि डा० प्रेमसागर जी ने हाल ही मे 'जैन-भक्ति काव्य' नामका निवन्ध, जो भिक्षु अभिनन्दन ग्रथ के खण्ड दो, पृष्ठ १२३ पर छपा है। उसमे भट्टारक विनयचन्द्र का समय वि० स १५७६ बतलाया है। उनके वे वाक्य इस प्रकार हैं—

"विनयचन्द्र मुनि इसी शती के सामर्थ्यवान् कवि थे। वे माथुर सघीय भट्टारक बालचन्द्रके शिष्य थे। विनयचन्द्र सूरि से स्पष्टतया पृथक् है। विनयचन्द्र सूरि चौदहवी शती के रत्नसिह सूरि के शिष्य थे। मुनि विनयचन्द्र गिरिपुर के राजा अजय नरेश के राज्यकाल में हुये हैं। उनका समय वि० स० १५७६ माना जाता है।"

---

१ धवल पक्खि आसाढहिं पचमि जागरणू,
सुह उपवासइ किज्जइ कातिग उज्जवणू।
अह सावण आरंभिय पुज्जइ आगहणे,
इह मइ णिज्झर पचमि अक्खिय भय-हरणे॥

२ संवत् १४५५ साके १३२० तारणनाम संवत्सर "समये पौषवदि २ भौमवासरे" टंडास्थाने शाखासपुरास्थाने भट्टारक श्रीललितकीर्तिदेवा ग्रन्थलिखापितं, काशीपुरे वाइ विमलसिरि प्रेपित द्रव्य (व्येन) कर्मक्षय निमित्त लेखावतमिति। सुबुद्धि सुपुत्र पद्मसीह लिखितं। शुभमस्तु। —गुच्छक पृ० १०४

डा० साहब का समय-सम्बन्धी निष्कर्ष ठीक नही है। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से तो वे पृथक् है ही। वि० स० १५७६ विनयचन्द्र का समय नही है किन्तु उस गुच्छक के लिपि होने का समय है जो सुनपत (वर्तमान सोनीपत) मे उक्त सवत् मे लिखा गया था। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से भट्टारक विनयचन्द्र पूर्ववर्ती हैं। कवि ने कुमारपाल के भतीजे अजयनरेश के विहार मे बैठकर तहनगढ मे चूनडी रास बनाया है। स० १४५५ की तो कल्याणक रास की लिखित प्रति उपलब्ध है। विनयचन्द्र मुनि का समय विक्रम की १३ वी शताब्दी का मध्य भाग या चौदहवी का प्रारम्भिक भाग हो सकता है। उससे बाद का नही।

७४वी प्रशस्ति 'सोखवइविहाणकहा' की है कि जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति हैं।

प्रस्तुत कथा मे व्रत की विधि और उसके फल का विधान किया गया है। कवि ने अपनी कोई गुरु परम्परा और रचना काल नही दिया। पर-सूत्रो से यह ज्ञात होता है कि प्रस्तुत कवि माथुर गच्छ बागडसघ के मुनि रामकीर्ति के शिष्य थे। जिनका समय विक्रम की १३वी शताब्दी का है[1]।

राजस्थान शास्त्र भन्डार की ग्रन्थ सूची न० ४ के पृष्ठ ६३२ पर 'सुगन्धदशमी कथा' का उल्लेख है, जिसकी अन्तिम प्रशस्ति मे विमलकीर्ति को रामकीर्ति का शिष्य बतलाया गया है[2]। इससे यह रचना उन्ही की जान पडती है। उनकी अन्य क्या रचनाये हैं। यह अभी ज्ञात नही हो सका। प्रस्तुत बागडसघ के रामकीर्ति कब हुए, यहा यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के दो विद्वानो का नाम मेरे ऐतिहासिक रजिस्टर मे उल्लिखित है[3]। उनमे से प्रथम रामकीर्ति ही विमलकीर्ति के गुरु हो सकते है। ये रामकीर्ति वही जान पडते हैं, जो जयकीर्ति के शिष्य थे, और जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड मे स० १२०७ मे उत्कीर्ण की गई उपलब्ध है[4]। इससे रामकीर्ति का समय विक्रम की १३वी शताब्दी है। क्योकि जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यश कीर्ति ने जो विमलकीर्ति के शिष्य थे। अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे श्वेताम्बरीय विद्वान् धनेश्वरसूरि का उल्लेख किया है जो अभयदेवसूरि के शिष्य थे[5] और जिनका समय स० ११७१ है। इससे भी प्रस्तुत राम-

---

१ आसि पुरा वित्थिण्णे वायडसंघे ससघ-सकासो।
मुणिराम इत्तिधीरो गिरिव्व णइसुव्व गभीरो ॥१८॥
सजाउ तस्स सीसो विवुहो सिरि 'विमल इत्ति' विक्खाओ।
विमलयइकित्ति खडिया धवलिय धरणियल गयणयलो ॥१६॥
—जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

२ रामकित्ति गुरु विणउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरण करेविणु सइ अणुकमेण सो मोक्ख लहेसइ॥ —सुगन्ध दशमी कथा प्रशस्ति

३ प्रथम रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, देखो एपि ग्राफिका इँडिका जि० २, पृ० ४२१ दूसरे रामकीर्ति जो मूलसघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने स० १४१३ में वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य मे लबकंचुकान्वयी श्रावक ने एक जिन मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जो भूगर्भ से प्राप्त होकर भोगाव के मदिर मे खडितावस्था मे मौजूद है। (देखो, जैन सि० भा० भा० २२ अक २।

४ एपिग्राफिका इडिका जि० २ पृ० ४२१

५ सुवणाण मज्झण्णो ताण पसाएण इट्ठसपत्त।
णमिऊण तस्स चलणे भावेण धणेसर गुरुस्स ॥४॥ —जगत्सुदरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

कीर्ति १२वी के अन्तिम चरण और १३वी के प्रारम्भिक विद्वान ज्ञात होते है और विमलकीर्ति का समय भी १३वी शताब्दी सुनिश्चित हो जाता है। यहा यह विचार अप्रासगिक न होगा कि विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' के पृष्ठ २६३ में जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यश कीर्ति का समय 'अनुमानतः १५ वी सदी है' ऐसा लिखा है जो किसी भूल का परिणाम है। ऊपर जो विचार किया गया है उससे स्पष्ट है कि ये यशःकीर्ति विक्रम की १३ वी शताब्दी के विद्वान थे। उनकी दृष्टि धनेश्वर गुरु के उल्लेख पर नही गई जान पडती, इसीसे ऐसा लिखा है।

७५वी प्रशस्ति 'चन्दण छट्ठी कहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण या लाखू है। इस कथा मे 'चन्दन छठ' के व्रत का परिणाम बतलाया गया है, और व्रत विधि के साथ उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है।

कथाकार ने अपना कोई परिचय नही दिया और न अपनी गुरु परम्परा ही दी, जिससे यह कहना अत्यन्त कठिन है कि प० लक्ष्मण की या लाखू की गुरु परम्परा क्या है और वे किस वश के थे ? अपभ्रश भाषा के दो कवि लक्ष्मण नाम के है। उनमे प्रथम लक्ष्मण कवि वे है, जो जैसवाल वश मे उत्पन्न हुए थे, इन के पिता का नाम 'साहुल' था, यह 'त्रिभुवनगिरि' या तहनगढ के निवासी थे, उसके विनष्ट होने पर बिल-राम पुर आये थे, वहा पुरवाड वशीय सेठ श्रीधर की प्रेरणा से लक्ष्मण ने जिनदत्तचरित्र की रचना सं० १२७५ मे पौष कृष्णा षष्ठी रविवार के दिन की थी[1]। इनका परिचय अन्यत्र दिया हुआ है।

दूसरे कवि लक्ष्मण वे है, जो रतनदेव वणिक के पुत्र थे और जो मालव देश के 'गोणदनगर' के निवासी थे। इन्होने ८२ कडवको और चार सधियो मे 'णेमिणाह चरिउ' की रचना की थी। इन दोनो लक्ष्मणो मे से यह कथा किस की बनाई हुई है या लक्ष्मण नाम के कोई तीसरे ही कवि इस कथाके कर्ता है। यह सब अनुसन्धान करने की जरूरत है।

७६वी और ७७वी प्रशस्तिया क्रमश 'निर्दुख सप्तमी कथा' और 'दुद्धारस कथा' की है, जिनके कर्ता मुनि बालचन्द्र है।

प्रस्तुत कथाओं में व्रतों के फल का विधान किया गया है और व्रतो के अनुष्ठान की विधि बतलाते हुए उनके आचरण की प्रेरणा की गई है।

मुनि बालचन्द्र माथुरसघ के विद्वान उदयचन्द मुनि के शिष्य और विनयचन्द मुनि के गुरु थे। विनयचन्द्र का समय विक्रम की १३ वी शताब्दी का अन्तिम चरण और १४ वी शताब्दी का प्रथम चरण है। अतएव इनके गुरु मुनि बालचन्द का समय विक्रम की १३ वी शताब्दी का मध्य चरण हो सकता है पर निश्चित समय के लिए अभी और भी अन्वेषण की जरूरत है।

७८वी प्रशस्ति भी 'रविवय कहा' की है, जिसके कर्ता उक्त माथुर सघी मुनि नेमचन्द्र है।

प्रस्तुत कथा मे रविवार के व्रत की विधि और उसके फल प्राप्त करने वाले की कथा दी गई है। ग्रन्थ प्रशस्ति मे रचना काल दिया हुआ नही है। अतएव यह भी कहना कठिन है कि उनका निश्चित समय क्या है ? कथा के भाषा साहित्यादि पर से यह रचना १५ वी शताब्दी की जान पडती है। हो सकता है कि वह इससे भी पूर्व रची गई हो। अन्य साधन सामग्री का अन्वेषण कर कवि का यथार्थ समय निश्चित करना आवश्यक है।

---

१. बारहसय सत्तरय पचोत्तरय विक्कमकाल वियत्तउ।
पढमपक्खि रविवारइ छट्ठि सहारइ पूसमास सम्मत्तउ॥ — जिनदत्त चरित प्रशस्ति

७९वी प्रशस्ति 'सुगन्धदशमी कथा' की है जिसके कर्ता कवि नयनानन्द है।

प्रस्तुत कृति मे दो सन्धिया और २१ कडवक हैं। जिसमे मुनि निन्दा रूप पाप के फल से होने वाली शारीरिक दुर्गन्धता और कुयोनियो मे भ्रमण आदि के दुखो तथा सुगन्धदशमी व्रत के अनुष्ठान के परिणाम स्वरूप होने वाली शारीरिक सुन्दरता और उच्च कुल आदि की प्राप्ति का फल दिखलाया गया है। यह कथा कब रची गई इसका कवि ने कही कोई उल्लेख नही किया है। प्रस्तुत ग्रथ की प्रशस्ति पचायती मदिर खजूर मस्जिद दिल्ली की अशुद्धि प्रति पर से दी गई है। हाल मे इसकी दूसरी प्रति जयपुर के बडे तेरापथी मन्दिर के शास्त्र भडार से देखने को मिली, जो प्राय शुद्ध है और विक्रम सवत् १५२४ की लिखी हुई है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रथ स० १५२४ के बाद का लिखा हुआ नही है किन्तु पूर्ववर्ती है। और सम्भवत विक्रम की १५ वी शताब्दी या इससे भी कुछ पूर्व रची गई हो। कवि खुशालचन्द ने इसका हिंदी पद्यानुवाद भी कर दिया है जो भद्रपद शुक्ला दशमी के दिन शास्त्र सभा मे पढा जाता है। कथा रोचक और सरस है।

८०वी प्रशस्ति 'मुक्तावलि कथा' की है, जिसके कर्ता कोई अज्ञात कवि है। ग्रथ मे मुक्तावलि व्रत के विधान और उसके फल की कथा दी गई है। कथा मे रचनाकाल भी नही दिया है। जिससे उसके सबध मे निश्चयत कुछ भी नही कहा जा सकता। सभव है अन्वेषण करने पर किसी प्रति मे कर्ता का नाम भी उपलब्ध हो जाय।

जयपुर के पाटौदीमदिर के शास्त्रभडार मे 'मुक्तावलि विधान कथा' की एक अपूर्ण प्रति उपलब्ध है[1]। जो सवत् १५४१ फाल्गुण सुदी ५ की लिखी हुई है। यदि यह कथा वही हो, जिसकी सभावना की गई है, तो इसका रचनाकाल भी विक्रम की १५ वी शताब्दी होना चाहिए। अधिकाशत अपभ्रश की कथाए १५वी १६वी शताब्दी मे ही अधिक लिखी गई है।

८१वी प्रशस्ति 'अनुपेहारास' की है जिसके कर्ता कवि जल्हिग हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे कवि ने, अनित्य अशरण, ससार, एकत्व अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, सवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ और धर्म, इन बारह भावनाओ के स्वरूप को दिखलाते हुए उनके बार-बार चिन्तन करने की प्रेरणा की है। वास्तव मे ये भावनाए देह-भोगो के प्रति अरुचि उत्पन्न कराती हुई आत्म-स्वरूप की ओर आकृष्ट करती हैं। इसीलिए इन्हे माता के समान हितकारी बतलाया है। कवि जल्हिग कब हुए, यह रचना पर से ज्ञात नही होता। सभवत· इनका समय विक्रम की १४वी या १५ वी शताब्दी हो।

८२वी प्रशस्ति 'वारस अणुवेक्खारास' की है। जिसके कर्ता प० योगदेव है।

इस ग्रन्थ मे भी अनित्यादि बारह भावनाओ का स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। कवि ने इस ग्रथ को कुम्भनगर के मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय मे बैठकर बनाया है। इनका समय और गुरुपरम्परा अभी अज्ञात है। प्रस्तुत कुम्भनगर कनारा जिले मे बसा हुा है। इनकी एक कृति तत्त्वार्थ-सूत्र की टीका 'सुखबोध-वृत्ति है। जिसका परिचय जैनग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह के प्रथम भाग मे दिया गया है[2]। उससे ज्ञात होता है कि कवि राज्य मान्य थे। और राजा भुजबली भीमदेव की राज्य सभा मे उन्हे उचित सम्मान मिला हुआ था, उक्त राजा भुजबली भीमदेव कनारा जिले मे किस प्रदेश के शासक थे और कब तक उन्होने वहाँ राज्य

१ देखो, राजस्थान के जैन ग्रन्थभडारो की सूची चतुर्थभाग पृ० २३६

२ देखो, जैनग्रथ प्रशस्ति सग्रह भा० १ प्रस्तावना पृ० ४७।

किया है। इसके ज्ञात होने पर या कवि की गुरु परम्परा मिलने पर ग्रन्थ कर्ता के समय का यथार्थ निश्चय हो सकता है।

८३वीं प्रशस्ति 'अणुवेक्खा दोहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मीचन्द है। प्रस्तुत ग्रथ में अनित्यादि बारह भावनाओ का ४७ दोहो में परिचय कराया गया है। और अन्त मे उनका फल बतलाते हुए लिखा है कि—'जो मानव व्रत-तप-शील का अनुष्ठान करते हुए निर्मल आत्मा को जानता है, वह कर्मक्षय करता हुआ शीघ्र ही निर्वाण का पात्र होता है।

कवि की एक दूसरी कृति 'सावयधम्म दोहा' है जिसमें २२४ दोहा दिये हुए है, जिनमे श्रावकाचार का सरस वर्णन अन्य श्रावकाचारों के अनुसार ही किया गया है। किन्तु इसमें अध्यात्म की पुट है। इस कारण रचना मे वैशिष्ट्य आ गया है। रचना सुन्दर और सरस है। कोई कोई दोहा चुभता हुआ-सा है। यह ग्रथ कब बना, इसके जानने का कोई साधन नही है, फिर भी यह रचना पुरानी है। ग्रन्थ कर्ता लक्ष्मीचन्द किस परम्परा के थे, उनकी गुरु परम्परा क्या है ? यह कुछ ज्ञात नही होता। इस नाम के अनेक कवि हुए है।

इस 'श्रावकाचार दोहा' की एक प्रति सं १५५५ मे कार्तिक सुदी १५ सोमवार के दिन सरस्वती गच्छ बलात्कारगण के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य लक्ष्मण के पठनार्थ लिखी गई है[१] जिससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उक्त ग्रन्थ उससे बाद का नही हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है। कितने पूर्ववर्ती है, यह विचारणीय है, सभवत यह १५वी शताब्दी की रचना हो, विक्रम की १६वी शताब्दी के विद्वान ब्रह्म श्रुतसागर ने अपने टीकाग्रन्थो मे इस ग्रथ के दोहा लक्ष्मीचद के नाम से ही उद्धृत किये है। इससे यह भी सुनिश्चित है कि कवि श्रुतसागर से पूर्ववर्ती है। कवि का समय १५ वी शताब्दी का उत्तरार्ध और १६वी का प्रारम्भ भी हो सकता है, किन्तु अभी इस सम्बध में और भी प्रमाणो के खोजने की जरूरत है।

८४वी प्रशस्ति 'अणुवेक्खा' की है जिसके कर्ता कवि अल्हू हैं।

इस ग्रन्थ मे आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए ससार और उसके स्वरूप को बतलाकर ससार की असारता का दिग्दर्शन कराते हुए जीव का पर द्रव्य से होने वाले राग को हेय बतलाया है। साथ ही, यह भी प्रकट किया है कि शरीर की अशुचिता उससे राग करने योग्य नही है। वह मल पूरित और दुर्गन्ध से युक्त है। इस जीव का कोई सगा साथी भी नही है, सभी स्वार्थ के साथी है, अतएव उनसे राग कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह जीवात्मा अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही सुख-दुखरूप कर्मो के फलो का उपभोग करता है। मन वचन काय की चचल प्रवृत्ति से कर्म आते है। उनके बधन से आत्मा परतन्त्रता का अनुभव करता है अतएव आस्त्रव और बंध के कारणो का परित्याग करना ही श्रेयकर है। साथ ही अपनी इच्छाओ का सवरण करते हुए फल की अनिच्छा पूर्वक तपश्चरण द्वारा कर्म की निर्जरा करना चाहिए, और दुर्लभ रत्नत्रय रूप बोधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह अनित्यादि बारह भावनाओ का चिन्तन करते हुए आत्मा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना आवश्यक है। कवि ने रचना मे अपना कोई परिचय नही दिया, और न गुरु परम्परा ही दी है, जिससे समय निर्णय किया जा सके। फिर भी यह रचना भाषा साहित्यादि पर से १५वी-१६वी शताब्दी की जान पडती है।

---

२ 'स्वस्ति सवत् १५५५ वर्षे कार्तिक सुदी १५ सोमे श्री मूलसघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री विद्यानन्दि तत्पट्टे भट्टारक मल्लिभूषण तच्छिष्य पडित लक्ष्मण पठनार्थं दूहा श्रावकाचार शास्त्र समाप्त।
—राजस्थान ग्रथ-सूची भा० ४ पृ० ५२।

८५वी-८६वी और १०७वी प्रशस्तियाँ क्रमश हरिवशपुराण, परमेष्ठी प्रकाशसार और योगसार की हैं, जिनके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं।

पहली कृति 'हरिवंश पुराण' है जिसमे ४७ सन्धियो द्वारा जैनियो के २२वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के जीवन-परिचय को अकित किया गया है। प्रसगवश उसमे श्रीकृष्ण आदि यदुवशियो का सक्षिप्त जीवन चरित्र भी दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई है। एक प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा मे है, और दूसरी आमेर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति के शास्त्र भडार मे उपलब्ध है, जो सवत् १६०७ की लिखी हुई है। और जिसका रचनकाल सवत् १५५२ है। इसकी लिपि-प्रशस्ति भी परिशिष्ट मे दे दी गई है। आरा की वह प्रति स० १५५३ की लिखी हुई[1] और जिसमे ग्रन्थ के पूरा होने का निर्देश है जो मडपाचल (माडू) दुर्ग के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य काल मे दमोवादेश के जेरहट नगर के महाखान और भोजखान के समय लिखी गई है। ये महाखान, भोजखान जेरहट नगर के सूबेदार जान पडते है। वर्तमान मे जेरहट नाम का एक नगर दमोह के अन्तर्गत है यह दमोह पहले जिला रह चुका है। बहुत सम्भव है कि यह दमोह उस समय मालवराज्य मे शामिल हो। और यह भी हो सकता है कि माडवगढ के समीप ही कोई जेरहट नाम का नगर रहा हो, पर उसकी सभावना कम ही जान पडती है। क्योकि प्रशस्ति मे दमोवा देश का उल्लेख स्पष्ट है।

८६वी प्रशस्ति 'परमेष्ठीप्रकाश सार' की है, इसकी एकमात्र प्रति आमेर ज्ञान भडार में ही उपलब्ध हुई है। जिसमे आदि के दो पत्र और अन्तिम पत्र नही है। पत्र सख्या २८८,है ग्रथ मे ७ परिच्छेद या अध्याय हैं, जो तीन हजार श्लोक प्रमाण को लिये हुए है। ग्रन्थ का प्रमुख विषय धर्मोपदेश है। इसमे सृष्टि और जीवादि तत्त्वो का सुन्दर विवेचन कडवक और घत्ता शैली मे किया गया है। कवि ने इस ग्रन्थ को भी उक्त माडवगढ के जेरहट नगर के प्रसिद्ध नेमीश्वर जिनालय मे की है। उस समय वहाँ ग्यासुद्दीन का राज्य था और उसका पुत्र नसीरशाह राज्य कार्य मे अनुराग रखता था। पुजराज नाम के एक वणिक उसके मन्त्री थे। ईश्वरदास नाम के सज्जन उस समय प्रसिद्ध थे। जिनके पास विदेशो से वस्त्राभूषण आते थे। जयसिंह, सघवी शकर, तथा सघपति नेमिदास उक्त अर्थ के ज्ञायक थे। अन्य साधर्मी भाइयो ने भी इसकी अनुमोदना की थी और हरिवशपुराणादि ग्रन्थो की प्रतिलिपिया कराई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ विक्रम स० १५५३ की श्रावण महीने की पचमी गुरुवार के दिन समाप्त हुआ था।

एकसौ सात (१०७) वीं प्रशस्ति 'जोगसार' की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दो परिच्छेदो या सधियो मे विभक्त है, जिनमे गृहस्थोपयोगी आचार-सम्बन्धी सैद्धान्तिक बातो पर प्रकाश डाला गया है। साथ मे कुछ मुनिचर्या आदि के विषय मे भी लिखा गया है।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग मे भगवान महावीर के बाद के कुछ आचार्यों की गुरु परम्परा के उल्लेख के साथ कुछ ग्रथकारो की रचनाओ का भी उल्लेख किया गया है, और उससे यह स्पष्ट जान पडता है कि

१ सवत् १५५३वर्षे क्वारवादि द्वज सुदि (द्वितीया) गुरौ दिने अद्येह श्री मण्डपाचल गढदुर्गे सुलतान गया सुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री दमोवादेशे महाखान भोजखान वर्तमाने जेरहट स्थाने सोनी श्री ईसुर प्रवर्तमाने श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मडलाचार्य देविन्दकीर्तिदेव तच्छिष्य मडलाचार्य श्री त्रिभुवनकीर्ति देवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्ति हरिवश पुराणे परिपूर्ण कृतम्''' ''। आराप्रति

भट्टारक श्रुतकीर्ति इतिहास से प्राय अनभिज्ञ थे और उसे जानने का उन्हे कोई साधन भी उपलब्ध न था, जितना कि आज उपलब्ध है। दिगम्बर-श्वेताम्बर सघ भेद के साथ आपुलीय (यापनीय) सघ भिल्ल और नि·पिच्छक सघ का नामोल्लेख किया गया है। और उज्जैनी मे भद्रबाहु से सम्राट् चन्द्रगुप्त की दीक्षा लेने का भी उल्लेख है। ग्रथकार सकीर्ण मनोवृत्ति को लिये हुए था, वह जैनधर्म की उस उदार परिणति से भी अनभिज्ञ था। इसीसे उन्होने लिखा है कि 'जो आचार्य शूद्र पुत्र और नौकर वगैरह को व्रत देता है वह निगोद मे जाता है और वह अनन्तकाल तक दु ख भोगता है[1]।' प्रस्तुत ग्रन्थ सं० १५५२ में मार्गशिर महीने के शुक्ल पक्ष मे रचा गया है।

कवि की इन तीन कृतियो के अतिरिक्त 'धम्मपरिक्खा' नाम की एक चौथी कृति भी है जो अपूर्ण रूप मे डा० हीरालाल जी एम० ए० डी० लिट् को प्राप्त हुई है। जिसका परिचय उन्होने अनेकान्त वर्ष ११ किरण २ में दिया है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त धर्मपरीक्षा मे १७९ कडवक है और जिसे कवि ने स० १५५२ मे बनाकर समाप्त किया था[2]। इन चारो रचनाओ के अतिरिक्त आपकी अन्य क्या रचनाएँ हैं वे अन्वेषणीय है।

कवि परिचय -

भट्टारक श्रुतकीर्ति नन्दीसघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। यह भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। ग्रथकर्ता ने भ० देवेन्द्रकीर्ति को मृदुभाषी और अपने गुरु त्रिभुवनकीर्ति को अमृतवाणी रूप सद्गुणो के धारक बतलाया है। श्रुतकीर्ति ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को अल्प बुद्धि बतलाया है। कवि की उक्त सभी रचनाएँ वि० स० १५५२ और १५५३ में रची गई है। और वे सब रचनाएँ माडवगढ (वर्तमान माडू) के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य मे दमोवा देश के जेरहट नगर के नेमिनाथ मदिर मे रची गई है।

इतिहास से प्रकट है कि सन् १४०६ मे मालवा के सूबेदार दिलावर खाँ को उसके पुत्र अलफ खाँ ने विष देकर मार डाला था, और मालवा को स्वतन्त्र उद्घोषित कर स्वय राजा बन बैठा था। उसकी उपाधि हुशंगसाह थी। इसने माडवगढ को खूब मजबूत बनाकर उसे ही अपनी राजधानी बनाई थी। उसी के वंश में ग्यासुद्दीन हुआ, जिसने माडवगढ से मालवा का राज्य स० १५२६ से १५५७ अर्थात् सन् १४६९ से १५०० ईस्वी तक किया है[3]। इसके पुत्र का नाम नसीरशाह था, और इसके मत्री का नाम पुजराज था, जो जैनधर्म का प्रति पालक था।

८७वी प्रशस्ति 'सतिणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र है। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ परिच्छेद है जिनकी आनुमानिक श्लोक सख्या पाँच हजार के लगभग है, जिनमे जैनियो के १६वे तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्ती का चरित्र दिया हुआ है। जो चक्रवर्ती, कामदेव और धर्मचक्री थे। जिन्होने चक्रवर्ती के अनेक उत्तमोत्तम भोग भोगे। और अन्त मे इन्द्रिय-विषयो को दुखद जान देह-भोगो से विरक्त हो दिगम्बर दीक्षा धारण कर तपश्चरण किया, और समाधिरूप चक्र से कर्म-शत्रुओं को विनष्ट कर धर्मचक्री बने। विविध देशो मे विहार कर जगत को कल्याण का मार्ग बतलाया। पश्चात् अवशिष्ट अघाति कर्म का

१ अह जो सूरि देइ वउ णिच्चह, णीच-सूद-सुय-दासी-भिच्चह।
जाम णियअसुह अणु हुज्जइ, अमियकाल त्तह घोर-दुह भुजइ ॥ —योगसार पत्र ६५

२. See Combridge shorter History of India. P. ३०९.

विनाश कर आत्मानन्द मे निमग्न हो गए। जो सदाकाल निजानन्दरस मे छके रहेगे। कवि ने ग्रन्थ मे चौपाई, पद्धडिया और सोरठा आदि छन्दो का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना जोयणिपुर[1] (दिल्ली) निवासी अग्रवाल कुलभूषण गर्ग गोत्रीय साहु भोजराज के ५ पुत्रो मे (खीमचद(खेमचन्द) णाणचद(ज्ञानचन्द) श्रीचद गजमल्ल और रणमल) इनमे से द्वितीय पुत्र ज्ञानचन्द के पुत्र विद्वान साधारण श्रावक की प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसीसे कवि ने ग्रथ साधारण के नामाकित किया है और ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे साधारण के वश का परिचय कराया गया है। उसने हस्तिनागपुर की यात्रार्थ सघ चलाया था और जिनमन्दिर का निर्माण भी कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी करवाई थी तथा पुण्यउपार्जन किया था। भोजराज के पुत्र ज्ञानचद्र की पत्नी का नाम 'सउराजही' था, जो अनेक गुणो से विभूषित थी, उससे तीन पुत्र हुए थे। पहला पुत्र सारग साहु था, जिसने सम्मेदशिखर की यात्रा की थी। उसकी पत्नी का नाम 'तिलोकाही' था। दूसरा पुत्र साधारण था, जो बडा विद्वान् और गुणी था, उसका वैभव बहुत बढा चढा था। उसने 'शत्रुजय' की यात्रा की थी। उसकी स्त्री का नाम 'सीवाही था, उससे चार पुत्र हुए थे। अभयचद्र, मल्लिदास जितमल्ल और सोहिल्ल। इनकी चारो पत्नियो के नाम क्रमश —चदणही, भदासही समदो और भीखणही थे, ये चारो ही पतिव्रता और धर्मनिष्ठा थी। इस तरह साधारण साहु ने समस्त परिवार के साथ शातिनाथ चरित बनवाया था।

कवि ने इस ग्रथ की रचना विक्रम स० १५८७ की कार्तिक कृष्णा पचमी के दिन मुगल बादशाह बाबर[2] के राज्य काल में बनाकर समाप्त किया था[3]। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान कवियो का स्मरण किया है। अकलक, पूज्यपाद (देवनदी) नेमिचद्र सैद्धातिक, चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदत, यश कीर्ति रइधू, गुणभद्रसूरि, और सहणपाल। इनमे से सहनपाल का कोई ग्रथ अभी तक देखने मे नही आया।

ग्रथकर्ता ने अपना और अपने पिता के नामोल्लेख के सिवाय अन्य कोई परिचय नही दिया है। किंतु काष्ठासघ माथुरगच्छ की भट्टारकीय परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—काष्ठा सघ[4] माथुरगच्छ पुष्करगण मे भट्टारक यश कीर्ति मलयकीर्ति और उनके शिष्य गुणभद्रसूरि थे। इससे यह

१ जोयणिपुर दिल्ली का नाम है। यहा ६४ योगिनियो का निवास था, और उनका मन्दिर भी बना हुआ था इस कारण इसका नाम योगिनीपुर पडा है। जोयणिपुर अपभ्रश का रूप है। विशेष परिचय के लिए देखिए अनेकान्त वर्ष १३ किरण १ मे 'दिल्ली के पाच नाम 'शीर्षक मेरा लेख।

२ बाबर ने सन् १५२६ ईस्वी मे पानीपत की लडाई मे दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी को पराजित और दिवगत कर दिल्ली का राज्य शासन प्राप्त किया था, उसके बाद उसने आगरा पर भी अधिकार कर लिया था, और सन् १५३० (वि० स० १५८७) मे आगरा मे ही उसकी मृत्यु हो गई थी। इसने केवल ५ वर्ष ही राज्य किया है।

३ विक्कमरायहुववगयकालइ रिसिवसु-सर भुवि-अकालइ।
कत्तिय—पढम-पक्खि पचमि दिणि, हुउ परिपुण्ण वि उग्गतइ इणि। शातिनाथ चरित प्र०

४ जोयणिपुर (दिल्ली) के उत्तर मे जमुना नदी के किनारे बसी हुई काष्ठापुरी' मे टाकवश के राजा मदनपाल के आश्रय मे पेदिभट्ट के पुत्र विश्वेश्वर ने 'मदन परिजात' नाम का निबध १४वी शताब्दी के अन्त समय मे लिखा था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् म० म० ओझा जी के अनुसार काष्ठा नामक नगर मे नागवशियो की टाँक शाखा के राजाओ का छोटा सा राज्य था। इससे काष्ठासघ की उत्पत्ति का स्थान दिल्ली की काष्ठापुरी ही जान पडती है। दूसरे काष्ठासघ का सम्बन्ध अग्रवालो के साथ है।

स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत कवि इन्ही की आम्नाय का था। पर इनमे से किसका शिष्य था यह कुछ ज्ञात नही होता।

८८वी, १०८वी, और १०९वी ये तीनो प्रशस्तियाँ क्रमश 'मियंकलेहाचरिउ' सुयधदसमी, और मउडसत्तमी कहा रास की है, जिनके कर्ता पडित भगवतीदास है।

मृगाक लेखाचरित मे चार सन्धियां है, जिनमे कवि ने चन्द्रलेखा और सागरचन्द्र के चरित का वर्णन करते हुए चन्द्रलेखा के शीलव्रत का माहात्म्य ख्यापित किया है। चन्द्रलेखा विपदा के समय साहस और धैर्य का परिचय देती हुई अपने शीलव्रत से जरा भी विचलित नही होती, प्रत्युत उसमे स्थिर रहकर उसने सती सीता के समान अपने सतीत्व का जो अनुपम आदर्श उपस्थित किया है, वह अनुकरणीय है।

ग्रथ की भाषा यद्यपि अपभ्रश है, फिर भी उसका वह रूप हिन्दी भाषा के अधिक नजदीक ही नही है किन्तु उसके विकास का स्पष्ट बोधक है। जैसा कि उसके निम्न दोहों से स्पष्ट है।

"ससिलेहा णियकंत सम, धारइ सजमु सारु।
जम्मणु मरण जलजली, दाण सुयणुभव-तारु।।
करितणुतउसिउपुरगयउ, सो वणि सायरचदु।
ससिलेहा सुरवरुभई तजि तिय-तणु अइणिदु।
लहि णरभवु णिरवाण पर पावसि सुदरि सोइ।
कवि सुभगौतीदासु कहि पुणभव-भमण ण होइ।।
सीलु बडा ससार महि सील साहि सब काज।
इहि भवि पर भविसुह लहइ आसि भणइ मुनिराज।।"

कवि भगवतीदास ने इस ग्रन्थ को हिसारकोट नगर के भगवान वर्धमान (महावीर) के मन्दिर मे विक्रम सवत् १७०० अगहन शुक्ला पचमी सोमवार के दिन पूर्ण किया है। उस समय वहा मन्दिर में ब्रह्मचारी जोगीदास और प० गगाराम उपस्थित थे[1]।

१०८वी प्रशस्ति 'मउडसत्तमीकहा की है' जिसमें मुकुट सप्तमी के व्रत की अनुष्ठान विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है।

१०९वी प्रशस्ति 'सुयधदसमी कहाव्रतरास' की है, जिसमे भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत का विधान और उसके फल का कथन किया गया है।

कवि-परिचय

पडित भगवतीदास काष्ठासघ माथुरगच्छ पुष्करगण के विद्वान् भट्टारक गुणचन्द्र के पट्टधर भ० सकलचन्द्र के प्रशिष्य और भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य थे। महेन्द्रसेन दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टधर थे। इनकी अभी तक कोई रचना मेरे देखने में नही आई और न कोई प्रतिष्ठित मूर्ति ही प्राप्त हुई है। इससे इनके सम्बन्ध में विशेष विचार करना सम्भव नही है। भ० महेन्द्रसेन प्रस्तुत भगवतीदास के गुरू थे, इसी से

१ रइयो कोट हिसारे जिणहरि वर वीर वड्ढमाणस्स।
तत्थठिओ वयधारी जोईदासो वि बंभयारीओ।।
भागवइ महुरीया वत्तिगवर विति साहणा विण्णि।
मइ विबुह सुगगारामो तत्थ ठिओ जिणहरेसु मइवतो।। —मगाकलेखाचरित

उन्होने अपनी रचनाओ मे उनका आदर के साथ स्मरण किया है। यह बूढिया[1] जिला अम्बाला के निवासी थे। इनके पिता का नाम किसनदास था और जाति अग्रवाल और गोत्र वसल था। इन्होने चतुर्थवय मे मुनिव्रत धारण कर लिया था[2]। यह सस्कृत अपभ्रश और हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान थे। इनकी पचास से अधिक हिन्दी की पद्यबद्ध रचनाएँ उपलब्ध है। उन रचनाओ मे अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जो भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जैसे अनेकार्थनाममाला (कोष) सीतासतु, टडाणारास, आदित्यव्रतरास, खिचडीरास, साधुसमाधिरास, मनकरहारास और रोहिणीव्रतरास आदि[3]। इनकी इस समय उपलब्ध रचनाएँ सवत् १६५१ से १७०० तक की उपलब्ध हैं। जो चकत्ता बादशाह अकबर, जहागीर शाहजहा के राज्य मे रची गई हैं। एक ज्योतिष और वैद्यक की रचना भी इन्होने सस्कृत मे रची थी, जो कारंजा के शास्त्र भडार मे सुरक्षित है। इनके रचे हुए अनेक पद और गीत आदि हैं, इनकी सब रचनाएँ विभिन्न स्थानो पर रची गई है। उनमे से कुछ रचनाओ मे रचना के कुछ नाम भी निर्दिष्ट किये है। उनके नाम बूढिया (जि० अम्बाला) दिल्ली, आगरा, हिसार, कपिस्थल[4] सिहरदि[5] और सकशा आदि है। कवि की प्राय सभी रचनाएं मैनपुरी, दिल्ली और अजमेर के शास्त्र भडारो मे सुरक्षित है। इससे स्पष्ट है कि कवि को देशाटन करने का उत्साह था। अर्गलपुर मे कवि को अधिक समय तक ठहने का अवसर मिला है और वहा के तत्कालीन शासक अकबर, जहागीर और शाहजहा तीनो को अत्यन्त निकटता से देखने का अवसर मिला है। इसीसे उन्होने उनकी प्रशसा की है। उस समय आगरा उच्चकोटि के शहरो मे गिना जाता था और व्यापार का केन्द्र बना हुआ था, वहा अनेक जैन राज्यकीय उच्चपदो पर स्थित थे, सैनिक आफिसर, कोषाध्यक्ष और उमराहो के मत्री एव सलाहकार रहे हैं। वे सब वहा की अध्यात्म-गोष्ठी मे सरीक होते थे। कवि की कुछ रचनाओ मे रचना समय मिलता है। सवत् १६५१ मे अर्गलपुर जिनवन्दना[6], १६८० मे

---

१ बूढिया पहले एक छोटी सी रियासत थी, जो मुगलकाल मे धन-धान्यादि से खूब समृद्ध नगरी थी। जगाधरी के बस जाने से बूढिया की अधिकाश आबादी वहा से चली गई। आजकल वहाँ परखडहर अधिक हो गए हैं, जो उसके गत वैभव की स्मृति के सूचक हैं।

२ गुरु मुनि माहिंदसेन भगौती, तिस पद-पकज रैन भगौती।
किसनदास वणिउ तनुज भगौती, तुरिये गहिउ व्रत मुनि जु भगौती ॥
नगर बूढिये बसै भगौती, जन्मभूमि है आसि भगौती।
अग्रवाल कुल वसल गोती, पण्डित पद जन निरख भगौती ॥८३॥
—वृहत्सीतासतु, सलावा प्रति

३ देखो अनेकात वर्ष ११ किरण ४-५ मे कविवर भगवतीदास और उनकी रचनाए शीर्षक मेरा लेख

४ कपिस्थल को कापिल्य और संकाश्य भी कहा जाता है। यह पाचाल देश की राजधानी थी। पाणिनीय की काशिकावृत्ति मे (४—२,१२१ मे) कापिल्य की विशालता का वर्णन है। यह जैनियो के १३वें तीर्थंकर विमलनाथ की जन्मभूमि है।

५. यह नगर इलाहाबाद और जौनपुर के मध्य मे बसा हुआ था, यहाँ अग्रवाल जैनियो का निवास था। उनमे कवि दरगहमल और उनके पुत्र विनोदीलाल भी थे। सिहरदि शब्दका अर्थ पहले शहादरा समझ लिया गया था, पर वह गलत था।

६ देखो, जैन सन्देश शोधाक ५, पृ० १८२, २२ अक्टूबर सन् १९५९।

चूनडीरास, १६८७ में अनेकार्थनाममाला और सीतासतु, १६९४वे मे ज्योतिषसार[1] शाहजहा के राज्य मे बनाया और स० १७०० मे हिसार मे मृगाकलेखाचरित्र और स० १७१२ मे वैद्यविनोद[2] बनाकर समाप्त किया है। इससे कवि दीर्घायु वाले थे। उनका समय १७ वी-१८ वीं शताब्दी है। इनका विशेष परिचय अनेकान्त वर्ष ११ किरण ४-५ मे पृ० २०५ से २०८ तक देखिये।

८९वी प्रशस्ति 'अजित पुराण' की है। जिसके कर्ता कवि विजयसिह है। प्रस्तुत ग्रंथ मे १० सधिया है। जिनमे जैनियो के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ के चरित्र का चित्रण किया गया है। रचना साधारण है और भाषा अपभ्रंश होते हुए भी देशी शब्दो की बहुलता को लिये हुए है।

कवि ने इस ग्रथ की रचना महाभव्य कामराय के पुत्र पडित देवपाल की प्रेरणा से की है। इसी कारण कवि ने ग्रन्थ की आद्यत प्रशस्ति मे कामराय के परिवार का सक्षिप्त परिचय भी कराया है। वणिपुर या वणिकपुर नाम के नगर मे खण्डेलवाल[3] वश मे कउडि (कौडी) नाम के पण्डित थे, उनके पुत्र

---

१. वर्षे षोडशशतचतुर्नवतिमिते श्रीविक्रमादित्यके।
पञ्चम्या दिवसे विशुद्धतरके मास्याश्विने निर्मले॥
पक्षे स्वाति नक्षत्रयोगसहिते वारे बुधे सस्थिते।
राजत्साहिमहावदीन भुवने साहिजहा कथ्यते॥
—देखो, सी० पी० एण्ड बरार कैटेलोग डा० रा० ब० हीरालाल।

२. सत्रहसइं रुचिडोत्तरइ सुकलचतुर्दशि चैतु।
गुरु दिन भन्यौ पूरनु करिउ सुलितापुरि सहजयतु।
लिखिउ अकबराबाद णिरु साहिजहा के राज।
साहनि मइ सपइ सरिसु देश-कोष-गज-बाज॥ —देखो वही, सी० पी० एण्ड बरार कैटेलोग।

३ 'खडेलवाल' शब्द एक उपजाति का सूचक है, जो चौरासी उपजातियो मे से एक है। इस जाति का विकास राजस्थान के खण्डेला नामक स्थान से हुआ है। इस जाति के ८४ गोत्रो का उल्लेख मिलता हैं जिनमे छावडा, काशलीबाल, वाकलीवाल, लुहाड्या, पहाडया, पाड्या, सोनी, गोधा, भौंसा और काला आदि प्रमुख हैं। इन सब गोत्रो आदि की कल्पना ग्राम नगरादि के नामो पर से हुई है। इस जाति मे अनेक सम्पन्न धनी, विद्वान और दीवान जैसे राजकीय उच्च पदो पर काम करने वाले अनेक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। जिन्होने राज्य के सरक्षण मे पूरा योगदान दिया है, और प्रजा का पालन पुत्रवत् किया है। क्योकि यह जाति भी क्षत्रिय ही थी, किन्तु वाणिज्यादि के कारण आज वह अपने उस क्षत्रियत्व को खो चुकी है। इस जाति की धार्मिकता प्रसिद्ध है। शाह दीपचन्द और टोडरमल्लजैसे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान भी इसी में हुए हैं। जो जैन समाज के लिये गौरव की वस्तु हैं। रामचन्द्र छावडा जैसा वीर पाराक्रमी और हौसले वाला राज्य सरक्षक दीवान, अमरचन्द्र जैसा प्रतिष्ठित विद्वान, गुणज्ञ, राजनीतिज्ञ, धर्मनिष्ठ दयालु दीवान, जिसने अपने देश और धर्म की रक्षार्थ प्राणोका उत्सर्ग किया था। इस जाति के द्वारा निर्मापित अनेक गगनचुम्बी विशाल जिन मन्दिर हैं। जिनमे ११वी-१२वी शताब्दी तक की प्रतिष्ठित प्रशान्त मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। अनेक ग्रथ, ग्रथ-भडारो मे रचना कराकर और उन्हे प्रतिलिपि कराकर मुनियो, भट्टारको, अर्जिकाओ और श्रावक-श्राविकाओ तथा मन्दिर जी मे भेंट किये हुए मिलते है। सवत् १२८७ मे एक खडेल परिवार की प्रेरणासे 'णेमिणाहचरिउ' नाम का ग्रथ मालवा के परमारवंशी राजा देवपाल के राज्यकालमे कवि दामोदर द्वारा रचा गया था। अनेक विद्वनो ने टीका ग्रथ लिखे। ये सब कार्य उसकी धर्मनिष्ठा के प्रतीक हैं।

छीतु थे, जो बडे धर्मनिष्ठ और श्रावक की ११ प्रतिमाओ का पालन करते थे। वही पर लोकमित्र पण्डित खेता थे, उनके प्रसिद्ध पूत्र कामराय थे। कामराय की पत्नी का नाम कमलश्री था, उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिनका नाम जिनदास रयगु औब दिउपाल (देवपाल) था। उसने वहा वर्धमान का एक चैत्यालय भी बनवाया था, जो उत्तुग ध्वजाओ से अलकृत था और जिसमे वर्धमान तीर्थंकर की प्रशांत मूर्ति विराजमान थी और उसी देवपाल ने उक्त चरित्र ग्रथ लिखवाया था।

कवि ने ग्रन्थ की प्रथम सन्धि के ६वें कडवक मे जिनसेन, अकलक, गुणभद्र, गृद्ध्रपिच्छ, पोढिल्ल (प्रोष्ठिल्ल), लक्ष्मण, श्रीधर और चउमुह (चतुर्मुख) नाम के विद्वानो का उल्लेख किया है।

कवि-परिचय

कवि ने अपना परिचय निम्नप्रकार व्यक्त किया है—मेरुपुर मे मेरुकीर्ति, करमसिंह राजा के घर मे हुए, जो पद्मवती पुरवाड वश मे उत्पन्न हुए थे। कवि के पिता का नाम सेठ दिल्हण था और माता का नाम राजमती था। यद्यपि कवि ने अपनी गुरुपरम्परा का कोई उल्लेख नही किया। किन्तु ग्रथकर्ता ने अपना यह ग्रन्थ वि० स० १५०५ मैं कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बनाकर समाप्त किया था। उसी सवत् की लिखी हुई एक प्रति भोगाव के शास्त्रभण्डार से बाबू कामताप्रसाद जी अलीगज को प्राप्त हुई है[1], जो उनके पास सुरक्षित है। अन्य प्रतिया जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध है। एक अपूर्ण प्रति मेरे पास भी है।

६०वी प्रशस्ति से लेकर ६८वी प्रशस्ति तक ६ प्रशस्तिया क्रमश निम्न ग्रन्थो की हैं जिनके नाम 'कोइलपचमी कहा' मउडसत्तमी कहा, रविवयकहा, तियालचउवीसीकहा, कुसुमजलि कहा, निद्दुसि सत्तमी वयकहा, णिज्झरपचमी कहा, और अणुपेहा हैं। जिनके कर्ता ब्रह्म साधारण हैं। इन कथाओ मे जैन सिद्धान्त के अनुसार व्रतो का विधान और उनके फल का विवेचन किया गया है। साथ ही व्रतो के आचरण का क्रम और तिथि आदि के उल्लेखो के साथ उद्यापन की विधि को भी सक्षिप्त मे दिया हुआ है। अतिम ग्रथ अनुप्रेक्षा मे अनित्यादि द्वादश भावनाओ के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए ससार और देह-भोगो की असारता का उल्लेख करते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

ब्रह्म साधारण ने अपनी गुरु परम्परा का तो उल्लेख किया है, किन्तु अपना कोई परिचय नही दिया, और न रचना-काल का समय ही दिया है। कुन्दकुन्दगणी की परम्परा मे रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनदि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्ति, विद्यानदि और ब्रह्म साधारण। ब्रह्म साधारण भ० नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य

---

१ सवत् १५०५ वर्षे कार्तिक सुदी पूर्णमासी दिने श्री मूलसघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री पद्मनदिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेव तस्य पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेव तस्याम्नाये श्री खढेलवालान्वये सकल ग्रन्थार्थ प्रवीण पडित कउडि तस्य पुत्र सकल कलाकुशल पण्डित छीत (र) तत्पुत्र निरवद्य श्रावकाचारधर पडित जिनदास, पडित खेता तत्पुत्र पचाणुव्रत पालक पण्डित कामराज तद्भार्या कमलश्री तत्पुत्रात्रय पण्डित जिनदास, पण्डित रतम, पण्डिल देवपाल एतेपा मध्ये पडित देवपालेन इद अजितनाथदेव चरित्र लिखापित निजज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थं, शुभमस्तु लेखक पाठवयो।
—जैन सि० भा० भा० २२ कि० २।

थे। प्रस्तुत कथा ग्रथ की यह प्रति वि० स० १५०८ की लिखी हुई है। अतएव उनका रचना समय स० १५०८ से पूर्ववर्ती है। अर्थात् वे विक्रम की १५वी शताब्दी के अतिम चरण के विद्वान जान पडते है।

९९वी प्रशस्ति 'सिरिपाल चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि रइधू है। इसका परिचय ३५वी प्रशस्ति से लेकर ४९वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१००वी प्रशस्ति 'पासणाहचरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि तेजपाल है। जिसका परिचय २८वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०१वी प्रशस्ति 'सिरिपाल चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि दामोदर है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे सिद्धचक्र के महात्म्य का उल्लेख करते हूए उसका फल प्राप्त करने वाले चम्पापुर के राजा श्रीपाल और मैनासुन्दरी का जीवन-परिचय अकित किया गया है। मैनासुन्दरी ने अपने कुष्टी पति राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियो का कुष्ट रोग सिद्धचक्र व्रत के अनुष्ठान और जिन-भक्ति की दृढता से दूर किया था।

कवि ने इस ग्रन्थ को इक्ष्वाकुवशी दिवराज साहु के पुत्र नक्षत्र साहु के लिए बनाया था। ग्रन्थ प्रशस्ति मे कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार व्यक्त की है। मूलसघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, और कवि दामोदर। प्रस्तुत कवि दिल्ली पट्ट के भट्टारक जिनचद्र के शिष्य थे। जिनचद्र उस समय के प्रभावशाली भट्टारक थे, और सस्कृत प्राकृत के विद्वान् तथा प्रतिष्ठाचार्य थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक तीर्थकर मूर्तियाँ भारतीय जैनमदिरो मे पाई जाती है। ऐसा कोई भी प्रात नही, जहा उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ न हो। यह स० १५०७ मे भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित हुए थे और पट्टावली के अनुसार उस पर ६२ वर्ष तक अवस्थित रहे। इनके अनेक विद्वान् शिष्य थे, उनमे पडित मेधावी और कवि दामोदर आदि है। इनकी इस समय दो कृतियाँ प्राप्त है सिद्धातसार प्राकृत और चतुर्विशति जिनस्तुति। इसमे दश पद्य है जो यमकालकार को लिए हुए है। अने० वर्ष ११ कि० ३

कवि दामोदर ने अपना कोई परिचय नही दिया, केवल अपने गुरु का नामोल्लेख किया है। इनकी दूसरी कृति 'चदप्पहचरिउ' है जिसकी प्रति नागोर के भट्टारकीय शास्त्र भडार मे सुरक्षितहै। उनका समय विक्रम की १६वी शताब्दी है। बहुत सभव है कि इनकी अन्य कृतियाँ भी अन्वेषण करने पर भडारो मे मिल जाय।

१०२वी प्रशस्ति 'पासणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि असवाल है। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ सन्धियाँ है, जिनमे भगवान पार्श्वनाथ की जीवन-गाथा दी हुई है। ग्रथ की भाषा १५वी शताब्दी के अन्तिम चरण की है, जब हिन्दी अपना विकास और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही थी। ग्रथ मे पद्धडिया छन्द की बहुलता है, भाषा मुहावरेदार है। रचना सामान्य है।

यह ग्रन्थ कुशार्त देश मे[1] स्थित 'करहल[2]' नगर निवासी साहु सोणिग के अनुरोध से बनाया गया था, जो यदुवश मे उत्पन्न हुए थे। उस समय करहल मे चौहानवंशी राजाओ का राज्य था। इस

१ कुशार्तदेश सूरसेन देश के उत्तर मे बसा हुआ था और उसकी राजधानी शौरीपुर थी, जिसे यादवो ने बसाया था। जरासध के विरोध के कारण यादवो को इस प्रदेश को छोडकर द्वारिका को अपनी राजधानी बनानी पडी थी। वर्तमान मे वह ग्राम इसी नाम से प्रसिद्ध है।

२ करहल इटावा से १३ मील की दूरी पर जमुना नदी के तट पर बसा हुआ है, वहा पर चौहान वशी राजाओ का राज्य रहा है। यहा चार जैन शिखर बन्द मदिर है और अच्छा शास्त्र भण्डार है।

ग्रथ की रचना वि० स० १४७९ मे भाद्रपद कृष्णा एकादशी को बनाकर समाप्त की गई थी[3]। ग्रथ निर्माण मे कवि को एक वर्ष का समय लग गया था। ग्रथ निर्माण के समय करहल मे चौहानवशी राजा भोजराज के पुत्र ससारचन्द (पृथ्वीसिंह) का राज्य था। उनकी माता का नाम नाइक्कदेवी था, यदुवशी अमरसिंह भोजराज के मन्त्री थे, जो जैनधर्म के सपालक थे। इनके चार भाई और भी थे जिनके नाम करमसिंह, समरसिह, नक्षत्रसिंह, लक्ष्मणसिह थे। अमरसिंह की पत्नी का नाम कमलश्री था। उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। नन्दन, सोणिग और लोणा साहु। इनमे लोणा साहू जिन यात्रा प्रतिष्ठा आदि प्रशस्त कार्यो मे द्रव्य का विनिमय करते थे और अनेक विधान—'उद्यापनादि कार्य कराते थे। उन्होने 'मल्लिनाथ चरित के कर्ता कवि 'हल्ल' की प्रशसा की थी। इन्ही लोणा साहू के अनुरोध से कवि असवाल ने पार्श्वनाथ चरित की रचना उनके ज्येष्ट भ्राता सोणिग के लिये की थी। प्रशस्ति मे स० १४७१ मे भोजराज के राज्य मे सम्पन्न होने वाले प्रतिष्ठोत्सव का भी उल्लेख किया है, जिसमे रत्नमयी जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न हुई थी।

ग्रथ कर्ता कवि असवाल का वश 'गोलाराड' (लार) था। यह पण्डित लक्ष्मण के सुपुत्र थे। कवि ने मूलसघ बलात्कार गण के आचार्य प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द और धर्मचन्द्र का उल्लेख किया है। जिससे कवि उन्ही की आम्नाय का था। कवि कहा का निवासी था, और उसने अ य क्या रचनाए रची, यह कुछ ज्ञात नही होता। अत ज्ञान भण्डारो मे कवि की अन्य कृतियो का अन्वेषण होना आवश्यक है।

१०३वी प्रशस्ति 'सतिणाह चरिउ' की है जिसके कर्ता कवि शाहठाकुर हैं। ग्रन्थ पाच सधियो मे विभक्त है जिसमे जैनियो के १६वें तीर्थकर, शान्तिनाथ का, जो कामदेव और चक्रवर्ती भी थे, जीवन-परिचय अकित किया गया है। चरित सक्षिप्त और साधारण रूप मे ही प्रस्तुत किया गया है।

कवि ने यह ग्रथ विक्रम सवत् १६५२ मे भाद्र शुक्ला पचमी के दिन चकत्तावश के जलालुद्दीन अकबर बादशाह के शासन काल मे, ढूढाहड देश के कच्छपवशी राजा मानसिह के राज्य मे समाप्त किया है। मानसिंह की राजधानी उस समय अम्बावती या आमेर थी।

ग्रथ कर्ता ने प्रशस्ति मे अपनी जो गुरु परम्परा दी है उससे वे भट्टारक पद्मनन्दिकी आम्नाय मे होने वाले भ० विशालकीर्ति के शिष्य थे। जो मूलसघ नद्याम्नाय सरस्वती गच्छ बलात्कार गण के विद्वान थे, उनके भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्रदेव, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, विशालकीर्ति, लक्ष्मीचन्द्र, सहस्रकीर्ति, नेमिचन्द्र, अर्जिका अनन्तश्री और दाभाडालीबाई का नामोल्लेख किया गया है। इनमे भट्टारक विशालकीर्ति विद्वान कवि के समकालीन जान पडते हैं। और उनमे दो परम्परा के विद्वान शामिल हैं। एक अजमेर पट्ट के और दूसरे आमेर या उसके समीपस्थ पट्ट के। भट्टारक विशालकीर्ति अजमेर-शाखा के विद्वान थे। और जो भट्टारक चन्द्रकीर्ति के पट्टधर थे। जिनका पट्टाभिषेक सम्मेद शिखर पर हुआ था[1]। विशालकीर्ति नाम के अनेक विद्वान हुए है, परन्तु यह उनसे भिन्न हैं।

---

३ इगवीर हो णिव्वुइकुच्छराइ, सत्तरि सहुँचउसय वत्थराइ।
पच्छइ मिरि णिव विक्कम गयाइ, एउणसीदीसहुँ चउदह सयाइ।
भादवतम एयारसि मुणेइ, वरिसिक्के पूरिउ गथु एहु॥

कवि के पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेत्ता था, जाति खंडेलवाल और गोत्र लुहाड्या था। यह लुवाइणिपुर के निवासी थे, वह नगर जन-धन से सम्पन्न और भगवान चन्द्रप्रभ के विशाल जिनमदिर से अलकृत था। कवि की धर्मपत्नी गुरुभक्ता और गुण ग्राहिणी थी। आपके दो पुत्र थे, धर्मदास और गोविन्ददास। इनमे धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृह भार वहन करने वाला था, उसकी बुद्धि जैनधर्म में विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरु के भक्त और विद्याविनोदी थे, उनका विद्वानो से विशेष प्रेम था, वे सगीत शास्त्र, छन्द, अलकार आदि में निपुण थे, और कविता करने में उन्हे विशेष आनन्द आता था।

कवि की दूसरी कृति 'महापुराण कलिका' है[1]। जिसमे २७ सधियां है, जिनमें त्रेसठ शलाका महापुरुषों की गौरव-गाथा का चित्रण किया गया है। ग्रथ के अन्त मे एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति दी है, जिससे कवि के वश आदि का परिचय मिल जाता है। कवि ने इस ग्रथ को हिन्दी भाषा मे लिखा है और जिसका रचनाकाल वि० सवत् १६५० है। इससे कवि १७वी शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान जान पडते है[2]।

१०४वी प्रशस्ति 'मल्लिणाहकव्व' की है जिसके कर्ता कवि जयमित्रहल है। इसका परिचय २६वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०५वी प्रशस्ति 'जिणरत्ति विहाणकहा' की है, जिसके कर्ता कवि नरसेन है। जिसका परिचय ६९वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०६वी प्रशस्ति सम्यक्त्व कौमुदी की है जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। इसका परिचय ३५वी प्रशस्ति से लेकर ४९वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०७वी प्रशस्ति 'जोगसार' की है। जिसके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं। इसका परिचय ८५-८६ प्रशस्तियो के साथ दिया गया है।

१०८वी और १०९वी प्रशस्तियां क्रमशः सुगंध दसमी कथा और मउडसत्तमी कहारास की है, जिनके कर्ता कवि भगवतीदास है। और जिनका परिचय ८८वी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

---

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्र गणीन्द्र पट्टे भट्टारक श्रीमुनिचन्द्रकीर्ति :
सस्नापितो योऽवनिनाथवृन्दै सम्मेदनाम्नीह गिरीन्द्रमूर्ध्नि ॥—मूलसघ पट्टावली जैन सि०भा० १ कि०३-४

२ कल्याण कीर्तिल्लोके जसु भवति जगे मडलाचार्य पट्टे,
नद्याम्नाये सुगच्छे सुभगश्रुतमते भारती कारमूर्ते।
मान्यो श्री मूलसघे प्रभवतु भुवने सार सौख्याधिकारी,
सोऽय मे वैश्यवशे ठकुर गुरुयते कीर्तिनामा विशालो। —महापुराण कलिका सधि २३

१ कवि ने अपने को स्वय त्रेसठ शलाका पुरुषो की पुराण कथा को कहने वाला लिखा है और जिसका परिचय अनेकान्त वर्ष १३ किरण ७-८ मे दिया गया है। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है।

या जन्माभवछेदनिर्णयकरी, या ब्रह्मब्रह्मेश्वरी।
या ससार विभावभावनपरा या धर्मकामापुरी ॥
अज्ञानादथ ध्वसिनी शुभकरी, ज्ञेया सदा पावनी,
या तेसट्ठिपुराण उत्तम कथा भव्या सदा पातु नः ॥— महापुराण कलिका

२. विशेष परिचय के लिये देखिये अनेकान्त वर्ष १३ कि० ७-८

परिशिष्ट नं० १

कुछ मुद्रित ग्रन्थ-प्रशस्तियों का परिचय

अपभ्रंश भाषा मे अनेक छन्द ग्रन्थ लिखे गए होगें, क्योकि अपभ्रश के ग्रथों मे अनेक छन्दो का प्रयोग इस बात का सूचक है कि अपभ्रश भाषा मे अनेक छन्द ग्रन्थ थे और उनमे उनका परिचय दिया हुआ था, अन्यथा ग्रथकार उनका अपने ग्रथो मे उल्लेख कैसे कर सकते थे। खेद है कि वे इस समय उपलब्ध नही है। महाकवि स्वयभूदेव का छन्द ग्रन्थ है, जिसमे आदि के ३ अध्यायो मे प्राकृत छन्दो का और अन्त के पाच अध्यायो मे अपभ्रश के छन्दो का परिचय सोदाहरण दिया हुआ है। छन्द की यह प्रति बडौदा के ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट की है। जिसे सवत् १७२७ आश्विन सुदि ५, गुरुवार के दिन रामनगर मे कृष्णदेव ने लिखा था। यह प्रति अपूर्ण है, उसके शुरू के २२ पत्र नही है, यह प्रो० एच०डी० वेलकर को प्राप्त हुई थी। जिसे उन्होने सम्पादित कर प्रकाशित करा दिया था[१]।

११०वी प्रशस्ति छन्द ग्रथ की हैं। जिसके अपभ्रश भाग की आदि-अन्त प्रशस्ति दी गई है। जिसमे उदाहरण सहित अपभ्रश के छन्दो का विवेचन है। ग्रथ के अन्तिम अध्याय मे गाहा अडिल्ला, पद्धडिया आदि छन्दो को स्वोपज्ञ उदाहरणो के साथ दिया हुआ है। इनका परिचय 'छन्दग्रथ' शीर्षक मे दिया गया है। इस छन्द ग्रथ का अपना वैशिष्ट्य है जो ग्रथ का पारायण किये विना अनुभव मे नही आ सकता।

कवि स्वयभू के इस छन्द ग्रथ का सबसे पुरातन उल्लेख जयकीर्ति ने अपने 'छन्दोनुशासन' के नन्दिनी छन्द मे किया है[२]। इससे स्पष्ट है कि स्वयभू के इस छन्द ग्रन्थ का १०वी शताब्दी मे प्रचार हो गया था। ग्रथ भडारो मे इसकी अन्य प्रतियो की तलाश होनी चाहिये। जयकीर्ति का समय विक्रम की १० वी शताब्दी है। जयकीर्ति कन्नड प्रान्त के निवासी दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। उनका छन्द ग्रथ एच डी वेलकर द्वारा सम्पादित होकर जयदामन ग्रथ मे प्रकाशित हुआ है। पाठक वहा से देखे।

१११ वी प्रशस्ति 'भविसयत्तकहा' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल है। प्रस्तुत कथा ग्रथ मे ३४४ कडवक हैं, जिनमे श्रुतपचमी के व्रत का महात्म्य बतलाते हुए उसके अनुष्ठान करने का निर्देश किया गया है साथ ही भविष्यदत्त और कमलश्री के चरित्र-चित्रण द्वारा उसे और भी स्पष्ट किया है। ग्रथ का कथाभाग तीन भागो मे बटा हुआ है। घटना बाहुल्य होते हुए भी कथानक सुन्दर बन पडे हैं। उनमे साधु और असाधु जीवन वाले व्यक्तियो का परिचय स्वाभाविक बन पडा है। कथानक मे अलौकिक घटनाओ का समीकरण हुआ है। परन्तु वस्तु वर्णन मे कवि के हृदय ने साथ दिया है। अतएव नगर देशादिक के वर्णन सरस हो सके हैं। ग्रथ मे जहाँ शृगार वीर और शान्त रस का वर्णन है, वहाँ उपमा, उपेक्षा, स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलकारो का प्रयोग भी दिखाई देता है। भाषा मे लोकोक्तियो और वाग्धाराओ का भी प्रयोग मिलता है। यथा—

---

१ स्वयभू-छन्द के प्रथम तीन अध्याय रायल एशियाटिक सोसाइटी वाम्बे के जर्नल सन् १९३५ पृ० १८-५८ मे दिए है और अपभ्रश के शेष पाच अध्याय वाम्बे यूनिवर्सिटी जर्नल (जिल्द ५ न० ३ नवम्बर सन् १९३६) मे प्रकाशित है। पाठक वहाँ से देखें

२ तौ ज्जौ तथा पद्म पद्म निधिर्जतौ जरौ।

३ देखो मि० गोविन्द पै का लेख Jaikirti in the Karnnatak quarterly प्रबुद्ध कर्नाटक V L 28 N 3 gan 1947 महाराजा कालेज मैसूर। तथा बम्बई यूनिवर्सिटी जनरल सितम्बर १९४७

'किं घिउ होइ विरोलिए पाणिए'—क्या पानी विलोने से घी मिल सकता है ? 'दइवायत्तु जइ वि विलहिव्वउ, तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ ।' यद्यपि सब कर्म दैवाधीन है, तो भी मनुष्य को अपना कर्तव्य करना ही चाहिये ।

कवि परिचय

कवि के पिता का नाम माएसर (मातेश्वर) और माता का नाम धनश्री था कवि का वश धक्कड था । यह एक प्रसिद्ध वश था जिसमे अनेक महापुरुष हुए है । इस धर्कट वश की प्रतिष्ठा दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो मे रही है । दोनो ही सम्प्रदायों मे इस वश द्वारा लिखाये गये ग्रन्थों की प्रशस्तिया मिलती है जिनसे उनकी धार्मिक परिणति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । कवि अपने समय के प्रतिभा सपन्न विद्वान थे । उनका सम्प्रदाय दिगम्बर था, क्योकि ग्रथो में—'भजि वि जेण दियबरि लायउ' (सधि ५-२०) जैसा वाक्य दिया हुआ है[1] । साथ ही सोलहवे स्वर्ग के रूप मे अच्युत स्वर्ग का नामोल्लेख है और आचार्य कुन्दकुन्द की मान्यतानुसार सल्लेखना को चतुर्थ शिक्षाव्रत स्वीकार किया है ।

'चउथउ पुण सल्लेहण भावइ' (सधि १७-१२) यह मान्यता भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे नही पाई जाती । इस कारण वे दिगम्बर विद्वान थे, यह सुनिश्चित है । इनका समय विक्रम की १०वी शताब्दी होना चाहिये । सम्पादक ने भी ग्रन्थ की प्रस्तावना मे डा० हर्मन जैकोबी के निर्णय को स्वीकृत तथा पुष्ट करते हुए कवि को दिगम्बर लिखा है । यह ग्रन्थ गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज बड़ौदा से प्रकाशित हो चुका है ।

११२ वी ११३ वी और ११४ वी प्रशस्तियाँ क्रमश. 'महापुराण' 'नागकुमार चरिउ' और 'जसहर चरिउ' की है, जिनके कर्ता महाकवि पुष्पदन्त है ।

प्रस्तुत महापुराण दो खडो में विभाजित है, आदि पुराण और उत्तर पुराण । आदि पुराण मे ३७ सन्धियाँ है जिनमे आदि ब्रह्मा ऋषभदेव का चरित वर्णित है, और उत्तर पुराण की ६५ सन्धियो मे अवशिष्ट २४ तीर्थकरो, १२ चक्रवर्तियो, नवनारायण, नव प्रति नारायण आदि त्रेसठ शलाका पुरुषो का कथानक दिया हुआ है । जिसमे रामायण और महाभारत की कथाये भी सक्षिप्त मे आ जाती है । दोनो भागो की कुल सन्धियाँ एक सौ दो है, जिनकी आनुमानिक श्लोक सख्या बीस हजार से कम नही है । महापुरुषो का कथानक अत्यन्त विशाल है और अनेक पूर्व जन्मो की अवान्तर कथाओ के कारण और भी विस्तृत हो गया है । इससे कथा सूत्र को समझने एव ग्रहण करने मे कठिनता का अनुभव होता है । कथानक विशाल और विशृखल होने पर भी बीच-बीच मे दिये हुए काव्य मय सरस एव सुन्दर आख्यानो से वह हृदय ग्राह्य हो गया है । जनपदो नगरो और ग्रामो का वर्णन सुन्दर हुआ है । कवि ने मानव जीवन के साथ सम्बद्ध उपमाओ का प्रयोग कर वर्णनो को अत्यन्त सजीव बना दिया है । रस और अलकार योजना के साथ पद व्यजना भी सुन्दर बन पडी है । साथ ही अनेक सुभाषितो[2] और वाग्धाराओं से ग्रन्थ रोचक तथा सरस बन गया है । ग्रन्थ मे देशी भाषा के ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग वर्तमान हिन्दी मे

---

१. देखो, अनेकान्त वर्ष ७ किरण ७-८ मे धनपाल नाम के चार विद्वान ।

२ उट्ठाविउ सुत्तउ सीहकेण—सोते हुए सिंह को किसने जगाया ।
माणु भगुवर मरणु ण जीविउ—अपमानित होकर जीने से मृत्यु भली है ।
को त पूसइ णिडालइ लिहियउ—मस्तक पर लिखे को कौन मेट सकता है ।

भी प्रचलित है[२]। कवि ने यह ग्रन्थ क्रोधन सवत्सर की आषाढ-शुक्ला दशमी के दिन शक संवत् ८८७ वि० स० १०२२) मे समाप्त किया है और राष्ट्र कूट वश के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के अनुरोध से बना है। ग्रन्थ की सन्धि पुष्पकाओ मे स्वतन्त्र सस्कृत पद्यो मे भरत की प्रशसा और मगलकामना की गई है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० पी० एल० वैद्य ने किया है, जो मणिकचन्द ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

११३वी प्रशस्ति 'नागकुमारचरित' की है। यह एक छोटा-सा खड-काव्य है। जिसमे पचमीव्रत के फल को व्यक्त करने वाला एक सुन्दर कथानक दिया हुआ है, ग्रन्थ मे ७ सधियो द्वारा नागकुमार के चरित्र का अच्छा चित्रण किया गया है। रचना बडी सुन्दर, सरस और चित्ताकर्षक है ग्रन्थ मे तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति का भी वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना भरत मत्री के पुत्र नन्नकी प्रेरणा से हुई है और और इसीलिए यह ग्रन्थ उन्ही के नामाकित किया गया है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० हीरालाल जी एम. ए अमरावती ने किया है और वह कारजा सीरीज से प्रकाशित हो चुका है।

११४वी प्रशस्ति 'जसहरचरिउ' की है। यह भी एक खड काव्य है, जिसकी चार सन्धियो मे राजा यशोधर और उनकी माता चन्द्रमती का कथानक दिया हुआ है। जो बडा ही सुन्दर और हृदय-द्रावक है और उसे कवि ने चित्रित कर कण्ठ का भूषण बना दिया है। राजा यशोधर का यह चरित इतना लोकप्रिय रहा है कि उस पर अनेक विद्वानो ने सस्कृत और अपभ्रश मे अनेक ग्रथ लिखे है। सोमदेव, वादिराज, वासवसेन, सकलकीर्ति, श्रुतसागर, पद्मनाभ, माणिक्यदेव, पूर्णदेव कविरइधू, सोमकीर्ति, विश्वभूषण और क्षमा कल्याण आदि अनेक दिगम्बर, श्वेताम्बर विद्वानो ने अनेक ग्रथ लिखे है। इस ग्रन्थ मे स० १३६५ मे कुछ कथन, राउल और कौल का प्रसग, विवाह और भवातर पानीपत के वीसलसाहु के अनुरोध से कन्हड के पुत्र गन्धर्व ने बनाकर शामिल किया था। वह प्रतियो मे अब भी पाया जाता है।

कवि परिचय

महाकवि पुष्पदन्त अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान कवि थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था। यह कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका शरीर अत्यन्त कृश (दुबला-पतला) और वर्ण सावला था। यह पहले शैव मतानुयायी थे। परन्तु बाद मे किसी दिगम्बर विद्वान् के सानिध्य से जैनधर्म का पालन करने लगे थे। वे जैनधर्म के बडे श्रद्धालु और अपनी काव्य-कला से भव्यो के चित्त को अनुरजित एव मुग्ध करने वाले थे, तथा प्राकृत, सस्कृत, और अपभ्रश भाषा के महा पडित थे। इनका अपभ्रश भाषा पर असाधारण अधिकार था, उनकी कृतिया उनके विशिष्ट विद्वान् होने की स्पष्ट सूचना करती हैं। कविवर बडे ही स्वाभिमानी और उग्र प्रकृति के धारक थे, इस कारण वे 'अभिमानमेरु' कहलाते थे। अभिमानमेरु, अभिमानचिह्न, काव्य रत्नाकर, कविकुल-तिलक और सरस्वती निलय आदि उनकी उपाधियाँ थीं, जिनका उपयोग उन्होंने अपने ग्रन्थो मे स्वय किया है। इससे उनके व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वे सरस्वती के विलासी और स्वाभाविक काव्य-कला के प्रेमी थे। इनकी काव्य-शक्ति अपूर्व और आश्चर्यजनक थी। प्रेम उनके जीवन का खास अग था। वे

२. कप्पड = कपडा, अवसें = अवश्य, हट्ट = हाट (बाजार) तोद = थोद (उदर)। लीह = रेखा (लीक), चग = अच्छा, डर = भय, डाल = शाखा, पाहुण = पाहुना, लुक्क = लुकना (छिपना) आदि अनेक शब्द हैं। जिन पर विचार करने से हिन्दी के विकास का पता चलता है।

धनादि वैभव से अत्यन्त निस्पृह और जैनधर्म के अटल श्रद्धानी थे। उन्हे दर्शन-शास्त्रों और जैनधर्म के सिद्धातो का अच्छा परिज्ञान था, वे राष्ट्रकूट राजाओ के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के द्वारा सम्मानित थे। इतना ही नही किन्तु भरत के समुदार प्रेममय पुनीत व्यवहार से वे उनके महलों में निवास करते रहे, यह सव उस धर्मवत्सलता का ही प्रभाव है। जो भरत मंत्री उक्त कविवर से महापुराण जैसे महान् ग्रथ का निर्माण कराने मे समर्थ हो सके। उत्तर-पुराण की अतिम प्रशस्ति मे कवि ने अपना जो कुछ भी सक्षिप्त परिचय अकित किया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कविवर बडे ही निस्पृह और अलिप्त थे और देह-भोगो से सदा उदासीन रहते थे। उत्तरपुराण के उस सक्षिप्त परिचय पर से कवि के उन्नतम जीवन-कणो से उनकी निर्मल भद्र प्रकृति, निस्सगता और अलिप्तता का वह चित्रपट पाठक के हृदय-पटल पर अकित हुए बिना नही रहता। उनकी अकिंचन वृत्ति का इससे और भी अधिक प्रभाव ज्ञात होता है, जब वे राष्ट्रकूट राजाओ के बहुत बडे साम्राज्य के सेना नायक और महामात्य द्वारा सम्मानित एव ससेवित होने पर भी अभिमान से सर्वथा अछूते, निरीह एवं निस्पृह रहे हैं। देह-भोगो से उनकी अलिप्ता होना ही उनके जीवन की महत्ता का सबसे बडा सबूत है। यद्यपि वे साधु नही थे, परन्तु उनकी वह निरीह भावना इस बात की सद्योतक है कि उनका जीवन एक साधु से कम भी नही था। वे स्पष्टवादी थे और अहका की उस भीषणता से सदा दूर रहते थे, परन्तु स्वाभिमान का परित्याग करना उन्हे किसी तरह भी इष्ट नही था, इतना ही नही किन्तु वे अपमान से मृत्यु को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। कवि का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी का अतिम भाग और ११वी शताब्दी का पूर्वार्ध है।

११५वी प्रशस्ति 'करकडुचरिउ' की है जिसके कर्ता मुनि कनकामर है। यह ग्रन्थ दश सन्धियों मे विभक्त है। जिनमे राजा करकडु का जीवन परिचय अकित किया गया है। चरित नायक की कथा के अतिरिक्त तो आवान्तर कथाओ का भी उपक्रम किया गया है, जिनमे मत्र शक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच सगति का बुरा परिणाम और सत्सगति का अच्छा परिणाम दिखाया गया है, पाचवी कथा एक विद्याधर ने मदनावलि के विरह से व्याकुल करकडु के वियोग को सयोग मे वदल जाने के लिए सुनाई। छठी कथा पाचवी कथा के अन्तर्गत अन्य कथा है, सातवी कथा शुभ शकुन-परिणाम सूचिका है, आठवी कथा पद्मावती ने विद्याधरी द्वारा करकडु के हरण किये जाने पर शोकाकुल रतिवेगा को सुनाई। नोमी कथा भवातर मे नारी को नारीत्व का परित्याग करने की सूचिका है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि उस काल मे ये कथाएँ तात्कालिक समाज मे प्रचलित होगी। उन्ही को कवि ने अपनी कल्पना का विपय बनाया है। कवि ने कथावस्तु को रोचक वनाने का अच्छा प्रयत्न किया है। ग्रन्थ की भाषा मे देशी शब्दों का प्रचुर व्यवहार है। जो हिन्दी के अधिक नजदीक है। रस, अलकार, श्लेष और प्राकृतिक दृश्यो से ग्रथ सरस बन पड़ा है, किन्तु उनमे चमत्कारिकता नही है और न पुष्पदन्तादि कवियो जैसी स्फूर्ति, ओज-तेज एव प्रभाव भी अङ्कित हो सका है। हाँ, ग्रन्थ मे तेराउर या तेरापुर की ऐतिहासिक गुफाओ का परिचय भी चित्रित किया गया है। यह स्थान आज भी धाराशिव जिले में तेरपुर के नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान है। यह ग्रन्थ डा० हीरालाल जी एम ए द्वारा सम्पादित होकर कारजासीरीज मे मुद्रित हो चुका है। इसी से इसकी प्रशस्ति परिशिष्ट न० १ मे दी गई है।

कवि परिचय

मुनि कनकामर चन्द्र ऋपि गोत्र मे उत्पन्न हुए थे। उनका कुल ब्राह्मण था; किन्तु देह-भोगो से वैराग्य होने के कारण वे दिगम्बर मुनि हो गये थे। कवि के गुरु बुध मगलदेव थे। कवि भ्रमण करते हुए

'आसाइ'[1] (आसापुरी) नगरी मे पहुचे थे। और वहा उन्होने 'करकडुचरित' की रचना की थी। यह ग्रथ जिनके अनुरागवश बनाया गया था, ग्रन्थकारने उनका नाम कही भी उल्लिखित नही किया। कवि ने उन्हे धर्मनिष्ठ और व्यवहार कुशल बतलाया है, वे विजयपाल नरेश के स्नेहपात्र थे, उन्होने भूपाल नरेश के मन को मोहित कर लिया था। वे राजा कर्ण के चित्त का मनोरजन किया करते थे। उनके तीन पुत्र थे, आहुल रल्हो और राहुल। ये तीनो ही मुनि कनकामर के चरणों के अनुरागी थे। उक्त राजागण कब और कहाँ हुए, इसी पर यहा विचार किया जाता है—

एक लेख मे लिखा है कि विजयपाल नरेश विश्वामित्र गोत्र के क्षत्रिय वश मे उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र भुवनपाल थे, उन्होने कलचूरी, गुर्जर और दक्षिण को विजित किया था, यह लेख दमोह जिले की हटा तहसील मे मिला था, जो आजकल नागपुर के अजायब घर मे सुरक्षित है।

दूसरा लेख बादा जिले के अतर्गत चन्देलो की पुरानी राजधानी कालिंजर मे मिला है। उसमे विजयपाल के पुत्र भूमिपाल का दक्षिण दिशा और राजा कर्ण को जीतने का उल्लेख है।

तीसरा लेख जबलपुर जिले के अतर्गत 'तीवर' मे मिला है, उसमे भूमिपात्र के प्रसन्न होने का स्पष्ट उल्लेख है, तथा किसी सम्बन्ध मे त्रिपुरी और सिंहपुरी का उल्लेख है। इन लेखो मे अतिम दो लेख टूटे होने के कारण उनका सम्वन्ध ज्ञात नही हो सका।

स० १०९७ के लगभग कालिंजर मे विजयपाल नाम का राजा हुआ। यह प्रतापी कलचुरी नरेश कर्णदेव के समकालीन था। इसके दो पुत्र थे देववर्मा और कीर्तिवर्मा। कीर्तिवर्मा ने कर्णदेव को पराजित किया था, ऐसा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से जान पडता है। अतएव मुनि कनकामर का रचना काल सन् १०६५ (वि० स० ११२२) या विक्रम सवत् १२०० के लगभग जान पडता है। विशेष के लिए डा० हीरालाल जी द्वारा लिखित करकडु चरित की प्रस्तावना देखना चाहिए।

परिशिष्ट नं० २

(लिपि प्रशस्ति-परिचय)

११६ वी प्रशस्ति महाकविपुष्पदन्त के आदिपुराण की लिपि प्रशस्ति है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्व की है। इस प्रशस्ति मे आदिपुराण को लिखाने वाले ग्वालियर के सदगृहस्थ पद्मसिह के परिवार का विस्तृत परिचय कराते हुए उनके धार्मिक-कार्यो का समुल्लेख किया गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति को ग्वालियर के राजा डूगरसिह के सुपुत्र श्री कीर्ति सिंह के राज्य काल मे स० १५२१ मे काष्ठा सघ के भट्टारक

१ इस नाम के अनेक गाँव और नगर हैं। एक आसापुरी वह स्थान है, जो औरगाबाद जिले के अन्तर्गत है और जहाँ सन् १८०३ मे मराठो और अग्रेजो का युद्ध हुआ था, अब एक छोटा-सा गाव है।
दूसरा आसीरगढ खान देश मे है, जो आशा देवी के नाम पर बसाया गया है। तीसरा आसी नाम का स्थान राजपूताने के बूदी राज्य मे है। चौथा आसापुरी नाम का स्थान, पजाब के कागडा जिले के अन्तर्गत श्रीर ग्राम से १२ मील की दूरी पर पहाड की चोटी पर आसा देवी प्रतिष्ठित है और जिसके कारण उसका नाम आसापुरी कहलाता है।
पाचवी आसापुरी नाम का एक गाव भोपाल (भोजपुरी) से उत्तर की ओर ४ मील पर बसा हुआ है। यह १२वी शती मे सभवत एक विशालनगर रहा होगा। गथकार द्वारा अभिमत आसापुरी इनमे से कौन है यह विचारणीय है। और वह सभवत कालिंजर और भोपाल इसके आस-पास कही होना चाहिए।

गुणकीर्ति, यश: कीर्ति मलयकीर्ति और गुणभद्र के समय में जयसवाल कुलभूषण उल्ला साहू की द्वितीय पत्नी भावश्री के चार पुत्रो मे से ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह ने लिखवाया था, उसकी पत्नी का नाम वीरा था, उसके चार पुत्र थे, बालू, डालू, दीवड़ और मयणवाल। उनकी चार पत्नियाँ थी, जिनके नाम मगा या माणिणि, लखणसिरि, मयणा और मणसिरि थी। मगा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। रामचन्द, कमलनंद और वीरचन्द। इनमें प्रथम के दोनो पुत्रो की नदा और पूना दो धर्म-पत्नियाँ थी। इस परिवार सयुक्त पद्मसिंह ने जो धन-धान्य से समृद्ध था, अपनी लक्ष्मी का निम्न कामो में सदुपयोग किया था। २४ जिनालयो का निर्माण कराया था और एक लाख ग्रन्थ लिखवा कर भेंट किये थे। इससे उसके धार्मिक कार्यो का परिचय सहज ही मिल जाता है। परतु आज ऐसे जिन वाणी भक्त सज्जन विरले ही मिलते है, जिनके द्रव्य का सदुपयोग जिनधर्म और जिनवाणी के प्रचार मे होता हो।

११७ वी प्रशस्ति 'भविसदत्त चरित' की है जिसके कर्त्ता कवि श्रीधर थे। प्रस्तुत प्रशस्ति मे उल्लखित माथुर कुलावतस साहु साधारण और नारायण नाम के दो भाई थे, साधारण की रुप्पणि नाम की पत्नी थी, उससे पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे, सुप्पट्ट, वासुदेव, जसदेव, लोहडु और लक्खनु। इनमे सुप्पट की माता रुप्पणि ने इस ग्रन्थ को संवत् १५३० मे लिखवाया था।

११८ वी लिपि प्रशस्ति भ० श्रुतकीर्ति के हरिवश पुराण की है। जिसे चदवार दुर्ग के समीप स्थित सघाधिप की चौपाल मे सवत् १६०७ मे राम पुत्र पगारव ने लिखा था। इस ग्रन्थ के लिखाने वाले के परिवार का प्रशस्ति मे विस्तृत परिचय कराया गया है, जो एक पद्मावती पुरवाल वश था। पाठक उसका परिचय मूल प्रशस्ति से देखे।

परिशिष्ट नं० ३

(हस्तलिखित ग्रन्थ प्रशस्ति-परिचय)

११९ वी प्रशस्ति रोहिणिविधान कहा' की है, जिसके कर्त्ता कवि देवनदी है। इस कथा में रोहिणी व्रत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसके फल प्राप्त करने वाले का कथानक दिया हुआ है, और उसके अनुष्ठान करने की प्रेरणा की गई है। इसके रचयिता देवनन्दी ने अपना कोई परिचय प्रस्तुत नही किया, और न यही बतलाया कि उनका समय क्या है ? इस नाम के अनेक विद्वान हुए है। पर ये उन देवनन्दी (पूज्य पाद) से भिन्न और पश्चात् वर्ती है। यह किसी भट्टारक के शिष्य होना चाहिये। इनका समय सभवत. १४ वी या १५ वी शताब्दी होना चाहिये।

१२० वी प्रशस्ति 'वड्ढमाणचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर है। इस ग्रन्थ मे जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा दी हुई है। जिसमें १० सन्धियाँ और २३१ कडवक दिये हुए है जिनकी श्लोक सख्या कवि ने ढाई हजार जितनी बतलाई है। ग्रथ मे जैनियो के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा अकित की है। यद्यपि उसमे पूर्व चरित ग्रथो के अनुसार ही वर्णन दिया है, किन्तु कवि ने उसे विविधवर्णनो के साथ सरस बनाने की चेष्टा की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ साहु नेमिचन्द्र के अनुरोध से बनाया गया है। नेमिचन्द्र वोदाउ नामक नगर के निवासी थे और जो जायस या जैसवाल कुल कमल दिवाकर थे। इनके पिता का नाम साहु नरवर और माता का नाम सोमा देवी था, जो जैनधर्म के पालन करने मे तत्पर थे। साहु नेमचन्द की धर्म-पत्नी का नाम 'वीवा' देवी था। इनके सभवत. तीन पुत्र थे—रामचन्द्र, श्रीचन्द्र और विमलचन्द।

एक दिन साहु नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर से निवेदन किया कि जिस तरह चन्द्रप्रभ चरित्र और शान्तिनाथ चरित्र बनाये हैं, उसी तरह मेरे लिये अन्तिम तीर्थंकर का चरित्र बनाइये। तब कवि ने उक्त चरित्र का निर्माण किया है। इसी से कवि ने प्रत्येक सन्धि पुष्पिका मे उसे नेमिचन्दानुमत लिखा है। इतना ही नही किन्तु कवि ने प्रत्येक सन्धि के प्रारभ मे जो सस्कृत पद्य दिये है उनमे नेमिचन्द को सम्यग्दृष्टि, धीर, बुद्धिमान, लक्ष्मीपति, न्यायवान् और भव-भोगो से विरक्त बतलाते हुए उनके कल्याण की कामना की गई है। जैसा कि उसके ८ वी सन्धि के प्रारभ के निम्न श्लोक से प्रकट है—

य सद्दृष्टिरुदारुधीरधिपणो लक्ष्मी मता समतो।
न्यायान्वेषणतत्पर परमत प्रोक्तागमा सगत ॥
जैनेकाभव-भोग-भगुर वपु वैराग्य भावान्वितो।
नन्दत्वात्स हि नित्यमेव भुवने श्री नेमिचन्द्रश्चिर ॥

कवि ने इस ग्रन्थ को विक्रम सवत् ११९० मे ज्येष्ठ कृष्णा पचमी शनिवार के दिन बनाकर समाप्त किया है। इससे एक वर्ष पहले अर्थात् स० ११८९ मे पार्श्वनाथ का चरित दिल्ली मे नट्टल साहु की प्रेरणा से बनाया था। चन्दप्रभ चरित स० ११८७ से भी पहले बनाया था, क्योकि उसमे उसका उल्लेख है। पर वह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। और न शातिनाथ चरित्र ही प्राप्त है। इन दोनो कृतियो का ग्रन्थ भण्डारो मे अन्वेषण होना चाहिये।

कवि परिचय -

कवि का वश अग्रवाल था। इनके पिता का नाम बुध गोल्ह और माता का नाम बील्हा देवी था। सभवत इनके पिता भी विद्वान थे। कवि कहाँ के निवासी थे। यह ग्रन्थ मे उल्लिखित नही है। सभवत वे हरियाना प्रदेश के रहने वाले थे। अन्य दो ग्रन्थ मिलने पर कवि के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त हो सकती है। कवि का समय १२ वी शताब्दी है,

१२१ वी प्रशस्ति 'सतिणाहचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि शुभकीर्ति है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे १९ सन्धियाँ है। जिनमे जैनियो के १६वे तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का चरित्र चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ की एकमात्र प्रति नागौर के भट्टारकीय भडार मे सुरक्षित है। जो सवत् १५५१ की लिखी हुई है। ग्रन्थ सामने न होने से उसकी प्रशस्ति का ऐतिहासिक भाग नही दिया जा सका। और न कवि शुभकीर्ति का ही कोई परिचय या गुरु परम्परा दी जा सकी है। पर यह सुनिश्चित है कि ग्रन्थ स० १५५१ से पूर्व का बना हुआ है। इस नाम के अनेक विद्वान हो गए हैं, अतएव जब तक ग्रन्थ प्रशस्ति पर से उनकी गुरु परम्परा ज्ञात न हो, तब तक उनका निश्चित समय बतलाना कठिन है। यदि भट्टारक जी की कृपा से उक्त चरित ग्रन्थ प्राप्त हो सका, तो फिर किसी समय उसका परिचय पाठको को कराया जा सकेगा।

१२२वी प्रशस्ति 'णेमिणाहचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे ५ सन्धियाँ है, जिनमे जैनियो के २२वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का चरित्र अकित किया गया है, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। चरित्र आडम्बरहीन और सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है, और कवि उसे बनाने मे सफल भी हुआ है। इस चरित रूप खण्ड काव्य की रचना मे प्रेरक एक सज्जन थे, जो धर्मनिष्ठ तथा दयालु थे। वे गुजरात से मालव देश के 'सलखणपुर' मे आये थे। और भगवान् महावीर के उपासक थे। वे खडेलवाल वश के भूषण थे, विषय विरक्त और सासारिक जीवन को सफल बनाने

वाले थे, जैनधर्म के प्रतिपालक थे। उनका नाम इदुक या इन्द्र था और उनके पिता का नाम केशव था, वे जिन पूजादि गृहस्थ के षट्कर्मो का प्रतिपालन करते थे और अन्तर्बाह्य कालिमा को दूर करने का प्रयत्न करते थे। तथा 'मल्ह' का पुत्र नागदेव पुण्यात्मा प्रसन्नचित्त और भव्यजनो का मित्र था, वही रामचन्द्र सयमी गुणनिधान भी रहते थे। कवि ने इन्ही पडित रामचन्द्र के आदेश से और नागदेव के अनुरोध से उक्त ग्रन्थ की रचना की थी। उसी सलखणपुर मे सघाधिप कमलभद्र नाम के श्रेष्ठी थे, जो अष्टमदो से रहित, बाईस परीषहो के सहन करने मे धीर, कर्म-शत्रुओ के विनाश करने में सावधान, त्रिशल्य, त्रिवेद और कषायों के हनन करने वाले और जिनधर्म की देशना में निरत रहते थे।

कवि ने इस ग्रन्थ को परमार वशी राजा देवपाल के राज्य मे विक्रम सवत् १२८७ मे बनाया था। प्रस्तुत देवपाल मालवे का परमार वश का राजा था, और महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्मा का, जो छोटी शाखा के वशधर थे, द्वितीय पुत्र था, क्योकि अर्जुनवर्मा के कोई सन्तान नही थी। अत उस राजगद्दी का अधिकार इन्हे ही प्राप्त हुआ था। इनका अपरनाम 'साहसमल्ल' था। इनके समय के ३ शिलालेख और एक दान पत्र मिला है। एक विक्रम सवत् १२७५ सन् १२१८ का हरसोडा गाँव से और दो लेख ग्वालियर राज्य से मिले है। जिनमे एक विक्रम सवत् १२८६ और दूसरा वि० स० १२८९ का है[२]। माधाता से वि० स० १२९२ भाद्रपद शुक्ला १५ (सन् १२३५, अगस्त २९ का) दान पत्र भी मिला है[३]।

दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश ने मालवा पर सन् १२३१-३२ मे चढाई की थी। और एक वर्ष की लडाई के बाद ग्वालियर को विजित किया था। और बाद में भेलसा (विदिशा) और उज्जैन को जीता था और वहाँ के महाकाल मदिर को भी तोडा था। इतना होने पर भी वहाँ सुलतान का अधिकार न हो सका। सुलतान जब लूट-पाट कर चला गया, तब भी वहाँ का राजा देवपाल ही रहा[४]। इसी के राज्यकाल मे प० आशाधर जी ने विक्रम स० १२८५ मे नलकच्छपुर[५] (नालछे) मे 'जिनयज्ञ कल्प' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, उस समय देवपाल मौजूद थे। इतना ही नही किन्तु जब दामोदर कवि ने सवत् १२८७ मे सलखणपुर[६] मे 'णेमिणाह चरिउ' रचा, उस समय भी देवपाल जीवित थे। किन्तु जब संवत्

१. इडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ३११

२ इडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ८३

३ एपि ग्राफिका इडिका जि० ९ पृ० १०८-१३

४. ब्रिग फिरिश्ता जि० १ पृ० २१०-११

५. नलकच्छपुर को नालछा कहते है यह धारा से १६ मील की दूरी पर स्थित है, वहा का नेमिनाथ का मन्दिर प्रसिद्ध था, उसी मे बैठकर प० आशाधरजी ने ग्रथ रचना की। यह स्थान उस समय जैन संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था। जिनयज्ञकल्प स० १२८५ मे यही बना। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है—

विक्रम वर्ष स पचाशीति द्वादश शतेस्वतीतेषु,
आश्विन सितान्य दिवसे साहसमल्ला पराख्यस्य।
श्री देवपालनृपते प्रमारकुमार शेखरस्य सौराज्ये,
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोऽय नेमिनाथचैत्यगृहे॥ जिनयज्ञकल्पप्रशस्ति।

६ प्रस्तुत सलखणपुर या सलक्षणपुर धारा मे नालछे के आस-पास ही कही पर स्थित था। नागदेव इसी स्थान का निवासी और नागवश का मणि तथा जैन चूडामणि था। उनके पिता का नाम माल्हा था, और वह देवपाल के राज्य मे शुल्क, चुगी या टैक्स विभाग मे काम करता था। नागदेव ने एक दिन

१२९२ (सन् १२३५) मे 'त्रिपष्ठि स्मृति शास्त्र' आशाधर जी ने बनाया उस समय उनके पुत्र 'जैतुगिदेव' का राज्य था। इससे स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु स० १२९२ से पूर्व हो चुकी थी। इसीसे सवत् १२९६ मे जब सागार धर्मामृत की टीका देवपाल राजा के पुत्र जैतुगिदेव के राज्य मे, जब वह अवन्ती मे था, तब नलकच्छपुर के चैत्यालय मे प० आशाधर जी ने 'भव्य कुमुचन्द्रिका' बनाई[७]। और वि० स० १३०० मे जब अनगार धर्मामृत की टीका बनी, उस समय भी जैतुगिदेव का राज्य था[८]।

कवि-परिचय

कवि दामोदर का वश 'मेडेत्तम' था। इनके पिता का नाम कवि माल्हण था, जिन्होने 'दल्ह' का चरित बनाया था, यह भी सलखणपुर के निवासी थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि गुणभद्र के पट्टधर सूरिसेन हुए और उनके शिष्य कमलभद्र हुए और उनके शिष्य प्रस्तुत कवि दामोदर थे। कवि ने लिखा है कि पृथ्वीधर के पुत्र ज्ञानचन्द्र और पडित रामचन्द्र ने उपदेश दिया, तथा जसदेव के पुत्र जसनिधान ने वात्सल्य भाव प्रदर्शित किया था। कवि प० आशाधर के समकालीन थे। और वे उस सलक्षणपुर मे रहे भी थे। ग्रथकर्ता ने अपना यह ग्रथ वि० स० १२८७ मे बनाकर समाप्त किया था।

मालव प्रांत के शास्त्र भडारो का अन्वेषण करने पर सभव है अन्य रचनाए भी प्राप्त हो जाय, और उससे इतिहास की गुत्थियो के सुलझाने मे सहायता मिले।

परिशिष्ट नं० १२ का परिचय

प्रस्तुत प्रशस्ति 'मेघमाला वयकहा' की है, जिसके कर्ता कवि ठक्कुर हैं। इसमें मेघमाला व्रत की कथा अंकित की गई है। कथा सक्षिप्त और सरल है और हिन्दी भाषा के विकास को प्रस्तुत करती है। यह कथा ११५ कडवक और लगभग २११ श्लोकों मे पूर्ण हुई है, जिनमे उक्त व्रत के अनुष्ठान की विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है। इस व्रत का अनुष्ठान भाद्रपद मास की प्रतिपदा से किया

गृहस्थाचार्य प० आशाधर जी से निवेदन किया कि मैं प्राय राज्यकार्य से अवरुद्ध रहता हूँ। अत मेरे कल्याणार्थ व्रतो का उपदेश दीजिये। तब उक्त पडित जी ने आर्य केशवसेन के वचन से नागदेव की धर्मपत्नी के लिए स० १२८३ मे 'रत्नत्रय विधि' नाम की कथा सस्कृत गद्य मे बनाई थी।

देखो राजस्थान जैन ग्रन्थ भडार सूची भा० ४ पृ० २४२

७ नलकच्छपुरेश्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
टीकेय भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधै ॥१२०
षण्णवद्व्येक संख्यान विक्रमाङ्क समात्यये।
सप्तम्यामसिते पौषे सिद्धेय नन्दताच्चिरम् ॥१२१

—सागारधर्मामृत टीका प्रशस्ति

८ प्रमारवशावार्धीन्दु देवपालनृपात्मजे।
श्रीमज्जैतुगिदेवेऽसि स्थेम्नाऽवन्तीभवत्यलम् ।११९
नकलच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
विक्रमाब्द शतेष्वेषा त्रयोदशसु कीर्त्तिके ॥

—अनगारधर्मामृतटीका प्रशस्ति

जाता है। व्रत के दिन उपवासपूर्वक जिन पूजन अभिषेक, स्वाध्याय सामायिक आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये। इस व्रत को पाँच प्रतिपदा, और पाँच वर्ष तक सम्पन्न करें। पश्चात् उसका उद्यापन करे। यदि उद्यापन करने की सामर्थ्य न हो तो दुगने समय तक व्रत करना चाहिये। इस व्रत का अनुष्ठान चाटसू (चम्पावती) नगरी के श्रावक श्राविकाओ ने सम्पन्न किया था। उस समय राजा रामचन्द्र का राज्य था, वहाँ पार्श्वनाथ का सुन्दर जिनालय था और तत्कालीन भट्टारक प्रभाचन्द्र भी वहाँ मौजूद थे। और जो गण-धर के समान भव्यजनो को धर्मामृत का पान करा रहे थे। वहाँ खडेलवाल जाति के अनेक श्रावक रहते थे। उनमे पण्डित माल्हा पुत्र कवि मल्लिदास ने कवि ठकुरसी को मेघमाला व्रत की कथा के कहने की प्रेरणा की। वहाँ के श्रावक सदा धर्म का अनुष्ठान करते थे। हाथुवसाह नाम के एक महाजन और भट्टारक प्रभाचन्द्र के उपदेश से कवि ने मेघमाला व्रत कब कैसे करना चाहिये इसका सक्षिप्त वर्णन किया। वहाँ तोषक, माल्हा, और मल्लिदास आदि विद्वान भी रहते थे। श्रावक जनो मे प्रमुख जीरण, ताल्हु, पारस, नेमिदास, नाथू सि और भुल्लण, वउली आदि ने व्रत का अनुष्ठान किया। कवि ने इस ग्रथ को सं० १५८० में प्रथम श्रावण शुक्ला छट के दिन पूर्ण किया था।

कवि ने इसके अतिरिक्त स० १५७८ मे 'पारस श्रवण सत्ताइसी' एक कविता बनाई थी, जो एक ऐतिहासिक घटना को प्रकट करती है, और कवि के जीवन काल मे घटी थी, उसका आँखों देखा वर्णन कवि ने लिखा है। इनके अतिरिक्त जिनचउवीसी, कृपणचरित्र (स० १५८० पूस मास) पचेन्द्रियवेल (स० १५८५ का० सु० १३) और नेमीश्वर की बेल आदि रचनाये रची थी, जो स्व-पर-सम्बोधक है ?

कवि-परिचय

कवि चाटसू (वर्तमान चम्पावती) नगरी के निवासी थे। इनकी जाति खडेलवाल, और गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम 'घेल्ह' था, जो कवि थे, इनकी कविता अभी मेरे देखने मे नही आई। किन्तु कवि ने पचेन्द्रियवेल के अन्तिम पद के 'कवि-घेल्ह सुतनु गुण गाऊँ' वाक्य मे उन्हे स्वयं कवि ने सूचित किया है। कवि के पुत्र का नाम नेमिदास था, जिसने मेघमाला व्रत की भावना की थी। कवि की उल्लिखित रचनाओ का काल स० १५७८ से स० १५८५ तक का उपलब्ध ही है। इनके अतिरिक्त अन्य किन कृतियो का निर्माण किया, यह विचारणीय है। सभव है ग्रन्थ भडारो में इनकी अन्य कृतियाँ भी अन्वेषण करने पर मिल जावे।

यह प्रशस्ति सुगन्धदसमीकथा की है जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति है। इस कथा मे भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत की कथा का वर्णन करते हुए उसके फल का विधान किया गया है। कथा सक्षिप्त और सभवत: ८ कडवको को लिये हुए है। कवि ने दशवी व्रत के अनुष्ठान करने की प्रेरणा की है। कवि ने कथा कब बनाई, इसका रचना मे कोई उल्लेख नही है।

कवि-परिचय

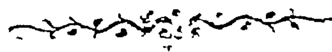
ग्रथकर्ता विमलकीर्ति ने रामकीर्ति गुरु का विनय कर इस कथा को बनाया है प्रस्तुत रामकीर्ति गुरु कौन थे और उनका समय क्या है ? यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के चार विद्वानो का उल्लेख

१. इनके परिचय के लिये देखो, अनेकान्त वर्ष १४ किरण १ मे प्रकाशित 'कविवर ठकुरसी और उनकी कृतियाँ' नामक मेरा लेख पृ० १०

मिलता है। उनमें प्रथम रामकीर्ति के शिष्य विमलकीर्ति हैं। दूसरे विमलकीर्ति मूलसघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे[२]। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने स० १४१३ मे वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य मे लबकचुकान्वयी श्रावक ने एक जिनमूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। जो खडित दशा मे भौगाँव के मन्दिर की छत पर रखी हुई है।

तीसरे रामकीर्ति भट्टारक वादिभूषण के पट्टधर थे, जिनका विम्ब प्रतिष्ठित करने का समय सवत् १६७० है। यह रामकीर्ति १७ वी शताब्दी के उत्तरार्ध के विद्वान है। चौथे रामकीर्ति का नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के पट्टधर के रूप मे मिलता है। इनमे प्रथम रामकीर्ति का सम्बन्ध ही विमलकीर्ति के साथ ठीक बैठता है। इनमे प्रथम रामकीर्ति के शिष्य यश कीर्ति ने 'जगत सुन्दरी प्रयोगमाला' नाम के वैद्यक ग्रन्थ की रचना की है। जिनका समय विक्रम की तेरहवी शताब्दी है। रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड़ मे सवत् १२०७ की उत्कीर्ण की हुई उपलब्ध है[३]। यश कीर्ति ने जगत् सुन्दरी प्रयोगमाला मे अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरिका (स० ११७१) का उल्लेख किया है[४]। इससे विमलकीर्ति का समय विक्रम की तेरहवी शताब्दी हो सकता है।

यह प्रशस्ति 'पुष्पाजलि कथा' की है। इसके कर्ता का परिचय अभी अज्ञात है। और सभवत वे अनन्तकीर्ति गुरु मालूत होते है। इसमे पुष्पाजलि व्रत की कथा दी गई है। ग्रन्थ सामने न होने से विशेष परिचय देना सभव नही है। इस कथा के कर्ता बलात्कारगण के विद्वान रत्नकीर्ति शिष्य भावकीर्ति युक्त अनतकीर्तिगुरु बतलाये गये है। इनका समय अभी विचारणीय है।



२ सवत् १४१३ बैशाख सुदि १३ बुधे श्रीमदमवरावती नगरावीश्वर चाहुवाण कुल श्री अजयराय देवराज्य प्रवर्तमाने मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्रीरामकीर्तिदेवास्तस्य शिष्य भ० प्रभाचन्द्र लवकचुकान्वये साधु' भार्या सोहल तयोः पुत्र सा० जीवदेव भार्या सुरकी तयो पुत्र केशो प्रणमति। —देखो जैन सि० भा०,भा० २२ अक २

३ एपिग्राफिका इडिका जि० २ पृ० ४२१

४ देखो जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

प्रशस्ति संग्रह की प्रस्तावना में उपयुक्त ग्रन्थ-संकेत-सूची

अनेकान्त वर्ष—८, १०, ११, १२, १३, १४, सम्पादक प० जुगलकिशोर मुख्तार आदि वीर सेवा मदिर, २१ दरियागज दिल्ली
अपभ्रश भाषा साहित्य—हरिवश कोछड
इण्डियन एण्टीक्वेरी जि० २०, पृ० ८३, ३११
इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी
एनाल्स आफ दी भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
एपि ग्राफिका इण्डिका भा० २ जिल्द ३१
एपि ग्राफिका इण्डिका जि० २ पृ० ४२१
एपि ग्राफिका इण्डिका जि० ७ पृ० १०८-१३
करकडु चरिउ कनकामर स० डा० हीरालाल जैन, कारजा सीरीज
कुवलय माल', सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन बम्बई
ग्वालियर गजेटियर—ग्वालियर पुरातत्व विभाग
टाडराजस्थान टिप्पण, रा० ब० गौरीशकर हीराचन्द ओझा
जनरल एशियाटिक सोसाइटी आफ विहार
जसहर चरिउ पुष्पदन्त, सम्पादक डा० पी० एल० वैद्य, कारजा सीरीज
जैनग्रथप्रशस्तिसग्रह प्रथम भाग, वीर सेवामदिर २१ दरियागज
जैनग्रथप्रशस्तिसंग्रह, जैन सिद्धान्त भवन आरा (विहार)
जैन मूर्तिलेख संग्रह—बाबू कामता प्रसाद
जैन शिलालेख सग्रह भाग १, २, ३, माणिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई,
जैन सदेश शोधाक, सम्पादक डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भा० दि० जैन सघ चौरासी मथुरा
जैन साहित्य और इतिहास—प० नाथूराम जी प्रेमी, हिन्दी ग्र० रत्ना० बम्बई
जैन सिद्धात भास्कर, जैन सिद्धान्त भवन आरा
जैसलमेर भण्डार-सूची
नागकुमार चरिउ—पुष्पदन्त स० डा० हीरालाल जैन, कारजा सीरीज
पाइय सद्द महण्णवो—प० हरिगोविन्द
बाम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जि० ५ नवम्बर सन् १६३८
भरत नाट्य शास्त्र
भारत के प्राचीन राजवश भा० १ विश्वेश्वरनाथरेउ, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई
महापुराण पुष्पदन्त सपादक डा० पी० एल० वैद्य, माणिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई
राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द, द्वितीय एडीसन गोरीशकर हीराचन्द ओझा
राजस्थान जैन ग्रथ सूची भाग २, ३, ४ महावीर तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर
रायल एशियाटिक जनरल बाम्बे सन् १६३५
लिंगवस्टिक सर्वे आफ इण्डिया सन् १६२७ पृ० १२१
समबायांगसूत्र आगमोदय समिति

हरिषेणक कथाकोश, स० डा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघीसीरीज, भा० वि० भवन, बम्बई
हिन्दी काव्य-धारा, महापडित राहुल साकृत्यायन
हिस्टोरीकल ग्रामर अपभ्रश सन् १९४८ पूना
हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३०९
हिस्ट्री आफ गुजरात इन बाम्बे गजेटियर

अपभ्रंश भाषा की अनुपलब्ध रचनाएँ

ग्रथ नाम	कर्त्ता	कहाँ उल्लेख है
अणगचरिउ (अनगचरित)	दिनकरसेन	हरिवशपुराण धवल कवि, और वाहुबली चरित कवि धनपाल
अणुपेहा (अनुप्रेक्षा)	सीहनदि	बाहुबली चरित कवि धनपाल
अम्बादेवीचर्चरीरास	कविदेवदत्त	जबूस्वारिचरित कविवीर
अमयाराहणा (अमृताराधना)	गणि अम्बसेन	हरिवश पु० कवि धवल, और बाहुबली चरित मे
करकडु चरिउ (करकडुचरित्र)	कवि रइधू	अपने ही ग्रथो मे
चदप्पहचरिउ (चद्रप्रभचरित)	कवि श्रीधर	अपने पासणाह व वड्ढमाणचरिउ मे
,, ,,	मुनिविष्णुसेन	बाहुबली चरित मे
जसहर चरिउ (यशोधर चरित)	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश मे
झाणपईव (ध्यान प्रदीप)	,,	,,
णवयारमत्र (नवकारमत्र)	नरदेव	बाहुबली चरित मे
धनदत्त चरिउ (धनदत्त चरित)	अज्ञात	,,
धर्मोपदेशचूडामणि	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश मे
पउमचरिउ (पद्मचरित)	चउमुह	स्वयभू के छन्दग्रथ, और पउमचरिउ के चौथे पद मे
पउमचरिउ (,,)	सेढुकवि	हरिवश पुराण धवल कवि, और बाहुबलि चरित मे
पचमीकहा (पचमीकथा)	चउमुह	स्वयभू के पउमचरिउ मे
पचमीकहा (,,)	स्वयभू (त्रिभुवनस्वयभू)	पउमचरिउ प्रशस्ति मे
महापुराण	रइधू	सन्मति जिनचरित प्रशस्ति मे
महावीरचरिउ (महावीरचरित)	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश मे
रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवशपुराण)	चउमुह	कवि धवल के हरिवश मे (हरिपडुवाण कहा के रूप मे
वरगचरिउ (वरागचरित)	कविदेवदत्त	वीरकवि के जम्बूस्वामि चरित मे
सतिणाहचरिउ (शातिनाथचरित)	कविश्रीधर,	वड्ढमाणचरिउ मे
सतिणाह चरिउ (,,)	कवि देवदत्त	वीरकवि के जम्बूस्वामीचरित मे
सम्यक्त्व कौमुदी	सहणपाल	
सुदसणचरिउ (सुदर्शन चरित)	कवि रइधू	सन्मति जिन चरित प्रशस्ति मे

प्रस्तावना की नामानुक्रम-सूची

जैनग्रन्थ-प्रशस्तिसंग्रह

(आद्यन्तादिभागसचयात्मक)

१—पउमचरिय [पद्मचरित्र] महाकवि स्वयंभु

आदिभागः—

णमह णव-कमल कोमल मणहर-वर-बहल कंति सोहिल्लं ।
उसहस्स पायमकमलं स-सुरासुरवंदियं सिरसा ॥१॥
दीहर-समास णालं सद्दलं अत्थकेसरुग्घविय ।
बुह महुयर-पीय-रसं सयंभु-कव्वुप्पलं जयउ ॥२॥

... ...

घत्ता—जे काय-वाय-मणे णिच्छिरियं, जे काम-कोह-दुण्णय तिरिय
ते एक्क-मणेण सयंभुएण, वंदिय गुरु परमायरिय ॥

.. ..

वड्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय,
रामकहा-णइ एह कमागय ।
अक्खर-वास जलोह मणोहर,
सु-अलंकार-छन्द मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहावंकिय,
सक्कय-पायय-पुलिणालंकिय ।
देसीभासा-उभय-तडुज्जल,
क वि दुक्कर-घण सद्द-सिलायल ॥
अत्थ बहल कल्लोलाणिट्ठिय,
आसासय-सम-तूह परिट्ठिय ।
एह राम कह-सरि सोहंती,
गणहर देवहिं दिट्ठ बहंती ॥
पच्छइं इंदभूइ आयरिए,
पुणु धम्मेण गुणालंकरिए ।
पुणु एवहि संसाराराए,
कित्तिहरेण अणुत्तरवाए ॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं,
बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ।
पउमिणि-जणणि गब्भ सभूएं,
म रुयएव-रूव-अणुराएं ॥
अइतणुएण पईहरगत्तें,
छिव्वर-णासे पविरल दत्तें ।

घत्ता—णिम्मल-पुण्ण पवित्त-कह कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जंतएण थिरकित्ति विढप्पइ ॥२॥

बुहयण सयंभु पइं विण्णवइ,
मइ सरिसउ अण्णु णत्थि कुकइ ।
व यरणु कयावि ण जाणियउ,
णउ वित्तिसुत्तु ववखाणियउ ॥
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय,
णउ सधिहे उप्परि बुद्धि थिय ।
णउ णिसुणिउ सत्त विहत्तियाउ,
छव्विहउ समास-पउत्तियाउ ॥
छक्कारय दस लयार ण सुय,
वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।
ण बलाबल-धाउ-णिवायगणु,
णउ लिंगु उणाइ वक्कु वयणु ॥
णउ णिसुणिउ पच महाय कव्वु,
णउ भरहु ण लक्खणु छन्दु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ पिंगल पत्थारु,
णउ भम्मह दंडियलंकारु ।
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि,
वरि रयडावुत्तु कव्वु करमि ॥

.. ..

इय एत्थ पउमचरिए धणजासिय-सयभुएवकए ।
जिण-जम्मुप्पत्ति इम पढम चिय साहिय पव्वं ॥

अन्तिमभाग.—

तिहुयण-सयभु-णवर एक्को कइराय-चक्किणुप्पण्णो ।
पउमचरियस्स चूडामणि व्व सेसं कय जेण ॥१॥
कइरायस्स विजय-सेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुयण-सयभुणा पउमचरिय सेसेण णिस्सेसो ॥२॥
तिहुयण-सयभु-धवलस्स को गुणो वण्णिउ जए तरइ ।
वालेण वि जेण सयंभु-कव्वभारो समुव्वूढो ॥३॥
वायरण-दढक्खंधो आगम-अंगोपमाण-वियडपओ ।
तिहुयण-सयंभु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्वभरं ॥४॥
चउमुह-सयभुएवाण वण्णियत्थ अचक्खमाणेण ।
तिहुयण-सयभु - रइय पंचमि-चरियं महच्छरियं ॥ ५
सव्वे वि सुया पजर सुयव्व पढिअक्खराइं सिक्खति ।
कइरायस्स सुओ सुयव्व सुइगब्भ-सभूओ ॥६॥

तिहुयण सयंभु जइ ण हुतु णंदणो सिरि सयंभुदेवस्स ।
कव्व कुल कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥७॥
जइ ण हुउ छंदचूडामणिस्स तिहुयणसयंभु लहु तणउ ।
तो पद्धडिया कव्वं सिरिपंचमि को समारेउ ॥८॥
सव्वो वि जणो गेण्हइंणियताय-विढत्त दव्व-संताण ।
तिहुयण-सयंभुणा पुण गहिय ण सुकइत्त-संताण ॥९॥
तिहुयण-सयभुमेक्कं मोत्तूण सयंभुकव्व-मयरहरो ।
को तरइ गतुमत मज्झे णिस्सेस-सीसाणं ॥१०॥
इय चारु पोमचरिय सयभुएवेण रइय सम्मत्तं ।
तिहुयण-सयभुणा तं समाणियं परिसमत्तमिणं ॥११॥
मारुय-सुय-सिरिकइराय तणय-कय-पोमचरिय अवसेसं ।
सपुण्ण सपुण्णए वंदइओ लहउ सपुण्णं ॥१२॥
गोइंद-मयण सुयणत विरइय (?) वंदइय-पढमतणयस्स ।
वच्छलदाए तिहुयण सयंभुणा रइयं महप्पयं ॥
वंदइय-णाग-सिरिपाल-पहुइ-भव्वयण समूहस्स ।
आरोगत्त समिद्धी संति सुहं होउ सव्वस्स ॥
सत्त महा संसग्गी तिरयणभूसा सु रामकह-कण्णा ।
तिहुयण-सयभु-जणिया परिणउ वंदइय मणतणउ ॥

इय रामायण पुराण समत्तं

सिरि-विज्जाहर कडे सधीओ हुति वीस परिमाणं ।
उज्झाकंडमि तहा बावीस मुणेह गणणाए ॥
चउदह सु दरकडे एक्काहिय वीसजुज्झकंडेण ।
उत्तरकंडे तेरह सन्धीओ णवइ सव्वाउ ॥छ॥

लिपिकार-प्रशस्ति

संवत् १५१४ वर्षे वैशाख सुदि १५ सोमवार ग्रन्थ-सख्या १२००० ।

२-रिट्ठणेमिचरिउ [हरिवंश पुराण]—महाकविस्वयंभू,

आदिभागः—

सिरि परमागम-णालु सयल-कला कोमल-दलु ।
करहु विहूसणु कण्णे जयव कुरुव-कुलुप्पलु ॥

× × ×

चिंतवइ सयम्भु काइं करमि,
हरिवंस-महण्णउ के तरम्मि ।
गुरु - वयण - तरंडउ लद्धु णवि,
जम्महो वि ण जोइउ कोवि कवि ॥
णउ णाइउ बाहत्तरि कलाउ,
एक्कु वि ण गंथु परिमोक्कलाउ ।
तहि अवसरि सरसइ धीरवइ,
करि कव्वु दिण्णु मइ विमलमइ ।
इंदेण समप्पिउ वायरणु,
रसु भरहें वासे वित्थरणु ।
पिंगलेण छन्द-पय-पत्थारु,
भम्मह-दंडिणिहिं अलंकारु ।
वाणेण समप्पिउ घण घणउ,
तं अक्खर-डंबरु अप्पणउ ।
सिरिहरिसे णिय णिउत्तणउ,
अवेरहि मि कइहिं कइत्तणउ ।
छड्डणिय दुवइ-धुवएहिं जडिय,
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय ।
जण णयणाणद जणेरियए,
आसीसए सव्वहु केरियए ।
पारंभिय पुणु हरिवंस-कहा,
स-समय-पर-समय वियार-सहा ।

घत्ता—पुच्छइ मागहणाहु, भव जर-मरण-वियारा ।
थिउ जिण सासणु केम, कहि हरिवंस भडारा ॥२॥

× × ×

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभुएवकए
पढमो समुद्दविजयाहिसेयणामो इमो सग्गो ॥१॥

अन्तिमभागः—

इह भारह-पुराणु सुपसिद्धउ,
णेमिचरिय-हरिवंसाइद्धउ ।
वीर-जिणेसे भवियहो अक्खिउ,
पच्छइ गोयमसामिण रक्खिउ ।
सोहम्में पुणु जबूसामे,
विण्हुकुमारें दिग्गयगामें ।
णदिमित्त अवरज्जिय णाहें,
गोवद्धणेण सुभद्दहनाहें ।
एम परपराइं अणुलग्गउ,
आयरियह मुहाउ आवग्गउ ।
सुणु सखेव सुत्तु अवहारिउ,
विउसें सय भें गहि वित्थारउ,
पद्धडिया छन्दें सुमणोहरु ।
भवियण जण मण-सवण सुहंकरु,
जस परिसेसि कवहिं जं सुण्णउ ।
तं तिहुयण-सयभु किउ पुण्णउ,
तासु पुत्तें पिउ-भर-णिव्वाहिउ ।

पिय-जसु णिय-जसु भुवणे पसाहिउ,
गय तिहुयण-सयम्भु सुरठाणहो ।
ज उव्वरिउ किंपि सुणियाणहो ।
त जसकित्ति मुणिहि उद्धरियउ,
णिए वि सुत्तु हरिवंसच्छरियउ ।
णिय गुरु-सिरि-गुणकित्ति-पसाए,
किउ परिपुण्णु मणहो अणुराए ।
सरह सेणेदं (सहससेण) सेठि-आएसें,
कुमर-णयरि आविउ-सविसेसें ।
गोवग्गिरिहे समीवे विसालए,
पणियारहे जिणवर-चेयालए ।
सावयजणहो परउ वक्खाणउ,
दिड्ढु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ ।
जं अमुणतें इह मइ साहिउ,
त सुयदेवि खमउ अवराहउ ।
णंदउ णरवइ पय-पालन्तहो,
णदउ भवियण-कय उच्छाहहो ।
णदउ णरवइ पय-पालतहो,
णदउ दय-धम्मु वि अरहंतहो ।
कालं वि य णिच्च परिसक्कउ,
कासुवि धणु कणु दिंतु ण थक्कउ ।
भद्दवमासि विणासिय-भवकलि,
हुउ परिपुण्ण चउद्दसि णिम्मलि
घत्ता—इय चउविह सप्पहं, विहुणिय-विग्घह,
णिण्णासिय-भव-जर-मरणु ।
जसकित्ति-पयासणु, अखलिय-सासणु
पयडउ संतिसयभु जिणु ॥१७॥
इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयभुएव-उव्वरिए ।
तिहुवण-सयभु रइए समाणिय कण्हकित्ति हरिवंस ॥१॥
गुरु-पव्व-वासभय सुयणाणाणुक्कस जहां जायं ।
सयमिक्क-दुदहं-अहियं सन्धीओ परिसमत्ताओ ॥२॥
इति हरिवंशपुराणं समाप्त । सन्धि ११२

३-सुदंसणचरिउ(सुदर्शनचरित)नयनंदी रचनासं०११००

आदिभाग—

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥१॥
इह पंच णमोकारइं लहेवि गोवहु वउ-सुदंसणु ।
गउमोक्खहो अक्खमि तहो चरिउ वचउ वग्गपयासणु ॥
× × × ×

इत्थ सुदंसण-चरिए पंचणमोकार फल-पयासरे माणिक्कणंदि तइविज्ज सीसु-णयणंदिणा रइए असेस सुर संथुयं णवेवि वड्ढमाणं जिणं तउवि पट्टणं णरय-पच्छिओ पव्वय समोसरण संगय महापुराण-आउत्थणं इमाण कय पढमो संधि सम्मत्तओ । सधि १

अन्तिमभागः—

जिणंदस्स वीरस्स तित्थे महते ।
महा कुंदकुंदण्णए एत संते ।
ससिक्खाहिहाणो तहा पोमणंदी ।
पुणो विण्हुणंदी तओ णंदणंदी
जिणुदिट्ठ-धम्मं धुराणं विसुद्धो ।
कयाणेय गंथो जयंते पसिद्धो ।
भवांबोहि पोओ महाविस्सणंदी
खमाजुत्त सिद्धंतउ विसहणंदी ॥१॥
जिणिंदागमाहासणो एय-चित्तो ।
तवायारणिट्ठाय लद्धीय जुत्तो ।
णरिंदामरिंदेहि सो णदवंदी ।
हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी ॥२॥
असेसाण गंथम्मि पारम्मि पत्तो,
तवे यंग बीभव्व राईव मित्तो ।
गुणावास-भूओ सु-तेलोक्कणंदी ।
महापडिऊ तस्स माणिक्कणंदी ।
(तइविज्ज सीसो कई णयणंदी,)
भुयगप्पहाऊ इमो णाम छंदी ॥३॥

घत्ता—

पढम सीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणि णयणंदी अणिंदउ
चरिउ सुदंसण णाह हो तेण अवाहहो विरइउ बुह अहिणंदिउ

आराम गाम-पुरवर-णिवेस ।
सुपसिद्ध अ वन्तीणाम देस ॥४॥
सुरवइ-पुरिव्व विबुहयण इट्ठ ।
तहिं अत्थि धारणयरी गरिट्ठ ।
रण दुद्धरु अरिवर सेलवज्ज ।
रिद्धिए देवा सुर-जणिय-चोज्ज ॥५॥
तिहुवण णारायण सिरिणिकेउ ।
तहिं णरवर पुंगमु भोयदेउ ।
मणि-गण-पह-दूसिय-रवि-गभत्थि ।
तहिं जिणहरु बद्ध-विहार अत्थि ॥६॥
णिव विक्कम कालहो ववगएसु ।

एयारह संवच्छर-सएसु ।
तहिं केवलि चरिउ अमयच्छरेण ।
णयणंदी विरयउ वित्थरेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ लिहेइ ।
सो सासय-सुहु अइरे लहेइ ।

घत्ता-णयणंदियहो मुणिंदहो कुवलयचंदहो णरदेवा सुर वंदहो ।
देउ दिणमइ णिम्मलु भवियहं मंगलु वाया जिणवर इंदहो ॥

एत्थ सुदंसणचरिए पंचणमोक्कार-फल पयासयरे माणिक्कणंदि-तइविज्जसीसु-णयणंदिणा रइए गइंद, परि वित्थरो सुरवरिंद थोत्त तहा मुणिंद सहमडवंत-सुविमोक्ख वासे ठामे गमणमो पयफल पुणो सयल साहूणामावली इमाण कय वण्णणो संधि दो दहमो सम्मत्तो ॥छ॥ संधि १२

४—पासपुराण (पार्श्वनाथपुराणं) पद्मकीर्ति
रचनाकाल सं० ९९९

आदि भाग—

चउवीस वि जिणवर सामिय,
सिव-सुह गामिय पणविवि अणुदिणु भावें ।
पुण्णकहं भुवण पयास हो,
पयडमि पास हो जणहो मज्झ सहावे ॥ ॐ ॥

अन्तिम भाग—

अट्ठारह संधिउ इय पुराणु, तेसट्ठिपुराणें महापुराणु ।
सय तिण्णि दहोत्तर कडवयाइं, णाणाविह छंद सुहावयाइं ॥
तेवीससयइं तेवीसयाइं, अक्खरइं कहमि सविसेसयाइं ।
इउ एत्थु सत्थु गंथह पमाणु फुडु पयडु असेसु वि कय पमाणु॥
सुपसिद्ध महापहु णियमधरु ॥
माथुरहं गच्छिउ पुहमिभरू ।
तहो चन्दसेणु णामेण रिसी,
वय-संजम णियमइ जाउ किसी ॥
तहो सीसु महामइ णियमधारि,
णयवन्तु महामइवम्भचारि ।
रिसि माहउसेणु महाणुभाउ,
जिणसेण सीसु पुणु तासु जाउ ॥

तहो पुव्व सणेहं पउमकित्ति, उप्पण्णु सीसु जिणु जासु चित्ति ।
ते जिणवर सासण-भाविएण, कइ-विरइय जिणसेणहो मएण ॥
गारवमय-दोस-विवज्जएण, अक्खर-पय-जोडिय लज्जिएण ।
कुकइत्तु वि जणे सुकइत्तु होइ, जइं सुयणइ भावइ एत्थ लोइ ॥
अम्हहं कुकइहिं किंपि वुत्तु, खमिएव्वउ सुयणहो तं णिरुत्तु ॥

घत्ता—रिसि गुरुदेव पसाए कहिउ असेसुवि चरित्तु मइं ।
पउमकित्ति मुणि-पुंगवहो देउ जिणेसरु विमलमइं ॥
जइवि विरुद्ध एयं णियाणबंधं जिणिंद-उवसमए ।
तह वि तहय चलण कित्तण जयउ पउमकित्तिस्स ॥
रइय पासपुराणं भमिया पुहमी जिणालया दिट्ठा ।
एहिय जीविय-मरणे हरिस-विसाओ ण पउमस्स ॥
सावय-कुलम्मि जम्मो जिणचरणाराहणा कइत्तं चे ।
एयाइ तिण्णि जिणवर भवि भवि (मह्णु) होउ पउमस्स ॥
णव सय णउवाणुइए कत्तियमासे अमावसी दिवसे ।
लिहियं पासपुराणं कइणा णामं पउमस्स ॐ ॥
संधि. अष्टादश ॥१८॥ इति पार्श्वनाथचरित्रं समाप्तं

५—धम्मपरिक्खा (धर्मपरीक्षा) बुध हरिषेण
रचनाकाल सम्वत् १०४४

आदि भाग—

सिद्धि-पुरंधिहि कंतु सुद्धें तणु मण-वयणें ।
भत्तिए जिणु पणवेवि चिंतउ बुह-हरिसेणें ॥
मणुय-जम्मि बुद्धी किं किज्जइ,
मणहरु जाइ कव्वु ण रइज्जइ ।
तं करत अवियाणिय आरिस,
हासु लहहिं भड रणि गय-पोरिस ॥
चउमुह कव्व-विरयणि सयंभुवि,
पुप्फयंतु अण्णाणु णिसुंभिवि ।
तिण्णि वि जोग्ग जेण त सीसइ,
चउमुह-मुहेथिय ताव सरासइ ॥
जो सयंभू सो देउ पहाणउ,
अह कयलोयालोय-वियाणउ ।
पुप्फयंतु णवि माणुसु वुच्चइ,
जो सरसइए कयावि ण मुच्चइ ॥
ते एवंविह हउं जड्डु माणउ,
तह छन्दालंकार विहूणउ ।

ॐ पार्श्वपुराणकी अन्तिम प्रशस्तिके ये चार पद्य कारंजा भण्डारकी सं० १४७३ की लिखितमें नहीं पाये जाते, अतः रचनादि सम्वत्को लिए हुए होनेके कारण इस प्रशस्तिको यहां स्थान दिया गया है ।

१—लेखकने भूलसे आमेर भण्डारकी प्रतिमें सन्धि-वाक्योंको उक्त चार गाथाओंके ऊपर दे दिया है जो किसी गलतीका परिणाम जान पड़ता है ।

कव्वु करंतु केम णवि लज्जमि,
तह विसेस पिय-जणु किह रंजमि ॥
तो वि जिणिंद-धम्म-अणुराएँ,
बुहसिरि- सिद्धसेण-सुपसाएँ ।
करमि सय जि णलिणि-दल थिउ जलु,
अणुहरेइ णिरुवमु मुत्ताहलु ॥

घत्ता—जा जयरामें आसि विरइय गाह-पबन्धि ।
साहम्मि धम्मपरिक्ख सा पद्धडिया-बन्धि ॥१॥

× × ×

इय धम्मपरिक्खाए चउवग्गाहिट्ठियाए चित्ताए बुहहरिषेण कए पढमो सन्धी परिसमत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भाग.—

इह मेवाड-देसि-जण-संकुलि,
सिरिउजहर-णिग्गय-धक्कड-कुलि ।
पाव-करिंद-कुम्भ-दारण हरि,
जाउ कलाहिं कुसलु णामें हरि ॥
तासु पुत्त पर-णारि-सहोयरु,
गुणगण-णिहि कुल-गयण-दिवायरु ।
गोवड्ढणु णामें उप्पण्णउ ।
जो सम्मत्त-रयण-संपुण्णउ ॥
तहो गोवड्ढणासु पिय गुणवइ,
जो जिणवर-पय णिच्च वि पणवइ ।
ताए जणिउ हरिसेणे णाम सुउ,
जो संजाउ विबुह-कइ-विस्सुउ ।
सिरि-चित्तउडु चइवि अचलउरहो,
गयउ-णिय-कज्जें जिणहर-पउरहो ।
तहिं छंदालंकार-पसाहिय,
धम्मपरिक्ख एह ते साहिय ॥
जे मज्झत्थ-मणुय आयण्णहिं,
ते मिच्छत्त भाउ अवगण्णहिं ।
ते सम्मत्त जेण मलु खिज्जइ,
केवलणाणु ताण उप्पज्जइ ॥

घत्ता-तहो पुणु केवलणाणहो णेय-पमाणहो जीव पएसहिं सुहडिउ,
बाहारहिउ अणंतउ अइसयवंतउ मोक्ख-सुक्खु-फलुपयडियउ ॥

विक्कम-णिव-परिवत्तिय कालए,
गयए वरिस सहस चउतालए ।
इउ उप्पण्णु भवियजण सुहयरु,
डंभ-रहिय धम्मासय-सायरु ॥
ते णंदहि जे लिहइ लिहावइ,
ते णंदहि जे भत्तिह भावहि ।
जे पुणु के विहु पढहि पढावहि,
ते णिय-पर-दुहु दूरे लुंटावहि ॥
एयहो अत्थु के वि जे पयडहि,
ताण णिरंतर सोक्खहि सुहडहिं ।
जे णिसुणेवि परिक्खए भत्तिए,
ते जुज्जहि णिम्मल मइ सत्तिए ॥
सयल पाणिवग्गहो दुहु हिज्जइ,
सोम समिद्धिए महि सोहिज्जइ ।
परहिय करणि विहडिय-अंहहो,
होउ जिणत्तणु चउविह संघहो ॥
पयडिय बहु पयाव अरिवारें,
णंदउ भूवइ सहु परिवारें ।
धम्म पवत्तणेण दुह-हारें,
णंदउ पय बहुविह ववहारें ।

घत्ता—खणए दुसहसु साहिउ सदरिया हिउ इउकह रयणु अगव्वहं ।
जो हरिसेण धराधर उयहि गयणधर ताम जणउसु-भव्वह ॥

इय धम्म परिक्खाए चउवग्गाहिट्ठियाए बुह हरिसेण कयाए एयरसमो संधि समत्तो ॥ सन्धि ११ ॥

६—जंबूसामिचरिउ [जंबूस्वामीचरित] कविवर वीर रचनाकाल संवत् १०७६

आदिभागः—

विजयंतु वीर-चरणग्गि-चंपए मंदिरंमि थरहरए ।
कलसु छलंतं तोए सुतरणि-लग्गत-बिंदु-छंकारा ॥१॥
सो जयउ जस्स जम्माहिसेय-पय-पूर-पंडुरिज्जंतो ।
जणियहि मसि हरिसंको कणयगिरि राइओ तइया ॥२
जयउ जिणो जस्सारुण-णह-मणि-पडिलग्ग-चक्खु सह सक्खो ।
अणिइच्छिय संव्वावदुयवत्थ-परिकलिय-लोयणो जाओ ॥३॥
समिरसु अवेय भामिय जोइसगण-जणिय-रयणि-दिणि-संकं ।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चारु सुरवइणा ॥४॥
सो जयउ महावीरो झाणाणल-हुणिय-रइ सुहो जस्स ।
णाणंमि फुरइ भुअणं एक्कं णक्खत्तमिव गयणे ॥५॥
जयउ जिणो पासट्ठिय णमि-विणमि-किवाण-फुरियपडिबिंबो
गहियाणं रूव-जुयलोव्व ति-जय-मणु सामिओ रिसहो ॥६॥
जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्सग णीलमाभिणणो ।
फलिणो तडि छिहिय णव-घणोव्व मणि-गब्भिणो फणकडप्पो

इह अत्थि परम-जिण-पय-सरणु,
गुडखेड विणिग्गउ सुहचरणु ॥१॥
सिरिलाडवग्गु तहि विमल जसु,
कइदेवयत्तु निवुड्ढ कसु ।
वहु भावहिं जे वरंगचरिउ,
पद्धडिया वधें उद्धरिउ ।
कवि गुण रस-रंजिय-विउस सहं,
वित्थारिय सुद्दय वीरकहं ।
भव्वरिय-बंधि विरइउ सरसु,
गाज्जइ संतिउ तारु जसु ।
नच्चिज्जइ जिण-पय सेवयहिं,
किउ रासउ अंबादेवि यहिं ।
सम्मत्त-महा-भर-धुर-धरहो,
तहो सरसइ-देवि लद्ध-वरहो ।
नामेण वीरु हुउ विणयजुओ,
संतुव गब्भब्भ पढमसुओ ।
घत्ता—अखलिय-सर-सक्कय, कइकलिवि आएसिउ सुउ पियरें ।
पायय पबंधु वल्लहु जणहो, विरइज्जउ किं इयरें ॥४॥
अह मालवम्मि धण-कण दरसी,
नयरी नामेण सिंधु-वरिसी ।
तहिं धक्कड़-वग्गें वंस-तिलउ,
मह सूयण णंदणु गुणणिलउ ॥
णामेण सेट्ठि तक्खडु वसई,
जस पडहु जासु तिहुयणि रसई ।
मह कइ देवदत्त्तहो परम सुही,
तें भणिउ वीरु-वय सुवण-दिही ॥
चिरु कइहिं वहुलगधुद्धरिउ,
सकिल्लहिं जवुसामिचरिउ ।
पडिहाइ न वित्थरु अज्जु जणे,
पढि भणइ वीरु सकियउ मणे ॥
भो भव्ववधु किय तुच्छ कहा,
रंजेसइ केमवि सिट्ठ सहा ।
एत्थतरे पि सुणसीह सरहो,
तक्खडु कणिट्ठु बोल्लइ भरहो ॥
वित्थर सखेवहु दिव्व मुणी,
गुरु पारउ अतरु वीरु सुणी ।
घत्ता—सरि-सर-निवाणु-ठिउ वहु विजलु, सर सुन तिह मणिणज्जइ
थोवउं करयत्थु विमलु जणेण, अहिलासें जिह पिज्जइ ॥५॥

अविय'—
सेट्ठि सिरि तक्खडेण भणियं च नओ समत्थमाणेण ।
वड्ढइ वीरस्स मणे कइत्त-करणुज्जमो जेण ॥१॥
मा होंतु ते कइंदा गरुय पबंधे वि जाण निव्वूढा ।
रसभाव मुग्गिरती वित्थरई न भारई भुवणे ॥२॥
संतिकई वाईविहु वणणुक्करि सेसु फुरिय-विण्णाणो
रस-सिद्धि संठियत्थो विरलो वाई कई एक्को ॥३॥
विजयंतु जए कइणो जाण वाणी अइट्ठ पुव्वत्थे ।
उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्टिव्व णिव्वडई ॥४॥
जाणं समग्ग सद्दो हज्झे हुउ रमइ मइ फडक्कम्मि ।
ताणं पिहु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिफुरई ॥५॥

इय जबुस्वामिचरिए सिंगार वीर-महाकव्वे महाकइ देवयत्त-सुअ-वीर-विरइए सेणिय-समवसरणागमो णाम पढमो संधि ॥१॥

अन्तिम प्रशस्ति:—
वरिसाण सय-चउक्के सत्तरि जुत्ते जिणिंद-वीरस्स ।
णिव्वाणा उववणो विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्कम णिव कालाओ छाहत्तरि दस-सएसु वरिसाणं ।
माहम्मि सुद्ध-पक्खे दसमी दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥
सुणियं आयरिय - परपराए वीरेण वीर णिदिट्ठं ।
बहुलत्थ-पसत्थ-पयं पवरमिणं चरियमुद्धरिय ॥३॥
इच्छे (इट्टे?)व दिणे मेहवण-पट्टणे वड्ढमाण जिण-पडिमा
तेण वि महा कइणा वीरेण पयट्ठि-या पवरा ॥४॥
बहुराय-कज्ज-धम्मत्थ-काम-गोट्ठी-विहत्त समयस्स ।
वीरस्स चरिय - करणे इक्को सवच्छरो लग्गो ॥५॥
जस्स कय-देवयत्तो जणणो सच्चरिय-लद्धमाहप्पो ।
सुह-सील सुद्धवसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥
जस्स य पसण्ण वयणा लहुणो सुमइ स सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ-णामेत्ति विक्खाया ॥७॥
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो बीया ।
लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी ॥८॥
पढम कलत्तं गरुहो सत्ताण कइत्त विउवि वारोहो ।
विणय-गुण-मणि-णिहाणो तणउ तह णेमिचंदो त्ति ॥
सो जयउ कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।
पाहाणमय भवण पियरुद्देसेण मेहवणे ॥९॥
अह जयउ जस्स णिव्वासो जसणाउ पंडिउत्ति विक्खाओ ।
वीर जिणालय सरिस चरियमिणं कारियं जेण ॥१०॥
इति जंबूसामिचरिय समत्तं ।

७—कहा कोसु (कथाकोष) श्रीचन्द

आदि भाग—

श्रोंनम पणवेवि चित्त थवेवि णट्ठट्ठादस दोसु ।
लोयत्तय वंदु देउ जिणेंदु श्राहासमि कहकोसु ॥

पणवेप्पिणु जिणु सुविसुद्धमई,
चिंतइ मणि मुणि सिरिचंदुकई ।
संसारु असारु सव्वु अथिरु,
पिय-पुत्तु-मित्तु माया तिमिरू ॥
सपय पुणु संपहे अणुहरइ,
खणि दीसइ खणि पुणु ऊसरइ ।
सुविणय समु पेम्मु विलासविही,
देहु वि खणिभंगुर दुक्खतिही ॥
जोव्वणु गिरि वाहिणि वेयगउ,
लायण्णु वण्णु कर सलिल सउ ।
जीविउ जल-बुव्वय फेण णिहु,
हरिजालु वरज्जु अवज्ज गिहु ॥
अवरुवि जं किंपिवि अत्थि जणे,
तं तं वाहिव्व पलाइ खणे ।
इंदिय सुहु सोक्खाभासु फुडु,
जइ णं तो सेवइ किंण्ण पडु ॥

घत्ता— इय जाणि वि णिच्चु सव्वु अणिच्चु,
मणु विसएसु ण खिंचिउ ।
जें दाणु ण दिण्णु णउ तउ चिण्णु,
तेणप्पा णउ वंचिउ ॥

बहु दुक्खेणजिउ वलि च्छिज्जणु,
मुय मणुय हो पउवि ण जाइ वणु ।
बंधव-यणु लज्जइ णो सरइ,
सुहु सत्थभूउतामणुसरइ ॥
सह भूउ साया जो पोसियउ,
सो देहुवि दुज्जण विलसियउ ।
णउ जाइ समउ ता केम वरू,
वसु-पुत्त-कलत्त बंधु-णियरू ॥
अणुगमइ सुहासुहु केवलउ,
परभव पाहुणयहो संबलउ ।
वावारु करइ सव्वाण कए,
अणुहवइ दुक्खु पर एक्कु जए ॥
पच्छा साइज्जइ भाइयहिं,
धणु पुत्त-कलित्तहिं दाइयहिं ।
णणियंति णियंत अयाणमणा,
पर पुरिसु पलोयइ सयणियणा ॥

घत्ता— इय बुत्थि विपत्ते पुण्ण पवित्ते,
दिज्जइ सइं विलसिज्जइ ।
एत्तिउ फलु अत्थे जणिमाणत्थे,
जं दुत्थिमणि वइज्जइ ॥

× × × ×

अन्तिम प्रशस्तिः

सर्वज्ञ-शासने रम्ये घोराघौघ-विनाशने ।
धर्मानेक-गुणाधारे सूरिस्थे सुरसंस्तुते ॥ १ ॥
अणहिल्लपुरे रम्ये सज्जनः सज्जनोऽभवत् ।
प्राग्वाटवंश-निष्पन्नो मुक्तारत्न-शताग्रणीः ॥ २ ॥
मूलराज-नृपेन्द्रस्य धर्मस्थानस्य गोष्ठिकः ।
धर्मसार- धराधारः कूर्म्मराज-समः पुरा ॥ ३ ॥
कृष्णनामा सुतस्तस्य गुणरत्न महोदधेः ।
बभूव धर्म-कर्मण्ये जनानां मौलिमंडनं ॥ ४ ॥
निद्रान्वय-महामुक्ता-मालायां नायकोपमः ।
चतुर्विधस्य संघस्य दान-पीयूष वारिदः ॥ ५ ॥
असैकाजयती तस्य कृष्णस्येव सुभद्रिका ।
राणूनाम प्रिया साध्वी हिमांशोरिव चन्द्रिका ॥ ६ ॥
तस्यां पुत्रत्रयं जातं विश्व-सर्वस्व-भूषणं ।
बीजासाहणपालाख्यो सोढदेवही स्तृतीयकः ॥ ७ ॥
चतस्त्रश्च सुतास्तस्या धर्म्म-कर्म्मैककोविदाः ।
श्री शृंगारदेवी च सूः सोखूरिति क्रमात् ॥ ॥८॥
कलिकाल-महाव्याल-विष व्यालुप्त चेतसः ।
जैनधर्मस्य संपन्ना जीवास्तु स्तत्र सुंदका ॥ ९ ॥
महाश्रावक-कृष्णस्य संतानेन शुभात्मना ।
व्याख्यायितः कथाकोश. स्वकर्म-क्षयहेतवे ॥१०॥
कुन्देंदु-निर्मले कुंदकुंदाचार्यान्वयेऽभवत् ।
धर्म्मो मूर्त्तः स्वयं वा श्रीकीर्तिनामा मुनीश्वरः ॥११॥
तस्मात्तमोपहः श्रीमान्स प्रभावोऽति निर्मलः ।
श्रुतकीर्तिः समुत्पन्नो रत्न रत्नाकरादिव ॥१२॥
विद्वान्समस्तशास्त्रार्थ-विचारचतुराननः ।
शरच्चन्द्रकराकार-कीर्तिव्याप्त-जगत्त्रय. ॥१३॥
व्याख्यातृत्व-कवित्वादि-गुणहंसैकमानसः ।
सर्वज्ञ-शासनाकाश-शरत्पार्वण-चन्द्रमा. ॥१४॥
गांगेय-भोजदेवादि-समस्त-नृप-पुंगवैः ।
पूजितोत्कृष्ट पादार विंदो विध्वस्त कल्मष. ॥१५

भव्य-पद्माकरानन्दी सहस्रांशुरिवापर ।
ततो गुणाकर· कीर्ति सहस्रोव पटोऽजनि ॥१६॥
कर्पूर-पूरोज्ज्वल-चारुकीर्ति· सर्वोपकारोद्यत चित्तवृत्त ।
शिष्य समाराधित वीरचन्द्रस्तस्य प्रसिद्धो भुवि वीरचन्द्र· १७
सूरेश्चारित्र-सूर्यस्य तस्य तत्त्वार्थवेदिन· ।
विवेक वसति विद्वा·सोऽस्य श्री चन्द्रोऽभवत् ॥१८॥
भव्य-प्रार्थनया ज्ञात्वा पूर्वाचार्यकृता कृति· ।
तेनाय रचित· सम्यक् कथाकोशोऽतिसुन्दर· ॥१६
यदत्र स्खलित किञ्चित् प्रमाद वशतो मम ।
तत्क्षमतु क्षमाशीला सुधिय· सोधयंतु च ॥२०॥
यावन्मही मरन्मर्त्या मरुतो मदरोरगा· ।
परमेष्ठी पावनो धर्म परमार्थ-परमागम २१॥
यावत्सुरा· सुराधीश -स्वर्गचन्द्रार्क-तारका ।
तावत्काव्यमिद स्थेयाच्छ्रीचन्द्रोज्ज्वल-कीर्तिमत् ॥२२॥

८—रयणकरंडसावयायार (रत्नकरण्डश्रावकाचार)
पण्डित श्रीचन्द्र, रचना काल स० ११२३

आदिभाग —

सो जयउ जम्मि जिणो पढमो पढमं पयासिउं जेण ।
कुगईसु पडंताण डिण्णकर-लवण धम्मो ॥१॥
सो जयउ सतिणाहो विग्वं सहस्साइं णाममित्तेण ।
जस्सावहत्थिऊण पाविज्जइ ईहिया सिद्धी ॥२॥
जयउ सिरि वीरइंदो अकलंको अक्खओ णिरावरणो ।
णिम्मल-केवलणाणो उज्जोइय सयल- भुवणयलो ॥३॥
सिद्धिवि विजय वुद्धि तुट्ठि पुट्ठि पीयकर ।
सिद्ध सरुव जयतु दिंतु चउवीस वि तित्थकर ॥४॥
घत्ता—अवरवि जे जिणइन्दा सिद्ध-सूरि पाठय वर ।
सजय साहु जयतु दिंतु वुद्धि महु सु दर ॥१॥

पणवेप्पिणु जिण वयणुग्गयाहे विमलइं पयाइं सुयदेवयाहें ।
दंसण-कह-रयणकरडुणामु आहासमि कव्वु मणोहिरामु ।
गुरुक्केक्क पहाणु महा मइल्ल इत्थत्थि अणेय कई छइल्ल ।
हरिणादि मुणिंदु समतभद्द, अकलक पयो परमय-विमद्दु ।
मुणिव्वइ कुलभूसणु पायपुज्ज, तहा विज्जाणदु अणतविज्ज
वध १ रसेणु महामइ वीरसेणु जिणसेणु कुवोहि विहंजसेणु
गुणभद्दवणकुह उच्छमल्लु सिरि सोमराउ परमय-स-सल्लु
चउमुह चउमुहु व पसिद्ध भाइ कइराइ संयभु सयंभुणाइ ।
तह पुप्फयंतु णिम्मुक्कदोसु वरिणज्जइ किं सुयएवि कोसु ।
सिरिहरिसु-कालियासाइ सार, अवरुवि को गणइ कइत्तकार ।
हीणहिं मइ सपइ आरिसेहि किं कीरइ तहिं अम्हारिसेहिं ।

घत्ता—सो सिरिचंद सुरिंद फणि णरिंद वंदिय पयउ ।
अक्खय सुक्ख णिवासु होइ देव परमप्पउ ॥३६॥

इय पडियसिरिचंदकए पयडियकोऊहलसए सोहणभाव-पव्वत्तए परितोसिय-वुह-चित्तए दं·णाकहरयणाकरंडए मिच्छत्त-पडहिं तिरडिए कोहाइ-कसाय-विहडए सत्थम्मि महागुण-मडए देव-गुरु-धम्मायण-गुणदाम-पयासणो णाम पढमपरिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिमभाग·—

परमार-वस-मह गुण उत्तणइं ।
कुंदकुंदाइरियहो अण्णइ ।
देसीगण पहाणु गुण गणहरु,
अवइण्णउ णावइ सइ गणहरु ॥
तव पहा वि भाविथ वासउ,
धम्मज्झाण विणिहय पावासउ ।
भव्वमणो णलिणाण दिणेसरु,
सिरिकित्ति तिसु चित्त मुणासरु ॥
तासु सीस पडिय-चूडामणि,
सिरि-गंगेय-पमुह पउरावणि ।
पोलत मिय सुइया सरोरु कुमुणि,
उहुलिण मय गयण सहासकुसल ॥
वरस-पसरय-साहिय-महियलु,
णियमहत्त-परिणिज्जिय-णहयलु ।
चउविह-संघ-महाधुर-धारण,
दुसह-काम-सर-घोर-णिवारण ॥
धम्मु व रिसिरूवें जस रूवउ,
सिरि-सुयकित्ति-णाम संभूयउ ।
तासु वि परवाइय-मय-भंजणु,
णाणा वुहयणमणि अणुरजणु ॥
चारु-गुणोहर-मणि-रयणायरु,
चाउरग-गण-वच्छल्लय यरु ।
इंदिय चंचल मयहं मयाहिउ,
चउकसायसार गमिगाहिउ ॥
सिरिचंदुज्जल-जस सजायउ,
णामें सहसकित्ति विक्खायउ ।
घत्ता—तहो देव इंदुगुरु सीसु हुउ,
वीयउ वासव मुणि वीरिंदु ॥
उदयकित्तीवि तहा तुरिय,
सुहइंदु वि पंचमउ भणिउ ।

जो चरण कमल आयम पुराणु,
णाउत्तइ बहु साइम-समाणु ॥
आइरिय महा-गुण-गण-समिद्धु,
वच्छल्ल-महोवहि जय पसिद्धु ।
तहो वीरइंदु मुणि पंच मासु,
दूरुज्झिय-दुम्मइ, गुण-णिवासु ॥
सउजण्ण-महामाणिक्क-खाणि,
वय-सीलालंकिउ दिव्व-वाणि ।
सिरिचंदु णाम सोहण मुणीसु,
संजायउ पंडिय पढम सीसु ॥
तेणेउ अणेय छरिय-धामु,
दंसण-कह-रयण-करंडु णामु ।
किउ कव्वु विहिय-रयणोह-धामु,
ललियक्खरु सुयणु मणोहिरामु
जो पढइ पढावइ एयचित्तु,
सलिहइ लिहावइ जो णिरुत्तु ॥
आयण्णइ मण्णइ जो पसत्थु,
परिभावइ अह-णिसु एउ सत्थु ।
जिप्पइ ण कसायहि इंदएहिं,
तोलिय इह सो पासंडिएहिं ॥
तहो दुक्किय कम्मु असेसु जाइ,
सो लहइ मोक्ख-सुक्खइं भवाइं ।
जिणणाह-चरण-जुअ भत्तएण,
धमुणंते कव्वु करंतएण ॥
जं काइं वि लक्खण-छंद-हीणु,
जह मत्तइं तुत्तउ अह अहिय-हीणु ।

घत्ता—तं खमउ सव्वु जण णमिय,
सुय-देवय अण्णाण मह ॥
जमि पुज्जणिज्ज सिरिचंदमई,
वह य भडारी विउसमह ।

एयारह तेवीसा वाससया विक्कमस्स महिवइणो ।
जइया गया हु तइया समाणिए सुंदरं रइयं ॥

कण्णणरिंदहो रज्जसुहि सिरि सिरिबालपुरम्मि बुह ।
चाउपुर महि सिरियंदे एउ कउ णंदउ कव्वु जयम्मि ॥
जयउ जिणवरु जयउ जिणुधम्मु वि
जयउ जइ जयउ साहु संतइ सुहंकर ।
पणवंत हो भव्वयण
कुणउ जयहो सा सुह परंपर ।
दाण पुज्ज दय-धम्म-रय सच्च सउच्च वि चित्त ।
भव्व जयंतु सया सुयण बहुगुण परहिय चित्त ॥
जयउ णरवइ णाम णयणेत्तु पयपालउ धम्मुरउ ।
सयणबंधु परिवारि सहियउ
णिण्णासिय विउणु जणु ।
जेण णियय णियकम्मि णिहियउ
पच्चयउ मेइणि सइं हवउ ।
वरिसउ देवसया वि कित्ति धम्मु
णाणरइ जयउ जसु खंडण ण कयावि ॥
जाम मेइणि जाम महणइउ
कुल-पव्वय जाम तहिं ।
जाम दीव गह रिक्ख-णह
पालइ आयम सयल ।
जाम सग्गु सुर णियरु सुरवइ
जाम रयणु चंदु-रवि ।
जं जिणधम्मु पसत्थु ताम जणउ
सुहभव्वयणि जयउ एहु जइ सत्थु ।
जो सव्वणु तिलोयवइसिद्ध सद्दावें भंडु ।
ताम जणउ सुहु भव्वयणि दंसणकह रयणकरंडु ॥

इति श्री पंडिताचार्य-श्रीचन्द विरचिते रत्नकरण्डनाम शास्त्रं समाप्तम् ।

९—सुकमालचरिउ (सुकुमालचरित)

विबुध श्रीधर रचना सं० १२०८

आदिभाग :—

सिरि पंच गुरुहं पय पंकयइं पणविवि रांजय समणहँ ।
सुकमालसामि कुमरहो चरिउ आहासमि भव्वयणहँ ॥

× × ×

एक्कहिं दिणे भव्वयण-पियारए,
वलडइ णामे गामे मणहारए ।
सिरि गोविंदचंद णिव पालिए,
जणवइ सुहयारयकर लालिए ।
दुग्गणिय वारह जिणवर मंडिए,
पवणुद्धयवड अवरुंडिए ।
जिणमंदिरे वक्खाणु करंते,

भव्वयणहं चिरु दुरिउ हरंतें ।
कलवाणीए वुहेण श्रणिंदे,
पोमसेण णामेण मुणिंदे ।
भासिउ सत्ति श्रणेयइं सत्थइं,
जिण सासणे श्रवराइं पसत्थइं ।
पर सुकमालसामिणा मालहो,
कररुह मुह विवरिय वरवालहो ।
चारु चरिउ महुँ पडिहासइ तह,
गोवरु वुहयणमण हरणु वि जह ।

तं णिसुणे वि महियले विक्खाएं,
पयडसाहु पीथे तणु जाएं,
सलखण जणणी गब्भुप्पणें,
पउमा भत्तारेण रवण्णें ।

सहरसेण कुवरेण पउत्तउ,
भो मुणिवर पइं पभणिउ जुत्तउ ।
तं महु श्रग्गइ कियणा समासहि,
विवरेविणु माणसु उल्लासहि ।
ता मुणि भणइ बप्प जइ णिसुणहि,
पुव्व-जम्म-कय दुरियइं विहुणहि ।

घत्ता—श्रब्भत्थि वि णिरुसिरुहरु, सुकइ तच्चरित्तु विरयावहि ।
इह रत्ति वि कित्तिणु तव तणउ सुहु परत्थें धुउ पावहि ॥२

ता श्रयणहि दिणि तेण छइल्लें,
जिणभणियागम सत्थ रसल्लें ।
कइ सिरिहरु विणएण पउत्तउ,
तुहु परियाणिय जुत्ताजुत्तउ ।
पुहु वुहु हियय सोक्ख-वित्थारणु,
भवियण मण चिंतिय सुहकारणु ।

जइ सुकमालसामि कह श्रक्खहि,
विरएविणु महु पुरउ ण रक्खहि ।
ता महु मणहु सुक्खु जाइय लइ,
तं णिसुणेवि भासइ सिरिहरु कइ

× × ×

भो पुरवाड-वंस सिरिभूसण,
धरिय-विमल-सम्मत्त विहूसण ।
एक्कचित्तु हो एवि श्रायण्णहि,
जपइ पुच्छिउ मा श्रवगण्णहि ।

इयसिरि सुकुमालसामि मणोहरचरिए सुंदरयर गुण-रयण णियरस भरिए विवुह सिरिसुकइ-सिरिहरविरइए साहु पीथे पुत्त कुमरणामंकिए श्रग्गिभूइ-वाउभूइ-सूरमित्त मेलाव-यण वण्णणो णाम पढमो परिच्छेश्रो समत्तो ॥१॥

श्रन्तिमभागः—

श्रासि पुरा परमेट्ठिहि भत्तउ,
चउविह चारु दाण श्रणुरत्तउ ।
सिरिपुरवाड-वसमंडण चंधउ,
णिय गुण णियराणंदिय बंधउ ।
गुरु भत्तिय पणमिय मुणीसर,
णामें साहु जग्गु वणीसर,
तहो गल्हा णामेण पियारी,
गेहिणि मण इच्छिय सुहयारी ।
पविमल सीलाहरण विहूसिय,
सुह सज्जण वुहयणह पसंसिय ।
ताहें तणुरुहु पीथे जायउ,
जण सुहयरु महियले विक्खायउ ।
श्रवरु महिंदे वुच्चइ बीयउ,
वुहयणु मणहरु तिक्कउ तइयउ ।
जल्हणु णामें भणिउ चउत्थउ,
पुण वि सलक्खणु दाण-समत्थउ ।
छट्ठउ सुउ संपुण्णु हुश्रउ जह,
समुदपाल सत्तमउ भणउ तह ।
श्रट्ठमु सुउ णयपालु समासिउ,
विणयाइय गुण गणहिं विहूसिउ ।
पढमहो पिय णामेण सलक्खण;
लक्खण-कलिय-सरीर-वियक्खण ।
ताहे कुमरु णामेण तणूरुहु,
जायउ सुह पह पहय सरोरुह ।
विणय-विहूसण भूसिउ कायउ,
मय-मिच्छत्त-माण-परिचत्तउ ।

घत्ता—णाणू श्रवरु बीयउ पवरु कुमरहो हुश्र वर गेहिणि ।
पउमा भणिया सुश्रणहिं गणिय जिण-मय-पर वहुगेहिणि ।

तहे पाल्हणु णामेण पहूयउ,
पढम पुत्तु णं मयण-सरूवउ ।
बीयउ साल्हणु जो जिणु पुज्जइ,
जसु रूवेण ण मणहरु पुज्जइ ।

तइयउ वले भणि वि जाणिज्जइ,
बंधव-सुयणहिं सम्माणिज्जइ।
तुरियउ जयउ सुपट्टु णामें,
णावइ णियसरु दरसिउ कामें।
एयहं णीसेसहं कम्मक्खउ,
जिणमयर महं होउ दुक्खक्खउ।
मज्कुविए जि कज्ज ण अयणें,
.......................।
चउविहु संघु महीयलि णंदउ,
जिणवर-पय-पंकय एवं ढउ।
ख हु जाउ पिसुणु खलु दुज्जणु,
दुट्ठ दुरासउ णिंदिय सज्जणु।
एउ सत्थु मुणिवरहं पढिज्जउ,
भत्तिए भवियणेहिं णिसु णिज्जउ।
जाम णहं गणि चंद-दिवायर,
कुलगिरि-मेरु-महीयल-सायर।
पीथे वंसु ताम अहिणंदउ,
सज्जण सुहि मणाइं अणिंदउ।
बारह सयइं गयइं कय हरिसइं,
अट्ठोत्तरं महीयले वरिसइं।
कसण पक्खे अगहणे जायए,
तिज्ज दिवसे ससिवार समायए।

घत्ता—बारह सयइं गंथह कयइं पद्धडिएहि र-वणणउ।
जण-मण-हरणु-सुहु-वित्थरणु एउ सत्थु संपुण्णउ ॥१२

इय सिरि सुकमालसामि मणोहर चरिए सुंदर यर गुण-रयण णियरसभरिए विबुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु पीथे पुत्त कुमार णामंकिए सुकुमालसामि सव्वत्थ-सिद्धि गमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि ६॥

१०—हरिवंस पुराणु (हरिवंश पुराण) धवलकवि

आदि भागः—

णाण दीहणालं णेमि-दली-कणह-केसर सुसोह।
मह पुरिस तिसट्ठिदलं हरिवंस सरोरुह जयउ ॥ १ ॥
हरि-पंडुवाण कहा चउमुह वासेहिं भासियं जह या।
तह विरयमि लोयपिया जेण णं णासेइ दंसणं पवरं ॥ २ ॥
विस-मीसिय वरवीरं जह सा चारित्त खंडियारी।
उज्झउ दंसण महणं मिच्छत्तकं विर्य कव्वं ॥ ३ ॥
जह गोत्तमेण भणियं सेणियराएण पुच्छियं जह या।
जह जिणसेणेण कयं तह विरयमि किंपि उद्देसं ॥ ४ ॥
अप्पा किं भणमि हरी कप्पयरो सायरो-सुरसेलो।
णं णं अप्पपसंसा परणिंदा गरहिया लोये ॥ ५ ॥
अप्पाणं जेण थुवं बुद्धिविहीणेण णिंदियं तेण।
पुक्कार णवइ जणो पहायरो पायडो तह वि ॥ ६ ॥
जो जोडइ वि रयण पया विसुद्धा जिणवरेहि जह भणिया।
णा तेण वि सरसो भवियायण वच्छलो तह वि ॥ ७ ॥
सुव्वउ भवियाणंदं पिसुण चउक्काय भव्वजणसूलं।
धणसुय धवलेण कयं हरवंस-स-सोहणं कव्वं ॥ ८ ॥

अत्थसारउदोसपरिमुक्कु,अयाणहंणिप्याइयउधवलु कव्वुमणोहरु
एहु कसिउ सवियक्खणहि, करहु करण जण गुणमहायरु ॥९॥
जिणणाहहोकुसुमंजलिदेवणु, णिब्भूसणगुणिवरपणवेप्पि।
पवर चरिय हरिवंस कवित्ते,अप्पउ पयडिउ सूरहो पुत्ते ॥१० ॥

× × ×

कई चक्कवइ पुव्वि गुणवंतउ,
धीर (धर ?) सेणु होतउ सुपसिद्धउ।
पुणु सम्मत्त जुत्त सरागउ,
जेण पमाणगंथु किउ चगउ।
देवणंदि बहुगुण जस भूसिउ,
जे वायरणु जिणिंदु पयासिउ।
वज्जसूउ सुपसिद्धउ मुणिवरु,
जें णय-पयाणु-गंथु किउ सुंदरु।
मुणि महसेणु सुलोयणु जेण,
पउमचरिउ मुणि रविसेणेण।
जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु,
जडिल मुणीण वरगचरित्तु।
दिणयरसेणें चरिउ अणंगहो,
पउमसेणे आयरिय पासहो
अंधसेणु जे अमियाराहणु,
विरइय दोस विवज्जिय सोहणु।
जिय चंदप्पह चरिउ मणोहरु,
पाव-रहिउ धणयत्तु सु-सुंदरु।
अणणमि किम एमाइ बहुत्तइं,
विण्हुसेण रिसिएण चरित्तइं।
सीहणंदि गुरुवे अणुवेहा,
णरदेवें णवयार सुणेहा।
सिद्धसेणु जे णेए आगउ,
भविय विणोय पयासिय चगउ।

रामणंदि जे विविह-पहाणा,
जिण सासणि वहु-रइय-कहाणा।
असगु महाकइ जे सु-मणोहरु,
वीर जणिंद चरिउ किउ सुंदरु।
केत्तिय कहमि सुकइ-गुण-आयर,
गेय कव्व जहिं विरइय सुंदर।
सणक्कुमारु जे विरयउ मणहरु,
कइ गोविंद पवरु सेयंवरु।
तह वक्खइ जिण रक्खिय सावउ,
जे जए धवलु भुवणि विक्खायउ।
सालिहद्द कय जीयउ देदउ,
लोए चउमुह दोण-पसिद्धउ।
एक्कहि जिण सासणे अच्छलियउ।
सेढु महाकइ जसु णिम्मलियउ।
पउमचरिउ जि भुवणि पयासिउ,
साहु णरेंहि णरवरहिं पसंसिउ।
हुउ जडु तो वि किंपि अब्भासमि,
महियले जिणिय बुद्धि पयासमि।

घत्ता—

सहस किरणु रइ वे विगय णिचडे वि तिमिर असेसु पणासहिं।
णियसत्तें मणि दीवउ जइ विसु थोवउ सोवि उज्जोवि पयासहिं॥३

× × × ×

मूले कहिउ इहु वीर जिणिंदु,
पुणु गोत्तमेण सुधम्मु मुणिंदु।
जंबूसामि विविद्द रसएण,
णंदिमित्त अवरज्जिय कएण।
गोवद्धणु तह भद्दबाहु मुणि,
तह विसाहु पोट्ठिलु खत्तिउ मुणि।
पुणु जय तह णाग सु सिद्धत्थु,
धिइसेणहो ए माइ सत्थु।
विजयहो बुद्धिलं गंगदेवहो,
धम्मसेण णक्खत्त मुणिंदहो।
जयपालहो पडुहो धुवसेणहो,
कंसायरियहो तहव सुभद्दहो।
जयभद्दहो तह पुणु जसभद्दहो,
आउ सत्थु एहु लोहाइज्जहो।
पुणु कमेण बहु गय सुयहाणहो,
एहु सत्थु आयउ जिणसेणहो।

जिणसेणें पुणु इह उज्जोयउ,
अंबसेण रिसिणा महु ढोयउ।
एवइ हउं भवियणहं पयासमि,
पयदउ अत्थु असेसुवि दरिसमि।
वालो विद्धो वि तिहइ सुहेण,
मुक्खु विविउ वीसु वुज्झइ जेण।

घत्ता—

एहु जिण वयणु पराइउ कम-कम
आयउ आगउ पुणु पवित्तु।
णिसुणहो पावपणासणु भवियहु
बहुगुणु अविचलु-धरिविणु चित्तु॥४॥

मइ विप्पहो सूरहो णंदणेण,
केसुल्ल उवरि तह संभवेण।
जिणवरहो चरण अणुरत्तएण,
णिग्गंथहं रिसियहं भत्तएण।
कुतित्थ कुधम्म विरत्तएण,
णामुज्जलु पयडु वहंतएण।
हरिवंसु सयलु सुललिय इएहिं,
मइं विरयउ सुद्दु सुहावएहिं।
सिरि अंबसेणु गुरवेण जेम,
वक्खाणि कियउ अणुकमेण तेम।

सज्जण गुणे वि बहुगुण भणंति,
दुज्जण पच्चोलिउ दोस लिंति।
इहु दुट्ठहं खलह सहाउ को वि,
लाए वि दोस णिद्दोस हो वि।
जे खाहि पियहिं धणु विढवंति,
अप्पाउ समत्ता खल भणंति।
जे विउ वि विसंचहि अत्थु केवि,
तिट्ठाउ खुल्लहिं खलहि तेवि।
वक्खाणहिं जाणहिं जे पढंति,
वाय वरि हूया ते भणंति।
जे विविह सत्थे णे मुणंति केवि,
जसु सुक्ख व लक्खण भणहिं ते वि।
वसहहि महंत जे खंति पर,
ते वुच्चहिं खलहि असक्कणार।
जे परिहिडण सहहि पोरुसेण,
परजंघा वुच्चहिं खलयणेण।

जे माय विसल्लहिं णियपउवि,
तहु दुक्करु छुट्टइ अण्णुको वि।

घत्ता—

जो उवहसिउ ण तेहिं असुरेहिं सोहउ भुवणि ण देखमि।
पउरवलइं देविणुरिसिय णवेविणु जणणिसुणहु कह अक्खमि॥६

अन्तिम भाग—

जिणचक्क-हरी-बलएव जेवि,
चउवण्ण मंगल देंतु तेवि।
रोइइ हरंतु सुत वित्थरंतु,
सग्गा-पवग्ग-पह-पायडंतु।
मइ बुद्धि विहूणें कहिउ जंजि,
जिणमुहणिग्गय महो खमउ तंजि
मुणिदेव पसाएण अबुहएण,
धिट्टत्तणि जंपिउ जंपिएण।
छंदालंकारें जं विहीणु,
महु दोस ण दीवउ बुद्धिहीणु।
जह बालुय जंपइ जेम तेम,
तह एण तिणिय भत्तीवसेण।
जिणसेण सुत्तु पेक्खेवि एहु,
मइ विरयउ भवियहो पुणु विलेहु
जो को वि सुणइ एहु महपुराणु,
हरिवंसणामु इच्छिय पहाणु
जो लिहइ लिहावइ को वि भव्वु,
सग्गा-पवग्गु तहो होइ सव्वु
हो एह विहव वहिराहु कण्ण,
अंधाहणेत्त पुत्त वि कलत्त।
समप्पइ लोयहु सयल काल,
जो भावइ हरिकुल णाम माल।
दे साइ संति रायाहिराउ,
विहरंतु णेमिजिणु हरउ पाउ।
पाउसु वरिसउ णिय समय सासु,
णिप्पज्ज सयलु महिपयासु

घत्ता—

जो चित्तें अवहारइं पुराणुवियारइ णिसुणइ भविउ जो सद्दहइ
तहो पावणिवारणु सिव-सुहकारणु होउ णेमि धवलुवि कहइ॥

इस हरिवंस पुराणं समत्तं,

११—छक्कमोवएस (षटकर्मोपदेश)
अमरकीर्ति, रचनाकाल सं० १२४७

आदि भाग:—

परमप्पय-भायणु सुह-गुण - पावणु
णिहणिय-जम्म-जरा-मरणु।
सासय-सिरि-सुंदरु पणय-पुरंदरु,
रिसहु णविवि भवियण सरणु॥

× × ×

अह गुज्जर-विसयहु मज्झिदेसु,
णामेण महीयडु, बहु-पएस।
णयरामर-वर-गामहि णिरुद्ध,
णाणा-पयार-संपइ-समिद्धु।
तहिं णयरु अत्थि गोदहय णामु,
णं सग्गु विचित्तु सुरेस-धामु।
पासायहं पंतिउ जहिं सहंति; (-लसंति ?)—
सरयब्भहु सोहा ण वहंति।
धय-किंकिणि कलरावहिं सरिद्धि,
णं कहइ सुरहं पाविय पसिद्धि।

घत्ता—

देसागय-लोयहिं जाय-पमोयहिं,
जणियवि मणि मणियउ।
एवहिं संकासउ लच्छि-पयासउ,
णयहण अण्णु पवणियउ॥४॥
तं चालुक्क-वंसि णय-जाणउ,
पालइ कण्ह-णरिंदु पहाणउ।
जो बज्झतरारि-विद्धंसणु,
भत्तिए सम्माणिय-छद्दंसणु।
णिव-वदिग्गदेव-तणु-जायउ,
खत्तधम्मु णं दरिसिय-कायउ।
सयल-काल-भाविय-णिव-विज्जउ,
पुहविहिं ... वि णत्थि तहो विज्जउ।
धम्म-परोवयार-सुह-दाणइं,
णिच्च-महो सब बुद्धि-समाणइं।
जासु रज्जि जणु एयहं माणइं,
दुक्खु दुहिक्खु रोउ ण वियाणइं।
रिसह-जिणेसहो तहिं चेईहरु,
तुंगुसिहा-होहिउ णं ससहरु।

दंसणेण जसु दुरिउ विलिज्जइ,
पुण्ण-हेउ ज जणि मण्णिज्जइ ।

—घत्ता—

अमियगइ महामुणि, मुणिचूणामणि,
आसितित्थु समसील-घणु ।
विरइय-बहु-सत्थउ, कित्ति-समत्थउ,
सगुणाणंदिय-णिवइ-मणु ॥ ५ ॥
गणि संतिसेणु तहो जाउ सीसु,
णिय-चरण-कमल-णामिय- महीसु ।
माहुर-संघाहिउ अमरसेणु
तहो हुउ विणेउ पुणु हय-दुरेणु ।
सिरिसेणसूरि पंडिय-पहाणु,
तहो सीसु वाइ-काणण-किसाणु ।
पुणु दिक्खिउ तहो तवसिरिणिवासु,
अत्थियण-संघ-बुह-पूरियासु ।
परवाइ-कुंभ-दारण मइंदु,
सिरिचंदकित्ति जायउ मुणिंदु ।
तहो अणउ सहोयरु सीसु जाउ,
गणि अमरकित्ति णिहणिय पमाउ ।
अहणिसु सुकइत्त विलोय लीणु,
जामच्छइ बहु-विह-सुय-पवीणु ।
तामण्णहिं दिणि विहियायरेण,
णायर-कुल-गयण-दिणेसरेण ।
चच्चिणि गुणवालहं णंदणेण,
अव दिण्णदाण पेरिय मणेण ।

घत्ता—

भव्वयण पहाणें बुहगुण जाणें, संघवेण अणुजायइं ।
सो सूरि पवित्तउ, लहु विण्णत्तउ, भत्तिएँ अंब पसाइं ॥ ६ ॥

परमेसर पइ णवरस-भरिउ,
विरइयउ णेमिणाहहो चरिउ ।
अण्णु वि चरित्तु सव्वत्थ-संहउ,
पयडत्थु महावीरहो विहिउ ।
तीयउ चरित्तु जसहर-णिवासु।
पद्धडिया-बंधें किउ पयासु ।
टिप्पणउ धम्मचरियहो पयडु,
तिह विरइउ जह बुज्झेइ जडु ।
सक्कय-सिलोय-विही-जणियदिही,
गुंफियउ सुहासिय-रयण णिही ।
धम्मोवएस-चूडामणिक्खु,
तहो झाण-पईउ जि झाणसिक्खु ।
छक्कम्मुवएसें सहुं पबंध,
कय अट्ठ संख सइ सच्चसंध ।
सक्कय-पाइय कव्वय घणाइं,
अवराइं कियइं रंजिय-जणाइं ।
पइं गुरुकुलु णाय हो कुलु पवित्तु,
सुकइत्तें सासउ किउ महंतु ।
कइयण-वयणामउ जे पियंति,
अजरामर होइ वि ते णियंति ।
जिह राम-पमुह सुयकित्तिवंत,
कइमुह-सुहाइ पेच्छहि जियंत
कइ तुट्ठउ अप्पापरु समणु,
अक्खयतणु करइ पसिद्धगणु ।

घत्ता—

मतोसहि-देवहं, किय चिरसेवहं, धुय पहाउ णहु सीसइं ।
परकाय-पवेसणु, किय-सासयतणु तिहजिह कइहिं पदीसइ ॥ ७
महु आहासहि पयणिय सम्मइं,
अह काहणें गिहि- छक्कम्मइं ।
जाइं करंतउ भवियणु संचइ,
दिणि दिणि सुहु दुक्कयहिं विमुच्चइ ।
तेहिं विवज्जिउ णरभउ भव्वहं,
छगा-गल-थण-समु गय-गव्वह (?)
मइं मइमूढें किं पि ण चिंतउ,
पुण्णकम्मु इय कम्मु पवित्तउ ।
भव-काणणि भुलउहो महु अक्खहि,
सम्म-मग्गु सामिय मा बेक्खहि ।
अमरसूरि तव्वयणाणंतरु,
पयडइ गिहि छक्कम्महं वित्थरु ।
सुणि कण्हपुर वंस-विजयद्धय,
णियरूवोहिय-मयरद्धय ।
पूयय देवहं सुह-गुरु वासणा,
समय-सुद्ध-सज्झाय-पयासणा ।
सजम-तव-दाणइं सगुत्तइ,
जिणदंसणि छक्कम्मइं वुत्तइं ।

घत्ता—रयणत्तय-जुत्तउ, सक्खहि चत्तउ,
गुण-सील-तउ-हणिय-मलु ।

जो दिणि-दिण एयइं करइ विहेयइं,
मणुअ जम्मु तहो पर सहलु ॥८॥

इय छक्कम्मोवएसे महाकइ सिरि अमरकित्ति विरइए महा कव्वे गुणपाल चिच्चिणि णंदण महाभव्व अंबपसायाणु मणिणए छक्कमणिरूवणय वण्णणोणाम पढमो संधि समत्तो।

अन्तिमभागः—

ताइं मुणिवि सोहेवि णिरंतरु,
हीणाहिउ विरुद्धु णिहियक्खरु।
फेडेवउ ममत्तु भावंतिहिं,
अम्हहं उप्परि बुद्धि-महंतिहिं।
छक्कम्मोवएसु इहु भवियहो,
वक्खाणिव्वउ भत्तिइं णवियहो।

अंबपसायइं चच्चिणिपुत्तें,
गिह-छक्कम्म-पवित्त-पवित्तें।
गुणवालहु सुएण विरयाविउ,
अवरेहि मि णिअमणि संभाविउ।

बारह सयइं समत्त-चयालिहिं,
विक्कम-संवच्छरहु विसालहिं।
गयहिं मि भद्दवयहु पक्खंतरि,
गुरुवारम्मि चउद्दिसि वासरि।
इक्कें मासें यहु सम्मत्तिउ,
सइं लिहियउ आलसु अवहत्थिउ।

णंदउ परसासण-णिण्णासणु,
सयलकाल जिणणाहहु सासणु।
णंदउ तहवि देवि वाएसरि,
जिणमुह-कमलुब्भव परमेसरि।
णंदउ धम्मु जिणिंदें भासिउ,
णंदउ संघु सुसीलें भूसिउ।

णंदउ महिवइ धम्मासत्तउ,
पय परिपालण-णाय-महंतउ।
णंदउ भावयणु णिम्मल-दंसणु,
छक्कम्मर्हिं पाविय जिणसंसणु।

णंदउ अंबपसाउ वियक्खणु,
अमरसूरि-लहु-बंधु सुलक्खणु।
णंदउ अवरु वि जिण पय-भत्तउ,
विबुह-वग्गु भाविय-रयणत्तउ।

घत्ता—

णंदउ णिरु तावहिं सत्थु इहु
अमरकित्ति-मुणि-विहिउ पयत्तें।
जावहि महि मारुव-मेरु-गिरि-णहयलु
अंब पसायणिमित्तें ॥ १८ ॥

इय छक्कम्मोवएसे महाकइसिरि-अमरकित्ति-विरइए-महाकव्वे महाभव्व अंबपसायाणु मणिणए तव-दाण-वण्णणोणाम चउदसमो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ छ ॥
॥ संधि १४ ॥

१२—पुरंदर विहाण-कहा (पुरंदरविधान कथा)

अमरकीर्ति

आदिभागः—

परमप्पय भावणु सुहगुण पावणु,
णिहणियजम्म-जरा-मरणु।
सासय सिरि सुंदरु पणय पुरंदरु,
रिसहु णविवि तिहुयण सरणु।
सिरिवीर जिणंदे समवसरणि,
सेणियराएँ पुच्छयाणिहि।
जिणपूय-पुरंदर विहिकहि कहिउ तं,
आयण्णहि विहिय दिहि।

अन्तिम भागः—

अवराइमि सुरगिरि सिहरत्थइं,
तह णंदीसर दीवि पसत्थइं।
जाइ वि बहु सुरवर समवाएँ,
अइभ त्तए कय दुंदहिनाएं।
ण्हाइ वि सुरतरु कुसुमिहि अचइ,
णिरवहि पुण्णविसेसे संचइ।

घत्ता—

जिण पूय पुरंदर विहि करइ एक्कवार जो एत्थ णरु।
सो अब पसाइह वेइ लहु अमरकित्ति तिय सेसरु॥

जिणदत्त चरिउ (जिनदत्तचरित)

पं लक्खण, रचनाकाल सं० १२७५

आदि भाग.—

सप्पय सरकल हंसहो,
हियकल हंसहो सेयंस वहा।
भणमि भुअण कलहंसहो रणकलहंस हो
णविवि जिणहो जिणयत्त कहा।

× × ×

इय पणवेवि हय संसार-सरणि,
पुरवाडवंस तामरम तरणि ।
विल्हण तणुरुह पाय इय धामु,
जिणहरु जिणभत्तु पसिद्ध णामु ।
तहो णंदण णयणाणंद-हेउ,
णामेण सिरिहरु सिरिणिकेउ ।

णिय गोत्तामर पंथो सहीसु,
वणिणीइ तरंगिणि तीरिणीसु ।
दुव्वसण कसर भर समण-मेहु,
अगलिय गउरउ गुण गरु घगेहु ।
परिवार भार धुर-धरण-धीरु,
विलसिय विलास सुरवर सरीरु ।

मुणि वयण कमल मयरंद भसलु,
पवयण वयणाहिल मुणण कुसलु ।
सो विलरामे णिवसंतु मत्तु,
तहं णिवसइ लक्खणु सीलवंतु ।
तें सिरिणामें कह वसु पयार,
विरइ व पयडिय तहो पुरउ सार ।
णिसुणेवि कहा जिणहरहो पुत्त,
संपभणइ लक्खणहो सुबुद्ध जुत्त ।

घत्ता—

मुणिया हिलवर लक्खण भोकइ !
लक्खण कइ णिसुणे वि अणुरंजियउ ।
महु मणु गुण-गण सारउ
पावणु पावें अहं जियउ ॥
पुणु पभणइ सिरिहरु णिसुणि लल्ल,
पर पडिय सत्थ रस मइ महल्ल ।

वणि अरुहदत्त कइ कहहि तेम,
अहिणव विरइवि महु पुरउ जेम ।
फिट्टइ मण संभउ अज्जु सज्जु,
पाविज्जइ किं प परत्त कज्जु ।
तेसु पसाएं महु सहलु जम्मु,
लहु हवइ बप्प णिहणिय कु-कम्मु ।
अम्हाणुप्परि किज्जउ पसाउ,
अहु सज्जण परिगलिय गाउ ।
तुहुं अणुदिणु मे मणि पुज्ज णिज्ज,
पइं परि माइउ भउ णिंद णिज्ज ।

मुहु मुहु पभणइ कर फंसि जासु,
लक्खणहो सिरिहरु हरियमासु ।
बहु भत्ति कुणि वि मउलिय स-पाणि,
दय किज्जउ बधव परमणाणि ।

घत्ता—

पर चित्तु परिक्खणु तस तणु रक्खणु
सुवियक्खणु लक्खणु स-धणु ।
तं णिसुणेवि पडिहासइ सिरि वि सरासइ
कुमइ-पंसु उवसमइ घणु ॥ ३ ॥
हो हो सिरिहर वणिवर कुमार,
मारावयार कय चारु चार ।

चारहडि चउर चउ रस्स उर,
उरयाहिव सणिणह भोय पउर ।
पउरिस रस रसिय सरीर मोह,
सोहाहिल कलिय पमुक्क मोह ।
मोहिय रूवें पुर रमणि विंद,
वंदियण सासण केलि कंद ।
कंदाविय दुट्ठ जणाण मुद्द,
मुद्दमइ विवज्जिय जस विसुद्ध ।

सुद्धा साहु ऊरिय तेयतार,
तारच्छवि तिरयण रयणसार ।
सारंग वग्ग वर दीहणेत्त,
णेत्ता हराम तामरस वत्त ।
.........पीणिय सुयण सत्थ,
सत्थेहिं वियाणिय णिरु णायत्थ
अत्थावियसुय-पय रस-विसेस,
सेसिय ? कुविसय विसरस पएस ।

हावाइ खट्ट रस मुणिय भंग,
अब्भंग य सासिय सिहरि संग ।
सिंगार विडवि पोसणु सुमेह,
मेहायर कय पंडिय मोह खेह ।
णेहिल्ल जणहिं कयकित्तिमाल,
मालइ मालंकिय कुडिल बाल ।
बालक्कु किरण तणु-तेय लील,
लीलारस पयडिय कामकील ।
कीलारविंद मयरंद भिंग,
भिंगारहि हाविय जिण विसिंग ।

घत्ता—अरियण तामर सायर सुहमण,
सायर दोसायर णायर तिलया।
वणि जिणयत्त कहंतरु पुरण णिरंतरु
कह विरइज्जइ गुणणिलया॥ ४॥

× × × ×

णिक्कलंकु अकलंकु चउमुहो,
कालियासु सिरिहरि सुकइ सुहो।
वय विलासु कइवासु असरिसु
दोणु वाणु ईसाणु सहरिसो।
पुप्फयंतु सुसयंभु भल्लओ,
बालमीउ सम्मइं रसिल्लओ।
इह कईउ भीम इण दिट्ठिया,
फुरइ केम महो मइ वरिट्ठिया।
धाउलिंग गुण णउ गुण ण कारओ,
कम्मु करणु ण समासु सारओ।
पय समित्ति किरिया विसेसया,
संधि छंदु वायरण भासया।
देस भास लक्खणु ण तक्कओ,
मुणमि णेव आयहि गुरुक्कओ।
महाधवलु जयधवलु ण दिट्ठओ,
ण उर वप्प पयमिइ वरिट्ठओ।
तह ण दिट्ठु सिद्धंतु पाय............?

× × × ×

इय जिणयत्तचरित्ते धम्मत्थ-काम-मोक्खवण्णणुब्भाव-सुपवित्ते सगुणसिरिसाहुलसुउ-लक्खण-विरइए भव्वसिरिहरस्सणामंकिए जिणयत्तकुमारुप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥॥ सधि १॥

अन्तिम भागः—

इह होंतउ आसि विसाल वुद्धि,
पुज्जिय जिणवरु ति-रयण विसुद्धि।
जायस रहवंस उवयरण सिंधु,
गुण गरुवामल माणिक्क सिंधु।
जायव णरणाहहो कोसवालु,
जसरस मुदिय दिक्चक्कवालु।
जसवालु तासु सुउ मइ परालु,
लाहडु लडहउ लहलक्ख रालु।
जण जाणिय जिणमइ जुवइ तासु।
ताहं गय सत्त पमुक्क तासु।
पढमउ अल्हणु सुहि सरय सूरु,
परिवार-णरह-परमास-पूरु।
पवयण वयणामय-पाण-पोट्टु,
अवमेय महामइं-दलिय,दुट्टु।
जिणह्णवणच्चण-पूयण-सयत्तु,
अहिणाणि य णिहिल विणाय वित्तु।
मिच्छत्त ' च्चिय णच्चइल्लु,
गंभीर परम णिम्मय मइल्लु।
किल्लिल्ल-वेल्लि णिल्लूर-णिल्लु,
भायर सुउ लक्खण णेह-गिल्लु।
परिवार-भार-उद्धरण-धीरु,
जिण-गंथ-वारि-पावण-सरीरु।
पवहिय-तियाल-वंदण-विसुद्धि,
सुख सत्थभाव-भावण असुद्धि।
बहु-सेवय-णर-सिर-वट्ट-पाय,
वंदीयण दीणह दिण्ण चाय।
भायणिहि पयोसिय सूरिबंदु,
सउलामर-वह-कय चंदु-वंदु?

घत्ता—

तहोसोहणहो रसाल हो भोयपराल हो कलकणिट्ठत्थ सहोयर
छहवि महामइ सोहण रिउबल सोहण गुणराहणविहियायर

गाहलु साहुलु सोहण मइल्लु,
तह रयणु मयणु सतणु जि छइल्ल।
छहमहि भायर अल्हणाह भत्त,
छहमवि ताहा माणासत्त चित्त।
छहमवि ताहर पय पयरुह-दुरेह,
छहमहि मयणोवम-कामदेह।
साहु लहु सुपिय पिय यम मणुज्ज,
णामंज्जय ताकय णिलय कज्ज।
ताह जि णंदणु लक्खणु सलक्खु,
लक्खण-लक्खिउ-सयदल-दलक्खु।
विलसिय-विलास-रस-गलिय-गव्व,
ते तिहुअणगिरि णिवसंति सव्व।
सो तिहुवणगिरि भग्गउ उज्जवेण,
घित्तउ बलेण मिच्छाहिवेण।

लक्खणु सव्वाउ समाणु साउ,
वित्थायउ विहिणा जणिय-राउ ।
सो इत्थ तत्थ हिंडंतु पत्तु,
पुरे विल्लराम लक्खणु सु-पत्तु ।
मणहरु जिणहर तणुरुह पवित्तु ।
ते णिज्जिउ सिरिहरु परम मित्तु ।
विरदा णंदणु सम्माण घणउ,
लक्खण हो समउ सो करइ पणउ ।
तहे जि सणेहु णिब्भरु महत्तु,
दिण दिण त अइसय बुद्धि जंतु ।
भद्दवए पवुट्ठए मेहुखीरु,
असराल-वारि-पोसिय- सरीरु ।
ज एयारह मए मासि फारु,
णिवडइ णहारु उ णिब्भरुत्तु सारु ।
खर-कय पयड-बम्हड-पूरु,
ज जिट्ठइ णिट्ठरु तवइ सूरु ।
सुवणहो सुवणेसहु णाहु जजि,
चिरु वट्टइ भोकह चित्तु तजि ।

घत्ता—
जह अहिणव घण दंसणे ताव विहंसणे चंद कवडगं हुल्लियइ
सिरिहरुसिरिसाहारउरय-परिहारउलक्खणणाणहर सुल्लियइ

णवरेक्कदिणम्मि महाणुभाउ,
आभत्थि विल्लहो घत्थ-पाउ ।
पभणिउ भो बधव अइ पवित्तु,
विरइव्वउ जिणयत्तहो चरित्त ।
तहो वयणें मई विरइउ सवोज्ज,
वणिणाहो ववसायउ मणोज्ज ।
पद्धडिया वधं पायडत्थ,
आइहि जाणिज्जसु सुप्पसत्थु ।
सयलइ पद्धडिया एइ हुंति,
सत्तरि णवज्जु दस य दुण्णि सतु ।
एयइ गथइ सहसइ चयारि,
परिमाण मुणिहु अक्खर वियारि ।
हउ ·· · रक्खरु खलिय लज्ज,
ण वियाणमि हेयाहेय-कज्ज ।
पय-वध णिवधु ण मुणमि किंपि,
मइ-विरइउ संपइ चरिउ तपि ।

× × ×

इणहं चरित्तु जो को वि भव्वु,
परिपढइ पढावइ गलिय-गव्वु ।
जो लिहइ लिहावइ परमु मुणइ,
भावइ दावइ कहइ सुणइ ।
जो देइ दिवावइ मुणिवराह,
जइ तह सम्मइ पडिय पराह ।
सो चक्कवट्टि पउ आइ करिवि,
पालिवि सत्तकत्तण लच्छि धरिवि ।
अणुहुंजिवि संसारिय-सुहाइ,
सव्वइ दिव्वइ पयलिय-दुहाइ ।
उव्वहियाहिल सुहरस-पयासि,
पच्छइ गच्छइ णिव्वुइ णिवासि ।

घत्ता—
बारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं विक्कम कालवि इत्तउ ।
पढम पक्खि रविवारइ छट्ठि सहारइ पूस मासे सम्मत्तउ ॥३

× × ×

सम्मइ सण णाण णिरु सम्मच्चरिय विसालु ।
त रयणत्तउ सिरिहरहो अहिरक्खउ चिरकालु ॥

—आमेर भडार प्रति, सं० १६११

१४ सुलोयणाचरिउ (सुलोचनाचरित)
गणिदेवसेन

आदिभाग—

वय-पच-तिक्ख-णहरो पवयण-माया-सुदीह-जीहालो ।
चारित्त-केसरड्ढो जिणवर-पंचाणणो जयऊ ॥१॥
तिहुवण-कमल-दिणेसु णिण्णासिय-घण तिमिर-भरु ।
पयडिमि चरिउ पसत्थु पणविवि रिसह-जिणेसरु ॥२॥

× × ×

णिवमम्मलहो पुरि णिवसंतें,
चारुट्ठाणें गुणगणवंतें ।
गणिणा देवसेणमुणिपवरें,
भवियण-कमल पवोहण सूरें ।
जाणिय धम्माहम्म-विसेसें,
विमलसेण मलहारिहि सीसें ।
मणि चिंतिउ किं सत्थब्भासें,
णिप्फलेण णिरु वयणायासें ।
जत्थ ण धम्म-जुत्त रंजिय सह,
विरइज्जइ पसत्थ-सु दर कह ।

एस वि य पा वे गुण वि चमक्किउ,
चिरु कइ कव्वइं चिंति विसकिउ ।
जहि वम्मीय वास सिरि हरिसहि,
कालियास पमुहहि कइ सरिसहिं ।
वाण-मयूर-हलिय-गोविदहिं,
चउमुह अवरु सयभु कइंदहिं ।
पुप्फयत-भूपाल-पहाणहिं,
अवरेहिमि बहु सत्थ वियाणहि ।
विरईयाइं कव्वइ णिसुणेप्पिणु,
अम्हारिसह ण रंजइ बुहयणु ।
हउं तह वि धिट्ठत्तु पयासमि,
सत्थ रहिउ-अप्पउ आयासमि ।

घत्ता—जइ सुरवइ करिमत्तु, तो किं अवरु महव्वउ ।
जइ दुंदहि सुरुसद्दु, तो कि तूर म वज्जउ ॥३॥

जइ आयासं विणयासुउ गउ,
तो किं अवरु म जाउ विहंगउ ।
जइ सुरधेणुय जणयाणंदिणि,
दुज्झइ तो कि अवर गणंदिणि ।
जइ कप्पद्दुमु फलइ मणोहरु,
तो किं फलउ णाहि अवरु वि तरु ।
जइ पवहइ सुर-सरि मंथर-गइ,
तो कि अवर नाहि पवहउ णइ ।
जइ कइ पवरहि रइयइ कव्वइं,
सुंदरराइं वण्णहिमि अउव्वइ ।
हउंमि किंपि नियमइ अणुरूवें,
विरए वि लग्गउ काइ बहूवे ।
जइ वि ण लक्खणु छंदु वियाणमि,
अवरु निवंटु णाहि परियाणमि ।
णालकारु कोवि अवलोइउ,
णवि पुराण-आयमु-मणु ढोयउ ।
मइ पारंभिय तो वि जडत्तें,
वरकह जिणधम्महो अणुरत्तें ।
पिसुणत्तें सुंदर मइ दूसह,
हीणु णियवि सुयणत्तें पोसह ।

घत्ता – अह किं पच्छमि एहु, अब्भत्थिउ रोसालओ ।
जिम दुद्धें इंगालु, धोयउ धोयउ कालओ ॥४॥

× × ×

किं करइ पिसुणु संगहिय पाउ,
छुड्डु महु सरसइ जीहग्ग थाउ ।
छुड्डु णीहरंतु सुंदर पयाइं,
ललियाइं बद्ध भासा-गयाइं ।
छुड्डु णय-विरोहु संतवउ अत्थु,
छुड्डु होउ वयणु सुंदरु पसत्थु ।
आयण्णहो बहुविहु-भेय-भरिउ,
हउ कहमि चिराणउ चारु चरिउ ।
वइयरेंहि विचित्तु सुलोयणाहें,
णिव पुत्तहो मयणुक्कोवणाहें ।
वयवंति हिहय मिच्छत्तियाहे,
वर-दिढ-सम्मत्त-पउत्तियाहें ।
ज गाहा-बधें आसि उत्तु,
सिरि कुंदकुंद-गणिणा णिरुत्तु ।
तं एव्वहि पद्धडियहि करेमि,
परि कि पि न गूढउ अत्थु देमि ।
ते णवि कवि णउ संखा लहंति,
जे अत्थु देखि वसणहिं घि (खि) वंति ।

घत्ता—कहियं जेण असेसु मिच्छत्ताउ ओहट्टइ ।
अवरु वि बहुत्तव पाउ, तं जीवासिउ तुट्टइ ॥ ६ ॥

× × ×

इय सुलोयणाचरिए महाकव्वे महापुराणे दिट्ठिए गणि-देवसेण-विरइए पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १ ॥

चरमभागः—

णंदउ सुइरु जिणिंदहो सासणु,
जय सुहयरु भव्वयण सासणु ।
णंदउ पयजें धम्मु पयासिउ,
पाढउ जेण सत्थु उवएसिउ ।
साहु-वग्गु-रयणत्तय धारउ,
णंदउ सावउ वय-गुण धारउ ।
दाणु देइ इंदिय बल-उमरहं,
वेज्जावच्चु करेउ मुणि-पवरहं ।
णंदउ णरवइ सह परिवारे,
पालिएण णिरु णिययायारें ।
णंदउ पय-पय मुच्चउ पावे,
रंजिज्जउ जिण-धम्म-पहावे ।
वीरसेण-जिणसेणायरियहं,
आयम-भाव-भेय-बहु-भरियहं ।

तह संताणि समायउ मुणिवरु,
होट्टल मुत्त[1] णाम बहुगुणधरु ।
रावणु व्व बहुसीस-परिग्गहु,
सयलायम-जुत्तउ अपरिग्गहु ।
गंडविमुत्तु[2] सीसु तहो केरउ,
रामभद्दु णामें तव सारउ ।
चालुक्कियवसहो तिलउल्लउ,
होंतउ णरवइ चाएं भल्लउ ।
तिणमिव मुयवि रज्जु दिक्खंकिउ,
तिरयण रयणाहरणालंकिउ ।
जायउ तासु सीसु सजम-धरु,
णिवडिदेउ णामु णिह णियसरु ।
तासु सीसु एक्को जि सजायउ,
णिहणिय-पंचेदिय-सुह-रायउ ।
सील-गुणोहर गुण रयणायरु,
उवसम-खम-संजम-जल-सायरु ।
मोह-महल्ल-मल्ल-तरु-गयवरु,
भवियण-कुमुयखंडु-वण-ससहरु ।
तवसिरि-रामालिंगिय-विग्गहु[3],
धारिय-पंचायारु-परिग्गहु ।
पंच-समिदि-गुत्तिय-तय-रिद्धउ,
गुणिगण-वंदिउ भुवण-पसिद्धउ ।
मयरद्धय-सर-पसर-णिवारउ,
दुद्धर पचमहव्वय-धारउ ।
सिरि मलधारिदेव पभणिज्जइ,
णामें विमलसेणु जाणिज्जइ ।
तासु सीसु णिज्जिय-मयणुब्भड,
गुरु उवएसें णिव्वाहिय-तउ ।
कलइ धम्मु परिपालइ सजमु,
भविय-कमल-रवि-णिरणासिय-तमु ,
सत्थ-परिग्गहु-णिहय-कुसीलउ,
धम्म कहाए पहावण-सीलउ ।
उवसम णिलउ चरिय-रयणत्तउ,
सोम्मु सुयणु जिण-गुण-अणुरत्तउ ।
देवसेण णामे मुणि गणहरु,
विरयउ एउ कव्वु तें मणहरु ।
अमुणंतेण किं पि हीणाहिउ,
सुत्त-विरुद्धउ काइमि साहिउ ।
सयलुवि खमउ देइ-वाएसरि,
तिहुयण-जण-वंदिय-परमेसरि ।
फुडु बुहयणु सोहेप्पिणु भल्लउ,
तं करंत सुय-देइ-णवल्लउ ।
रक्खस-सवच्छर बुह-दिवसए,
सुक्क चउद्दसि सावण-मासए ।
चरिउ सुलोयणाहि णिप्पण्णउ,
सद्द-अत्थ-वण्णण-संपुण्णउ ।

घत्ता—णवि मइं कवित्त-गव्वेण किउ अवरु केण णवि लाहें ।
किउ जिणधम्महो अणुरत्तएण मण-कय-परमुच्छाहें ॥ १ ॥

आमेर भंडार प्रति सं० १५६०

(दिल्ली पंचायती मंदिरकी खंडित प्रतिसे संशोधित)

१५—पज्जुण्णचरियं (प्रद्युम्नचरितं) सिद्ध या सिंहकविकृतं।

आदिभाग.— १

खम-दम-जम-णिलयहो ति-हुअण-तिलय हो
वियलिय-कम्म-कलंकहो ।
थुइ करमि स सत्तिए अइणिरुभत्तिए
हरिकुल-गयण-ससकहो ॥

पणवेप्पिणु णेमि-जिणेसरहो भव्वयण-कमल-सरणेसरहो ।
भव-तरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुम-सर-विणिवारणहो ॥
कम्मट्ठ-विवक्ख-पहंजणहो मय-घण-पवहत पहंजणहो ।
भुवणत्तय-पयडिय-सासणहो छब्भेयजीव आसासणहो ॥
णिरवेक्ख णिमोह णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो।
पर-समय-भणिय-णय-सय-महहो कम-कमल-जुयल-णय-
सम-महहो ॥
महसेसिय-दसिय सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-करसुप्पहहो ।
माणावमाण-समभावणहो अणवरय-णमंसिय-भावणहो
भयवतहो सतहो पावणहो सासय सुह सपय-पावणहो ॥

घत्ता—

भुवणत्तय-सारहो णिज्जिय-मारहो अवहेरिय-घर दव्वहो ।
उज्जयत गिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिलहि-
कलकदहो ॥

१. द प्रतौ 'पुत्त' इति पाठ., २. द प्रतौ 'गडइपुत्त' इति पाठ. । ३. अ प्रतौ 'विज्जहु' पाठः ।

हय दुरिय रिणं, तइलोयइणं ।
भव-भय-हरणं, णिज्जिय करणं ।
सुहफलकुरुहं, वंदिवि अरुहं ।
पुणु सत्थमई, कलहंसगई ॥

वरवण्णपया, मणि धरिवि सया ।
पय-पाणसुहा, तोसिय विवुहा ।
सव्वंगिणिया, वहुभंगिणिया ।
पुव्वाहरणा, सुविसुद्धमणा ।
सुय-वर-वयणी, णय-गुण-णयणी ॥

कइयणजणणी, तं दुह-हणणी ।
मेहाजणणी, सुह-सुय-करणी ।
घर-पुर-पवरे, गामे णयरे ।
णिउ विउससहे सुह-झाणवहे ।
सरसइ सु-सरा, महु होउ वरा ।
इम वज्जरइ, फुडु सिद्धकई ।

हय-चोर भए, णिसि भवियगए ।
पहरिद्धट्ठिए, चित्तं तु-हिए ॥

घत्ता :—

जासुत्तउ अत्थइ तातहिं पेच्छइ णारिएक्क मणहारिणिया ।
सियवत्थ णियत्थिय कंजय हत्थि य अक्खमुत्तसुयधारिणिया ।२।

सा चवेइ सिविणं ति तक्खणे, काइसिद्ध चिंतयहि णियमणे ।
तं सुणेवि कइ सिद्ध जंपए, मइमज्झणिरु हियउ कंपए ।
कव्वुवुद्धिचित्तं तु लज्जिओ, तक्क-छंद-लक्खण-विवज्जिओ ।

ण वि समासु ण विहत्ति कारओ, संधि-सुत्त गंथहं असारओ
कव्वु कोइ ण कयावि दिट्ठओ, महु णिघट्टु केणवि ण सिट्ठओ ।

तेण वहणि चिंतंतु अत्थमि,
खुज्जहो वि ताल हलु वंछमि ।
अधहो वि णवणट्ट पिच्छिरो,
गेय मुणणि वहिरो वि इच्छिरो ।
तं सुणेवि जाजय महासुई,
णिसुणि सिद्ध जपइ सरासई ।

घत्ता—

आलसु संकिल्लहि हियउ समेल्लहिं मज्झु वयणु इयदिढु करहि
हउं सुणिवरवंसें कहमि विसेसें, कव्वु किंपि तं तुहु करहि ॥३

ता मलधारि देउ मुणि-पुंगमु
ण पच्चक्ख धम्मु उवसमु दमु ।
माहवचंद आसि सुपसिद्धउ
जो खम-दम-जम-णियम समिद्धउ ।
तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु
वय-तव-णियम-सील-रयणायरु ।
तक्क-लहरि-झंकोलिय परमउ
वर-वायरण-पवर पसरिय-पउ
जासु भुवण दूरंतरु वंकिवि
ठिउ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि
अभयचंदु णामेण भडारउ
सो विहरंतु पत्तु वुह-सारउ ।
सस्सिर-णंदण-वण-संच्छण्णउ
मठ-विहार-जिणभवण रवण्णउ ।
वम्हण वाडउ णामें पट्टणु
अरि-णरणाह-सेण-दल वट्टणु ।
जो भुंजइ अरिण खय कालहो
रण-धोरिय हो सुअहो बल्लालहो ।
जासु भिच्चु दुज्जणु-मण-सल्लणु
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु ।
तहिं सपत्तु मुणीसरु जावहिं
भव्वुलोउ आणंदिउ तावहिं ।

घत्ता—

णियगुण अपसंसिवि मुणिहि णमंसिवि जो लोएहिं अदुगछियउ
णय-विणय-समिद्धें पुणु कइ सिद्धें सो जइवरु आउंछियउ॥३॥

पुण पंपाइय-देवण-णंदणु,
भवियण-जणमण-णयणाणंदणु ।
वुहयण-जणपय-पंकय छप्पउ,
भणइ सिद्ध पणमिउ परमप्पउ ।
विउल गिरिहि जिह हय भवकंदहो,
समवसरणु सिरिवीरजिणिंदहो ।
णर-वर-खयरामर समवाए,
गणहरु पुच्छिउ सेणियराए ।
मयरद्धयहो विणिज्जिय मारहो,
कहहि चरिउ पज्जुण्णकुमारहो,
तं णिसुणेवि भणइ गणेसरु,
णिसुणइ सेणिय मगह-णरेसरु ।

× × ×

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ-सिद्ध-विरइयाए पढमो संधी परिसमत्तो ॥१॥

अन्तिम प्रशस्ति—

कृतं कल्मष-वृक्षस्य शास्त्र शस्त्रं सुधीमता
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-सामज-भजन ॥१

काम्थस्य काम्यं कमनीयवृत्ते वृ'त्तं कृत कीर्तिमतां कवीनां।
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजां लाभाय तस्यात्र सदैव कीर्ति. २॥

सव्वण्हु सव्वदंसी भव-वण-दहणो सव्व मारस्स मारो।
सव्वाणं भव्वयाणं सवणमणहरो सव्वलोयाण सामी।
सव्वेसिं वच्छरूवं पयडण-कुसलो सव्वणाणावलोई,
सव्वेसिं भूययाण करुण विरयणो सव्वगाल जओ सो ॥३

जं देव देव देव अइसयसहिद अंगदाराग्रिहंत,
सुद्ध' सिद्धी हरत्थं कलि-मल-रहितं भव्व भावाणु मुक्क।
णाणायार अणत वसुगुण गणियं असहीण सुणिच्चं।
अम्हाण तं अणिंद पविमल-सहिदं देउ ससार-पार ॥४

णादं मोहाणुबध सारुह-णिलए किं तवत्थ अणत्थ,
सत सदेहयार विबुह-विरमणं खिज्ज देदीययाण।
वाए सीए पवित्त विजयदु भुवणे कव्वु वित्तं विचित्त,
दिज्जं तं ज अणं वियरदि सुइर णाणालाहं विदित ॥५

घत्ता—

जं इह हीणाहिउ काइमि साहिउ अमुणिय सत्थ-परपरइ।
त खमउ भडारी तिहुवण-सारी वाएसरि सच्चायरई ॥

दुवई—जा णिरु सत्तभगि जिण वयण-
विणिग्गय दुह विणासणी।
होउ पसण्ण मज्झ सुहयरि,
इयरण-कुमइ-णासणी ॥

पर वाइय-वाया-हरुअ-छमसु,
सुयकेवलि जो पच्चक्खु धम्मु।
सो जयउ महामुणि अमियचदु,
जो भव्व णिवह कइरवहं चंदु।
मलधारिदेव पय पोम-भसलु,
जगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु।
तह पय-रउ णिरु उवणय अमइयमाणु
गुज्जर-कुल-णह उज्जोय-भाणु।
जो उहय पवर वाणी विलासु
एव विह विउसहो रल्हणासु।
तहो पणइणि जिणमइ सुहमसील
सम्मत्तवत णं धम्मसील।

कइ सीहु ताहि गब्भतरंमि
सभविउ कमलु जह सुर-सरमि।
जण वच्छलु सज्जण-जणिय हरिसु
सुइवंतु तिविह वइ-राय सरिसु।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवर
नामेण सुहंकरु गुणह पवरु।
साहारण लघु वउ तासु जाउ
धम्माणुरत्तु अइ दिव्वकाउ।
तहु अणु व मह एउ वि सु सारु
सविणोउ विण कुसुम सरधारु ?
जावच्छहि चत्तारि वि सुभाय
पर उवयारिय जण जणियराय।
एकहिं दिणि गुरुणा भणइ वत्थ
णिसुणहिं छप्पय कइ राय दच्छ।
भो बाल-सरासइ गुण-समीह
किं अविणोयइं दिण गमहिं सीह।
चउविह-पुरिसत्थ-रंसोह-भरिउ
णिव्वाहउि एउ पज्जुण्णचरिउ।
कइ सिद्धहो विरयतहो विणासु
सपत्तउ कम्मवसेण तासु।
महु वयणु करहि किं तुव गुणेण
र तेण हूय छाया समेण।

घत्ता—

किं तेण पहूवइं चउ धणइं जं विहलिय ह ण उ वयरइ
कव्वेण तेण किं कइयणहो ज ण छइल्ह मणु हरइ।
गुणा पुणो पउत्तं पवियप्प धरम पुत्त मा चित्ते।
गुणिणो गुण लहेविणु जइ लोओ दूसण थवइ ॥१
को वारइ सविसेसं खुद्दो खुद्दत्तणं पि विरयतो।
मुवणो छुडु मब्भत्थो अमुवतो णियसहाव वा ॥२
संभव-इव हुअ विग्घं मुण (मणु ?) याण सेयमग्गे लगाणं।
मा होहि कज्ज सिढिलो विरयहि कव्व तुरतो वि ॥३
सुह असुह ण वियप्पहि चित्तं धीरे वि तेजए वयणा।
परकज्जं परकव्वं विहडत जेहि उद्धरिय ॥४
अमिय मयंद गुरूणं आएसं लहेवि झत्ति इय कव्वं।
णियमइणा णिम्मवियं णदउ ससि दिणमणी जाम ॥५
को लेक्खइ सत्थम्मे दुज्जीहं दुज्जणं पिअ सुहयरं।
मुवणं सुद्ध सहाव कर-मउलिं रइवि पच्छामि ॥६

जं कि पि हीण-अहिय विउसा सोहतु तं पि इयकव्वे ।
धिट्ठत्तणेण रइय खमंतु सव्ववि महु गुरुणो ॥७॥
यत्काव्य चतुराननाऽब्जनिरतं सत्पद्यदानत्वक ।
स्वैरं भ्राम्यति भूमिभागमखिल कुर्वन् वलक्षं क्षणात् ।
तेनेदं प्रकृत चरित्रमसमं सिद्धेन नाम्ना परं,
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्ण सुखदं श्रीपूर्व देवद्विषः ॥

(आमेर प्रति सं० १५७७ से और फर्रुखनगर प्रति सं० १५१७ से)

१६ पासणाहचरिउ (पार्श्वनाथचरित) कवि देवदत्त

आदिभाग—:

चउवीसवि जिणवर दिट्ठपरंपर, वंदवि मूढदिट्ठि-रहिउ ।
वर-चरिउअणिंदहो पासजिणिंदहो णिसुणिज्जउ वईयरसहिउ ॥

वदवि जिणलोयालोयजाण,
अत्तीद-अणागय-वट्टमाण ।
पुणु सिद्ध अणत महाजसांस ,
जो मोक्ख-महासरि-रायहंसु ।
आइरिअ सुअंबुहि-पारु-पत्त ,
सिद्धवहु कडक्खचिणिहिय विचित्त ।
उज्झाय परम-पवयण पवीण,
बहु-सीस सुनिम्मल-धम्म-लीण ।
पुणु साहु महव्वय-वूढ-भार,
बावीस-परीसह-तरु-कुठार ।
पंचवि परमेट्ठि महामहल्ल,
पचवि निम्मच्छर-मोह-मल्ल ।
पंचमि कहिउ दयधम्मु सारु,
पंचहमि पयासिउ-लोय-चारु ।
पंचहमि न इच्छिउ दुविहु सगु,
पंचहमि निराउहु किउअणगु ।
पंचहंमि भग्गु-इदिय-मडप्पु,
पंचहिं किउ-णिव्विसु-विसय-सप्पु ।
पंचवि परिकलिय-असेस-विज्ज,
पंचवि नियु-नियु-गुण-गण-सहिज्ज ।
पंचहंमि कलिउ णाणइं समग्गु,
पंचहमि पयासिउ मोक्ख-मग्गु ।

घत्ता—

पंचवि गुरुवंदवि मणिअहिणंदवि जिणमंदिरे मुणि अच्छइ ।
पयडत्थ-मणोहरे अक्खर-डंबरे सुकवित्तहो मणउ गच्छइ ॥१॥

सुकवित्त-करणे मणे वड्ढगाहु, निसिसमइवियप्पइ एव साहु ।
जाणियं नमइं कालक्खराइं, न सुअउ वायरणउ सवित्थराइं ।

पय-छेउ-संधि-विग्गहु-समासु,मणि फुरइ न एक्कवि मइ-पयासु
छंदालंकारु न वुज्झियउ, निग्घंटु तक्कु दूरउज्झियउ ।

नवि भरहु स वु वक्खाणियउ,महकइ किउ कव्वु न जाणियउ
सामग्गि न एक्क वि मज्झु पासि, उत्तरमि केव सद्दंवु रासि ।

माहिय सइ साहुविसण्ण मणू , इय चित्तवंतु थिउ एक्कु खणु
कलहंसगमण ससिबिंब-वयण , विलुलत-हार-सयवत्त-नयण ।

+ + +

सिरिपासनाह-चरिए चउवग्गफलेभवियजण-मण-णंदे मुणिदेव-यंदरइए महाकव्वे विजया संधी ॥

अन्तिभागः—

दुवई— देसिय गच्छि सीलगुण गणहरु,
भविय सरोजनेसरो ।
आस सुयंबु-रासि अवगाहणु,
सिरि सिरिकित्ति मुणिवरो ।
तहो परम मुणिंदहो भुवण भासि,
संजाउ सीसु तव-तेय-रासि ।
नामेण पसिद्धउ देवकित्ति,
.... ।
तहो सीसु तवेण अमेयतेउ,
गुणनाउ जासु जगि मउनिदेउ ।
गिव्वाण-वाणि गंगा-पवाहु,
परिचत्त-सगु तवसिरि-सणाहु ।
तहो माहवचंदहो पाय-भत्तु,
आसीह सुयायरु सीस वुत्तु ।
निव्वाहिय-वय-भर अभयणंदि,
निय-नाउ लिहाविउ जेण चंदि ।
इस दुसम-कालि कु कण बलेण,
डोल्लंत धम्मु थिरु-कयउ जेण ।
तें दिक्खिउ वासवचंद सूरि,
जें निहिउ कसाय-चउक्कु-चूरि ।
भवियण-जण-नयणाणंदि-राइं,
उद्धरियइं जे जिण-मंदिराइं ।
तहो सीसु जाउ मुणि देवचंदु,
अविलव वाणि कव कुमुअयंदु ।

रयणत्तय-भूसणु गुण-निहाणु,
अण्णाण-तिमिर-पसरत-भाणु ।
गुंदिज्ज नयरि जिण पासहम्मि,
निव संतु सतु संजणिय सम्मि ।
अइ अज्ज नियवि पासहो चरित्तु,
अब्भत्थि वि भविय जणेहि वुत्तु ।
छंदालकार-ललिय पयत्थु,
पुणु पासचरिउ करि पायडत्थु ।

घत्ता—

तें तहिं गुण गणहरि गोंदिज पुरवरि णिवसंतइ पासहो चरिउ
अक्खर-पय सारहं अत्थवियारहं सुललिय छंदहिं उद्धरिउ ॥१२॥

दुवई—

पास-जिणिंद-चरिउ जगि निम्मलु फणि-नर-सुरह णिज्जई ।
फुडु सग्गापवग्ग-फल पावणु खणु न विलंबु किज्जए ॥

अणु दिणु जिण-पय-पोमहि नमियहं,
गथ-पमाणु पयासमि भवियहं ।
नाणा छंद-बंध-नीरंधहिं,
पासचरिउ एयारह संधिहिं ।
पउरच्छहि सुवण्णरस घडियहिं,
दोन्नि सयाइं दोन्नि पद्धडियहिं ।
चउवग्ग-फलहो पावण-पथहो,
सइं चउवीस होंति फुडु गंथहो ।
जो नरु देइ लिहाविउ दाणइं,
तहो संपज्जइ पंचइं नाणइं ।
जो पुणु वच्चइ सुललिय-भासइं,
तहो पुण्णेण फलहिं सव्वासइं ।
जो पयडत्थु करे वि पउंजइ,
सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजइ ।
जो आयन्नइ चिरु नियमिय मणु,
सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु ।
दिणि दिणि मदिरि मगलु गिज्जइ,
नच्चइ कामिणि पडडु पवज्जइ ।
निप्पज्जहिं भुवि सव्वइं सासइं,
दुट्ठु-दुभिक्खु-मारि-भउ नासइं ।
अण्णु वि जं मइ कव्वु करंतइं,
अण्ण मणाइ रसमोहिय चित्तइ ।
लक्खण-छंद-रहिउ हीणाहिउ,
न मुणंतेण एत्थ किर साहिउ ।
तं महुँ खमहु विवुह-चिंतामणि,
सत्त भंगि नय-पवर-पयासणि ।
जांतइ लोयसिहर-पुरवासहो,
कमठ-महासुर-दप्प-विणासहो ।
चउ-भासामय-सावण-चंदहो,
अइसयवंतहो पास-जिणंदहो ।

घत्ता—

मुह-कुहर निवासिणि भुवणुब्भासिणि कुपय-कुपत्थ-कुनय-महणि
सा देवि सरासइ मायमहासइ देवयंद महुँ वसउ मणि ॥१३ ॥

सिरिपासणाह-चरिए चउवग्गफले भविय जणमणाणंदे
मुणिदेवयंद-रइए महाकव्वे एयारसियाइमा संधी समत्ता ॥

(मेरे पैतृक शास्त्रभंडारसे स० १५४६ की खंडित प्रतिसे)

१८—सयलविहि-विहाणकव्व(सकलविधि-विधान काव्य)

कवि नयनन्दी

आदिभाग .—

धलव-मंगल-णंद-जववट्ट-मुहलंमि सिद्धत्थवि,
णरलोय-हरिसु व-सकमिउ-सग्गाउ जिणु ।
जयउ पुरिम-कल्याण-कल सुव अह णं सिद्धि-वहू-विमल
मुत्तावलिहिं णिमित्तु सुह सुत्तिए।पियकारिणिह सिप्पिहि
मुतिउ खित्तु ॥

जिण-सिद्ध-सूरि-पाढय सवण,
पणवेप्पिणु गुरुभत्तिए ।
णीसेस विहाण णिहाण फुडु,
करिम कव्व णिय-सत्तिए ॥
पयासिय-केवलणाण-मओह,
णरामर-विंदरविंद-पबोह ।
विणिमिय -पाव-तमोह-विणास,
णमामि अहं अरहंत विणास ।
णिरामय-मोक्ख णाहगण-लीण,
कयावि ण वड्ढिय णो परिहीण ।
कलंक-विमुक्क जगत्तय-वद,
णमामि सुसिद्ध अणोवम चद ।
अलंघ महंत खमासुणि सणा,
अणग्घ-महारयणावलि-पुण्ण ।

पवट्टिय-संजम-गेल-सुरुंद,
णमामि गणेस गहीर-समुद्द ।
महव्वय-सेल-सरोवरि-थक्क,
विचित्त-मऊह-णिसु भणि-सक्क ।
दिसासु पणासिय-वाह-गइंद,
णमामि उवज्झय चारु-मइंद ।
पमाय-विवक्ख-वियारण-दक्ख,
समीहिय-सिद्धि-पुरंधि-फडक्ख ।
परीसह-गुज्झि-णिबद्ध-सरीर,
णमासि असेसवि संजय-वीर ।

घत्ता—इय परम पंच परमेट्ठि पहु पणविय पुरण पयासहिं ।
विथरिय-विस-विसहर-जलण-णि·········॥ १ ॥

दरिसिय सुवण्ण-गुण-गण-सलग्घु,
मुत्तालंकरिउ महामहग्घु ।
ण वसुह-विलासिणि-हियय-हारु,
अत्थीहावंती विसय-सारु ।
पडिवक्ख-पक्ख-पयडिय-णिरोहु,
सिंगार-विलास-विसेस-सोहु ।
तहिं सुकइ-कहा इव चित्त-हार,
णयरी-चउवग्गण-धरण-धार ।
तहिं सरसइ-कठाहरणु देउ,
रण-रंगमल्लु आली-समेउ ।
तिहुयण-णारायणु-सुअण-भाणु,
परमेसर अत्थी जण-णिहाणु ।
पम्मारवंस-गयणेक्कचंदु,
जयसिरि-णिवास भूवइ-णरिंदु ।
तहो णेमिणामु ठक्कुर गरिट्ठु,
सपुण्ण-पुण्ण-पंजुत्र जणिट्ठु ।
तेल्लाक्क-कित्ति कामिणिहे धामु,
सुपसिद्धउ वट्टु विहारु णामु ।
महिसाणिणी हे मउद्धु व मणिट्ठु,
कराविउ कित्तणु तें गरिट्ठु ।

घत्ता—
तहिं अत्थि सूरि हरिसिघु मुणि जिणसासण-पुर-तोरणु ।
साएसि-तरंगिणि-मयरहरु, तवसिरि-बहु-मण-चोरणु ॥ २ ॥

समीवि णिवट्ठु णियच्छिवि तेण,
मुणीणयणंदि पसण्ण-मणेण ।
पउत्तु पऊरिय चित्तहिलासु,
सुकोमल-णिम्मल-वाणि-विलासु ।
तुमं कुरु किंपि कवित्तु मणिट्ठु,
णमामि ण जं कइणा इह दिट्ठु ।
तिण भणियं ण कइत्तु मुणेमि,
अयाणमणो भणु काइं करेमि ।
परं महु अट्ठ गुणाहु सजेवि,
ण लद्ध पसिद्धहिं सिद्धहि तेवि ।
ण देवहिं दाणव-विंदहि पत्त,
असेस-गुणायर-अच्छुड-वत्त ।
गुणेक्कु वि कत्थवि पाविउ जेण,
पइंपइ सो णयणंदी तेण ।
मए पुणु अंगुलि उज्झय तासु,
पणामउ से गुणलेसु विणासु ।

घत्ता—पर-णिंदा णिहले सलठणु सढवढ रत्ताणि ट्ठिय ।
कलिवंडल अट्ठ वि गुणगरुव महंमुणवि कसु संठिय ॥३॥

+ + +

मणु जण्णवक्कु वामीउ वासु,
वररुइ वामणु कवि कालियासु ।
कोऊहलु वाणु मयूरसूरु,
जिणसेण जिणागम कमलसुरु ।
चारायणु वरणाउ वि वियट्ठु,
सिरि हरिसु रायसेहरु गुणट्ठु ।
जसइंधु जए जयरामणामु,
जयदेउ जणमणाणंद-कामु ।
पालित्तउ पाणिणि पवरसेणु,
पायंजलि पिंगलु वीरसेणु ।
सिरिसिंहनंदि गुणसिंहभद्दु,
गुणभद्द गुणिल्लु समंतभद्दु,
अकलंकु विसमवाइयविहंडि,
कामद्दु रुद्दु गोविन्द दंडि ।
भम्मुह भारह भारुवि महंतु,
चउमुहु सयंभु कइ पुप्फयंतु ।

घत्ता—
सिरिचंद पहाचंदु वि विवुह गुण गण णंदि मणोहरु ।
सिरिकुमार सरसइ-कुमर-विलासिणि-सेहरु ॥६॥

इमे अण्ण जेते कइत्ते ललामा,
गुणालकिया कित्ति-कंताहिरामा ।
ण चायं भडत्तं कइत्तं विढत्तं,
गुणं केवलं मज्झयं त सढत्तं ।
जिणिंदस्स णिग्गंथ-पंथंमि लीणो,
पयासेमि चायं कह गंथहीणो ।
करामो भडत्तं जेणं सुप्पसिद्धं,
पयासेइ णाणं मदूरे णिसिद्धं ।
समुप्पण्णिया मज्झिणो कव्वसत्तो,
लज्झए णिग्गुणत्ते ण कित्ती ।
अलंकार-सल्लक्खण देसि छंदं,
ण लक्खेमि सत्थतरं अत्थमद ।
परं लक्खणो रम्म भाई कणिट्ठो,
अलंकारवंतो वि सत्थ इइट्ठो ।
हुउ देसिउ सो वि देसतराले,
पइट्ठो ण ऐसे कइत्ते विसाले ।
णिसंबंध सुद्धे र सु बुद्धीइ वण्णो,
ण जाणामि वाया-विलासो पवण्णो ।
ण वुज्झेमि कव्वस्स णामं पि जुत्तं,
हसेऊण ता सूरिणा तेण उत्तं ।
अहं तुज्झ सज्झा कवित्ती पहाउ,
पयासेमि कव्वं भुअंगप्पयाउ ।

घत्ता—
जो चारु चाउ चार हडि गुणु सु कइत्तणु ण पयासइ ।
णर-जम्म रयणु दुल्लहु लहवि भव सायरि सो णासइ ॥७॥

इय जंपिउ मुणि हरिसिधु जाम,
पडिजंपइ मुणि णयणंदि ताम ।
चिरु कइ सरसइ कण्णावयंसु,
सुकइत्त-सरोवर-रायहंसु ।

× × × ×

पच्चक्ख-परोक्ख-पमाण-णीर,
णय-तरल-तरंगावलि-गहीर ।
वर-सत्तभंगि-कल्लोल-माल,
जिण-सासणि-सरि-णिम्मल-सुसाल ।
पंडिय-चूडामणि विबुह-चंदु,
माणिक्कणंदि उप्पण्णु कंदु ।
दिढबुद्धि कढिण कंटय-पयंडु,
तहो तुहुँ हुउ सीसु गुणत्थ ढंडु ।

तब्भूउ-विमल-सम्मत्त-सदलु,
सयल-विहि-णिहाणु सुकव्व कमलु ।
ववगय-मिच्छत्त-तमोह-दोसु,
धम्मत्थ-काम-कमणीय-कोसु ।
संकाइय-मलसगम-विरासु,
दय-रम्म-रमा-रामाहिरासु ।
सावय-वय-हंसावलि-वियासु,
परमेट्ठि-पंच-परिमल-पयासु ।
केवलि-सिरि-कामिणी कम-विलासु,
सग्गापवग्ग-सुह-रस-पयासु ।
मुणि-दाण कद-मयरंद-वरिसु,
बुहयण-महुयर-मण-दिण्ण-हरिसु ।

घत्ता—
इय कव्वु कमलु कोमल करइ, जो लंकारु स कण्णाहं ।
सो सिद्धि पुरंधिहे मणु हरइ, कवणु गहणु सुरकण्णाहं ॥११॥

× × × ×

मुणिवर-णयणंदि-संणिबद्धे पसिद्धे,
सयल-विहि-विहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे ।
सुहउ सुकइ चाई वण्णणुल्लासजुत्तो,
ललिय-पयए उत्तो आइमो संधि वुत्तो ॥१॥

× × × ×

सिरी भोयएव धाराउरेहि, कव्व विणोएं अच्छइ ।
मुणि भणइ एम हरिसिधु तहो, णयणंदि एव सुपयासइ॥१

पारंभि वि कव्वु ममंतएण,
पुर पट्टण पमुह कमंतएण ।
णयणंदि मुणिंदु मुणीहि रम्मु,
वत्थीसु णियच्छिउ लच्छि-धम्मु ।
जहिं वच्छराउ पुणु पुहइ वत्थु,
हु तउ पुह ईसरु सूदवत्थु ।
होएप्पिणु वत्थए हरि मएउ,
मंडलिउ विक्कमाइच्चु जाउ ।
भुवणेक्कमल्लु रायहो पियारु,
गुणवंतउ गउरि-गुण-पियारु ॥
अंबाइय कंचीपुर विरत्त,
जहं भमहं भव्वु भत्तिहिं पसत्त ।
जहि वल्लहराए वल्लहेण,
काराविउ कित्तणु दुल्लहेण ।

जिण पडिमालंकिउ गच्छमाणु,
णं केण त्रियंभिउ सुर-विमाणु।
जहिं रामणंदि गुण-मणि-णिहाणु,
जयकित्ति महाकित्ति वि पहाणु।
इय तिण्णि वि परिमण-मई-मइंद,
मिच्छत्त-विडवि-मोडण-गइंद।

घत्ता—

सिवपुर गच्छंतें तिहुयणहो णं रयणत्तय सोहण।
दरसिय अहवीरें गणहरु, कलिकाल हो पडिवोहण ॥१॥

रामणंदि णत्तिउ मणिट्ठउ,
जहिं जियं णमंसि वि णिविट्ठउ।
तहिं णिए वि भव्वाहिणंदिणा,
सूरिणा महारामणंदिणा।
बालइंद-सीसेण जंपियं,
सयल-विहिणिहाणं मणप्पियं।
कइ दिणाइं पारभिउ पुणा,
कीस-विट्ठसे-चित्त-दुम्मणो।
त सुणेवि णायणंदि बोल्लए,
मणु करिंद-कण्णेव डोल्लए।
रइए कव्वे इयभत्तिणिज्झरा,
कासु सत्ति लेहावणे परा।
कहइ तासु सो भरहरिद्धए,
वर वराडदेसे पसिद्धए।
कित्ति-लच्छि-सरसइ-मणोहरे,
वाडगामि महि महिल-सेहरे।
जहिं जिणिंद-हर-पह-पराजिया,
चंद-सूर णहे जंत लज्जिया।
तहिं जिणागमुच्छव अलेवहि,
वीरसेण-जिणसेण देवहि।
णाम धवल जयधवल सय,
महावंधु तिण्णिसिद्धंत सिव-पहा।
विरइऊण भवियहं सुहाविया,
सिद्धि-रमणि-हाराच्च दाविया।
पुंडरोउ जहिं कवि धणंजउ,
इउ सयभू भुवणं पि रंजए।

घत्ता—तवसिरि-सरसइ-चउहरण सिद्धंतिय विक्खायहिं।
जहि तहिंमि तेहि पणविय सहहिय जिणु तिहुवण रायहिं ॥२

अन्तिमभागः—

मुणिवर-णायणंदि-सणिबद्धे पसिद्धे,
सयलविहि-विहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।
अरिह-पमुह-सुत्त-वुत्तमाराहणाए
पभणिउ फुडु संधि अट्ठावणं समोत्ति ॥
संधि ५८ ॥ (प्रति आमेर भंडार, सं० १५८०)

१८ अणुवय-रयण-पईव (अणुव्रत-रत्न-प्रदीप)

—कवि लक्ष्मण, रचना काल सं० १३१३

आदिभागः—

णत्तूण जिणे सिद्धे आयरिए पाढए य पव्वइदे।
अणुवय-रयण-पईवं सत्थं वुच्छे णिसामेह ॥

× × × ×

इह जउँणा-णइ-उत्तर-तडत्थ,
मह णयरि रायवड्डिय पसत्थ।
धण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध,
दाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-सिद्धि।
किम्मीर-कम्म-णिम्मिय रवण्ण,
सट्टल-सतोरण-विविह-वण्ण।
पंडुर-पायारुण्णइ-समेय,
जहिं सहहिं णिरंतर-सिरि-निकेय।
चउहट्ट चच्चरहाम,जत्थ,
मग्गण-गण-कोलाहल-समत्थ।
जहिं विवणे विवणे घण कुप्पभंड,
जहिं कसिअहिं णिच्च पिसंडि-खंड।
णिच्चिच्च-दाण-संमाण-सोह,
जहिं वसहि महायण सुद्ध-बोह।
ववहार-चार-सिरि-सुद्ध-लोय,
विहरहिं पसण्ण चउवण्ण लोय।
जहिं कणयचूड-मंडण-विसेस,
सिंगार-सार-कय-निरवसेस।
सोहग्ग-लग्ग-जिण-धम्म-सील,
माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लील।
जहिं पवण-पकंपिय-पवण-साल,
णायर-णरेहिं भूसिय विसाल।
थियजण थिंवुज्जल जणिय-सम्म,
कुइगि-पयावद्धि-रुद्ध-धम्म।
चउ-मालुवणय-तोरण-सहार,
जहिं महहिं सेय-सोहण-विहार।

जहिँ दविणंगण-बहि-पेम-छित्त,
लावण्ण-पुण्ण-धण-लोल-चित्त ।
जहिँ चरड चाड कुसुमाल भेड,
दुज्जण-सखुद्द-खल-पिसुण-एड ।
ण वियंभहि कहिमि ण धण-विहीण,
दविणड्ढ णिहिल णर धम्म-लीण ।
पेम्माणुरत्त परिगलिय-गव्व,
जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुव सव्व ।
वावार सव्व जहि सहहिँ णिच्च,
कणयंवर-भूसिय-रायमिच्च ।
तंबोल-रंग-रंगिय-धरग्ग,
जहिँ रेहहिँ सारुण-सयल-मग्ग ।
तहिँ णरवइ आहवमल्ल-एउ,
दारिद् समुत्तारण-स-सेउ ।

घत्ता—

उव्वासिय-परमंडलु दंसिय मंडलु कास-कुसुम-संकास-जसु ।
छल-कुल-बल-सामत्थें णीइ-णयत्थें कवणु राउ उवमियइ तसु

णिय-कुल-कइरव-वण-सिग्र-पयंगु,
गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पवणु,
मइ मागह-गण-पडिदिण्ण-तवणु ।
दुव्वसण-रोय-णासण-पवीणु,
किउ अखलिय-सुजस मयंकु भीणु ।
पचग-मंत-वियरण-पवीणु,
.... ।
माणिणि-मण-मोहणु मयरकेउ,
णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल-दिण्ण-हीरु,
विसुमुण्णय-समर-भिडंत वीरु ।
खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्क-वंसु,
विवरीय-बोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-वल खल-कुल-पलय-कालु,
पहु-पट्टालंकिय विउल-भालु ।
सत्तंग-रज्ज-धुर-दिण्ण-खंधु,
सम्माण-दाण-पोसिय-सबंधु ।
णिय-परियण-मण सीमत्तण-दच्छु,
परिवसिय-पयासिय-वेरकच्छु ।

करवाल-पट्टि-विप्फुरिय-जीहु,
रिउ-दंड-चंड-सुंडाल-सीहु ।
अइ-विसम-साह सुद्दाम-धामु,
चउ सायरंत-पायडिय-णामु ।
णाणा-लक्खण-लक्खिय-सरीरु,
सोमुज्जल सामुद्दय-गहीरु :
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्लु,
हम्मीर-वीर-मण-नट्ठ-सल्लु ।
चउहाणवंस-तामरस-भाणु,
मुणियइ न जासु भुय-बल-पमाणु
सुलसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु,
छत्तीसाउह पयडण-समोसु ।
साहण-समुद्द बहुरिद्धि-रिद्धु,
अरि-राय-विसह-संकरु पसिद्धु ।

घत्ता—

पालिय-खत्तिय-सासणु परबल-तासणु ताण मंडल-उव्वासणु ।
मइ-जल-पसर-पयासणु णव-जल-हरसणु दुण्णय-विति-पवासणु

तहो पट्ट-महाएवी पसिद्ध,
ईसरदे पणयणि पणयं-विद्ध ।
णिहिलंते उर-मज्झए पहाण,
णिय-पइमण पेसण-सावहाण ।
सज्जण-मण-कप्प-महीय-साह,
कंकण-केऊरंकिय-सुबाह ।
छण-ससि-परिसर-सपुण्ण-वयण,
मुक्के-मल-कमल-दल-सरल-णयण ।
आसा-सिंधुर-गइ-गमण-लील,
वंदियण-मणासा-दाण-सील ।
परिवार-भार-धुर-धरण-सत्त,
मोयइं अंतर-दल-ललिय-गत्त ।
छद्द सण-चित्तासा-विसाम,
चउ-सायरंत-विक्खाय-णाम ।
आहमल्ल-राय-पय-भत्ति-जुत्त,
अवगमिय-णिहिल-विण्णाण-सुत्त ।
णिय-णंदणाह चिंतामणीव,
णिय-धवलगिहि-सरहंसिणीव ।
परियाणिय-करण-विलास-कज्ज,
रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ।

गंगा-तरंग-कल्लोल-माल,
समकित्ति-भरिय-ककुहंतराल ।
कलयंठि-कंठ-कल-महुर-वाणि,
गुण गरुव-रयण-उप्पत्ति-खाणि ।
खरिराय-विसह संकरहो सिट्ठ,
सोहग्ग-लग्ग गोरिव्वदिट्ठ ।

घत्ता—तहिं पुरे कइ-कुल-मंडणु,
दुण्णय-खंडणु मिच्छत्त त्ति ण जित्तउ ।
सुपसिद्धउ कइ लक्खणु,
बोह-वियक्खणु पर-मय-राय ण छित्तउ ॥४॥

एक्कहिं दिणे सुकइ पसण्ण-चित्तु,
णिसि सेज्जायले झाइयइ सइत्तु ।
महु बोह-रयणु धउ गरुय-सरिसु,
बुहयण-भव्वयणहं जणिय-हरिसु ।
कर-कंठ-कण्ण-पहिरण अलक्कु,
णर-हर मईं तेण सजोरु थक्कु ।
महु सु-कइत्तणु विज्जा-विलास,
बुहयण-मुह-मंडणु साहिलासु ।
आणंद-लयाहरु अमिय-रोय,
ण वियाणइ सुणइ ण इत्थ को वि ।
मईं असुह-कम्म-परिणाइ सहाउ,
उग्गमिउ सहिव्वउ दुह-विहाउ ।
एमेव कइत्तण-गुण-विसेसु,
परिगलइ णिच्च महु णिरवसेसु ।
केणुप्पाए अज्जियइं धम्मु,
किज्जइ उवाउ इह सुवणि रम्मु ।
पाइयइ धम्मु-माणिक्कु जेण,
सहसा संपइ सुद्धें मणेण ।
धम्मेण रहिउ णर-जम्मु चक्कु,
इय चिंताउलु कइ-चित्तु रंकु ।
किं कुणमि एत्थ पयडमि उवाउ,
जें लब्भइ पुण्ण-पहाव-राउ ।
मणे झाइ झाणु सुह-वेलि-कंदु,
तहि-दल-णिसाए णिद्दलिवि दंदु ।
अइ-णिब्भर-णिद्दाणंद-भुत्तु
सवेइय-मणु जा सिज्ज सुत्तु ।
ता सुइणंतरि सुसमइ पसत्त,
जिण-सासण-जक्खिणि तम्मि पत्त ।
वाहरिउ ताइ हे सुह-सहाव,
कइ-कुल-तिलयासल गलिय-गाव ।
जिण-धम्म-रसायण-पाण-तित्तु,
तुहुं धण्णउ पुरिसु जासु चित्तु ।
चिंता-किलेसु जं तुम्ह बप्प,
तं तज्जिवि सज्जहि मण-वियप्प ।
अहमल्ल-राय-महमंति सुद्धु,
जिण-सासण-परिणय गुण पबद्धु ।
कण्हड्ड-कुल-कइरव-सेय-भाणु,
पहुणा समज्ज सव्वहं पहाणु ।
सम्मत्त वंतु आसण्ण-भव्वु,
सावय-वय-पालणु गलिय-गव्वु ।

घत्ता—

सो तुम्हह मण-संसउ,
जणिय-दुहंसउ णिण्णासिहइ समुच्चउ ।
सुपयासिहइ कइत्तणु तुम्ह पहुत्तणु,
जिण-धम्मुलु उच्चउ ॥५

इउ सुणेवि मणसि णिद्दलहि दंदु,
इह कज्जे म सज्जण होहि मंदु ।
सहो णामें विरयहि पयडु भव्वु,
सावय-वय-विहि-वित्थरण-कव्वु ।
इउ पभणेवि भंजिवि सण-महत्ति,
गय अंबादेवी णियय थत्ति ।
परि गलिय-विहावरि गोसु बुद्धु,
कइ-लक्खणु संजम-सिरि-विसुद्धु ।
जिणु वंदिवि अज्जिवि धम्म-रयणु,
णिज्झायइ मणे सालसिय-णियणु ।
सुहु मुहु भावइ ज रयणि वित्तु,
अंबादेविए पभणिउ पवित्तु ।
सम लीउ ण हवइ कयावि सुण्णु,
महु मण चिंतामा-धवणु पुण्णु ।
गजोल्लिय-मणु लक्खणु वद्दुउ,
सीयरीउ कव्व-करणारूढउ ।
णिय-घरे पत्तउ वण गंध-हत्थि,
मय-मत्तु पुरिय सुहरुह-गभत्थि ।
चलि हुयउ स-सर दस-दिसि भरंतु,
भणु को ण पडिच्छइ तहो तुरंतु ।

सुप्पसरण-राउ धरइं तवेइ,
भणु कवणु दुवार-कवाड देइ ।
अवमिय वय णलिणा चातुरंग,
धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग ।
घर समुह एंत पेच्छि वि सवारु,
भणु कवणु वप्प झंपइ दुवारु ।
चिंतामणि-हाडय-निवड-जडिउ,
पज्जहइ कवणु सइं हत्थ-चडिउ ।
घर-रगुप्पण्णउ कप्परुक्खु,
जले कवणु न सिंचइ जणिय-सुक्खु ।
सयमेव पत्त घरु कामधेणु,
पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि तेए जित्त-भवइ,
गय णाउ पत्त किर को ण णवइ ।
पेऊस-पिंड करे पत्तु भक्खु,
को मुयइ निवे (इय)-जीवियक्खु ।
मइ विज्जक्खर-गुण-मणि-णिहाणु,
पवयण-वयणामय-पय-पहाणु ।
घर-धम्मिय-णर-मण [बो] हणत्थु,
वर-कइणा विरइउ परमु सत्थु ।
एमेव लद्ध-मह-पुण्ण-भवणु,
अवगण्णइ णरु धीमंतु कवणु ।

घत्ता—

इह महियले सो धण्णउ,
पुण्ण-पउण्णउ जसु णामें सुपसाहमि ।
चिंतउ लक्खण-कइणा,
सोहण-मइणा कव्व-रयणु णिव्वाहमि ॥६॥

इह चदुवाडु जमुणा-तडत्थु,
दसिय-विसेस गुण-विविह-वत्थ ।
चउ हट्ट-हट्ट-घर-सिरि-समिद्धु,
चउ वण्णासिय-जण-रिद्धि-रिद्धु ।
भूवालु तत्थ सिरि भरहवालु,
णिय-देस-गाम-णर-रक्खवालु
तहिं-लंबकंचु-कुल-गयण-भाणु,
हल्लणु पुरवइ सव्वह पहाणु ।
नरनाह-महा-मंडणु जणिट्ठु,
जिण-सासण-परिणइ पुण्ण-सिट्ठु ।

तहो अभयवालु तणुरुहव हूउ,
वणि-पट्ट किय-भालयल-रूउ
णरवइ-समज्ज-सर रायहंसु,
महमंत-धविय-चउहाण-वंसु ।
सो अभयवाल-णग्णाह-रज्ज,
सुपहाणु राय-वावार-कज्ज ।
जिण-भवणु करायउ तें ससेउ,
केयावलि-झंपिय-तरणि-तेउ ।
कूडावीडग्गाइण्ण वोमु-कलहोय,
कलस-कलविंत्ति-सोमु ।
चउ सालउ तोरणु सिरि जणंतु,
पड-मडव-किंकिणि-रण-झणंतु ।
देहरूहु तासु सिरि साहु सोढु,
जाहडु-णरिंद-सहमंत-पोढु ।

घत्ता—

सभूयउ तहो रायहो, लच्छि सहायहो पढमु जण मणाणंदणु ।
सिरि बल्लालु णरेसरु, रूवें जिय-सरु सुद्धासउ महणंदणु ॥७

जो साहु सोढु तहिं पुर-पहाणु,
जण-मण-पोसणु गुण-मणि-णिहाणु ।
तहो पढमु पुत्तु सिरि रयणवालु,
बीयउ कण्हडु अद्धिदु-भालु ।
सो सुपसिद्धउ मल्हा-तणउ,
वस्साणु मणा जिउ सुद्धरूउ (?) ।
उद्धरिय जिणालय-धम्म-भारु,
जिणसासण-परिणय-चरिय-चारु ।
गंधोवएण दिण दिण पवित्तु,
मिच्छत्त-वसण-वासण-विरत्तु ।
अरिराय-णाइ-णोवाल-रज्ज,
बल्लालएव-णरवइं समज्ज ।
सव्वहं रुव्वेसरु रयण-साहु,
वावरइ णरग्गलु चित्त-गाहु ।
सिवदेउ तासु हुउ पढमु सूणु,
सिरि दाण (वंतु) ण गंध-थूणु ।
परियाणइ णिहिल-कला-कलाउ,
विण्णाण-विसेसुज्जल-सहाउ ।
मइ-महा-पढिउ वि (उ)-सियासु,
अवगमिय-णिहिल-विज्जा विलासु ।

पट्टाहियारि संपुरण-गत्तु,
वियसिय-सरोय संकास-वत्तु ।
आयुक्खए सो सिरि रयणवालु,
गउ सग्गालए गुण-गण-विसालु ।
तहो पच्छए हुउ सिवएव साहु,
पिउ-पट्टि वइट्ठउ गलिय-गाहु ।
अहमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ,
महयणहं महिउ गुण-गरुव-णिलउ ।
सो साहु पइट्टिउ-जणिय-खेउ,
सिवदेउ साहु कुल-वंस-केउ ।

घत्ता—

जो कण्हडु पुव्वुत्तउ पुण्ण पउत्तउ महि मंडलि विक्खायउ
आहवमल्ल-णरिंदहु मणसा णदहु मंतत्तण पइभायउ ॥८॥

पिया तस्य सल्लक्खणा लक्खणड्ढा,
गुरूणं पए भत्ति काउं वियड्ढा ।
स-भत्तार-पायारविंदाणुगामी,
घरारंभ-वावार-संपुरण-कामी ।
सुहायार-चारित्त-चीरंक-जुत्ता,
सुचेणयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
स-पासाय-कासार-सारा मराली,
किवा-दाण-संतोसिया वंदिणाली ।
पसण्णा सुवाया अचंचेल-चित्ता,
राम (रमा) राम-रम्मा मए वाल णित्ता (?)।
खलाणं मुंहभोय-संपुरण-जुण्हा,
पुरग्गो महासाह सोढस्स सुण्हा ।
दया-वल्लरी-मेह-मुक्कंबुधारा,
सइत्तत्तणे सुद्ध सीयावयारा ।
जहा चंदचूडाणुगामी भवाणी,
जहा सव्व-चेईहिं मव्वग-वाणी ।
जहा गोत्त-णिद्दारिणो रंभ रामा,
रमा दाणवारिस्स संपुरणकामा ।
जहा रोहिणी ओसहीसस्स सण्णा,
महड्ढी सपुण्णस्स सरस्स रण्णा ।
जहा सूरिणो मुत्तिवेई मणीमा,
फिसण्णस्स साहा जहारूवमोसा (?) ।
जहा जाणई कोमलेसस्स सारा,
भुणीणस्स मंदाइणी तेरतारा ।

रए कंतुणो (कण्णणो) दाणिणो सुद्धकित्तो,
जहासण्ण-भव्वस्स सम्मत्त-वित्ती

घत्ता—

तासु सुलक्खण विहिय कुलक्कम अणुगामिणि तह जणमहिया
तहि हुव वे णंदण णयणाणंदण हरिदेउ जि दिउराउ हिया ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

सिरि लंबकंचु-कुल-कुमुय-चंदु,
कल्लाणवल्ली-वण-घवण-कंदु ।
जस-पसर-पऊरिय-वोम-खंडु,
अहियहि-विमद्दण-कुलिस दंडु ।
अवराइ-बलाहय-पलय पवणु,
भव्वयण-वयण-सिरि-सयण-तवणु ।
उम्मूलिय-मिच्छत्तावणीउ,
जिण-चरणच्चण-विरयण-विणीउ ।
दंसण-मणि-भूसण-भूसियंगु,
तज्जिय-पर-मोमंतिणि-पसंगु ।
पवयण-विहाण-पयडण-समोसु,
णिरुवम-गुण-गण-माणिक्क-कोसु ।
सपयडि-परपयडि-सया-अणिंदु,
धण-दाण-धविय-वंदियण-विंदु ।
संसाराडइ-परिभमण-भीरु,
जिण-कव्वामय-पोसिय-सरीरु ।
गुरु-देव-पाय-पुंडरिय-भत्तु,
विणयालंकिय-वय-सील-जुत्तु ।
महसइ लक्खण तहु पाणणाहु,
पुर-परिहायार-पलंब-बाहु ।
कण्हडु वणिवइ जण-सुप्पसिद्धु,
अहमल्ल-राय-महमति रिद्ध ।
तहो पणय-वसेण वियक्खणेण,
महमइणा कइणा लक्खणेण ।
साहुलहो घरिणी जइता-सुएण,
सुकइत्तणगुण-विज्जाजुएण ।
जायस-कुल-गयण-दिवायरेण,
अणसंजमीहिं विहियायरेण ।
इह अणुवय-रयण-पईउ कव्वु,
विरयउ रसमित्ति परिहरि वि गव्वु ।

घत्ता—

जिण-समय-पसिद्धहं धम्म-संद्धिहं वोहणत्थु महसावयहं।
इयरह महलोयहं पयडिय-मोहहं परिसेसिय-हिंसावयहं।

मइ असुणते अक्खर-विसेसु,
न मुणमि पबंधु न छंद-लेसु।
सद्दावसद्दु ण विहत्ति अत्थु,
धिट्ठत्तणेण मइ रइउ सत्थु।
दुज्जणु सज्जणु वि सहावरोवि,
महु सुक्खहो दोसु मलेउ कोवि।
पद्धडियाबंधें सुप्पसण्णु,
अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु।
हीणक्खरु मुणेवि इयरु तत्थु,
संथवउ अयणु वज्जेवि अणत्थु।
जं अहियक्खरु मत्ता-विहाउ,
तं पुसउ मुणि वि जणियाणु राउ।
सय दुण्णि छ उत्तर अत्थसार,
पद्धडिय-छंद णाणा-पयार।
बुज्झहु ति-सहस सय चारि गंथ,
बत्तीसक्खर णिरु तिमिर-मंथ।
चदु-दुहय सग्ग पिहु पिहु पमाण,
सावय-मण-बोहण सुद्ध-ठाण।
तेरह सय तेरह उत्तराल,
परिगलिय विक्कमाइच्च काल।
सवेय रइह सव्वहं समक्ख,
कत्तिय-मासम्मि अमेय-पक्ख।
सत्तमि दिण गुरुवारे समोए,
अट्ठमि रिक्खे साहिज्ज-जोए।
नवमास रयंतें पायडत्थु,
सम्मत्तउ कम कम एहु सत्थु।

घत्ता—

तित्थंकर वयणुब्भव, विहुणिय-दुब्भवजण-वल्लह परमेसरि।
कव्व-करण मइ पावण, सुहसरिदावण, महुउवणउ वाएसरि।

इय अणुवय-रयण-पईव-सत्थे महासावयाण सुपसण्ण-परम तेवण्ण-किरिय-पयडण समत्थे सुगुण सिरि-साहुल-सुव-लक्खण-विरइए भव्व-सिरि-कण्हाइच्च-णामंकिए सावयार-विहि-समत्तणो णाम अट्ठमो परिच्छेउ समत्तो ॥८॥

प्रति सं० १५९५,

(जैनसिद्धान्त भास्कर भाग ६, ३ से)

(१६) बाहुबलिदेव-चरिउ (बाहुबलि-चरित)

कवि धनपाल। रचना काल १४५४

आदिभाग:—

सिरिरिसहणाह-जिण-पय-जुयलु,
पणविवि णासिय-कलि-मलु।
पुणु पढम-कामएवहो चरिउ,
आहासमि कयमंगलु।

× × × ×

साय-वाय-वयणं दरिसंती,
दुविह-पमाण-समुज्जल-णेत्ती।
पवयण-वयण-रसण-गिर-कोमल,
सद्द-समूह-दसण-सोहामल।
मालंकार-अहर-पुडणावइ,
पय-समास-भालुव-दलु भावइ।
गण चउ-णासा-वसु-परिट्ठिउ,
दो-उवओय-सवणजुउ-संठिउ।
विग्गह-तणु-रेहागलि-कदलि,
णय-जुय-उरय-कढिण वच्छथलि।
मह वायरणउ अरु जढ दुग्गमु,
अत्थ-गहीर-णाहि-सुमणो रमु।
दुविह-छंद-भुव-जुअ-जग-जणणिहिं,
जिणमय सुत्तसार आहरणहिं।
तय-सिद्धंत-तिवलि-सोहालउ,
कह थलु तुंगु णियंबु विसालउ।
वर-विण्णाण-कलासकरंगुलि,
ललियर करई-कसण-रोमावलि।
अंग-पुव्व ऊरू-णिब्भतिए,
पय-विहत्ति-लीलइं पय-दिंतिए।
विमल-महागुण-णह-भा-भासुर,
णव-रस-गहिर-वीण तंतीरुर।
णिम्मल-जस-भूसिय-सेयवर,
पविमल-पंचणाण सुइकय कर।

घत्ता —

महु उप्परि होउ पसण्ण मण मोह-पडल-णिण्णासणि।
तियरयण सुद्धिय तह णविवि पय-जिण मुह-कमल णिवासिणि ॥२

गुज्जरदेस मज्झि णय-वट्टणु,
वसइ विउलु पल्हणपुरु पट्टणु।
वीसलएउ-राउ-पय-पालउ,
कुवलय मंडणु सयलुव मालउ।

तहिं पुरवाड वंस जायामल,
अणुविय-पुव्व-पुरिस-णिम्मलकुल।
पुणु हुउ रायसेट्ठि जिण भत्तउ,
भोवइं णामे दय-गुण-जुत्तउ।
सुहडपउ तहो णंदणु जायउ,
गुरु सज्जणहं भुअणि विक्खायउ।
तहो सुउ हुउ धणवालु धरायलि,
परमप्पय-पंकय-रउ-अलि।
तहिं तहिं जिण-तित्थ णमंतउ,
महि-भमंतु पल्हणपुर पत्तउ।
सिरि पहचंदु महागणि पावणु,
बहुसीसेहि सहिउ ण वि रावणु।
ण वाणसरि-सरि-रयणायरु,
सुमय वणय-सुपरिक्खण णायरु।
दिट्ठु गणीसें पय पणवंतउ,
बुह धणवालु विबुह-जण-भत्तउ।
मुणिणा दिट्ठउ हत्थुवणेएं,
होसि वियक्खणु मज्झु पसाएं।
मंतु देवि तुहकय मत्थए करु,
मह मुह-णिग्गउ घोसहिं अक्खरु।
सूरि-वयणु सुणि मणु आणंदिउ,
विणएं चरण-जुअल मई वंदिउ।
पढिय सत्थ गुरु-पुरउ अणालस,
हुअ जय-सिद्धि सुकइ-आणावस।

घत्ता—पट्टणे खभायच्चें धार-णयरि देवगिरि।
मिच्छामय विहुणंतु गणि पत्तउ जोइणिपुरि ॥ ३ ॥

तहिं भव्वहिं सुमहोच्छउ विहियउ,
सिरि रयणकित्ति-पट्टे णिहियउ।
महमूद साहि मणु रंजियउ,
विज्जहिं-वाइय-माणु भंजियउ
गुरु आएसें मई किउ गमणु,
सूरिपुर वंदिउ णेमिजिणु।
पुणु दिट्ठउ चंदवाडु णयरु,
णर-रयणायरुं मयर-हरु।
णं णायकणय पस वट्ट पउ,
णं पुहइ रमणि सिरि सेहरउ।
उत्तुंग धवलु सिरि-कय-कलसु,
तहि जिणहरु णं वासहरु जसु।
मइ णंपि पलोयउ जिण-भवणु,
बहु समणालउ णं सम-सरणु।
सिरि अरुह बिंबपुणु वंदियउ,
अप्पाणउ-गरिहउ-णिंदियउ।
हो किरणेहिं सिविणंग यइं,
विहडंगइं किं सुहि रंगमइं।
भो भो परमप्पय तुहुं सरणु,
महु णासउ जम्म जरा-मरणु।

घत्ता—
पुणु मुणिवर चरण णमंसियइं, अच्छमि जातहिं एक खणु।
ता पत्तउ सिरि संघाहिवइ दिट्ठउ वासद्धरु सुअणु ॥४॥

जायव-वंस-पओणिहि-उडु-पहु,
आसि पुरिसु सुपसिद्धउ जसहरु।
तहो णंदणु गोकणु संजायउ,
संभरिराय मंति विक्खायउ।
तहो सुउ-सोमएउ-सोमाणणु,
कुणय गइंद-विंद-पंचाणणु।
तहो पेमसिरि भज्जा विक्खाइय,
णय-यम-सील-गुणेहि विराइय।
एयहिं सत्त-पुत्त संजाइय,
णं जिण गिरए तच्च-विक्खाइय।
पढमु साहु दय-वल्ली सुरतरु,
संघाहिउ णामें वासाहरु।
जो छिवहाडिय चाउ-पसिद्धउ,
णट्ठ भंजु णिच मंत-समिद्धउ।
पुणु बीयउ-परिवार सहोयरु,
विणयंकिउ हरिराय मणोहरु।
तइयउ सुउ पल्हाउ सलक्खणु,
संजायउ आणंदिय-सज्जणु।
पुणु तुरियउ महराउ विसुद्धउ,
गुण-मंडिय तणु हुउ जस-लुद्धउ।
पंचमु भामराउ मेहायरु,
छट्ठउ तणउ णाम-रयणायरु।
सत्तमु मयण-बंधु-जण-वल्लहु,

संतगु-णाम-जाउ-अइ-दुल्लहु ।
एयहिं सत्तहि सुयहिं पसाहिउ,
सोमएउ णं णयहिं जिणाहिउ ।
जो पढमउ णदणु वासाहरु,
सयल-कलालउ लंछण-ससहरु ।
पेक्खेविणु सारंगणरिंदे,
बाहु-वाण-कुल-कइरव-चंदें ।
रज्ज-धुराधरु णियमणि जाणिवि,
मंति-पयम्मि ठविउ सम्माणिवि ।
अप्पिवि देसु-कोसु-धणु-परियणु,
भुंजइ रज्ज-सोक्ख-णिच्चल-मणु ।

घत्ता—

सोसुअणु-गुणायरु बुहु-विहियायरु दुक्खिय-जण-णव-कप्पतरु
जिण-पय-पंकय-महुयरु सिरिवासद्धरु जाम्वच्छइ तहिं दुरिय-हरु

ता पेक्खवि पडिय धणवालें,
विहसिवि पभणिउ बुद्धि-विसालें ।
भो सम्मत्त-रयण-रयणायर,
वासद्धर हरिराय-सहोयर ।
विणय-गुणालंकिय णिम्मच्छर,
पडिय-जण-मण-रंजण-कोच्छर ।
करिवि पइट्ठ भव्वजणु-रंजिउ,
जे तित्थयर-गोत्त आवज्जिउ ।
धण्णउं तुहं गुरुभत्ति-कयायर,
मइ-सुइ-कित्ति-तरंगिणि-सायर ।
जिणवर-पाय पओरुह-महुयर,
सयल-जीव-रक्खण-सु-दयायर ।
दुस्समकाल-पहाव-गुरुक्कउ,
जिणवर-धम्म-मग्गि जणु वंकउ ।
दुज्जण-पउर-लोउ-अकयायरु,
विरलउ सज्जणु गुणिविहियायरु ।
असहायहो जगि को वि ण मण्णइं,
धम्म-पहावें लब्भइ उण्णइं ।
धम्महीणु जणु जहिं जहिं गच्छइ,
तहिं तहिं सम्मुहुं कोवि ण पेच्छइ ।
तें कज्जें धम्मायरु किज्जइ,
धम्महीणु ण कयावि हविज्जइ ।
इय धम्महो पहाउ उर घुट्टउ,
णिसुणिवि वासाधरु सतुट्ठउ ।

घत्ता—पुणु जंपिवि पियचायए महुरु तहिं गुरुचरणग्गें ठियउ ।
बहुविणए सिरिवासद्धरेण कइ धणवालउ पत्थियउ ॥६॥

जिण-पय-पंकय-इंदिरेण,
आयम-पुराण-सुइ-मंदिरेण ।
सम्मत्त-रयण-रयणायरेण,
कइ पुच्छिउ-पुणु वासाहरेण ।
भो किं अविणोएं गमहिं कालु,
मइ-तदु थुणहिं जिणु सामिसालु ।
करि-कव्वु मणोहरु सत्थ-चित्त,
जिण-चक्कि-काम-कह अइ-विचित्त ।
जसु णामइं णासइ णिहिलु दुरिउ,
बाहुबलि-कामएवहो चरियउ ।
जस असणोवरि तंबोलु भव्वु,
तह जिण तिलओवरि सहइ कव्वु ।
सुहुं विरयहि भव्व-मणोहिरासु,
पद्धडिया बंधें सद्धासु ।
कं विज्जए जाए ण होइ सिद्धि,
पुरिसें जेण ण लद्ध-लद्धि ।
किं किविणएण संचिय-धणेण,
किं णिण्णेह-पिय-संगमेण ।
किं णिज्जलेण घण-गज्जिएण,
किं सुहडें संगर-भज्जिएण ।
किं अप्पणेण-गुण-कित्तणेण,
किं अविवेयं विउ-सयणएण ।
किं विप्पएण पुणु रूसिएण,
किं कव्वें लक्खण-दूसिएण ।
किं मणुयत्तणि जं जणिअ भव्वु,
किं बुद्धिए जाएण रइउ कव्वु ।
इय वयण सुणिवि संवाहि वासु,
धणवाल पयपइ वियसियासु ।
भो कुणमि कव्वु जं कहिउ मज्झु,
गुरुयण हसाएं किं असज्झु ।
हउ करमि कव्वु बुह-जणिय-हासु,
तुच्छमइं णं पयडइ जस-पयासु ।
णालोयउ पवयणु पय-सुअंगु,
णउ-लद्धउ मइ-कइयणहं संगु ।

घत्ता—वायरण महोवहिं दुत्तरु सद्द-लहरि वित्थरियणउं ।
णाणाभिहाण-जल-पूरियउ णउ हउ पारुत्तिण्णउं ॥ ७ ॥

वाएसरि-कीला-सरयवास,
हुअ आसि महाकई णुणि-पयास।
सुअ-पवण-हुविय-कुमय-रेणु,
कइ चक्कवट्टि-सिरि धीरसेणु।
महि-मंडलि वण्णिउं विबुहवंदि,
वायरण-कारि सिरि-देवणंदि।
जइणेंद णामु जडयण-दुलक्खु,
किउ जेण पसिद्धु स-णायलक्खु।
सम्मत्ताऊ वुसु रायभव्वु,
दंसण-पमाणु वरु रयउ कव्वु।
सिरि वज्जसूरि गणि गुण-णिहाणु,
विरयउ मह छंदसण-पमाणु।
महासेण महामई विउ समहिउ,
धण णाम सुलोयणाचरिउ कहिउ।
रविसेणें पउमचरित्तु वुत्तु,
जिणसेणें हरिवंसु वि पवित्तु।
मुणि जडिलि जडत्त-णिवारणत्थु,
णं वरंगुचरिउ खंडणु पयत्थु।
दिणयरसेणें कंदप्पचरिउ,
वित्थरिय महिहि णव-रसहं भरिउ।
जिण-पासचरिउ अइसयवसेण,
विरयउ मुणिपुंगव-पउमसेण।
अमियाराहण विरइय विचित्र,
गणि अंबसेण भव-दोस-चत्त।
चंदप्पहचरिउ मणोहिरामु,
मुणि विण्हुसेण किउ धम्म-धामु।
धणयत्तचरिउ चउवग्गसारु,
अवरेहिं विहिउ णाणापयारु।
मुणि सीहणंदि सद्दत्थ वासु,
अणुपेहा-कय-संकप्प-णासु।
णवयारणेहु णरदेव वुत्तु,
कइ असग विहिउ वीरहो चरित्तु।
सिरि-सिद्धसेण पवयण विणोउ,
जिणसेणें विरइउ आरिसेनु (आरिसोउ)
गोविंदकइ दंसण-कुमारु,
कइ-रयण-पमुहो लद्ध-पारु।
जयधवलु सिद्ध-गुण-मुणिउ तेउ,
सुय सालिहत्थु कइ जीव देउ।
वर पउमचरिउ किउ सु-कइसेढु,
इय अवर जायवर वलयवेढु।

घत्ता—चउमुहु दोणु सयंभुकइ पुप्फयंतु पुणु वीरु भणु
ते णाण-दुमणि-उज्जोय-कर हउ दीवोवमु हीणु-गुणु ॥८॥

तं णिसुणिवि वासाहरु जंपइ,
किं तुहं बुह चिंताउलु संपइ।
जइ मयंकु किरणहिं धवलइ भुवि,
तो खज्जोउ ण छंडइ णिय-छवि।
जइ खयराउ गयणे गमु सज्जइ,
तो सिहंडि किं णिय-कमु वज्जइ।
जइ कप्पतरु अमिय फल कप्पइ,
तो कि तरु लज्जइ णिय संपइ।
जसु जेत्तिउ मइ-पसरु पवट्टइ,
सो तेत्तिउ धरणियलें पयट्टइ।
इय णिसुणिवि सघाहित्र वुत्तउ,
कइणा धणवालेण पउत्तउ।

× × × ×

इयसिरि-बाहुबलि-देव-चरिए सुहडदेव-तणय-बुह धणवाल-विरइए, महाभव्व-वासद्धर-णामंकिए सेणियराय-समवसरण-समागमो वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधिः १ ॥

अन्तिमो भागः—

× × × ×

जंबुदीव-भरह-वर-सतरि,
गिरि-सरि-सीमाराम-णिरंतरि।
अंतरवेइ मज्झि धणरिद्धउ,
तहं काविट्ठ-विसउ सु-पसिद्धउ।
वीर-खाणि उप्पत्ति पवित्तउ,
सूरीपुरु जण-परिपालंतउ।
सूरसेणु णरवइ तहो णंदणु,
अंधय-विट्ठि-राउ रिउ-महणु।
तहो पइवय पिय-पाण-पियारी,
णाम सुभद्दा देवि भडारी।
दस-दसार तहिं णंदण जाया,
वीर-वित्ति तिहुअण-विक्खाया।
सायर-विजउ पढमु उवणीयउ,
पुणु अक्खोहु णाम हुअ बीयउ।
तइयउ अमियासउ सिरिवल्लहु,
पुणु हिमवंतु तुरिउ जाणहु दुल्लहु।

विजउ गामु पंचमु सुह-वद्धणु,
छट्टउ अचलु रिद्धि-सक्कंदणु।
सत्तमु णामु पसिद्धउ धारणु,
पुणु अट्टमउ तणुब्भउ पूरणु।
सुउ अहिचंदु णवमु पुणु जाणहु,
दहमउ सुउ वसुएवउ माणउ।
एयहं लहु अंकोऽतिमंदोवर,
लावण्णें णिज्जिय अमरच्छर।
समुद विजअ सूरीपुरि थप्पिउ,
चदवाडु वसुएवहो अप्पिउ।
तहो सुउ रोहिणेउ अरि-गंजणु,
देवइ-णंदणु अणु जणणंदणु।
तहो संताण कोडि-कुल लक्खइं,
संजाया केवलि-पच्चक्खइं।
पुणु सभरि णरिंद महि भुंजिय,
जायव- सुव्वभत्तें रंजिय।
अलवतु चहुवाण पुहइ पहु,
तहु मंतिउ जदुवंसिउ जसरहु।
पहुगण पत्तिहु अउ धरणीयलि,
आलावुरिं सुर-पय-पकय-अलि।
साहु णाम गोकणु मती तहु,
जिणवर-चरणभोरह-महुलिहु।
हुउ संभरि णरिंद महिवालउ,
कण्णदेवु-णाम-पय-पालउ।
सोमदेउ तहो मंति सहोयरु,
सयल-कलालंकउ णं ससहरु।

घत्ता—पुणु सारंगु णरिंदु अभयचंदु तहो णंदणु।
तहो सुअ हुउ जयचंदु रामचंदु णामें पुणु॥

णिव-सागर-रज्जि-समयकिउ,
वासाहरु मंतिउ णीसंकिउ।
णिय-पहु-रज्ज-भार-दिढ-कंधरु,
विबुह-वंदि तर-पोसण-कंधरु।
एक्कु जि परमप्पउ जो झावइ,
वे ववहार सुद्धणय भावइ।
जो ति-काल रयणत्तउ अंचइ,
चउ णओय-रुइ कह-वि ण मुच्चइ।
जो परमेट्ठि पंच-आराहइ,
जो पंचंग-मंत-महि साहइ।
जो मिच्छत्त पंच अवगण्णइं,
छक्कम्महिं जो दिणि दिणि गम्मइं।
जो सत्तगु-रज्जु सु णिहालइ,
सत्त-तच्च-सद्दहइ रसालइ।
दयारहु-गुण-संतत-रत्तउ,
सत्त वसणें जो कहिवि ण रत्तउ।
अट्ठ मूलगुण-पालण-तप्परु,
सहंसण अट्ठंग रयणायरु।
अट्ठ-सिद्ध-गुण-गण-सम्माणइं,
अट्ठदव्व पुज्जिय जिण-चरणइं।
णव-विह-पुण्ण-पत्त दाणायरु,
णव-पयत्थ-परिरक्खण-णायरु।
णव-रस-चरिउ सुणइं वक्खाणइं,
दह-लक्खण-धम्महिं रइ-माणइं।
एयारह अंगइं भणि इच्छइ,
एयारह-पडिमाउ णियच्छइ।
बारह-सावय-वय-परिपालइ,
तेरह-विहि चरित्तु सुणिहालइ।
चउदह कुलयरक्खमुवपस्सइ,
चउदह-विह-पुव्वहि-मणु-वासइ।
चउदह मग्गण-वित्थरु-जोवइ,
चउदह पुरिस सत्तण उज्जोवइ।

घत्ता—
तहो वधउ रयणसीहु भणिउं भज्जा य मेरु सुपसिद्धउ।
जिणबिंब-पइट्ठ-रएवि पुणु जिणवर-गोत्तु णिबद्धउ॥२॥

वासद्धर पियय म वे घरिणिउं,
परियण-पोसण णं कुरु धरणिउं।
वे पक्खुज्जल पर ण मरालिय,
सील-तरुहिं णं वेल्लि रसालिय।
पेमकिय-कुल-सरणं पोमिणि,
सुयण-सिहंडणि णं जलहर-झुणि।
पइ-वय-सील-सलिल-मंदाइणि,
दुक्खिय-जण-जण-णिव-सुह-दाइणि।
उदयसिरी होमा विणय-जुय,
चउविह-संघहो कप्परिखही हुय।
उअर-सप्पि-सुय-रयण-समुब्भव,
संजाया कुल-हरण-तणुब्भव।
पढम पुत्तु जयपालु गुणंगउ,

रूवेणं पच्चक्ख अणंगउ ।
हुउ जसपाल वियक्खणु बीयउ,
पुणु रउपालु पसिद्धउ तीयउ ।
तुरियउ चंदपालु सिरि-मंदिरु,
पंचमु सुअ विहराज सुहंकरु ।
छट्ठउ पुण्णपालु पुण्णायरु,
सत्तमु वाहडु णाम गुणायरु ।
अट्ठमु रूवएउ रूवड्ढउ,
एयहिं अट्ठ-सुअहिं-चिरु-वड्ढउ ।
भाइय-भत्तिज्जय-संजुत्तउ,
णंदउ वासाधर गुण जुत्तइ ।
जं हउं पच्छिउ पसमिय गव्वें,
वासाहर-संघाहिव भव्वें ।
तहो वयणें मइं आरिसु दिट्ठउ,
जं गणहर सुअ-केवलि-सिट्ठउ ।
सो पेच्छिवि मइ पाइय कव्वें,
विरयउ बुह-धणवालें भव्वें ।
सिरि-वाहुबलि-चरिउ जं जाणिउं,
लक्खण छंदु तक्कु ण वियाणिउं ।

घत्ता— लक्खण-मत्ता-छंद-गण-हीणाहिउ जं भणिउ मइं ।
तं खमउ सयलु अवराहु वाएसरि-सिवहं संगइं ॥३॥

विक्कम-णरिंद-अंकिय-समए,
चउदह-सय-संवच्छरहिं गए ।
पंचास-वरिस-चउ-अहिय-गणि,
वइसहहो सिय-तेरसि सु-दिणि ।
साई णक्खत्ते परिट्ठियइं,
वरसिद्धि-जोग-णामें ठियइं ।
ससि-वासरे रासि-मयंक-तुले,
गोलग्गें मुत्ति-सुक्कें सबले ।
चउवग्ग-सहिउ णव-रस-भरिउ,
बाहुबलिदेव-सिद्धहो चरियउ ।
गुज्जर पुरवाड-वंसतिलउ,
सिरि-सुहड-सेट्ठि गुण-गण णिलउ ।
तहो मणहर छाया गेहणिय,
सुहडाएवी णामें भणिय ।
तहो उवरि जाउ बहु-विणय-जुओ,
धणवालु वि सुउ णामेण हुओ ।
तहो विण्णि तणुब्भव विउल गुण,
संतोसु तह य हरिराय पुण ।
थिरु अरुह-धम्मु जा महिवलए,
सायर-जलु जा सुर-सरि मिलिए ।
कणयद्दि जाम वसुहा अचलु,
वासरहो छट्टउ ताम कुलु ।
जो पढइ पढावइ गुण-भरिओ,
जो लिहइ लिहावइ वर-चरिओ ।
संताण-वुड्ढि वित्थरइ तहो,
मणवंछिउ पूरइ सयलु सुहो ।
बाहुबलि-सामि गुरु-गण-संभरणु,
महु णासउ जम्म-जरा-मरणु ।

घत्ता—जो देइ लिहावइ वि पत्तहो, वायइ सुणइ सुणावइ ।
सो रिद्धि-सिद्धि-सपय लहिवि, पच्छइ सिव-पउ पावइ ॥४॥

श्रीमत्प्रभाचन्द्र-पद-प्रसादादवाप्तबुद्धया धनपालदत्तः ।
श्रीसाधुवासाधर-नामधेयं स्वकाव्य-सौधे कलशी-करोति ॥

इति बाहुबलि-चरित्रं समाप्तम् ।

(आमेर-भंडार, प्रति सं० १५८६
ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवनकी प्रतिसे संशोधित)

२० चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रभचरित) भ० यशःकीर्ति

आदिभागः—

णमिऊण विमल-केवल-लच्छी-सव्वंग-दिण्ण-परिरंभं ।
लोयालोय-पयासं चंदप्पह-सामियं सिरसा ॥१॥
तिक्काल-वट्टमाणं पंचवि परमेट्ठिए ति-सुद्धोऽहं ।
तह नमिऊण भणिस्सं चंदप्पह-सामिणो चरियं ॥२॥

घत्ता—
जिण-गिरि-गुह-णिग्गय, सिव-पह-संगय, सरसइ-सरिसुह-कारिणिय
महु होउ पसणिय गुणहि रवणिय तिहुवण-जण-मणहारिणिय

हुंबड-कुल-नहयलि पुप्फयंत,
बहु देउ कुमरसिंहवि महंत ।
तहो सुउ णिम्मलु गुण-गण-विसालु,
सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु ।
जसकित्ति विबुह-करि तुहु पसाउ,
महु पूरहि पाइय कव्व-भाउ ।
तं निसुणिवि सो भासेइ मंदु,
पंगलु तोडेसइ केम चंदु ।
इह हुइ बहु गणहर णाणवंत,
जिण-वयण-रसायण वित्थरंत ।

गणि कुंदकुंद वच्छल्ल गुणु,
को वण्णण सक्कइ इयर जणु ।
कलिकाल जेण ससि लिहिउ णामु,
सइ दिट्ठउ केवल णंत-धामु ।
णामे समंतभद्दु वि मुणिंदु,
अइ णिम्मलु ण पुण्णिमहि चंदु ।
जिउ रंजिउ राया रुद्दकोडि,
जिण-थुत्ति-मित्ति सिवपिंडि फोडि ।
णीहरिउ बिंबु चंदप्पहासु,
उज्जोयंतउ फुडु दह दिसासु ।
अकलंकु णाई पच्चक्खु णाणु,
जें तारा-देविहि दलिउ-माणु ।
उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध,
णिद्धाडिय धत्तिलय सयल-बुद्धि ।
सिरि-देवणंदि मुणिवहु पहाउ,
जसु णाम-गहणि णासेउ पाउ ।
जसु पुज्जिय अबाएई पाय,
संभरण मित्ति तक्खणि ण आय ।
जिणसेण सिद्धसेण वि भयंत,
परवाइ-दप्प-भंजण-कयंत ।
इय पमुहहं जहिं वाणी-विलासु,
तहि अम्हह कइ होई पयासु ।

घत्ता—
थुणइ फणीसरु, बहु जीहाहरु, अइ सहसक्खु तिरिक्खइ ।
परु जिण-चरणइ, सिवसुहकरणइ, किह सत्थुणइ समिक्खइ

× × × ×

अन्तिमभाग:—

गुज्जर-देसहं उम्मत्त गामु,
तहिं छड्डा-सुउ हुउ दोण णामु ।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्व-बंधु,
जिण-धम्म-भारि जें दिण्णु खंधु ।
तहु सुउ जिट्ठउ बहुदेव भव्वु,
जें धम्म कज्जि विव कलिउ दव्वु ।
तहु लहु जायउ सिरि-कुमरसिंहु,
कलिकाल-करिंदहो हणण-सीहु ।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु,
जिण पुज्ज-दाण-गुणगण-रमालु ।
तहो उवरोहिं इह कियउ गंथ,
हउं णामु णमि किंपिवि सत्थु गंथु ।

घत्ता—
जा चंद दिवायर सव्व विसायर, जा कुल पव्वय भूवलओ ।
ता एहु पयट्टहु हियइ चहुट्टउ, सरसइ देविहिं मुहि तिलओ ।

इय-सिरि-चंदप्पह-चरिए महाकइ-जसकित्ति-विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण-भूसणे सिरिचंदप्पह-सामि णिव्वाण गमणो-णाम एयारहमो-संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ॥

(मेरे पैत्रिक-शास्त्र-भंडारसे) सं.—१५३०

पंडव-पुराणु (पांडव-पुराण) (भाषा अपभ्रंश)

कर्ता-भ० यशःकीर्ति. रचना-काल सं १४९७

आदिभाग:—

बोह-सु-सर-धयरट्ठहो गय-धय रट्ठहो विरिल्लाम सोरट्ठहो ।
पणविवि कहमि जिणिट्ठहो णुयवल-विट्ठहो कह पंडव-धयरट्ठहो॥

जो भव्व सरय-बोहण-दिणिंदु,
हरिवंस-पवण-पह णिसियरिंदु ।
सव्वंग सलक्खणु लद्धसंसु,
णिय-कम्म-णियक्खाणण विहंसु ।
भव-भीयहं सत्तहं ललिय हंसु,
वे पक्ख समुज्जलु णाइ हंसु ।
जेसिं वर-जम्मि पयडिउ अहिंसु,
जो सिद्धि-मरालिहिं परमहंसु ।
जें णाणे पवियाणिउ ण हंसु,
जो तित्थणाहु वज्जरिय हंसु ।
जण-चाय-विसा सारग वरिसु,
जम्मणे हरि-किय सारंग-वरिसु ।
णिय कंतिए जिउ सारंगु सज्जु,
सारंगेण जि मेल्लिउ अवज्जु ।
गिह-मोहु चइ वि सारंगु जाउ,
सारंगु णायणे दिण्णउ न राउ ।
सारंगें पणविय णिच्च-पाउ,
सारंग पाणि कर तुलिउ राउ ।
चउतीसातिसयहिं सोहमाणु,
वसु-पाडिहेर-सिय-चत्त-माणु ।
चउ-घण-चमरेहि विजिज्जमाणु,
जसु लोयालोय पमाणु णाणु ।
जें पयडिउ बावीसमउ तित्थु,
जसु अणुदिणु पणवंइ सुरहं सत्थु ।
समुद्द-विजय सिवएवीहे पुत्त,

सो नेमिणाहु गुण-सील-जुत्तु ।
जसु तित्थें जाउ महियलें पवित्तु,
पंडवह चरिउ अच्छरिय-जुत्तु ।

घत्ता—

तह पणविवि सिद्धहं णाण-समिद्धहं आयरियहं पाठयहं तहं ।
साहुहु पणवेप्पिणु भाउ धरेप्पिणु वाएसरि जिण-वयण-रुहं ॥१

पुणु पणवेप्पिणु जिणु वड्ढमाणु,
अज्जवि जस तित्थु पवड्ढमाणु ।
चउ-कम्म हणि विहु परम-णाणि,
जोयण-पमाण-जसु दिव्व-वाणि ।
जं जए पयडिय पंचत्थिकाय,
छद्दव्व तह व कालहो न काय ।
जीवाइ-पयासिय-सत्त-तच्च,
पुणु णव-पयत्थ-दह-धम्म-सच्च ।
सम्मत्तु वि पणविसइ दोसु चत्त,
णिस्संकिय संवेयाइं जुत्त ।
वज्जरिउ विविहु सायार-धम्मु,
अणयार-धम्मु णिह णियहु कम्मु ।
जसु समवसरणु जोयण-पमाणु,
जे भणिउ तिलोय-पमाण-ठाणु ।
पुणु इंदभूइ-पमुहइ णवेवि,
णिय-गुरुहु जसुज्जल गुण सरेवि ।
चिर कइ हु करेप्पिणु परम भत्ति,
सुउ किंपि पयासमि णियय-सत्ति ।
इय चिंततउ मणि जाम थक्कु,
मुणि ताम परायउ साहु एक्कु ।
इह जोयणिपुरु बहु पुर-हिसारु,
धण-धयण-सुवण्ण-णरेहि फारु ।
सिरि-सर-वण-उववण-गिरि-विसालु,
गंभीर-परिह-उत्तुंग-सालु ।
तहिं निवसइ जालपु साहु भव्वु,
णाउजी भज्जालंकिउ अगव्वु ।
सिरि-अयरवाल-वंसहिं पहाणु,
सो संवहं वच्छलु-विगय-माणु ।
तहो णंदणु वील्हा गय-पमाउ,
..........सइं जि आउ ।
आवेप्पिणु हितमक्खाउ दिट्ठु,
ते णवि सम्माणिउ किउ वरिट्ठु ।
धेनाही तहो पिय णाम सिट्ठ,
गुरुदेव-भत्त परियणहं इट्ठु ।
तहो णंदणु णंदणु हेमराउ,
जिणधम्मोवरि जसु णिच्च-भाउ ।
सुरतान मुमारख-तणइं रज्ज,
मंतितणे थिउ पिय भार कज्ज ।

घत्ता—

जें अरहंतु-देउ मणि भाविउ, जासु पहुत्तें, को वि ण ताविउ ।
जेण करावउ, जिण चेयालउ, पुण्णहेउ चिर-रय-पक्खालउ ॥२

धय-तोरण-कलसेहिं अलंकिउ,
जसु गुरत्ति हरि जाणु वि संकिउ ।
पर-तिय-बंधउ-पर उवयारिउ,
जेण सव्वु जणु धम्महं तेरिउ ।
संघ धुरंधरु-पयहु मुणिज्जइ,
सावय-धम्में णिच्च मणु रंजइ ।
सत्त वसण जे दूरें वज्जिय,
सील-सयण-वित्ति वि आवज्जिय ।
सत्त गुणहं दायारहं जुत्तउ,
णव-विह-दाण-विहिए णउ चत्तउ ।
पणएं पणय-गुणें मउ भंजिउ,
रयणत्तय-भावण-अणुरंजिउ ।
विणएं दाणु देइ जो पत्तहं,
जिणु तिकालु पुज्जइ समचित्तहं ।
तासु भउज-गुण-रयण-वसुंधरि,
गंधो णाम णिय-गइ-जिय-सुरसरि ।
रूवें चेलण-देवि पहाणिय,
जिणवर-भत्तिहिं णं इंदाणिय ।
अमिय-सरस-वयणहिं सच्चहिं ठिय,
णउ तंबोलराय अणुरंजिय ।
उवरि कडिल्लु सील जे धारिउ,
रयणत्तय हारें मणु पेरिउ ।
धम्म सवण-कुंडल जें धारिउ,
जिण-मुद्दा-मुद्दिय सचारिउ ।
जिण-गेहम्मि गमण-णेउर-सरु,
तहो चंदण-कंकण सोहिय-करु ।
जिणवर-मंत सरणु कुंचउ उरि,
जिणवर-हवणु तिलउ किउ णिय-सिरि ।
एयहं आहरणहं जा सोहिय,

भार मुणिवि कंचणहि ण मोहिय ।
तासु पुत्तु पल्हणु जाणिज्जइ,
चाएं तक्कुय-गणहि थुणिज्जइ ।
बीयउ सारंगु वि पिय भत्तउ,
कउला तइउ वसणहिं चत्तउ ।

त्ता—
ल्हण णंदणु गुणणिलउ गोल्हणु माय-पियर-मण-रंजणु ।
ोल्हा साहुहें अवरु सुउ लखा णामु जण-मण आणंदणु॥२

दिउ राजही य भउजहि समेउ,
कीलंतह हुउ संताण जेउ ।
णंदणु डूंगरु तह उधरणक्खु,
हंसराउ तयउ सुउ कमल-वक्खु ।
एक्कहिं दिणि चिंतिउ हेमराय,
जिणधम्म हीणु दिणु अहलु जाय ।
णिसुणिज्जइ चिर पुरिसह चरित्तु,
हरि-नेमिनाह-पंडवहं वित्तु ।
ता होइ मज्झ जम्मु वि सलग्घु,
णामइ-चिर संचिउ-पाउ-लिग्घु ।
इय चिंतिवि जिण-मंदिरहि पत्तु,
जस मुणि पणविवि अक्खिउ सचित्तु ।
सोउ इच्छमि पंडवचरित्तु,
पयडहि सामिय जं जेम वित्तु ।
विवरीउ सव्वु जणु वज्जरेइ,
णरयावणि दुक्खहो णउ डरेइ ।
तं णिसुणिवि जंपिउ मुणिवरिंदु,
चगउ पुच्छिउ बुहयणहं चंदु ।
पंडव-चरित्तु अइ-गहणु जइवि,
तुव उवरोहें हउं कहमि तइवि ।
तो तहो वयणे गुण-गण-महंतु,
पारभिउ सहत्थहं फुरंतु ।
सज्जण-दुज्जण-भउ परिहरेवि,
णिय-णिय-सहाव-रत्ते वि दोवि ।

त्ता—सज्जणु वि सहावु अकुडिल-भावु
ससि-मेहुव उवयार-मई ।
पर-दोस-पयासिरु अवगुण-भासिरु
दुज्जणु सप्पु व कुडिल-गई ॥४॥

× × ×

इय पंडवपुराणे सयल-जण-मण-सवण-सुहयरे सिरि-गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु-वील्हा-पुत्तराय मंति-हेमराज-णामंकिए कुरुवंस-गगेयउ-थिति वण्णणोणाम पढमो सग्गो ॥प्रथमसंधि॥१॥

चरमभाग .—

णंदउ सासणु सम्मइणाहें,
णंदउ भवियण-कय-उच्छाहें ।
णंदउ णरवइ पय पालंतउ,
णंदउ उदय-धम्मु वि रिसिहंकिउ ।
णंदउ मुणिगण तउ पालंतउ,
दुविह-धम्मु भवियणहं कहंतउ ।
दाण-पूय-वय-विहि-पालंतउ,
णंदउ सावय-गुण-रय-चत्तउ ।
कालं विणिय णिव्व परिसक्कउ,
कासवि धणु कणु देंति ण थक्कउ ।
वज्जउ मंदलु गिज्जउ मंगलु,
णच्चउ णारीयणु रहसें कलु ।
णंदउ वील्हा पुत्त गुणवंतउ,
हेमराउ-पिय-पुत्त सइत्तउ ।
अत्थ-विरुद्ध बुहहिं सोहिव्वउ,
धम्मत्थें आलसु नउ किव्वउ ।
विक्कमराय हो ववगय कालए,
महि-सायर-गह-रिसि अंकालए ।
कत्तिय-सिय अट्ठमि बुह वासर,
हुउ परिपुण्ण, पढम नंदीसर ।
णाहु मही-चंदु-सूरु-तारायणु,
सुर-गिरि उवहि ताउ सुह भायणु ।
जाता णंदउ कलिलु हरंतउ,
भविय-जणहिं वित्थारिज्जंतउ ।

घत्ता—इय चउविह सघह विहुणिय विग्घहं
णिण्णासिय भव-जर-मरणु ।
जसकित्ति-पयासणु अखलिय-सासणु
पयडउ संति सयभु जिणु ॥२३॥

इय पंडव-पुराणे सयल-जण-मण-सवण-सुहयरे सिरि-गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु - वील्हा-पुत्त हेमराज - णामंकिए - णेमिणाह-जुधिट्ठिर-भीमाज्जुण-निव्वाण गमणं, नकुल-सहदेव-सव्वट्ठसिद्धि-बलहद्द - पंचम - सग्ग गमण - पयासणो णाम चउतीसमो इमो सग्गो समत्तो ॥संधि ३४॥

सिरि कट्ठसंघ माहुरहो गच्छि,*
पुक्खर-गण मुणिवरवई विलच्छि ।
संजायउ वीर जिणुक्कमेण,
परिवाडिए जइवर णिहयएण ।
सिरि देवसेणु तह विमलसेणु,
तह धम्मसेणु पुणु भावसेणु ।
तहो पट्टि उवण्णउ सहसकित्ति,
अणवरय भमिय जए जासु कित्ति ।
तह विक्खायउ मुणि गुणकित्ति णामु,
तव-तेएं जासु सरीरु खामु ।
तहो णिय बंधउ जसकित्ति जाउ
आयरिय पणासिय दोसु-राउ ।
ते णय बुद्धिए विरइयउ गंथु,
भवियहं दाविय-सुह-मग्ग-पंथु ।

(प्रति आमेर और देहली पंचायती मंदिर शास्त्रभंडारसे, स० १६१२, सं० १६६१)

२२ हरिवंशपुराण

(भ० यशःकीर्ति) रचनाकाल सं० १५००

आदिभागः—

पयडिय जयहंसहो कुणयविहंसहो भविय-कमल-सरहंसहो ।
पणविवि जिणहंसहो मुणियणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥

जय विसह विसकिय विस-पयास,
जय अजिय-अजिय हय-कम्मपास ।
जय संभव भव-तरुवर-कुठार,
जय अभिणंदण परिसेसिय कुणारि ।
जय सुमइ सुमय पयडिय-पयत्थ,
जय पउमप्पह णासिय-कुतित्थ ।
जय जय सुपास हय-कम्मपास,
जय चंदप्पह ससि-भास-भास ।
जय सुविहि सुविहि-पयडण-पवीण,
जय सीयल जिण वाणी-पवीण ।
जय सेय-सेय किय-विगय-सेय,
जय वासुपुज्ज भव-जलहि सेय ।
जय विमल विमल गुण-गण-महंत,
जय संत दंत जिणवर अणंत ।
जय धम्म धम्म विस हरिय ताव,
जय संति समिय-संसार-भाव ।
जय कुंथु सुरक्खिय-सुहुम-पाणि,
जय अरिजिण चक्की सयल-णाणि ।
जय मल्लि णिहय-तिल्लोक-मल्ल,
जय मुणिसुव्वय चूरिय-ति-सल्ल ।
जय णमि जिण विस-रह-चक्कणेमि,
जय जहिय राय रायमइ णेमि ।
जय पास असुर-णिम्महिय-माण,
जय वीर विहासिय-णय-पमाण ।

घत्ता—

पुणु विगय-सरीर गय-भवतीर तीस छह गुण सूरिवरा ।
उवज्झाय सुसाहू हुय सिवलाहू पणविवि पयडमि कह पवरा ॥१

पुव्व पुराण अत्थु अइ वित्थरु,
काल-पहावें भवियहं दुत्तरु ।
अयरवाल-कुल-कमल-दिणेसरु,
दिउचंदु साहु भविय-जण-मणहरु ।
तासु भज्ज बालुहिइ भणिज्जइ,
दाण गुणहिं लोएहि थुणिज्जइ ।
सच्च-सील-आहरणहिं सोहिय,
भारु मुणिवि कंचणहिं ण मोहिय ।
ताहि पुत्तु विएणाण वियाणउ,
दिउढा णामधेउ बहु जाणउ ।
तहो उवरोहें मइ यहु पारद्धउ,
णिसुणहु भवियण-अत्थ-विसुद्धउ ।
जासु सुणंतहं महारउ-खिज्जइ,
सग्गपवग्गहं सुह-संपज्जइ ।
अइ महंतु पिक्खवि जणु संकिउ,
ता हरिवंसु मइंमि ओहिंकिउ ।
सद्द-अत्थ-संबंध-फुरंतउ,
जिणसेणहो सुत्तहो यहु पयडिउ ।
तहु सीसु वि गुणभद्द वि मुणिंदु,

---

*प्रशस्तिका यह भाग आमेर प्रतिमें नहीं है, प्रतिलेखकोंकी कृपासे छूट गया जान पडता है । किन्तु पंचायती मंदिर देहली के शास्त्र-भंडारकी प्रतिमें मौजूद है, उसी पर से यहां दिया गया है ।

वाईहिं कुंभदारण-सयदु[1]।
सज्जण-दुज्जण-भउ अवगण्णिवि,
ते णिय-णिय सहाव-रय दोण्णिवि।
कडुयउ-णिंबु महुरु इंगाली,
अविलु वीयपूर-चिंचाली।
तिंह सज्जणु सुसहावें वच्छलु,
दुज्जणु दुत्थु गहइ कवियण छलु।
लेउ दोसु सो मइं मोकल्लिउ,
जइ पिक्खइ ता अच्छउ सल्लिउ।
× × ×

अन्तिमभाग.—

इहु हरिवंसु सत्थु मइ अक्खिउ,
कुरुवसहो समेउ णउ रक्खिउ।
पढमहि पयडिउ वीर-जिणेंदे,
सेणियरायहो कुवलय-चंदें।
गोयमेण पुणु किय सोहम्में,
जंबूसामि विण्हु सणामें।
णंदिमित्त अवरज्जिय णाहें,
गोवद्धणेण सु भद्दयबाहें।
एम परंपराए अणुलग्गउ,
आइरियह मुहाउ आवग्गउ।
सुणि संखेव सुत्तु अवहारिउ,
मुणि जसकित्ति महिहि वित्थारउ।
पद्धडिया छंदें सुमणोहरु,
भवियण-जण-मण सवण-सुहकरु।
करि वि पुण्णु भवियहं वक्खाणिउ,
दिट्ठु मिच्छत्तु मोह-अवमाणिउ।
जो इउ चरिउ वि पढइ पढावइ,
ववखाणेप्पिणु भवियहं दावइ।
पुणु पुणु सद्दहेइ समभावें,
सो मुच्चइ पुव्वक्किय-पावें।
जो आयरइ ति-सुद्धि करेप्पिणु,
सो सिउ लहइ कम्म छेदेप्पिणु।
जोणु एम चित्तु णिसुणेसइ
सग्गु-मोक्खु सो सिग्घु लहेसइ।

एउ पुराणु भवियह आसासइ,
आयु-बुद्धि-वलु-रिद्धि पयासइ।
वइरिउ मित्तत्तणु दरिसावइ,
रज्जत्थिउ विरज्जु संपावइ।
इट्ठ समागमु लाह सुहाइवि,
देवदिंति वरु मच्छरु मु चिवि।
गह साणुग्गह सयल पयट्टहिं,
मिच्छाभाव खणद्धें तुट्टहिं।
आवइ सव्व जाहिं खम भावें,
सुह-विलास घरि होहि सदावे।
पुत्त-कलित्तत्थियह सुपुत्तइ,
सग्गत्थियहं अणु हुज्जइ।
जो जं इच्छइ सो तं पावइ,
देसंतरि गउ णिय घरि आवइ।
भवियण संबोहणह णिमित्तें,
एउ गंथु किउ णिम्मल-चित्तें।
णउ कवित्त कित्तहें धणलोहें,
णउ कासुवरि पवड्ढिय मोहें।
इंदउ रहिएउ हुउ संपुण्णउ,
रज्जे जलालखान कय उण्णउ।
कम्मक्खय णिमित्तु णिरवेक्खें,
विरइउ केवल धम्मह पक्खें।
अत्थ-विरुद्धु जं जि इह साहिउ,
तं सुयदेवि खमउ अवराहउ।
णंदउ णरवइ णाय सपत्तउ,
सहृता उवणिय पय पालंतउ।
णंदउ जिणवर सासणु बहुगुणु,
णंदउ मुणिगणु तह सावय जणु।
कालि कालि कालिंविणि वरिसउ,
णच्चउ कामिणि गोमिणि विलसउ।
पसरउ मंगलु वज्जउ मद्दलु,
णंदउ दिउढासाहु गुणग्गलु।
जावहि चदु सूरु तारायणु,
णंदउ ताम गंथु रंजिय जणु।
विक्कमरायहो ववगय कालइ,
महि इंदिय दुसुण्ण अंकालइं।
भादवि सिय एयारसि गुरुदिणे,
हुउ परिपुण्णउ उग्गंतहिं इणे।

---

१ यह पंक्ति आमेर प्रतिमें नहीं है, किन्तु पचायती मंदिर देहली भंडारकी प्रतिमें पाई जाती है।

सय चालीस संख स-माणहु,
गंथ-पमाणु अणुट्ठइं जाणहु ।

घत्ता—

हरिवंसु एहु मइं वज्जरिउ हरिबलणेमहिं चरिउ विसिट्ठिउ।
परिवाडिए कहिउ मुणीसरहं तं तिह भवियहं सिट्ठउ ॥

इह कट्ठसंघे माहुरह गच्छि,
पुक्खरगणे मुणिवर-वइ विलच्छि ।
संजाया वीर जिणक्कमेण,
परिवाडिय जइवर णिहयएण ।
सिरि देवसेणु तह विमलसेणु,
मुणि धम्मसेणु तह भावसेणु ।
तहो पट्ट उवण्णउ सहसकित्ति,
अणवरय भमिय जए जासु कित्ति ।

तहो सीसु सिद्धु गुणकित्ति णामु,
तव-तेएं जासु सरीरु खामु ।
तहो बंधउ जस मुणि सीसु राउ,
आयरिय पणासिय दोसु-राउ ।
तहो पट्टय सिट्ठउ मलयकित्ति,
मलधारि मुणीसरु पयडिकित्ति ।
तहं अण्णइं सातउ दिण्ण चाउ,
आसीवालु विज्जय णयडु जाउ ।

इह जोयणिपुरु बहु पुर हंसारु,
धण-धण्ण-सुवण्ण-णरेहिं फारु ।
सरि-सर-वण-उववण-गिरि-विसालु,
गंभीर परिह उत्तुंगु सालु ।
जउणाणइ तहो पासिहि वहंति,
णर-णारि जत्थ कीडंति रहंति ।
जहि घरि-घरि ईसर भूइ-जुत्त,
घरि घरि णिय णिय-गोरीहिं रत्त ।
अणवरउ जत्थ वट्टइ सुभिक्खु,
णउ चोरु-मारि णउ ईय-दुक्खु ।
जहिं कालि कालि वरिसंति मेह,
णंदहिं णायर-जण जणिय-णेह ।
जहिं चेयालउ उत्तुंगु वंडु,
धय रयण-स-घंटहिं णं करिंदु ।
जिण-पडिमा-मडिउ विगय-मयणु,
कइलासु व उच्चउ सेय-वण्णु ।

घत्ता—

तहिं जिणवर-मंदिर णयणाणदिरि, आइवि रिसि सुह अच्छहिं
सावय-वय-पालहिं जिणु जयकारहिं साविय दाणु पयत्थहिं ॥

जहिं डूंगर पंडिउ अइ सुदक्खु,
अणुदिणु परिपोसइ धम्मु-पक्खु ।
तहि अयरवाल-वंसहं पहाणु
सिरि गग्ग-गोत्त णं सेय भाणु ।
जं रूवें वेणिज्जिय काम-बाणु,
दिउचंद साहु किय पत्त-दाणु ।

भत्तारहो भत्तिय इट्ठु पत्ति,
बालुहिय णाम णय-विणय-जुत्ति ।
तहि णंदण चत्तारि वि महत,
संघही दिउढा-डूमाहिं जुत्त ।
जो पढम गुणग्गलु आसराउ,
णिय पिय तोसउही बद्धराउ ।

सुउ चोचा जिण-सुय-भत्त साहु,
पिय यम वोघाही बद्धगाहु ।
पुणु दिवचंद भज्जहिं गब्भहूउ,
गुण अग्गलु देओ णाम बीउ ।
देओ पिय परिहुव महुर-वाणि,
णय-सच्च-सील-गुण-रयण खाणि ।
खूतू णामें जिणमय विणीय,
कीलंतहं सा णंदण पसूय ।

मोल्हणु लखमणु तह गोइंद दक्खु,
दाणेकचित्तु णं कप्परुक्खु ।
देओ बीया भज्जा गुणंग,
देदो णामें सव्वंग चंग ।
जिण-सासण वच्छल सुद्धभाव,
जिण-पूय दाण-रय-रिउ सहाव ।
गोइंद पिय ओल्ही गुण-महंतु,
पिय-पाय-भत्तु जिणायासु-पुत्तु ।
दिउढा साहुहिं पिय-अइ-विणीय,
पूल्हाही सइ सीलेण सीय ।
तहं लाडो णामें अवर भज्ज,
संघहं विणयायर अइ सलज्ज ।
भत्तारहो भत्तिय विणयवंति,
रूवें रइ पिय इव कणय-कंति ।

तहो पुत्त वीरदासुवि गुणंगु,
पिय साधाही रूवें अणगु ।
तहो णंदणु णामें उदयचंदु,
पिय-माय-कुमुयवणणाइ इदु ।
तुरियउ णदणु छूमासयत्तु,
पाहुलही पिय करमसिंह वुत्तु ।

घत्ता—

एयाहिं मज्झि णदणु तइओ, दिउचंद साहुहिं कि वणिणज्जइ।
दिउढाणामें सुद्धमणु सिट्ठ सुदंसणु इव जाणिज्जइ ।

अरहतुवि एकु जि जो झायइ,
ववहार सुद्धणउ भावइ ।
जो तियाल रयणत्तउ अचइ,
चउ-णिओय रुइ कहव ण मुच्चइ ।
चउविह संघहं दाणु कयायरु,
मगल उत्तम सरण विणय-परु ।
जिणवरु थुइवि तिकालहिं अंचइ,
धणु ण गणेइ धम्म-धणु संचइ ।
जो परमेट्ठि पंच आराहइ,
पंचवि इंदिय-विसयइं साहइ ।
जो मिच्छत्त पंच अवगण्णइ,
पंचम गइ णिवासु मणि मण्णइ ।
जो अणुदिणु छक्कम्म णिवाहइ,
दाण-पूय-गुरु-भत्तिहिं साहइ ।
जो छज्जीव निकायहं रक्खइ,
छह दव्वहं गुण भाव णिरक्खइ ।
सत्त-तच्च जो णिच्चाराहइ,
सत्त-वसण दूरेण पमायइ ।
सत्तवि दायारह गुणजुत्तउ,
इह परसत्त भयह जो चत्तउ ।
अट्ठ मूलगुण जो परिपालइ,
उत्तर गुण सयल वि संभालइ ।
सइ सण-अट्ठंग-रयण-धरु,
मज्ज-दोसु परिवज्जण-तप्परु ।
णव णव णयवि पयत्थइं बुज्झइ,
दह-विह धम्मगहण वि रुच्चइ ।
एयारह पडिमउ जो पालइ,
वारह वयइ णिच्च उज्जालइ ।
जो बारह भावण अणुचिंतइ,
अप्प-सरूव भिण्णु तणु मण्णइ ।
दिउढा जसमुणि पत्थि पवित्तुवि,
काराविउ हरिवसु-चरित्तुवि ।

घत्ता—

जामहिं णहु सायरु चंदु दिवायरु ता णंदउ दिउढा हु कुलु ।
जें विणहुहि चरियउ कुरु-वंसहं सहियउ काराविउ हय-पाव मलु

इय हरिवंसपुराणे कुरुवंस-साहिट्ठिए विबुह चित्ताणु-रंजण-सिरिगुणकित्ति-सीसु मुणिजसकित्ति-विरइए साधु-दिउढा णामंकिए णेमिणाह-जुहिट्ठिर-भीमाज्जुण-णिव्वाण-गमण (तहा) णकुल सहदेव सव्वट्ठसिद्धि-गमण-वण्णणो णाम तेरहमो सग्गो समत्तो ॥ सधि १३ ॥

(लिपि सं. १६४४ पंचायती मंदिर दिल्ली शास्त्र भंडारसे)

२३—जिणरत्ति कहा (जिनरात्रिव्रत कथा)

भट्टारक यशःकीर्ति

आदिभाग —

पणविवि सिरिमंतहो अइसय-जुत्तहो वीरहो नासिय पावमलु ।
णिच्चल मण भव्वहं वियलिय-गव्वहं अक्खमि फुडु जिण-रत्ति फलु ।

परमेट्ठि पंच पणविवि महंत,
तइलोय णमिय भव-भय कयंत ।
जिण-वयण-विणिग्गय दिव्ववाणि,
पणमेवि सरासइ सहखाणि ।
णिग्गंथ उहय-परिमुक्क-संग,
पणवेवि मुणीसर जिय-अणंग ।
पणविवि णियगुरु पयडिय-पहाउ,
फलु अक्खमि जिणरत्तिहि जहाउ ।

अन्तिमभाग :—

णिसुणिवि गोयम भासिउ णिराउ,
वउ गहिउ भत्ति मणि करि विराउ ।
जिणु वदिवि तह गोयमु गणेसु,
णिय णयरु पत्तु सेणिउ णरेसु ।
दह-तिउण वरिसि विहरिवि जिणेंदु,
पयडेवि धम्मु महियलि अणेंदु ।
पावापुर वर मज्झिहि जिणेसु,
वेदिण सह उज्झिवि मुत्तिईसु ।

चउसेसह कम्मह करि विणासु,
संपत्तउ सिद्ध-णिवास-वासु।
देवाली अम्मावस अलेउ,
महो देउ बोहि देवाहिदेउ।
चउदेव-णिकायहं अइमणुज्ज,
आइवि विरइय णिव्वाण-पुज्ज।
जिण णिसिवउ जो वि करेइ भव्वु,
पावेइ मोक्खु सहरिय-गव्वु।

घत्ता—

जिण णिसिवउ फलु अक्खिउ गुणहं किन्ति मुणीसे।
सिरिजसकित्ति मुणिंदें कुवलयचंदे जिणगुण-भत्तिविसेसें ॥१५॥

असुणिय कव्वविसेसं तह वि जं वीरणाह-अणुराए।
धिट्ठत्तणेण रइयं तं सयलं भारही खमओ ॥

इति जिनरात्रिव्रत कथा—(आमेरशास्त्र भंडारसे)

४२ रविवउ कहा (रविव्रत कथा)

भ० यश कीर्ति

आदिभाग:—

आदि अंत जिणु वंदिवि सारद,
धरेवि मणि गुरु णिग्गंथ णवेप्पिणु।
सुयणहं अणुसरेवि पुच्छंत भव्वयणह पासणाह तहं रवि-वउ
पभणमि सावयहं, जासु करतह लब्भइ संपइ पवरा ॥

अन्तिमभाग:—

पासजिणेंद पसाएं दिवसहं सो कहइ,
पडिय सुरजन पासहं भव्वउ वउ लवइ।
जो इहु पढइ पढावइ णिसुणइ कएणु दइ,
सो जसकित्ति पसंसिवि पावइ परम गई ॥२०॥

(दिल्ली पचायती मन्दिर शास्त्र भंडारके गुटकेसे)

२५—पासणाह-चरिउ (पार्श्वनाथ चरित)

(कवि श्रीधर) रचनाकाल सं० ११-६

आदिभाग—

पूरिय भुअणासहो पाव-पणासहो
णिरुवम-गुण-मणि-गण-भरिउ।
तोडिय भवपासहो पणवेवि पासहो
पुणु पयडमि तासु जि चरिउ ॥

× × ×

विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु,
चिर चरिय कम्म दुक्खावहारु।
विहरंतें कोउगहल-वसेण,
परिहत्थिय वाएसरि रसेण।
सिरि-अयरवाल-कुल-संभवेण,
जणणी-वील्हा-गब्भुवेण।
अणवरय विणय-पणयारुहेण,
कइणा बुह गोल्ह-तणुरुहेण।
पयडिय तिहुअण-वई गुणभरेण,
मणिणय सुहि सुअणें सिरिहरेण।
जउँणा-सरि सुर-णर हियय-हार,
णं वार विलासिणि-पउर-हार।
डिंडीर-पिंड-उप्परिय-णिल्ल,
कीलिर रहं गंथोव्वउ थणिल्ल।
सेवाल-जाल-रोमावलिल्ल,
बुहयण-मण-परिरंजण छइल्ल।
भमरावलि-वेणी-वलय-लच्छि,
पप्फुल्ल-पोम-दल-दीहरच्छि।
पवणाहय सलिलावत्तणाहि,
विणिहय-जणवय-तणु-ताव-वाहि।
वणमय-गलमय-जल घुसिण लित्त,
दर फुडियं-सिप्पिउ दसण-दित्ति।
वियसंत सरोरुह पवर-खत्त,
रयणायर-पवर-पियाणु रत्त।
विउलामल पुलिण णियब जासु,
उत्तिएणी णयणहिं दिट्ठु तासु।
हरियाणए देसे असंखगामे,
गामियिण जणिय अणवरय कामे।

घत्ता—

परचक्क-विहट्टणु सिरि-संघट्टणु, जो सुरवइणा परिगणिउ।
रिउ रुहिरावट्टणु विउलु पवट्टणु, ढिल्ली णामेण जि भणिउ ॥२

× × ×

जहिं असि-वर-तोडिय रिउ-कवालु,
णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु।
णिरदलु वट्ठिय हम्मीरवीरु,
वंदियण-विंद-पवियण्ण-चीरु।
दुज्जण-हियायवणि दलण-सीरु,
दुण्णय-णीरय-णिरसण-समीरु।

बल-भर-कंपाविय णायराउ
माणिणि-यण-मण-संजणिय राउ ।
तहिँ कुल-गयण गणेसिय पयगु
सम्मत्त विहूसण भूसियगु ।
गुरुभत्ति णविय तेल्लोक-णाहु,
दिट्ठउ अल्हण णामेण साहु ।
तेण वि णिज्जिय चंदप्पहासु,
णिसुणेवि चरिउ चंदप्पहासु ।
जंपिउ सिरिहरु ते धण्ण 'त,
कुलबुद्धि विहवमाण सिरियचंत ।
अणवरउ भमइं जगि जाहिं किन्ति,
धवलती गिरि-सायर धरित्ति ।
सा पुणु हवेइ सुकइत्तणेण,
वाएण सुएण सुकित्तणेण ।

घत्ता—
जा अविरल धारहिं जणमण हारहिं दिज्जइ धणु वंदीयणहं ।
ता जीव णिरंतरि भुअणब्भतरि भमइं किन्ति सु'दर जणह ॥४

पुत्तेण विलच्छि-समिद्धएण,
णय-विणय सुसील-सिणिद्धएण ।
कित्तणु विहाइ धरणियलि जाम,
सिसिरयर-सरिसु जसु ठाइ ताम ।
सुकइत्तें पुणु जा सलिल-रासि,
ससि-सूर मेरु णक्खत-रासि ।
सुकइत्तु वि पसरइ भवियणाहँ
संसग्गें रजिय जण-मणाहँ ।
इह जेजा णामें साहु आसि,
अइ णिम्मलयर-गुण-रयण-रासि ।
सिरि-अयरवाल-कुल कमल-मित्तु,
सुह-धम्म-कम्म-पवियण्ण-वित्तु ।
मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज,
सीलाहरणालकिय सलज्ज ।
बधव-जण-मण-संजणिय-सोक्ख,
हसीव उहय-सुविसुद्ध पक्ख ।
तहो पढम पुत्तु जण वयण रामु,
हुउ आरक्खि तसजीव गामु ।
कामिणि-माणस-विद्दवण-कामु,
राहउ सव्वत्थ पसिद्ध णामु ।

पुणु बीयउ विबुहाणंद-हेउ,
गुरु भत्तिए संथुअ अरुह-देउ ।
विणयाहरणालंकिय-सरीरु,
सोढल-णामेण सुबुद्धि धीरु ।

घत्ता—
पुण तिज्जउ णंदणु णयणाणंदणु जगे णट्टलु णामें भणिउ ।
जिणमइ णीसंकिउ पुण्णालंकिउ जसु बुहेहिं गुण गणु गणिउं ॥५

जो सु'दरु बीया इदु जेम,
जण-वल्लहु दुल्लहु लोय तेम ।
जो कुल-कमलायर-रायहंसु,
विहुणिय-चिर-विरइय-पाव-पंसु ।
तित्थयरु पयट्ठावियउ जेण,
पढमउ को भणियइं सरिसु तेण ।
जो देइ दाणु वंदीयणाहं,
विरएवि माणु सहरिस मणाह ।
पर-दोस-पयासण-विहि-विउत्तु,
जो ति-रयण-रयणाहरण-जुत्तु ।
जो दिंतु चउव्विहु दाणु भाइं,
अहिणउ बंधू अवयरिउ णाइं ।
जसु तणिय कित्ति गय दस दिसासु,
जो दिंतु ण जाणइ सउ सहासु ।
जसु गुण-कित्तणु कइयण कुणंति,
अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति ।
जो गुण-दोसहं जाणइं वियारु,
जो परणारी-रइ णिव्वियारु ।
जो रूव विणिज्जिय-मार-वीरु,
पडिवण्ण-वयण-धुर-धरण-धीरु ।

घत्ता—
सोमहु उवरोहें णिहय विरोहें णट्टलसाहु गुणोह-णिहि ।
दीसइ जाएप्पिणु पणउ करेप्पिणु उप्पाइय भव्वयणदिहि ॥६

त सुणिवि पयंपिउ सिरिहरेण,
जिण-कव्व-करण-विहियायरेण ।
सव्वउ जं जंपिउ पुरउ मज्झु,
पइ सब्भावें बुह मइ असज्झु ।
परसंति एत्थु विबुहह विवक्ख ।
बहु कवड-कूड-पोसिय सवक्खु ।

अमरिस धरणीधर सिर विलग्ग,
णर सरूव तिक्ख मुह कण्णलग्ग।
असहिय परणर गुण गरुअ रिद्धि,
दुव्वयण हणिय पर कज्ज सिद्धि।
कयणा सा मोडण मत्थ रिल्ल,
भूमिउ डिभंगि णिंदिय गुणिल्ल।
को सक्कइ रजण ताहं चित्तु,
सज्जण पयडिय सुअणत्त रित्तु।
तहि लइ महु किं गमणेण भव्व,
भव्वयण-बंधु परिहरिय-गव्व।
तं सुणिवि भणइं गुण-रयण-धामु,
अल्हण णामेण मणोहिरामु।
पउ भणिउं काइ पइं अरुहभत्तु,
कि मुणहि ण णट्टलु भूरिसत्तु।

घत्ता--जो धम्म-धुरधरु उण्णय-कंधरु सुअण-सहावालंकरिउ
अणुदिणु णिच्चलमणु जसु बंधवयणु करइ वयणु णेहावरिउ।७

जो भव्वभाव पयडण समत्थु,
ण कया वि जासु भामिउ णिरत्थु।
णाइण्णइ वयणइं दुज्जणाहं,
सम्माणु करइ पर सज्जणाहं।
संसग्गु समीहइ उत्तमाहं,
जिणधम्म विहाणें णित्तमाहं।
णिरु करइ गोट्ठि सहुँ बुहयणेहिं,
सत्थत्थ-वियारण हिय-मणेहिं।
किं बहुणा तुज्झु समासिएण,
अप्पउ अप्पेण पससिएण।
महु वयणु ण चालइ सो कयावि
ज भणामि करइ लहु तं सयावि।
त णिसुणिवि सिरिहरु चलिउ तेत्थु,
उवविट्ठउ णट्टलु ठाइ जेत्थु।
तेणवि तहो आयहो विहिउ माणु,
सपणय तंबोलासण समाणु।
जं पुव्व जम्मि पविरइउ किंपि,
इह विहिवसेण परिणवइ तंपि।
खणु एक्क सिणेहें गलिउ जाम,
अल्हण णामेण पउत्तु ताम।

घत्ता—

भो णट्टल णिरुवम धरिय कुलक्कम
भणमि किंपि पइ परम सुहि।
पर समय परम्मुह अगणिय दुम्मह
परियाणिय जिण समय विहि ॥८॥

काराविवि णाहेयहो णिकेउ,
पविइण्णु पंच वण्णं सुकेउ।
पइ पुणु पइट्ठ पविरइय जेम,
पासहो चरित्तु जइ पुणवि तेम।
विरयावहि ता संभवइ सोक्खु,
कालंतरेण पुणु कम्ममोक्खु।
सिसिरयर-विंवे णिय जणणि णामु,
पइं होइ चडाविउ चंद-धामु।
तुज्झु वि पसरइ जय जसु रसंत,
दस दिसहि सयल असहण हसंतु।
तं णिसुणिवि णट्टलु भणइ साहु,
सइवाली पिय यम तणउ णाहु॥

भणु खंड रसायणु सुह पयासु,
रुच्चइ ण कासु हयतणु पयासु।
एत्थंतरि सिरिहरु वुत्त तेण,
णट्टलु णामेण मणोहरेण।
भो तहु महु पयडिय णेहभाउ,
तुहुँ पर महु परियाणिय सहाउ।
तुहुँ महु जस सरसीरुह सुभाणु,
तुहुँ महु भावहि णं गुण-णिहाणु।
पइं होंतएण पासहो चरित्तु,
आयण्णमि पयडहि पावरित्तु।
तं णिसुणिवि पिसुणिउ कविवरेण,
अणवरउ लद्ध-सरसइ-वरेण।

घत्ता—

विरयमि गयगावें पविमल भावें
तुह वयणें पासहो चरिउ।
पर दुज्जण णियरहिं हयगुण पयरहि
घरु पुरु णायरायरु भरिउ ॥ ९ ॥

× × ×

इय सिरिपासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुण-भरियं।
अणुमणियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण ॥ १ ॥
विजयंत-विमाणाओ वम्मादेवीइ णंदणो जाओ।
कणयप्पहु चविऊणं पढमो संधी परिसमत्तो ॥ २ ॥ संधि १२

अन्तिमभाग :—

राहव साहुहँ सम्मत्त-लाहु,
संभवउ ममिय ससार-दाहु ।
सोढल नामहो सयल वि धरित्ति
धवलंति भमउ अणवरउ कित्ति ॥
तिरिण वि भाइय सम्मत्त जुत्त,
जिणभणिय धम्म-विहि करण धुत्त ।
महिमेरु जलहि ससि सूरु जाम,
सहुँ तणुरुहेहिं णंदतु ताम ।
चउविहु वित्थरउ जिणिंद संघु,
परसमय खुद्दवाइहिं दुलंघु ॥
वित्थरउ सुयजसु भुयणि पिल्लि,
तुट्टउ तडित्ति संसार-वेल्लि ।
विक्कम णरिंद सुपसिद्ध कालि,
ढिल्ली पट्टणि धण कण विसालि ॥
सणवासि एयारह सएहिं,
परिवाडिए वरिसह परिगएहिं ।
कसणट्ठमीहिं आगहणमासि,
रविवारि समाणिउ सिसिर भासि ॥
सिरि पासणाह णिम्मलु चरित्तु,
सयलामल गुण रयणोह दित्तु ।
पणवीस सयइं गंथहो पमाणु,
जाणिज्जहिं पणवीसहिं समाणु ।।

घत्ता—

जा चन्द दिवायर महिहं रसायर ता बुहयणहिं पढिज्जउ ।
भवियहिं भाविज्जउ गुणहिं थुणिज्जउ वरलेयहिं लिहिज्जउ ॥८

इय पासचरित्तं रइय बुह-सिरिहरेण गुणभरियं ।
अणुमणिणाय मणुज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण ॥
पुव्व-भवतर-कहणो पास-जिणिंदस्स चारु-निव्वाणो ।
जिण-पियर-दिक्ख-गहणो वारहमो संधी परिसम्मत्तो ॥

संधि १२

आसीदत्र पुरा प्रसन्न-वदनो विख्यात-दत्त श्रुतिः,
सूश्रूषादिगुणैरलंकृतमना देवे गुरौ भाक्तिकः ।
सर्वज्ञ क्रम कज-युग्म-निरतो न्यायान्वितो नित्यशो,
जेजाख्योऽखिलचन्द्ररोचिरमलस्फूर्जद्यशोभूषित. ॥१॥
यस्यांगजोऽजनि सुधीरिह राघवाख्यो,
ज्यायानमंदमतिरुज्झित-सर्व्व-दोष. ।
अग्रोतकान्वय-नभोङ्गण-पार्व्वणेंदु',
श्रीमाननेक-गुण-रंजित-चारु-चेता. ॥२॥
ततोऽभवत्सोढल नामधेय. सुतो द्वितीयो द्विषतामजेय. ।
धर्मार्थकामत्रितये विदग्धो जिनाधिप-प्रोक्तवृषेण मुग्ध' ॥३
पश्चाद्बभूव शशिमंडल-भासमान.,
ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः ।
सद्दर्शनामृत-रसायन-पानपुष्टः
श्रीनट्टलः शुभमना क्षपितारिदुष्टः ।
तेनेदमुत्तमधिया प्रविचिन्त्य चित्ते,
स्वप्नोपम जलदशेषमसारभूतं ।
श्रीपार्श्वनाथचरितं दुरितापनोदि,
मोक्षाय कारितमितेन मुदं व्यलेखि ॥५॥

—प्रति आमेर भडार सं० १५७७

नोट—इसके बादमे णट्टलसाहूके सम्बन्धमें १५-२० पंक्तियाँ और दी हुई हैं जिनका सम्बन्ध प्रशस्तिसे न होनेके कारण यहां नहीं दी गईं ।

२६—वड्ढमाणकव्व (वर्धमानकाव्य)

—कवि हरिइंद (हरिश्चंद)

आदिभाग—

परमप्पय भावणु सुह-गुण पावणु णिहणिय-जम्म-जरा-मरणु ।
सासय-सिरि-सुंदरु पणाय-पुरंदरु रिसहु णविवि तिहुयण-सरणु
पणवेप्पिणु पुण अरहंताणं दुक्कम्म महारि-खयताण ।
वसुगुण-संजोय-समिद्धाणं सिद्धाणं ति-जय-पसिद्धाणं ॥१॥
सूराण सुद्ध चरित्ताणं वय-संजम-भाविय-चित्ताण ।
पयडिय समग्गसत्थाणं भव्वयणहो णिरुज्झायाणं ॥२॥
साहूणं साहिय-मोक्खाणं सुविसुद्धज्झाण-विहि-दक्खाणं ।
सम्मत्त-णाण-सुचरित्ताणं स-तिसुद्धएण वमि पवित्ताणं ॥३॥
वसहाइसुगोत्तमाणं सु-गणाणं संजम धामाणं ।
अवहारि व केवलवंताणं ....॥४॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

जय देवाहिदेव तित्थंकर,
वड्ढमाण जिण सव्व-सुहंकर
णिरुवम कयणा रसायणु धणणाउ,
कव्व-रयणु कंडलु भउ पुण्णाउ ।
सो णंदउ जो णियमणि मयणाइं,
वीर-चरिउ वि [मणु] आयण्णइं ।

सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ,
रस-रसड्ढु जो पढइ पढावइ ।
जो पयत्थु पयडेवि सुभव्वहं,
मणि सद्दहणु करेइ सुभव्वहं ।
णंदउ देवराय णंदण धर,
होलिवम्मु करणु च उणणाय कर ।
एहु चरित्तु जेण वित्थारिउ,
लेहाविव गुणियण उवयारिउ ।
होउ संति णीसेसहं भव्वहं,
जिण-पय-भत्तह वियलिय-गव्वहं ।
वरिसउ सयल-पहुमि घरवारहं,
मेह-जालु पावस-वसुहारहं ।
घरि-घरि मगल होउ सउण्णउ,
दिणि-दिणि धण धण्णहं संपुण्णउ ।
होउ संति चउविह जिण-संघहु,
देमवास णरणाह दुलघहु ।
णंदउ सासणु वीर-जिणिंदहो,
सेणियराय-णरिंद-णिवासहो ।
मंदर-सिहरि होउ जम्मुच्छउ,
घरि-घरि दुंदुहि-सद्दु अतुच्छउ ।
होउ सयल पूरंतु मणोरह,
परमाणंद पवट्टउ इह सह ।
अमिय-विउ उसहएवहं णंदणु,
जगि जगि सित्तु वि दुरिय-णिकंदणु ।
विण्णवेइ सम्मत्त दय किज्जउ,
सासय-सुह-णिवासु महु दिज्जउ ।
आल्हा साहु साहसु महुणंदणु,
सज्जण-जणमण-णयणाणंदणु ।
होहु चिराउस णिय-कुल-मंडणु,
मग्गहा-जण दुह-रोह विहडणु ।१
होउ संति सयलहँ परिवारहँ
भत्ति पवट्टउ गुरु-त्तय-धारहँ ।
पउमणंदि मुणिणाह गणिंदहु,
चरण सरणु गुरु कइ हरिइंदहु ।
जं हीणाहिउ कव्वु-रसट्टहँ,
पउ विरइउ सम्मइ अवियट्टहँ ।

१ यह पाठ जैनसिद्धात भवन आराको प्रतिमें नहीं है ।

तं सुअणाण-देवि जगसारी,
महु अवराहु खमउ भंडारी ।
दय-धम्म-पवत्तणु विमल सुकित्तणु णिसुणतहो जिणइंदहो ।
जं होइ सुधण्णउ हउ मणि मण्णउ तं सुह जगि हरिइंदहो ॥
इति श्री वर्धमानकाव्ये श्रेणिकचरित्रे एकादशमः संधिः।
प्रति जैनसिद्धान्तभवन आरा लि० सं. १६००

२७—भविसयत्त कहा (भविष्यदत्त-कथा)
कवि श्रीधर, रचनाकाल सं. १२३०

आदिभागः—
ससि-पह जिणचरणइं सिव-सुहकरणइं पणविवि णिम्मल-गुण-भरिउ ।
आहासमि पविमलु सुअ पंचमिफलु भविसयत्त-कुमरहो चरिउ

× × ×

सिरि चंदवार-णयर-ट्ठिएण,
जिण-धम्म-करण उक्कंठिएण ।
माहुर-कुल-गयण तमीहरेण,
विबुहयण सुयण मण धण हरेण ।
णारायण-देह समुब्भवेण,
मण-वयण-काय णिंदिय-भवेण ।
सिरि वासुएव गुरु भायरेण,
भव-जलणिहि-णिवडण-कायरेण ।
णीसेसें सविलक्ख गुणालएण,
मइवर सुपट्ट णामालएण ।
विणएण भणिउ जोडेवि पाणि,
भत्तिए कइ सिरिहरु भव्वपाणि ।
इह दुल्लहु होइ जीवहं णरत्तु,
णीसेसहं सं-साहिय परत्तु ।
जइ कहव लहइ दइयहो वसेण,
चउगइ भमंतु जिउ सहरसेण ।
ता विलउ जाइ गब्भे वि तेमु,
चायाहउ णहेसर पब्भु जेमु ।
अह लहइ जम्मु ता बहु-विहेहिं,
रोयहिं पीडिज्जइ दुह-गिहेहिं ।
जइ णिहिय मायरि अय-खामोयरि अवहेरइ णियमणि अणसु
पय-पाण-विहीणउ जायइ दीणउ तासो णवि जीवेइ सिसु ॥२
हउं आयइ मायइ मह मइए,
सइं परिपालिउ मंथर-गइए ।

कप्पयरुव्व विउलासए सयावि,
दुल्लहु रयणु व पुरणेण पावि ।
जइ एयहिँ विरयमि णोवयारु,
उग्घाडिय सिव सउ दुलय वारु ।
ता किं भणु कइ मइ जायएण,
जम्मण-मह पीडा-कारएण ।
पउ जाणि वि सुललिय पयहिँ सत्थु,
विरयहि बुहयण मणहरु पसत्थु ।
महु तणिय माय णामेण जुत्त,
पायडिय जिणेसर भणिय सुत्त ।
वणिवइ भविसयत्तहो चरित्तु,
पंचमि उववासहे फलु पवित्तु ।
महु पुरउ समक्खिअ वप्प तेम,
पुव्वायरियहिँ भासियउ जेम ।
तं णिसुणेविणु कइणा पउत्त,
भो सुप्पढ पइं वज्जरिउ जुत्तु ।
जइ मुज्झ समत्थि णउ करेमि,
हउं अज्जु कहव णिरु परिहरेमि ।
ता किं आयइ महु बुद्धियाइं,
कीरइ विउलाए स-सुद्धियाइ ।

घत्ता—किं बहुणा पुणु-पुणु भणिएं सावहाणु विरएवि मणु ।
तो सुप्पढ महमइ जाणिय भवगइ ण गणमि हउ मणे पिसुण-यणु

× × ×

इय सिरि-भविसयत्त-चरिए विबुह-सिरि सुकइ सिरिहर-विरइए साहु णारायण-भज्ज रुप्पिणि-णामंकिए भविसयत्त उप्पत्ति वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १

अन्तिम भाग:—

णरणाह विक्कमाइच्च काले
पवहतए सुहयारए विसाले ।
वारहसय वरिसहिँ परिगएहिँ,
फागुण-मासम्मि वलक्ख पक्खे,
दसमिहि दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे ।
रविवार समाणिउ एउ सत्थु,
जिह मइं परियाणिउ सुप्प सत्थु ।
भासिउ भविस्सयत्तहो चरित्तु,
पंचमि उववासहो फलु पवित्तु ।

—प्रति आमेरभंडार लिपि सं० १५३०

२८ संभवणाह चरिउ (संभवनाथ चरित)
कवि तेजपाल

आदिभाग:—

पणविअणिंदहो चरिम जिणिंदहो वीरहो दंसणणाणवहा ।
सेणियहु णरिंदहो कुवलयचंदहो णिसुणहु भवियहो पवरकहा
सेणियरायहो लच्छि सहायहो सयलु सउणउं सुहयरु ।
कुवलय आसासणु तम-णिण्णासणु जयउ चरिउ णं हि मयरु
वसंततिलका—संबद्ध सत्तमधरा णियजीवके वि,
सीसेण ········· पाउलहि विवेउ ।
गोत्तु णिबद्धु अरुहस्स फलेण जस्स,
सद्दंसणस्स महिमा पयडेमि तस्स ॥छ॥
अहो भवियहो णिसणहु थिरु कुणेहु,
सेणियचरित्तु जह तह सुणेहु ।
चिरु पयडिउ गोयमसामि जेम,
बहु रस रसड्ढु हउं भणमि तेम ।
इह दीवि भरह खेत्तंतराल,
हिउ मगहदेसु गिरि सरि विसाल ।
कणयहिव जो णंदण वणेहिँ,
तरु सहलिय कुसुमिय पल्लव घणेहिँ ।
रयणायरुव्व रयणायरेहिँ,
उण्णय घणुव्व बहु-जल-सरेहिँ ।
कय कव्वु व बहुरस-पोसणेहिँ
वल्लहद्दु व कय हलकरि सणेहिँ ।
कण्हु व कंसा णिक्कदणेहिँ,
अरहु व सेविवु सक्कंदणेहिँ ।
बहुधणवेसुव कय-विक्कएहिँ,
मीमसु व पोसिय तक्कएहिँ ।
अज्जव महिव्व जण भोइएहिँ,
समसरणु व संठिय जोइएहिँ ।
जं सोहइ पुरु तहिँ रायगेहु,
······ ·· · ··· ,
जय पास वर भास पूरिय जणासा,
जयवीर जिणइंद णिहह णिव्वास ।
बारसगि समयगय जिणमुहणिग्गय छद्द सण पोसिय णिरय ।
दुविहालकारहिँ णेय पयारहिँ सा भयवइ सइ जयउ सय ॥१॥
पुणु पणवेमि मुणि तव-तेय-चारु,
चिर चरियकम्म दुक्खावहारु ।
मुणि सहसकित्ति धम्माणुवट्टि
गुणकित्ति गुणायरु ताह पट्टि ।

तहो सीसु सेय-लच्छी-णिवासु,
जसकित्ति जिणायम पह-पयासु ।
तहो पट्टि महामुणि मलयकित्ति,
उद्धरिय जेण चारित्त वित्ति ।
तहो सीसु णमंसमि णय-सिरेण,
परमप्पउ साइउ पवर जेण ।
दो पढम झाण दूरीकएण,
दो झाणहिं णियमणु दिण्णु जेण ।
गुणभद्दु महामइ महमुणीसु,
जिणसंगहो मंडणु पंचमीसु ।
जे केवि भव्व कंदोट्ट-चंद,
पणवेप्पिणु तह अरविंदु णिंद ।
मुणि गुणकित्ति भडारउ तच्च वियारउ सव्व सुहंकरु विगयमलु
मइ पय पणवंतहो भत्ति कुणंतहो कव्व-सत्ति संभवउ फलु ॥२॥
इह इत्थु दीवि भारहि पसिद्धु,
णामेण सिरिपहु सिरि-समिद्धु ।
दुग्गु वि सुरम्मु जण जणिय-राउ,
परिहा परियरियउ दीहकाउ ।
गोउर सिर कलसाहय पयंगु,
णाणा लच्छिए आलिंगि पंगु ।
जहिं-जण णयणाणंदिराइं,
मुणि-यण-गण-मंडिय-मंदिराइं ।
सोहंति गउर-वर कइ-मणहराइं,
मणि-जडिय किवाडइं सुंदराइं ।
जहिं वसहिं महायण चुय-पमाय,
पर-रमणि परम्मुह मुक्क माय ।
जहिं समय करडि घड वड हडंति,
पडिसद्दें दिसि विदिसा फुडंति ।
जहिं पवण-गमण धाविय तुरंग,
णं वारि-रासि भंगुर-तरंग ।
जो भूसिउ णेत्त-सुहावणेहि,
सरयब्व धवल-गोहण गणेहिं ।
सुरयण वि समीहहिं जहिं सजम्मु,
मेल्लेविणु सग्गालउ सुरम्मु ।
रिउ-सीस-विहट्टणु पविउलु पट्टणु सिरिपहु णामे रयणि-णिहि ।
तहि णिवसइ महिवइ रूवें सुरवइ अइतरु परहं पयडु सिहि ॥३
किं वण्णमि अइ रवि-सरिस-तेउ,
महि-मडलि पयडी कय-विवेउ ।
अउहहवंसि दुग्गाह गाहि (?),
णामें पसिद्धु दाउदसाहि ।
पच्चंत वासि मंडलु असेसु,
णियवलि सहेविणु पुव्वदेसु ।
तिहुअणि ण कोवि जे समु पयंडु,
दक्खिणदिसि पेसिउ णियय दंडु ।
पच्छिम दिसि णरवइ जे जियंति,
सेवंति चारु अवसरु णियंति ।
उत्तर दिस णरवइ मुइ वि दप्पु,
माणंति आण ढोवंती कप्पु ।
किं किं गुण वण्णमि पयड तासु,
णं तोयणिहिव्व गभीरमासु ।
मण इच्छिय-यरु णं कप्परुक्खु,
अणदिणु जण चयहो विलुत्तु दुक्खु ।
तहिं कुल गयणंगणि णियपयंगु ।
सम्मत्तवि-हूसण-भूसियंगु ।
सिरि अयरवाल कुल कमल-मित्तु,
कुलदेवि णवड मित्ताण गोत्तु ।
इह लखमदेउ णामेण आसि,
अइ णिम्मलयर-गुण-रयण-रासि ।
वाल्हाही णामें तासु भज्ज,
सीलाहरणालंकिय सलज्ज ।
तहो पढम पुत्तु जण-णयणरामु,
हुअ आरक्खिय तस जीव गामु ।
णामें खिउसी जण-जणिय-कामु,
वीयउ होलू सुपसिद्धु णामु ।
तहो वीइ वरगय ति-अयसार,
णामेण महादिउही सुनार ।
तेहिमि दोहिमि सुहलक्खणहिं भज्जहिं सोहइ सेट्ठि घरु ।
जिम णंद सुणंदहि मणहरहिं रिसहु जिणेसरु तिजय पहु ॥४॥
तहं दिउही पुत्त चयारि चारु,
णियत्तवि वि णिज्जिय-वीरु-मारु ।
दिउसी णामें जण-जणिय-सेउ,
गुरु-भत्तिए संथउ-अरुह देउ ।
तस्साणुउ वंघउ अवरु जाउ,
विणयाहरणालंकियउ काउ ।
जो दिंतु दाणु वंदीयणाहं,
विरए वि माणु सहरिस-मणाहं ।

जसु तणियकित्ति गय दस दिसासु,
जो दिंतु ण जाणइ सइ सहासु।
जसु गुण कित्तणु कइयण कुणंति,
अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति।
जो गुण-दोसइं जाणइं वियारु,
जो परणारी-रइ-णिव्वियारु।
जो रयणत्तय-भूसिय-सरीरु,
पडिवण्ण-वयण धुर धरण धीरु।
रेहइ थील्हा णामेण साहु,
गुरुभत्ति णविय तिव्लोक णाहु।
तस्साणुय अवरुवि मल्लिदासु,
को वण्णिवि सक्कइ गुण-सहासु।
जिणु कुंथुदासु छट्ठमउ भाइ,
जिण पुज्ज पुरंदर गुण विहाइ।
ता भणइं थील्हु ते धणवंत,
कुल-बल-लच्छा-हर णाणवंत।

अणवरउ भमइ जणि जगि जाह किंत्ति,
धवलती सयरापर धरत्ति।
ता पुणु हवेइ सुकइत्तणेण,
अहवा सुहि पुत्त सुकित्तणेण।
धणु दिंत कित्ति पसरेइ लोइ,
णवि दिज्जइ तो जस-हाणि होइ।
अहं किं पुत्तें धणुहम्मि जाम,
कित्तणु विहाइ धरणियलि ताम।
सुकइत्तें जा गिरि-सरि-धरत्ति,
ससि सूरि मेरु णक्खत्त पंति।
सुकइत्तु वि पसरवि भवियणम्मि,
संसग्गें रंजिय सज्जणम्मि।
अह सावय कुल तो महु पहाणु,
लेहावमि संभव-जिण पुराणु।

एतहिं गुण सायरु जण तोल्लायरु जिण सासण भर णिव्वहणु
सावय-वय पालउ सुद्धु सुहालउ दीणाणाह रोस-हरणु ॥५॥

धम्मेण तव पुत्तु समसव्व सुहयारि,
चाएण कएणु बल-रूवेण कसारि।
समदिट्ठि वर वंसि णियगोत्ति णहि-चदु,
जिणधम्मवर मुत्ति सावय मणाणदु।
लखमदेव सोभव्व सुप्पुत्तु महि धण्णु,
महादेवही माइवर अगि उप्पण्णु।

णामेण थील्हा जिणं भत्ति सुत्तासु,
तें भणिउं कइ इक्क दिय हम्मि सिरिधासु।
जिणणाह कम मूलि सिरु थाइ थिरु सत्तु,
अक्खेइ णिय कज्ज सिरिमतु सु-महंतु।
भो पंडिया लद्ध वर कव्व-कय-सत्ति,
अणवरय पइंविहिंय आजम्म जिणभत्ति
भव-दुह-तरंगाल-सायर-तरंडस्स,
णं महिय रइणाहु गुणमणि करंडस्स।
बहुभेय दुट्ठट्ठ-कम्मारि-हय जेण,
परिधविय भव्वयण दयधम्म अमिएण।
छंडवि ड ण तव तिव्व दित्ती दिणंदस्स,
पाइडहि वर कव्वु संभव-जिणिंदस्स।

तं णिसुणि विभासइ सरि विसरासइ तेजपालु जयमि तु बुहु।
तव-वय कय-उज्जमु पालिय संजमु अवहत्थिय गिहदंड दुहु (?)।६

भो णिसुणि थील्ह वर सुद्धवंस,
णिय-कुल-कमलायर-रायहस।
मणिमलिण वि दुस्समु कालुएहु,
दुय झाण विवज्जिउ दुक्ख-गेहु।
णर णरवइ एवहि धम्महीण,
बहु पावयम्म विहवेण खीण।
जो जो णरु दीसय सो दु मित्तु,
किंह अत्थि पयदइ मज्झु चित्तु।
जिण संभवहो चरिउ एम,
णायरणु कहमवि कहमि केम।

× × ×

इय सभव-जिणचरिए सावय-विहाणफल भरिए पंडिय-सिरितेजपालविरइए सज्जणसंदोह-मणअणुमणिणए सिरि-महाभव्व थील्हा सवण-भूसणे सिरिविमलवाहणणिव-धम्म-सवण-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्तिम भाग—

अयरवाल कुल-णहिं दिवसाहिउ,
भीतरणु गोत्तु गुणेण य साहिउ।
णावडिकुल देवय संतुट्ठउ,
धण····· धणधार पउट्ठउ।
सोता सवाहिउ चिरु हुतउ,
णिय विढत्तु सिरिहलु भुंजंतउ।
चउविह संघभत्ति जे दाविय,
जे जिणबिंव पइट्ठ कराविय।

तेजा तासु पुत्तु धणरिद्धउ,
जोव्वण सिय लावण्ण समिद्धउ।
तासु-वरंगणि हियं-मिय भासिणि,
थिर राजही दिढ जिण-सासणि।
लखमदेउ तहो सुत्र गुणरिद्धउ,
णिय रूवोह हणिय मयरद्धउ।
बाल्हाही तहो णामें पत्ती,
मुणिवर वयण जिणागम भत्ती।
खिउसी तासु पुत्तु गुणसायरु,
वच्छराजही णेह कयायरु।
णेमिदासु तहो सुउ संजायउ,
देवदासु अवरुवि विक्खायउ।
खिउसी अण्णु होलु तहो भायरु,
छाल्हाही पिययमु सुक्खायरु।
देवपालु तहो पुत्तु पसिद्धउ,
आचरइ अवरु गुण-रिद्धउ।
लखमएव गिह बीय वरगण,
महादेवही णट्ट सुरंगण।
दिवसी तासु पुत्तु गुण-सायरु,
गंगदेवही णाइय भज्जरु।

घत्ता—तहो पुत्तु कुमारसीहु अवरु दिउचदु जाणित्तउ।
णागराजु चउत्थउ धम्ममइ पुणि पंचायणु पंचमउ ॥२६॥

दुवई—णिद्धण कुंट मंट वि दाणं देइ सहउ लंवणे थील्हा।
तासु बंधु कुल मंडणु,दुह-सिहि-समणु णवघणे ॥६॥

कोल्हाही णामें तहो भामिणि,
सुहलक्खण सधम्म रु सामिणि।
तासु कुक्खि उप्पण्णु मणोहरु,
तिहुणपाल णामें कुल-ससहरु।
थील्हा भज्जु अवरु लहुयारी,
आसराजही बहुगुण सारी।
तासु कुच्छि रणमलु उप्पण्णउ,
पुण्णवंतु महिमंडलि धण्णउ।
थील्हा लहुउ बंभु गुण दिद्धउ,
जिणवर मल्लिदासु सुपसिद्धउ।
भावणही तहो तीय महाइय,
रेहइ पुत्त चयारि विराइय।
हंसराजु पढमउं जण-पुज्जिउ,
पुणु जगसी णरपति ती) तइज्जउ।
तुरियउ महणसीहु उण्णाय करु,
णंदहु ताम जाम ससि दिणयरु।
लखमदेव सुउ पचमु सारउ,
जिणवर कुंथुदासु हिय गारउ।
जसु चाएण दुहिय-सोक्खं-करु,
छिण्णउ आजम्मु वि जायउ गरु।
जा सुत्तउ पेच्छेव्विणु वंगउ,
लज्जइ कामु वि जाउ अणंगउ।
जसु गंभीरिय गुण असहंतउ,
अभोणिहि खारत्तणु पत्तउ।
जो जिणभासिय धम्म धुरंधरु,
णिय जसेण धवलिय गिरिकंदरु।
तहो पिय धणायाही धर धण्णउ,
भोज्जू तासु पुत्त उप्पण्णउ।
राजा अवरु जाउ दिहियारउ,
सज्जण-जण-मण-णयण-पियारउ।

घत्ता—पवयण सुवण्णमउ मइं रइउ अमलीकय दिसिमंडलु
सा थील्हा सवणि परिट्ठविउ संभवजिण कह कुंडलु।

दुवई—जयगुरवयण सिहिय सजोएं असुद्धिधण णियत्तणं।
हिय मियत्तसिरम्म सोवण्णाहं लेहिणिकर पवत्तण ॥६॥

णिय विण्णाणएण णेवाविउ,
सोहेव्विणु मुणिणाहहो दाविउ।
साहु साहु तासु यणाहो भासिउ,
रयणत्तय गुणेण संवासिउ।
णाणा-छंदुविंद-मणि-जडियउ,
संभवजिण गुण-कंचण घडियउ।
एहु चरिउ कुंडलु सोहिल्लउ,
थील्हा सवणाहणु अमुल्लउ।
वड्ढउ जिणवर धम्म धुरंधरु,
वणि वरणीय पयासण सुंदरु।
सम्मद सण गुणेण पुरंदरु,
णियरूवें सव्वंगें सुंदरु।
जिह धम्मु विवड्ढिय दयजुत्तिय,
जिय उवसम भावेण जि खंतिय।
जिह पुण्णें दइलच्छिय हुत्तणु,
तिह थील्हा संताण पवत्तणु।
अमुणंतेण एहु आहासिउ,
जिणणाहें जो आगम-भासिउ।

मुणिवर णाहेण जि सोहिव्वउ,
महुलहु बुद्धिए दोसु म दिव्वउ ।
घत्ता—जण मंगलयरु एहु मणु आहासिउ जिणधम्म पहुव्वण ।
······पवड्ढउ धरणियलि णिम्मल-बोहि-समाहि-महो ॥

इय संभवजिण-चरिए सावयायार विहाण-फलाणुसरिए-कइतेजपाल वण्णिदे सज्जण-संदोहमणि अणुमण्णिदे सिरि महाभव्व-थील्हा सवण भूसणो संभवजिण णिव्वाण गमणो-णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि ६॥

—प्रति ऐं० प० दि० जैन सरस्वतीभवन ब्यावर
लिपि सं० १५८३

२६ वरंगचरिउ (वरांगचरित)

कवि तजपाल　　रचनाकाल सं० १५०७

आदिभागः—

पणविवि जिणईसहो जियवम्मीसहो केवलणाण पयासहो ।
सुर-णर-खेयर-बुह-णुय-पय-पयरुह. वसु कम्मारि विणासहु ॥१

वसु-गुण-समिद्ध पणवेवि सिद्ध,
आयरिय णमो जगि जे पसिद्ध ।
उज्झाय-साहु पणविवि तियाल,
सिव-पहु दरसावय गुण-विसाल ।
वाएसरि होउ पसण्ण-बुद्धि,
जिणवर वाणिय कय-विमल-बुद्धि ।
हउ णेहु छद लक्खण-विहीणु,
वायरणु ण जाणमि बुद्धि-हीणु ।
णउ जाणमि संधि समास किंपि,
धिट्ठत्त करेसमि कव्वु तपि ।
हउं जाणमि जिणवर भत्ति जुत्ति
वित्थरइ जेण पविमल सुकित्ति ।
जे विउल वियक्खण बुद्धिवंत,
जिणभत्ति-लीण पडिय महंत ।
ते ह णाहिउ पउ मुणिवि कव्वु,
परिट्ठवहु चारु पउ परम भव्वु ।
सुरसरणयरहिं णिवसंत संत,
महु चिंतउ वणिणय मणि महंत ।
महु णाम पसिद्धउ तेयपालु,
मइ गमिउ णिरत्थउ सयलु कालु ।
एवहि हउ करमि चिरमलु हरमि रायवरंग चारु चरिउ ।
जणु जणि णाणहु तमुहयचदु कोऊहल-सएहि भरिउ ॥१॥

अंतिम भागः—

सय पमाय संवच्छर खीणइ,
पुणु सत्तगल सउवोलीणइ ।
वइसाहहो किण्ह वि सत्तम दिणि,
किउ परिपुण्णउ जो सुह महुर-झुणि ।
विउलकित्ति मुणिवरहु पसाएं,
रइयउ जिणभत्तिय अणुराएं ।
मूलसंघ गुणगण परियरियउ,
रयणकित्त हूयउ आयरियउ ।
भुवणकित्ति सीसु वि जायउ,
खम-दमवंतु वि मुणि विक्खायउ ।
तासु पट्टि संपय विणिविहिट्ठउ,
धम्मकित्ति मुणिवरु वि गरिट्ठउ ।
तहो गुरहाइ विमलगुण धारउ,
मुणि सुविसालकित्ति तव सारउ ।
सो अम्हह गुरु जहि महु दिण्णिय,
पाइय करण बुद्धि मइ गिण्हिय ।
जिणभत्ति-पसायं मइ अणुरायं कियउ कव्वु कय तमु विलउ
पुणु गुरुणा सोहिउ हरइ विरोहिउ विउलकित्ति बुहयण तिलउ

सर पियवासउ पुरसुपसिद्धउ,
धण-कण-कचण-रिद्धि-समिद्धउ ।
परसावडह वंसु गरु थारउ,
जालहउ णाम साहु वणिसारउ ।
तासु पुत्तु सूजउ दयवंतउ.
जिण धम्माणुरत्त सोहंतउ ।
तासु पुत्त जहि कुल उद्धरियउ,
रणमल णामु मुणहु गुणभरियउ ।
तहो लहुयउ वल्लालु वि हुंतउ,
जिण कल्लाणइ जत्त कुणतउ ।
पुणु तह लहुयउ ईसरु जायउ,
सपइ अत्थइ दय गुणारायउ ॥
पोल्हणु णामु चउत्थु पसिद्धउ,
णिय-पुण्णेण दव्व बहुलद्धउ ।
इय चत्तारि वि बंधव जायणु,
वर खंडिल्लवाल्ल विक्खायणु ॥
रणमल णंदणु ताल्हुय हुंतउ,
तासु पुत्त हउ कइ-गुण-जुत्तउ ।

तेयपालु महु णामुय सिव्वउ,
जिणवर-भत्ति विबुह-गुण-लद्धउ ॥
कम्मक्खय कारणु मल अवहारणु अरुहभत्ति मइ रइयउ ।
जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ येहु चरिउ तुइ सहियउ,॥

एहु सत्थु जो सुणइ सुणावइ,
एहु सत्थु जो लिहइ लिहावइ ।
एहु सत्थु जो महि वित्थारइ,
सो णरु लहु चिरमल अवहारइ ॥
पुणु सो भवियणु सिवपुरि पावइ,
जहिं जर-मरणु ण किंपि वि आवइ ।
णंदउ णरवइ महि दयवंतउ,
णंदउ सावय जणु वय-वंतउ ॥
महि जिण-णाहहु धम्मु पवट्टउ,
खेमु सव्व जणावइ परिवड्ढउ ।
कालि कालि वर पावसु वरिसउ,
सव्व लोउ दय-गुण उक्करिसउ ॥
अज्जिय मुणिवर संघु वि णंदउ,
सयलु कालु जिणवरु जणु वंदउ ।
जं किंपि वि हीणाहिउ साहिउ,
हीण-बुद्धि कव्वु वि णिव्वाहिउ ॥
तं सरसइ मायरि खम किज्जउ,
अवर वि पंडिय दोसु म दिज्जउ ।

जो णरु दयवंतउ णिम्मल चित्तउ णिच्चु जि जिणु आराहइ ।
सो अप्पउ आइवि केवलु पायवि मुत्ति-रमणि सो साहइ ॥

इय वरंग-चरिए पंडियतयपाल-विरइए मुणिविउल-कित्तिसुपसाए वरंग-सव्वत्थसिद्धि-गमणो णाम चउत्थ सधी परिच्छेओ सम्मत्तो, ॥संधि ४॥

—प्रति ,भट्टारक हर्षकीर्ति शास्त्रभंडार, अजमेर
लिपि० सं० १६०७

३० सुकुमालचरिउ (सुकुमाल चरित)
मुनि पूर्णभद्र

आदिभाग—

पढमु जिणवरु णविवि भावे जउ-मउड
विहूसियउ विसय विण्हु मयणारि णासणु ।
असुरासुर-णर-थुय-चलणु सत्त तच्च
णव पयत्थ णव णयहिं पयासणु ॥
लोयालोयपयासयरु जसु उप्पण्णउ णाणु ।
सो पणवेप्पिणु रिसहजिणु अक्खय-सोक्ख-णिहाणु ॥

ध्रुवकं—पणवेवि भडारउ रिसह णाहु,
पुणु अजिउ जिणेसरु गुण सणाहु ।

× × × ×

अन्तिमभागः—

इय भरहखेत्त संपण्ण देसु,
ठिउ गुज्जरत्तु णामेण देसु ।
तासु वि मज्झहं ठिउ सुपसिद्धु,
णायर-मंडल-धण-कण-समिद्धु ।
तहिं णयरु णाउ संठियउ ठाणु,
सुपसिद्धु जगत्तउ सिय पहाणु ।
सिरि वीरसूरि तहिं पवर-आसि,
विणयालंकिउ गुण-रयण-रासि ।
मुणिभद्द सीसु तहिं जाउ संतु,
मोहारि-विणासणु णिम्ममत्तु ।
तासुवि सुकमारुह पयाउ,
सिरि कुसुमभद्द मुणीसहु सीसु जाउ ।
तासुवि भवियण-यण आस पूरि,
संजायउ सीसु गुणभद्दसूरि ।
हउं तासु सीसु मुणि पुण्णभद्दु,
गुणसील-विहूसिउ गुण-समुद्दु ।
मइ बुद्धि-विहीणेउ एहु कव्वु,
विरयउ भवियण णिसुणंत सव्वु ।

घत्ता—जा मज्जय-सायरु तवइ दिवायरु
जाम मेरु महि-वलय थिरु ।
जा हवइ णहंगणु जणमण रंजणु
ता एउ सत्थु जइ होइ चिरु ॥१८॥

इय सिरि सुकुमालसामि चरिए भव्वयणाणंदयरे सिरि गुणभद्द सीसु मुणि पुण्णभद्द-विरइए सुकुमालसामि-सव्वत्थ-सिद्धि गमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥

—प्रति पंचायती मंदिर शास्त्र भंडार दिल्ली ।
लिपि सं० १६३२

३१ णेमिणाह चरिउ (नेमिनाथ चरित)
अमरकीर्ति रचनाकाल सं० १२४४

आदिभागः—

विजयंतु णेमि पह-णाह-ससिणा पुण्ण-पहा पवोहंता ।
कुमुअं णाय हरिमउडा सियमणि पडिबिम्ब-लक्खणा णिच्चं ॥१

विजयंतु पास-तणु-मिलिय-धरण-फण-मणि-मयूह-णिउरंबा ।
घण-घाइ-कम्म-वण-डहण सुद्ध झाणग्गि-जाल पुंजव्वा ॥२
रयकंसि लग्गसुतणुप्पहाए धम्मोवएस समयम्मि ।
स जयउ वि सो जस्सहि सरमब्भ-तडिव्व विप्फुरियं ॥३॥
हरिणंको णिद्दोसो सप्पो (?) मय-णास विहाउस्सो ।
सच्चित्तस्स वियासो संति जिणे सो जये जयउ ॥४॥

अन्तिमभागः—

ताहं रज्जि वट्टंतए विक्कमकालि गए
बारह सय चउ आलए सुक्ख ।
सुदि वक्खमए भद्दवयहो सियपक्खेयारिसिदिणि तुरिउ ॥
सक्कडियाक्खत्तए समप्पिउ सिरिणेमिणाह चरिउ ।
उत्तर माहुर संघायरियहो चंदकित्ति णामहो,
सुहचरियहो पाय पणासिय परवाकं दहो ?
सगुणाणंदिय कणहणरिंदहो, सीसें अमरकित्ति णामंके ।
जिणवर दसण णयणमयंकहो णाहिउ विरुद्ध अमुणा तं ॥
जं महु भाण्णिउ कव्वु कुणंते तं महु खमहु सरासइ ।
सामिणि जिणवयणुउ भव-सिव सभाहिंणि ।
असाव्व वुहिहिं समजस चित्तहिं मज्झत्थेहिं ।

—प्रति भट्टारकभंडार सोनागिर
लिपि सं० १५१२

३२ णेमिणाह चरिउ (नेमिनाथ चरित)

कवि लक्ष्मण

आदिभागः—

विस-रह-धुर-धारउ विस्स वियारउ विसय विसम विसंकड विडउ
पणमवि वसु गुणहरु वसुधर तिय-वरुवारिय लंछण गुण-णिलउ

(चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुतिके बाद ग्रंथ प्रारम्भ किया गया है ।)

× × ×

इति णेमिणाहचरिए अवुहकइ-रयण-सुअ-लक्खणेण विरइए भव्वयणमणाणंदे णेमिकुमार संभवो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १ ॥

अंतिम भागः—

मालवय विसय अतरि पहाणु,
सुरहरि भूसिउ णं विसय-ठाणु ।
णिवसइ पट्टणु णामइं मेहत्तु,
गोणंदु पसिद्ध वहु रिद्धिवंतु ।
आराम गाम परिमिउ वणेहि,
ण भू-मडणु किउ णियय-देहि ।
जहिं सरि सरवर चउदिसि रवण्ण,
आणंदिय पहियण तडि विसण्ण ।
जहिं चेईहर मणहर विसाल,
णं मेरु जिणालय सहिय साल ।
तिहुवण मंदिर गिह मणि विहार,
फेडिय एयंतण-यंधयार ।
जहिं पढमु जाउ वायरण सारु,
जो वुहियण कंठाहरणु चारु ।
सिद्ध तिय जइवर हुअइं तत्थ,
जहिं भवियण लीइय मोक्ख-पंथ ॥
जहिं णिच्च महोच्छव जइण गेहि,
कय भवियहिं भव आसंकिएहिं ।
तहिं णिवसइ रयण गरुह भव्वु,
परणारि सहोयरु गलिय-गव्वु ।
लखमणामिहं तहं तणउ पुत्तु,
लक्खम सराउणामे विसयहिं विरुत्तु ।
पुरवाड महिसउर तिलउ णाणि,
सो अह णिसि लीणउ जइणि-वाणि ॥

घत्ता—तहिं जोयउ वह रायउ, अवलोएविणु भवगइ ।
तं किज्जइ हिउ अत्थु, जेण जीउ ण मइ गइ ॥२१॥

पउरवाल-कुल-कमल-दिवायरु,
विणायवंसु सघहु मय सायरु ।
धण-कण-पुत्त-अत्थ-संपुण्णउ,
आइस रावउ रूव-रवण्णउ ।
तेण वि कयउ गंथु अकसायइ,
अंभव अंबएव सुसहायइ ।
कम्मक्खइ णिमित्तु आहासिउ,
असुणंतेण पमाणु पयासिउ ॥
ज हीणाहिउ किउ वाएसरि,
णाणदेवि त खमइ परमेसरि ।
लक्खण-छंद हीणु ज आसिउ,
तं वुहयण सोहेवि पयासिउ ।
आरंभिउ आसाढहिं तेरसि,
भउ परिपुण्ण चइतिय तेरसि ।
पढइ सुणइ जो लिहइ लिहावइ,
मण-वंछिय तं सो सुह पावइ ॥

घत्ता—जं हीणाहिउ मत्त-विहूणिउ साहिउ गयउ अयाणि ।
तं मज्झु खमिव्वउ लहु दय किज्जउ साहु लोउग्गमणि ॥२२

इय णेमिणाहचरिए अबुह-कइ-रयण-सुअ-लक्खम-णेण विरइए भव्वयण-जणमणाणंदो सावय-वय-वण्णणो णाम चउत्थो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ४ ॥

पंचायती मंदिर शास्त्रभंडार दिल्ली, लिपि सं १५१२

३३—अमरसेन चरिउ (अमरसेन चरित)

कवि माणिक्कराज, रचनाकाल सं० १५७६

आदिभाग—प्रथम पृष्ठ नहीं

? सयलवि तित्थकर कुलहोसहिधर ते सव पणविवि पुहमिवर
?ुणु अरुह सुवाणी ति-जय पहाणी, णिय मणि धरि वि कुमइ-हर

पुणु गोयमु गणहरु णमउ णाणि,
जे अक्खिउ सम्मइ-जिणह वाणि।
पुणु जेण पयत्थइ भासियाइं,
भव-उवहि-तरण-पोयण-सुहाइं॥

पुणु तासु अणुक्कमि मुणि पहाणु,
णिय चेयणत्थ तम्मउ सुजाणु।
हुय बहु सद्दत्थह-सुइ-णिहाणु,
जिंइ दुद्धरु णिज्जिय पंचवाणु।
विण्णाण-कलालय-पारुपत्त,
उद्धरिय भव्व जे सम-विसत्त।
संतइय ताह मुणि-गच्छणाहु,
गग्र-राय-दोस संजइय साहु॥

जे ईरिय गंथह कइ-पवीणु,
णियझाणें परमप्पयइ लीणु।
तव-तेय णियत्तणु कियउ खीणु,
सिरि-खेमकित्ति-पट्टहिं पवीणु।
सिरि हेमकित्ति जि हुयउ धासु,
तहुं पट्टवि-कुमर वि सेणु णामु।
णिग्गंथु दयालउ जइ-वरिट्ठु,
जिं कहिउ जिणागम-भेउ सुट्ठु॥
तहु पट्ट णिविट्ठउ बुह-पहाणु-
सिरिहेमचंदु मय-तिमिर-भाणु।
तं पट्टि धुरंधरु वय-पवीणु,
वर पोमणंदि जो तवहिं खीणु॥
तं पणविवि णियगुरु सील खाणि,
णिग्गंथु दयालउ अमिय वाणि।
पुणु पतणमि कह सवणाहिराम,
आयण्णहु जा सद्दत्थ-राम॥

गोयम-एवें जा कहिय सेणियस्स सुह-दायणि।
जा बुहयण-चिंतामणिय धम्मारसहु तरंगिणि॥२॥

महिवीढ पहाणउ गुण-वरिट्ठु,
सुरह वि मण-विंभउ जणइ सुट्ठु।
वर तिण्णि-साल-मंडिउ पवित्तु,
णंदइ पंडिउ सुर पार पत्तु॥

रुहियासु वि णामें चणिउ इट्ठु,
अरियण जणाइ हिय-सल्लु कट्ठु।
जहिं सहहिं णिरंतर जिण-णिकेय,
पंडुर-सुवण्ण-धय-सुह-समेय॥

सट्टाल स-तोरण जत्थ हम्म,
मण सुह संदायण णं सुकम्म।
चउहट्टय-चच्चर-दाम जत्थ,
वणिवर ववहरहिं वि जहिं पयत्थ॥

मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ,
जहिं जण णिवसहि संपुण्ण अत्थ।
जहिं आवणम्मि थिय विवह भंड,
कलवट्टहि कसयहिं भम्मखंड॥

जहिं वसइ महायण सुद्ध-बोह,
णिच्चंचिय पूया-दाण-सोह।
जहि वियरहिं वर चउ वण्ण लोय,
पुण्णेण पयासिय दिव्व-भोय॥

ववहार चाग संपुण्ण सव्व,
जहिं सत्त वसण-मय-हीण भव्व।
सोवण्ण-चूड मंडिय-विसेस,
सिंगार-भार-किय-णिरविसेस॥

सोहग्ग-णिलय-जिणधम्म-सील,
जहिं माणिणि-माण-महग्घ-लील।
जहिं चोर-चाड-कुसुमाल दुट्ठ,
दुज्जण स-खुद्द-खल-पिसुण धिट्ठ॥
णवि दीसहि कहि महि दुहिय-हीणु,
पेमाणुरत्त सव्व जि पवीणु।
जहिं रेहहि हय-पय-दलिय मग्गु,
तंबोल-रंग-रंगिय-धरग्गु॥

सुहलच्छि जसायरु णं रयणायरु बुहयण णउ णं इंदउरु।
सत्थत्थहिं सोहिउ जण-मण-मोहिउ णं वरणय रह एहु गुरु॥३

तहिं साहि सिकंदरु सामिसालु,
णिय पइ पालइ अरियण भयालु ।
तं रज्जि वसइ वणिवरु पहाणु,
दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-णिहाणु ।
जो अयरवाल कुल-कमल-भाणु,
सिंघल-कुवलयहु वि सेय-भाणु ।
मिच्छत्त-वसण-वासण विरत्तु,
जिण सासणि गंथह पाय-भत्तु ॥
चउधरिय णाम चीमा सतोसु,
जो वंसह मंडणु सुयण-पोसु ।
तं भामिणि गुण गण-सील-खाणि,
मल्हाही णामें महुर-वाणि ॥
तं णंदणु णिरुवम गुण णिवासु,
चउधरिय करमचंदु अरुहदासु ।
जिणधम्मोवरि जें बद्धगाहु,
णिव हियइ इट्ठु पुरयणह णाहु ॥
जिण-चरणोदएण वि जो पवित्तु,
आयम-रस-रत्तउ जासु चित्तु ।
उद्धरिउ चउव्विह-संघभारु,
आयरिउ वि सावय-चरिउ चारु ॥
चउदाणवंतु णं गंध-हत्थि,
वियरेइ णिच्च जो धम्म-पंथि ।
सम्मत्त-रयण-लंकिय सरीरु,
कणयायलु व्व णिक्कंपु धीरु ॥
सुहि परियण-कइरव-वणहिं हंसु,
जिणवर-सहमज्झें लद्ध-संसु ।
तं भामिणि दिउचंदहि मियच्छि,
जिण-सुय-गुरु भत्तिय सील सुच्छि ॥
तं जायउ णंदणु सील खाणि,
चउमहणा णामें अमिय-वाणि ।
धण-कण-कंचणु-संपुण्ण संतु,
पंडियहं वि पंडियगुण-महंतु ॥

णर-रयणह णं उप्पत्ति-खाणि,
जा वीणा इव कलयंठि वाणि ।
सोहग्ग-रूव-चेलणि य दिट्ठ,
सिरि रामहु सीया जिह वरिठ्ठ ।
तहि वीर उवण्णा रयण चारि,
णं णत चउक्क सुरूव धारि ।
तम्मज्झि पढमु वियसियसुवत्तु
लक्खण-लक्खकिउ वरण-चत्तु
अतुलिय-साहसु सहसेकणेहु,
चाएण कण्णु संपइहिं गेहू ।
धीरें गिरि गंभीरें सायरु,
णं धरणीधरु णं रवि-ससि सुरु
णं सुरतरु पइ पोसणु सुहहरु
णं जिणधम्मु पयडु थिउ वसु
जिं णियजसि पूरिय दाणि महि
जो णिव सुह पालउ सुयणसुहि
दिउराजु णामु चउधरिय सुि
जिणधम्म-धुरंधरु धम्मणिहि
वियणाण कुसमु बीयउ सुपुत्तु,
जो मुणइ जिणेसर धम्मसुत्तु ।
सुपवीणराय-वावार-कज्जि,
गंभीरु जसायरु बहुगुणिज्ज ।
झाभू चउधरिय विसुद्ध भाइ,
जो णिव-मणु रंजइ विविह भाइ
अण्णु वि तीयउ रिसिदेव-भत्त
गिह-भार-धुरंधरु कमल-वत्तु ।
चुगनाणामें चउधरिउ उत्तु,
जो करइ णिच्च उवयारु त
पुणु चउथउ णंदणु कुल पया
अवगमिय सयल-विज्जा-विला
जिण-समयामय-रस-तित्त चित्त
छुट्टाणामें चउधरिय उत्तु ॥

दुहि-यण-दुह-णासणु बुह कुल-सासणु जिण सासण-रह-धुर-धवलु
विज्जा लच्छी घरु रूवें णायरु अह णिसु किण विह उद्धरणु ॥ ४

ए चउ भाइय जिणमइ-राइय, दिउराजु
णाणासुह विलसइ कइयण पोसइ णियकुल

तं पणइणि-पणइ णिबद्ध-देह,

अण्णहि दिणि जिणवर गंथद

भावें वंदिउ तहं पासणाहु,
पुणु जिण-गंथाणं णविवि साहु।
सिद्धंत-अत्थ भाविय मणेण,
पुरयण सुहयारउ सुरधणेण॥
तहं दिट्ठउ पुणु सरसइ-णिवासु,
माणिक्यराज जिण गुरह दासु।
तेणवि संभासणु कियउ तासु,
जा गोट्ठि पयासइ बहु सुपासु॥
तं जिण अंचण पसरिय भुवेण,
अक्खिउ बुहसूरा णंदणेण।
भो! अयरवालकुल कमलसूर,
बुहयण जणाण मण आस पूर॥
जिणधम्म-धुरंधर गुण-णिकेय,
जसपूर दिसतर किय ससेय।
चउधरिय खेमहणासुय सुणेहिं,
कलिकालु पयलु णियमण धरेहिं॥
दुज्जण अवियद्दवि दोस गाहि,
वट्टंति पउर पुणु पुहइ माहि।
इय सुकइत्तणि पुणु बद्धणाहु,
णिय हियइ धरेप्पिणु पासणाहु॥
सत्थत्थ-कुसल लइ रसह भरिउ,
सिरिअमरवइरसेणहु वि चरिउ।
भउ वंसु गरिट्ठहु पुहइमज्झि,
णं आइसाह हीणह दु सज्झि॥
जह जाय पुरिसवर तवहं धारि,
वरसीहमल्ल पमुहाइ सारि।
। वयणु सुणेप्पिणु मणि पुलएविणु अक्खइ देवराज बुहहो
णो माणिक पंडिय सील अखंडिय वयणु एकु महु सुणहिं लउ

अन्तभाग :—

णंदहु जिणवर सासण सारउ,
जिणवाणी वि कुमग्ग-वियारउ।
णंदउ बुहयण समय परिट्ठिय,
णंदउ सज्जण जेवि सविट्ठिय॥
गंदउ णरवइ पय रक्खंतउ,
णाय-मग्गु लोमहं सदरिसंतउ।
सति वियंभउ पुट्ठि वियंभउ,
तुट्ठि वियंभउ, दुरिउ णिसुंभउ॥
सेणिउ णिग्गउ णरय णिवासहु,
जिणधम्मु वि पयडउ भव-वासहु।
जिं मच्छरु मोहवि परिहरियउ,
सुहयउझाणि जे णियमणु धरियउ।
हेमचंदु आयरिउ वरिट्ठउ,
तहु सीसु वि तव-तेय-गरिट्ठउ।
पोमणंद धरणंदउ मुणिवरु,
देवणंदि तहु सीसु महीवरु॥
एयारह पडिमउ धारंतउ,
राय-रोस-मय-मोह-हणंतउ।
सुहझाणें उवसमु भावंतउ,
णंदउ बभलोलु समवंतउ॥
तहं पास जिणंदह-गिह-रवयण,
बे पंडिय णिवसहिं कणयवयण।
गरुवउ जसमलु गुणगण णिहाणु,
बीयउ लहु बंधउ भव्व जाणु।
सिरि संतिदास गंथत्थ जाणु,
चव्वइ सिरिपासु विगय-माणु॥
णंदउ पुणु दिवराउ जसाहिउ,
पुत्त-कलत्त-पउत्तु वि साहिउ।
घत्ता—रोहियासि पुरि वासि, सयलु लोउ सह णंदउ।
पास जिणहु पय-सरणु, णाणा थोत्तहिं वंदिउ॥११
पुणु णामावलि भणउ विसारी,
दायहु केरी वयण विसारी।
अइरवालु सुपसिद्ध विभासिउ,
सिंघल गोत्तिउ सुयण-समाहिउ॥
बूल्हा णिवि अहिहाणें भणिउ,
जे णिय-तेए कुलु संताणिउ।
करमचन्दु चउधरिय गुणायरु,
दिवचंदही भज्जहि वि मणोहरु॥
तस्स तणुरुह तिण्णि वि जाया,
णं पंडव इव तिण्णि समाया।
पढमउ सत्थ-अत्थ-रस-भायणु,
महणाचंदु णं उइयउ धरइणु॥
तह वणिया पेमाही सारी,
पुच्छउ किं जुव मणहारी।
अग्गिमु वाणें जिउ सेयंसिउ,
उज्जल जसचरिओ वि जयंसिउ॥

असुवइ परहर तियहिं विरत्तउ,
जं असच्च कइया गाउ-उत्तउ ।
दिउराजु जि जिण सहहिं महल्लउ,
गोणाही तिय रमणु वि भल्लउ ॥
तहु कुक्खि सिप्पि मुत्ताहलाइं,
उप्पणइं वेसु परिउ सलाइं ।
पहिलारउ गिय कुलहं वि दीउ,
हरिवंसु णामु गुणगण विदीउ ॥
घत्ता—तहु भज्जा गुणहिं मणुज्जा, मेल्हाही पभणिज्जए ।
गउरि गंग ण उवहि सुया तहु कस उप्पम दिज्जइं ॥१२
पुव्वहि अभयदाणु असु दिएणउ,
तह सुउ अभयचंदु सुणि संणिउ ।
अवरु वि गुण-रयणहिं रयणायरु,
देवराज सुउ सयल दिवायरु ॥
रतणपालु णामें पभणिज्जइ,
तहु भूराही ललण वि गिज्जइ ।
देवराय पुणु बीयउ जायउ,
भाभू णामें जग विक्खायउ ॥
तह चोवाही भज्ज कहिज्जइ,
तो तेंयहु-णेहें जो छिज्जइ ।
पढमउ णायराउ तहु-कामिणि,
सूवटही णामें जणाराविणि ॥
बीयउ गेल्हु वि अवरु पयासिउ,
भाभू तीयउ पुत्तु पयासिउ ।
चाओ णामें जण-विक्खायउ,
महणासुउ चुगणा पिय भासउ ॥
डूंगरही तहु भामिणि सारी,
खेतासिंघ णंदण जुयहारी ।
सिरियपालु पुणु रायमल्लु
पुणु कुंवरपालु भासिउ जडिल्लु ॥
महणा अवरु चउत्थउ णंदणु,
छुटमल्लु वि जो धम्महु संदणु ।
फेराही अंगण मण-हारउ,
दरगहमल्लु वि णंदणु रइ सारउ ॥
घत्ता—करमचदु पुणु पत्तु, बीयउ जो जुवि भणिउ ।
साहा हिय पिय उत्तु गुरु-पय रत्तु वि णाणिउ ॥१३
तहो अंतहो अंगोभव तिरिण जोय,
विसुसुय पवरांजउ अज्जुणो य ।
पहलारउ रावण तस्स णारि,
रामाही जाया अहि वियारि ॥
तहु सरीरि सुअ चारि उवरणा,
पुहइमल्लु वि पढमु सुवरणा ।
तस्स भज्ज बहु णेहालकिय,
कुलचंदही जाया बहु संकिय ॥
कित्तिसिंघु तहु कुक्खि उवएणउ,
गग्गिर गिरु णव कंचण वरणउ ।
पुणु जस चंदुव चंदुभणिज्जइ,
लूणाही पिय यम अणुरंजइ ॥
तह वि तणंधउ लक्खणलंकिउ,
मदणसिंघ जो पावह सकिउ ।
अवरुवि वीण कंदु वीणावरु,
पोमाही तहु कामिणि मणहरु ॥
णरसिंघु वि तउ सुउवि गरिट्ठउ,
लच्छि पिल्लु ण पियरह इट्ठउ ।
पुणु लाडणु रूवें मयरद्धउ,
तहु वीवोकंता वि जसद्धउ ॥
पुणु जोजा बीयउ पुत्तु सारु,
णियरूवें जित्तउ जेण मारु ।
दोदाही कामिणि अणुरंजइ,
जें सुहि भरणें सग्गि गमिज्जइ ॥
जोजा अवरवि णंदणु सारउ,
लखमणु णामें पंडिय हारउ ।
मल्लाही कामिणि तहु णंदणु,
हीरू णामे जण-मण-णंदणु ॥
घत्ता—अवरुवि णंदणु तीयउ ताल्हू णामें भासिउ ।
बाल्हाही मणहारु वे सुय ताहं समासिउ ॥१४॥
पढमउ पोमकंति दामू सुहो,
इच्छाही भामिणि दिएणउ सुहो ।
महदासु वि तहु पुत्तु पियारउ,
पुणु दिवदासु बीयउ मणहारउ ॥
साधारणाही भज्ज मणोहरु,
घणमलु णंदणु तहु पुणु सुहयरु ।
जगमलही कामिणि तहु सारी,
चायमल्लु सुय पोसण हारी ॥
इय दिवराजहं वसु पयासिउ,
काराविउ सत्थु जिं रस सारउ ।

कोह-मोह-भय-माण-वियारउ,
जं अक्खरु ण किंपि वियाणासिउ ॥
सुपसाएं वि विरुद्धउ भासिउ,
.... ?
......................,
इं सरसइ महु खमइ भंडारी ॥
वीर जिणहो मुहु णिग्गय सारी,
जे धारें ते भव-सरि-तारी ।
हेम-पोम आयरिय विसेसें,
बंभुज्जायां गुण गणिणाहीसें ॥
मइ कस वट्टिय वण्णधरेप्पिणु,
कव्व सुवण्णहु लीह वि देप्पिणु ।
मत्त-अत्थ-सोहग्ग खिवेविणु,
अत्थ-विरुद्ध किट्टि कट्टे विणु ॥
सोहिउ एहु वि मणु लाएविणु,
होउ चिराउसु कव्वु-रसायणु ।
विक्कम रायहु ववगय कालइं,
लेसु मुणीस विसर-अकालइं ॥
धरणि अंक सहु चइतवि मासें,
सणिवारें सुय-पंचमि दिवसें ।
कित्तिय-णक्खत्तें सुह जोएं,
हुउ उप्पण्णाउ सुत्तु वि सुह जोएं ॥

हो वीर जिणेसर जग परमेसर एत्तिउ लहु महु दिज्जउ ।
जं हि कोहु ण माणु आव ण जाणु, सासय-पय महु दिज्जउ ॥१५

इय महाराय-सिरिअमरसेण-चरिए चउवग्ग-सुकह कहासमरसेण-संभरिए सिरिपंडियमाणिक्कु-विरइए साधुसिरि-महणासुय-चउधरि-देवराजणामंकिए सिरि अमरसेणमुनि पंचमसग्ग-गमणवण्णणो णाम सतमं इमं परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ७ ॥

—प्रति आमेर भंडार सं० १५७७

कार्तिकवदी चतुर्थी रविवार सुवर्णपथ (सुनपत) में लिखित ।

३४—णागकुमारचरिउ (नागकुमारचरित)

कविमाणिक्यराज रचनाकाल सं० १५७९

आदिभागः—

ग्रन्थ प्रतिमें आदिके दो पत्र न होनेसे उससे आगेका भाग दिया जाता है :—

× × ×

तहिं जिणमंदिरु धवलु भव्वु,
सिरि आइणाह जिणबिंब दिव्वु ।
तहिं णिवसइ पंडिय सद्दखणि,
सिरि-जयसवाल-कुल-कमल-तरणि ॥
इक्खाकु वंस महियलि वरिट्ठु,
बुह सूरा णंदणु सुउ गरिट्ठु ।
उप्पण्णउ दीवा उरि रवण्णु,
बुहु माणिकु णामें बुहहि मण्णु ॥
तत्थंतरि सावउ इक्कु पत्तु,
वय दाण-सील-णियमेण जुत्त ।
बुहयण रंजणु गुण गण विसालु,
विच्छिरण वत्थ दिप्पंत भालु ॥
धम्मत्थ काम सेवंतु संतु,
तस जीव दयावरु सिरिमहंतु ।
मेरुव्व धीरु गुणगण-गहीरु,
जिण-गंधोवय-णिम्मल सरीरु ॥
णरवइ सह मंडणु सव्व भासि,
गोहाण गौहु सुय सील-रासि ।
चंदुव्व भुवण-संतावहारि,
वर रूव स उपण्णउ णं मुरारि ॥
छह अंग विहूसिउ णं महेसु,
मंदारय पुज्जिउ णं महेसु ।
जिण पयसी संकिउ णीलकेसु ॥
रस दंसण पालउ सुयण-तोसु,
सिरि ठाकुराणि जिणधम्म धुरंधरु ।
सुरवइ करभुय जुयलेहिं विमलु,
सिरि जइसवाल इक्खाकु वंसु ॥
सिरि जगसी णंदणु सुद्धवसु,
टोडरुमल णामें घर पयलु ।
जं किंत्ति तिलोयइ पूरि थिरु ॥

ते आइ वि जिणहरि णयणाणंदणि आइणाहु जिणवंदियउ ।
पुणु दिट्ठउ पंडिउ भवियण मंडिउ अइ विणयं अब्भत्थियउ ॥

× × ×

इय-वय-पंचमि सिरिणायकुमारचरिए विबुह-चित्ताणु-रंजिये सिरिपंडिय-माणिक्यराज-विरइए चउधरिय-जगसी सुय-राय-रजण-चउधरि टोडरमल्लणामकिए जयंधर-विवाह-वण्णणो णाम पढमो संधि परिच्छेओ समत्तो ।

अन्तिम भाग :—

णंदउ जिणवरिंद जिण-सासणु,
दय-धम्मु वि भव्वह आसासणु।
णंदउ णरवइ पइ पालंतउ,
णदउ मुणिगणु सुत-तउ-वतउ ॥
णंदउ जिण सुहमग्गि चरतउ,
भवियणु दाण-पूय विरयतउ।
कालि कालि धाराहलु वरिसउ,
दुक्ख-दलिद्द दुहिक्खु विणिरउ ॥
घरि-घरि णारिउ रहस णव्वउ,
घरि घरि मगलु गीउ पदरिसउ।
घरि-घरि संखु समुद्दलु वज्जउ,
घरि-घरि लोउ सुहेहिं रंजउ ॥
चउविह सघह दाणह पोसणु,
जिणवरिंद-सुय-गुरु-पय अच्चणु।
णदउ टोडरमल्लु दयालउ,
पुत्त-कलत्त-सुयण-पइ-पालउ ॥
जावहि मेरुचदु रवि णहयलि,
णदउ एहु गथु ता महियलि।
भवियण लोयह पाढिज्जतउ,
णंदउ चिरु दुक्खिउ विहुणतउ ॥
विक्कमरायह ववगय-कालें,
वे समुणीस विसर अंकालें।
पणरह सइ गुणणासिह उरवालें,
फागुण चंदिण पक्खिससिवालें ॥
णवमी सुह णक्खित्तु सुहवालें,
सिरि पिरथीचन्दु पसाय सुंदरें।
हुउ परिपुण्णु कव्वु रस-मदिरु,
सज्जण-लोयह विणउ करेप्पिणु ॥
पिसुण-वयण कद्दमेण भरेप्पिणु,
विरयउ एहु चरित्तु सुबुद्धिउ।
जइ यहु अत्थ-मत्त हीणउ हुउ,
ता महु दोसु भव्वु म गहियउ ॥
विणवइ माणिक्क कई इम,
महु खमतु विबुह गुणमंतिम।
अण्णुवि अमुं णते हीणाहिउ,
मइ-जलेण जं कायमि साहिउ ॥
तं जि खमउ सुयदेवि भडारी,
कइयण-जण तिल्लोयह सारी।
बुहयण रोसु ण करहु महु उप्परि,
अइ रोसें सोहिज्जहु गथु वरि ॥
विसमउ गामिणि वज्जउ मंदलु,
णच्चउ कामिणि होउ सुमंगलु।
गुरयणा वच्छल्लें पडिपुण्णा,
माणिक्कराज वज्जिय-मण्णा ॥
तं पुण्णु करेप्पिणु एहु गथु,
टोडरमल्ल हत्थें दिण्णु सत्थु।
णिय सिरह चढाविउ तेण गंथु,
पुणु तुट्ठउ टोडरमल्लु हियइ गंपि ॥
दाणें सेयांसह कण्णु त पि,
पंडिउ वर पट्टहिं थविउ तेण।
पुणु सम्माणिउ बहु उक्कवेण,
वर वत्थइं कंकण-कुंडलेहिं ॥
अंगुलियहि मुद्दिम णिय-करेहिं,
पुज्जिउ आहारहि पुणु पुणु तुरतु।
हरि रोविव सज्जिउ विणयं णिरुत्तु,
गउ णियघरिं पंडिउ गंथु तेण।
जिण-गेहि णियउबहु उच्छवेण ॥
तहि मुणिवर वंदहि सुक्क गंथु,
दिण्णउ गुरु-हत्थें सिवह-पंथु।
वित्थारिउ अत्थु वियारि तेण,
भव्वयणह सुहगइ दावणेण ॥
पुणु टोडरमल्लहं णिवसरि पुण्णह लिहयइ गथ बहुसुच्छ णिरु
जिणगिह मुणिसघह तव-वय-वतहं णाण दाणु तं दिण्णु वरु ॥

शुभभूयात्। ग्रथाग्र ३३००
प्रति आमेरभंडार लिपि स १५६२

३५—सम्मइ-जिणचरिउ (सन्मति-जिन-चरित्र) कवि रइधू

आदिभाग—

जय सररुहभाणहुँ वड्ढियमाणहु वड्ढमाणतित्थेसरहु।
पणविवि पय-जमल णह-पह-विमलं चरिउ भणामि तहु हय सरहु
वीरस्साणंत विति अमर-वदि-णुदं धम्मभूयादअद्दं,
णट्ठा कम्मट्ठविति परमगुणस्साहिरामं जिणस्स।
वंदित्ता पाय-पोमं ति-जय मणामुय धम्मचक्काहिवस्स,
वोच्छं भव्वत्यजुत्तं अणह-सुहहरं तच्चरित्तं पवित्तं ॥१॥

× × ×

केवलणाण-सतणु-पहवंती,
साय-वाय-मइ-कमल हसंती।

विरिण पमाण-णयण-जोवंती,
दो-दह-णिय अगइ गोवंती ॥
वे-णय-कोमल-पयहिं चलंती,
चउदह-पुव्वाहरण-धरंती ।
ति-जय-चित्ति विब्भमु विहुणंती,
अत्थ-पसत्थ-वयण-भासंती ॥
कुणय-विहडणि संतावंती,
णाणा-सद्द-दसण सोहंती ।
छंद-दुविह-भुयडाल-रवण्णी,
वायरणगु णाहिं सुयवण्णी ॥
जिणमय-सुत्त-वत्थ-पगुरणी,
सोल-महाकुल-हर-हर-धरणी ।
दुविहालंकारेण पहाणी,
होउ पसण्ण जिणेसहु वाणी ॥
यदेवि भडारी ति-जय पियारी दुरियवहारी सुद्धमइ ।
इयण-यण-जणणी सुहफल-जणणी सा महु दिज्जउ विमलमई

ससारोवहि-पोय-समाणा,
विगय-दोस वे मुणिय पमाणा ।
णाण-चउक्को जोय दिवायरु,
थावर-तस सत्ताहं दयावरु ॥
जे हुय गोयमु पमुह भडारा,
ते असेस पणविवि सरहारा ।
ताहं कमागय तव-तवियंगो,
णिच्चब्भासिय-पवयणसंगो ॥
भव्व-कमल-सर-बोह-पयंडो,
वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो ।
तस्स पसाएं कव्वु पयासमि,
चिर भवि-विहिउ असुह णिण्णासमि ॥
जइ कह भवि मणुयत्तणु लद्धउ,
देस-जाइ-कुल-वस-विसुद्धउ ।
तं हेलइ विहलउ ण गमिज्जइं,
सत्थब्भासे सहलो किज्जइं ॥
गोवग्गिरि दुग्गमि णिवसंतउ, वहु सुहेण तहिं ।
पणमंतउ गुरु-पाय पायडंतु जिण सुत्तु-महिं ॥३॥
जिण-धम्म कम्मम्मि कय उज्जमो जाम,
णिय गेह सयण यलि सुहि सुत्तु बहु ताम ।
सिविणंतरे दिट्ठ सुयदेवि सुपसण्ण ।
आहासए तुज्झ (?) हउं जायसु पसण्ण ॥

परिहरिहिं मण चिंतकरि भव्वणिरु कव्वु,
खलयणह मा डरहिं भउ हरिउ मइ सव्वु ।
तो देविवयणेण पडिउ विसाणंदु,
तक्खणेण सयणाउ उट्ठिउ जि गय-तंदु ॥
दिसवहणियतोय पुणु तुट्ठ चित्तंमि,
संपत्तु जिणगेहिं सुहगइं णिमित्तम्मि ।
पणवेवि जिणणाहु बहुविह विसंथुत्ति,
मुणिपाय वंदेवि जाथक्कु जसमुत्ति ॥
ता तम्मि खणिबंभ-वय-भार भारेण,
सिरि अइरवालंकवंसम्मि सारेण ।
संसार-तणु-भोय-णिव्विण्णचित्तेण,
वरधम्म-झाणामएणेव तित्तेण ॥
सत्थत्थरयणोह-भूसिय-सदेहेण,
दहएग पडिमाण पालण स-णेहेण ।
खेल्हाइ णामेण णामिउण गुरुतेण,
जसकित्तिविण्णत्तु मंडिय गुणोहेण ॥
भो मयण-दावग्गि-उल्हवण-वणदाण,
संसार-जलरासि-उत्तार-वर-जाण ।
अम्हह पसाएण भव दुह-कयंतस्स,
ससिपहजिणिंदस्स पडिमा विसुद्धस्स ॥
काराविया मइं जि गोवायले-तुंग,
उडुचावि णामेण तित्थम्मि सुह-संग ।
आजाहिया हाण महु जणाण सुपवित्त,
जिणदेव मुणि पायगंधोवसिरसित्त ॥
दुल्लंभु णर-जम्मु महु जाइ इहु दिण्णु,
संगहिंवि जिण-दिक्ख मयणारि जिं छिण्णु ।
तहिं पढिय उवयारं कारणेण जिण-सुत्ति,
काराविया ताहि सुणिमित्त ससि-दित्ति ॥
कलि-कालु जिणधम्मधुर धारपूढस्स,
तिजयालए सिहरि जस सुज्झरूढस्स ।
सिरि कमलसीहस्स संघाहिवस्सेव,
सुसहायएणावि तं सिद्धु इह देव ॥
जणणी उवयारहु णर-भवयारहु, हुवउ तस्स णिब्भार हउ ।
एव्वहिं मुणि-पुंगम बहु-सुय-संगम आहासमि णिरुविगय-भउ ॥
महु मणम्मि सल्लेक्कु पयट्टइ,
तुम्ह पसाएं सोऊ हट्टइ ।
चित्ति परमु वइराउ धरिंतें
सु-तव-भारि विग्गहु धारंते ॥

णिय जणु णगगइं भासिउ जं ते,
किंचि किंचि मणि मोहु कुणते ।
णाणावरण-कम्म-खय-कारणि,
आसि विहिय कलि-मल-अवहारणि ।
सिरि चरमिल्ल जिणिंदहु केरउ,
चरिउ करावमि सुक्खजणेरउ ।
जइ कुवि कइयणु पुण्णे पावमि,
ता पुण्णह फलु तुम्हहं दावमि ॥
तइयाइ ममाइ तासु पउत्तउ,
तेण जि अणुमणियउ णिरुत्तउ ।
तं जि सहलु करि भो मुणि पावण,
एत्थु महाकइ णिवसइ सुहमण ॥
रइधू णामें गुण गण धारउ,
सो णो लधइ वयण तुम्हारउ ।
तं णिसुणिवि गुरुणा गच्छहु गुरुणाईं सिंहसेणि मुणेवि मणि
पुरु सठिउ पडिउ सील अखडिउ भणिउ तेण तं तम्मि खणि
भो सुणि कइयण-कुल-तिलय-तार
णिव्वाहिय णिच्च कइत्तभार ।
जिण-सासण-गुण वित्थरण-दच्छ,
मिच्छत्त-परम्मुह भाव-सच्छ ॥
महु तणउ वयण आयणि वप्प,
अवगणहिं बहु विह मण-वियप्प ।
जोयणिपुराउ पच्छिम दिसाहिं,
सुपसिद्ध णयरु बहु सुह-जुयाहिं ॥
णामें हिसारपिरोज अत्थि,
काराविउ पेरोसाहिज सत्थि ।
वण-उववणेहिं चउपास-किण्णु,
पंथिय-जणाहं पह-खेउं छिण्णु ॥
चित्त ग तरगिणि अइ गहीर,
वय-हस-चक्क-मडिय स तीर ।
जहिं वहइ सुहासु समु जलु मुणिट्ठु,
सयलह जीवहं पोसण समिट्ठु ॥
परिहा-जल लहरि-तरंगएहिं,
जा सेवइ सालहु अहमणिसेहिं ।
सप्पुरिसहु सणिहु णाइणारि,
थक्की अवरु द्धिवि सुक्खयारि ॥
जहिं पायार वि सुज्भजियपमत्थ,
रेहंति तिणिण उत्त ंग जत्थ ।
चहुँ गोउर सोहहिं विप्फुरति,
अरियण मणमाणहु अवहरति ॥
दु तिक्खणहं जुत्तवर जत्थ हम्म,
कस-वट्टिहिं कसियहिं जहिं जत्थ भम्म ।
जिण-चेईहरु जहिं मज्झिमाइ,
जिण पडिमहिं जुउ सुर-हरु वणाइं* ॥
जहिं सोहइं सरुवरु सलिल-पुण्णु,
परिमलजुएहिं कमलेहिं छण्णु ।
रायालउं सोहइ जहिं विचित्तु,
वर-पंचवण्ण रयणेहिं दित्तु ॥
तिक्खालिय णाहि-भरिय-हट्ट,
छुह-पंकिय जहिं दीसहिं विसट्ट ।
बावार करहिं जहिं वणिय-विंद,
सच्चेण सउच्चे जे अणिंद ॥
खडतीसयवणि जहिं सुहि वसंति,
वित्ताणुसारि दाणाइं दिंति ।
अण्ण जहिं सावय विगयविआवय णिवसहिं जिणपयभत्तिरया ।
छक्कम्महिं जुत्ता वसण-विरत्ता पर-उवयारह णिच्च रया ॥६॥
जो अयरवाल-कुल-कमल-भाणु,
वियसावणि गुण-किरणहिं पहाणु ।
णरपति णामें संघहु सहारु,
संघाहिउ धरियउ संघभारु ॥
तहु णंदणु बील्हा साहु जाउ,
जिणधम्म धुरधरु विगय-पाउ ।
सम्माणिउ जो पेरोजसाहिं,
तहु गुण वण्णणि को सक्कु आहिं ॥
तहु णंदणु हूवा वेवि इत्थ,
बाधू साधू णामें पसत्थ ।
बाधू सुओ जाउ दिवराजु सुपसण्णु,
दालिद्दतिमिरतयरु णंइ रविविमण्णु ॥

---

* तहिं मुणिवरु हुउ चिरु सिद्धसेणु,
जो सिद्ध विलासिणि तणउ कंतु ।
तहो सीसु जाउ मुणि कणयकि (त्ति)
जो भव्व-कमल-बोहण-दिणिंदु ॥

ये चारों पंक्तियां नयामंदिर धर्मपुराकी अपूर्ण प्रतिमें और सेठके कूचा मन्दिरके शास्त्रभण्डारकी प्रतिमें नहीं हैं। किन्तु आरा सिद्धान्त भवनकी प्रतिमें पाई जाती हैं।

एमाइ बहु वणिय-कुल भूरि णिवसंति,
जिण-पूय-उच्छव सुदाणाइं ववसंति ।
णिम्मलु कुलुब्भूय जुवईउ जिणहम्मि,
कर पूय संजुत्ति कय जंति सुहकम्मि ॥
तं णयरु को वण्णणेई सुकइलोइ,
सुरगुरु वि वण्णंतु संदेह मइ होइ ।
इ पट्टणि अरिदल वट्टणि जिण-पय-पयरुह-भमरणिहु ।
इए मेहव थिरुसहजपालणिरुअयरवालकुल गयणविहु
तहु णंदणु मुणियण-पायभत्तु,
विहलियजणासपूरण सुसत्तु ।
संवाहिउ सहएव जि पसिद्धु,
चउविह-खवहं चाए संणिन्द्धु ।
णियकुल-कुवलय-अरुणीस-तुल्लु,
पर-उवयारहं जो मणि अभुल्लु ।
काराविवि जिणहु पइट्ठ जेण,
लच्छिहिं फलु गिण्हिउ सुहमणेण ।
तित्थयरु गोत्तु दुल्लहु णिबद्धु,
महिमंडल णिम्मलु सुजस लद्धु ।
तोसउ णामें तहु लहुउ बंधु,
सत्थत्थ-कुसल जो सव्वसंधु ।
जिणचरणकमल-गंधोवएण,
तणु सिंचिवि कलिमलु हणिउ जेण ।
संसार-महावय-णासणाइं,
पविहियइ जेण सुह-भावणाइं ।
सग-वसण-तिमिर-घण-चडरोइ,
जिणधम्म-धुरधरु एत्थु लोइ ।
सम्मत्त रयण-भूसिय-णियंगु,
जे पालिउ सावय-वय अभगु ।
बुहयण-जणाण जो भत्तिवंतु,
बहु सील-सउच्चें अइमहंतु ।
दाणेण गुणेण वि अइपवीणु,
धम्मामएण जसु चित्तु लीणु ।
आजाही पिययम-सुह-णिहाणु,
वणिवर-विंदहं जें लद्धु माणु ।
पुण तहो भव्वहुँ वियलिय गव्वहुँ णामु चडाविहिं कव्वु थिरु
। जि कालंतरि, इह भरहंतरि परिवट्टइं मो तं जि चिरु ॥८

जहं पयपास-जिणिंदह केरउ,
चरिउं रइउं बहु सुक्ख-जणेरउ ।
पुणु मेहेसर चमुवइ चरिउं,
लोय पयासिउ बहुरस-भरिउ ।
खेमसीह वणिणाहहु णामें,
किं पइं पूरिय चित्तहु कामें ।
पुणु तेसट्ठि पुरिस-रयणायरु,
पवर महापुराणु महसायरु ।
कुंथु यास विण्णतिवसें जिहं,
पइं विरयउं पुणु भो पंडिय तिहं ।
सिद्धचक्कविहिं पुणु जि पउत्ती,
हरसीसाहु णिमित्त णिरुत्ती ।
पुणु बलहद्द-चरिउं सुक्खासिउं,
तहेव सुदंसण-सीलकहासिउं ।
धण्णयकुमार-पमुह बहु चरियइं,
जिह पय विहियइं भूरिरस-भरियइं ।
तिंह कर वड्ढमाण जिणणाहहु,
चरिउं जि केवलणाण पवाहहु ।
महु वयणे तोसउहु णिमित्तें,
चयहिं तं हु मणि विहिय ममत्तिं ।
तं णिसुणिवि हरसिंहहु पुत्तें,
खण-भंगुर-समार-विरत्तें ।
गुरु-पय-कमल-हत्थ धारेप्पिणु,
कइणा बोलिउ ता पणवेप्पिणु ।
हउं तुच्छमइं कव्वु किह कीरमि,
विणु वलेण किम रणमहि धीरमि ।
णो आयणिणय वायरण तक्क,
सिद्धंत चरिय पाहुड अवक्क ।
सुद्धायम परम पुराण गंथ,
माणस-संसय-तम-तिमिर-मंथ ।
किह कव्वु रयमि गुण-गण-समुद्द,
को उग्घाडइं जिण-समय-मुद्द ।
अम्हारिसेहि णिय वर कईहिं,
बुह-कुलहं मज्झि उज्झिय-मईहिं ।
णामस्स वि धारणि गहणु भव्वु,
भो किं कीरिज्जइं चारु कव्वु ।

ता सूरि भणइ सुणि कइ-ललाम,
भो रयधू ७क्खिय छंद गाम।
सुहु बुद्धि तरंगिणिए समुद्द,
मिच्छावाइय मययरु रउद्द।
इय परियाणिवि मा होहिं मंदु,
अणुराए थुणिज्जइ ति-जयवंदु।
ता सुकइ भणइ भो धम्म नाय,
दुल्लंघणिज्जमहु तुम्ह वाय।
चउमुह दो सुणु सयंभुकइ, पुप्फयंतु पुणु वीर भणु।
ते णाणादुमणि उज्जोययरा, हउं दीवोवमु हीण-गुणु ॥९॥
पुणु विहसेप्पिणु सूरि पयंपइं,
एह चिंतमणि मावहि संपइं।
जइं सग्गेसु णहयलि गमु सज्जइं,
ताम डरु किं णिय कमु वज्जइं।
जइ सुरतरु इच्छिय फल अप्पइं,
ता किं इयरु चयइं फल संपइं।
जइ रवि किरणहि तमभरु खंडइ,
ता खज्जोउ सपह किं छंडइ।
जय मलयाणिलु सुअणु वहु वासइं,
ता किं इयरु म वहउं स आसइं।
जसु मइ पसरु अत्थि इह जेत्तउ,
दोसु णत्थि सो पयडउ तेत्तउ।
इय णिसुणिवि जस मुणिहु पउत्तउं,
कइणा ता मणिणउं णिरुत्तउ।
करणहि महइं कइत्तु जि जामहिं,
हुव दुज्जणहं सल्कमणि तामहिं।
पर गुण दोस-करण-णयतंदा,
सज्जणा जसु सहंति णत्ति मंदा।
पणावतह खलु अहियउ कुप्पइं,
खीरु लेवि जिहं फणि विसु अप्पइं।
अमियइं को वि णिंबु जइ सिंचइ,
सो कडुवत्तणु तो वि ण मुचइ।
ज ण हवइ ण-सुणिज्जइ, मणि ण मुणिज्जइं
णवि-सच्च-वियइं पुणु णयणा।
तं पढि जंपहि दुज्जण, णिच्च मलिणा
मरणइं णालत्ति दुव्वयणा ॥ १० ॥
एत्थंतरि खलयण निहिय तासु,
गुरु आहासइं पडिय जणासु।
भप्फर-संगें मइरदरोइं,
किं वच्छणा णिम्मल दिट्ठि होइ।
परदोस विवर मुह लद्धलक्खु,
चरणुज्झिय सकुंडिल गइ दुलक्खु।
पवणासणुव्व दुज्जण-दुरासु,
अवगण्णिवि भव्वह पूर आस।
णउ किज्जइ मणि भउं किंपि ताहं,
तेउं य णारिय णिरु कइयणाह।
जइ खल सबंक अंकुस ण होंत,
ता बुह गइंद णो सज्झ ठंत।
अवगुण-चुउ कव्वु रयंति लोइं
तिं वड्ढारउं गुण कइहु होइं।
जं विहिणा णिम्मिय खल अलज्ज,
तं बहु उवयारु जि विहिय सज्ज।
ता कइणा सुहमइ मंदिरेण,
दुम्मइं-कयली-वण-सिंधुरेण।
पढिवणणउं गुण-रयणाउ तेण,
आरंभिउं सच्छ जि सुह दिणेण।
अवगमिय तियाला हिल णिमित्त,
मुणि श्रण संजीवण-जायमित्त।
पयडिय केवलु जगि वड्ढमाणु,
वंदेवि चरमजिणु वड्ढमाणु।
तहु चरिउं भणमि पय णियइ बोह,
अब्भत्थ वि भत्तिए सज्जणोह।
खेल्हणा बंभ ५थज्ज, पुरण करेसमि हउं तुरिया।
जाला यहु अग्गेण आलि विहिय तिंगुण-भरिया ॥ ११ ॥

अन्तिम भाग :—

छंदालंकारेइ अणेयइ,
तहं पुणु गणमत्ताहं जि भेयइ।
अमुणते मइं एहु णिरुत्तउं,
चरमजिणिंदहु चरिउं पवित्तउं।
तं गुणियण महु दोस खमिज्जहु,
अयरिं हीणाहिउं सोहिज्जहु।
णंदउ वड्ढमाण-जिण सासणु,
णंदउ गुण-रयण-तच्च-पयासणु।
कालि कालि देउ जि संवरसइं,
दुक्खु दुहिक्खु दूरि सो णिरसउं।

णंदउ राणउ णीइवियाणउं,
पय पुणु णंदउ पाउ-णिकंदउ।
सावय वग्गुवि पुण्ण समग्गुवि,
........................।
घरि घरि वीयराउ अंचिज्जउ,
मिच्छातम भरु भव्वहं खिज्जउं।
मुणि जसकित्तिहु सिस्स गुणायरु,
खेमचंदु हरिसेणु तवायरु।
मुणि तहं पाल्हबंभुए णंदहु,
तिण्णि वि पावहु भारु णिकंदहु।
देवराय संघाहिव णंदणु,
हरिसिंघु बुहयणं कुल-आणंदणु।
पोमावइ-कुल-कमल-दिवायरु,
सो वि सुणंदउ एत्थु जसायरु।
जस्स घरिज रइधू बुहु जायउ,
देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ।
चरिउ एहु णंदउ चिरु भूयलि,
पाढिज्जंतु पवट्टउ इह कलि।

घत्ता—गोवग्गिरि दुग्गहिं, खय असि गाहिं, सुक्खयरे।
गोउर चउदारहिं, तोरण-फारहिं, बुहयण-मण-संतोस-यरे।२८

भयलिह मेहहिं, जिणवर गेहहिं,
मणिगण चंदिरि, णयणाणंदिरि।
जिण पुज्जिज्जइ, धम्मु सुणिज्जइ,
णिच्च जि जत्थहिं, थक्क अवत्थहिं।
तउ ता विज्जइं भव-मलु-खिज्जइं,
जहं पुणु घरि घरि, धण कंचण भरि।
मंगल गिज्जहिं, उच्छव किज्जहिं,
सावय लोयहिं, मणहु पमोयहिं।
तिविहहं पत्तहं, गुण-गण-जुत्तहं,
दाणइं दिज्जहि, पुण्णइं लिज्जहि।
घरि घरि सद्द सणु, भाविज्जइं मणु,
तसु भावणइ, कम्म-मलु-खिज्जइं।
आवणि आवणि, वर कंचण मणि,
विक्कहिं वणिवर, रूवें जियसर।
करि-वर-दाणें, जहिं अप्पाणें,
पंथइं सित्तइं, अलि आसत्तइं।
दह दिस धाविय, कत्थ ण पाविय,
तहं पुहु-ईसरु, णाइं सुरेसरु।
रूवें ण सरु, कंतिय ससहरु,
लच्छिहि आयरु, णावइ सायरु,
कर करवाले, अरि-खय काले।
तोमर वंसहु, ति-जय-पसंसहु,
उज्जोयणायरु, कुल संतय धरु।
णामें डोंगरु, अरि-यण-खययरु,
तासु जि रज्जहिं, मइ णिरवज्जहि।
जिणहरि ठंते, सुहमइवंते।
विरयउ कव्वे, एहु जि भव्वे।
पुव्वायरियहिं, पट्टि गुणायरु,
अणुकमेण संठिउ, वयसायरु।

मिच्छत्त-तिमिर हरु णाइं सुहायरु, आयमत्थहरु तव-णिलउं
णामेण पयडु जणि देवसेणु गणि, संजायउ थिरु बुह-तिलउं

तासु पट्टि णिरुवम गुण-मंदिरु,
णिच्च भव्वजण-चित्ताणंदिरु।
विमल मईं फेडिय मलम्सगमु,
विमलसेणु णामें रिसि-पुंगमु।
वत्थु-सरूव धम्म-धुर-धारउं,
दह-विह-धम्मु भुवणि वित्थारउ।
वय-तव-सील-गुणिहि जे सारउ,
वज्झब्भंतर संग-णिवारउ।
धम्मसेणु मुणि भवसर तारउं,
........................।
भावसेणुपु णु भाविय णिय-गुणु,
दसण-णाण-चरणु तहं चेयणु।
दोविह तविण जेण ताविउ-तणु,
धम्मामइं पोसिउ भव्वहं गणु।
मूलुत्तर-गुणेहिं जो पावणु,
सुद्धप्पहु सरूउ संभावणु।
कम्म-कलंक-पंक-सोसण इणु,
सहसकित्ति उव्वासिय-भव-वणु।
तासु पट्टि उदयद्दि-दिवायरु,
बज्झब्भंतर-तव-कय-आयरु।
बुहयण-सत्थ-अत्थ-चिंतामणि,
सिरि गुणकित्ति-सूरि पायउ जणि।
तहु सिंहासणि सिहरि परिट्ठिउ,
मुत्ति-रमणि राएणोक्कंठिउ।

सुजस पसर वासिय दिव्वासउ,
सिरि जसकित्ति णाम दिव्वासउं ।
तहु आसणि गुण-गण-मणि-सायरु,
पवयणत्थ-अब्भासण-सायरु ।
दो-विह-तव-तावें तवियंगो,
भव्व-कमल-वण-बोह-पयंगो ।
बज्झब्भंतर-संग-असगो,
जें दुज्जउ णिज्जियउ अणंगो ।
पुव्वायरियहं मग्ग पयासणि,
सच्चेयण मउरंदुव णिरु जणि ।
णिग्गथुवि अत्थहं संजुत्तउ,
सत्थाणवि इयरहं परिचत्तउ ।
छंद-तक्क-वायरणहिं वाइय,
जिणि जिणि विस-सिक्खा दाविय ।
उत्तम-खम-वासेण अमंदउं,
मलयकित्ति रिसिवरु चिर णंदउं ।
तहो वर पट्टु वइरिउंइ अज्जमु,
धरिय चरित्तायरणु स-संजमु ।
गुरु-गुणयण-मणि-पाइय-भूसणु,
वयण-पउत्ति-जणिय-जण-तूसणु ।
कय-कामाइय-दोस विसज्जणु,
दंसिय माण-महागय तज्जणु ।
भवियण-मण-उप्पाइय-बोहणु,
सिरि गुणभद्द महारिसि सोहणु ।

घत्ता—एयह मुणिविंदहिं भवतम-चंदहं पय-कमलहं जे भत्त हुया
ताहं जि णामावलि पयडमि भूयलि, वंदिगणहिं जा णिच्च थुया

णिय-जस-पसर-दिसा-मुह-वासिय,
वर-हिंसार-पट्टणहिं णिवासिय ।
अयरवाल कुल-कमल-दिवायर,
गोयल गोति पयड णियमायर ।
आसि पुरिस जे अगणिय जाया (यउ),
ताहं जि क्कि वण्णम्मि विक्खायउ ।
जिण-पय-पकयाइ णिरु कप्पउ,
परियाणिउ सचित्ति परमप्पउ ।
जाल्हे णाम साहु चिरु वुत्तउं,
पुत्तु जुयलु तहु हुवउ णिरुत्तउं ।
सह जोब्भण गुण मणिरयणायरु,
तिविह पचदाणेण कयायरु ।
सहजपाल पढमउं जयवल्लहु,
तेजू इयरु विबुहजण दुल्लहु ।
णिरुवम-रूव-सील-वय-सज्जा,
झाझेही य पढमिल्लहु भज्जा ।
पुरिस-रयण-उप्पायण-खाणी,
सच्चित्त जि परहुव-सम-वाणी ।

तह उवरि उवण्णा लक्खण-पुण्णा छह णंदण आणंद-भरा ।
णं जिणवर भासिया दव्व सुहासिया, णं रस छह जण पोस-भरा ॥

ताहँ पढमु वर-कित्ति-लयाहरु,
दुहिय जणाण दुक्ख धण खययरु ।
दाणुण्णय-करु णं सुरकरि-करु,
परिवारहु पोसणि सुर भूरुहु ।
जिण-पूयाविहि-करण-पुरंदरु,
णियकुल मंदिर बहु सोहायरु ।
भूरि दव्वु ववसाएं अज्जिवि,
लच्छि सहाउं चवलु पडिवज्जिवि ।
जिणणाहहु पइट्ट काराविवि,
मण-इंछिय दाणइं बहु दाविवि ।
तित्थयरत्त-गोत्तु जि बद्धउ,
संवाहिउ सहदेउ जसद्धउ ।
धामाहिय तहु भामिणि भासिय,
जिणदासहु सुवेण सोहासिय ।
कुमरपाल हिय जिणदासहु पिय,
कहु उवमिज्जइं तहिं सीलहु सिय ।
झाझणु झाइय जिण-पय-कमल,
पढमउं बीयउं तीयउ अमल ।
वच्छराज साभूण माल,
तिण्णि पुत्त हुय ताहं गुणाल ।

सहजपाल सुउ बीयउ पुणु हूयउ, छीतमु गयतमु विमलजसु
दुहियहं दुख-खडणु णियकुलमंडणु गुण-वण्णणिको ईसु तसु।२२

तहु पिया खिम गुण सील अतुल्ली,
जायण-जण आसा तरु-वल्ली ।
खिउ धरही अहिहाणें साहिउ,
ताहि गब्भि हुउ पुत्त गुणाहिउं ।
छह पमाण भूयलि सु-पमाणिय,
गुरुयण जेहिं णिच्च सम्माणिय ।
वणिवर-थट्टहं जो मुक्खेसरु,
वीयराय-पय-पंकय-महुयरु ।

वीरदेउं पढमउं गुणमंदिरु,
दाणुण्णय-करु जो जगि सुंदरु ।
बीयउं हेमाहे भुव दुल्लहु,
णिय-परियण-जणम्मि अइवल्लहु ।
लउदिउ णामें भासिउ तइयउं,
देव-सत्थ-गुरु-पाय-विणीयउं ।
रूपा रूवें जिम मयरद्धउं,
जे णिम्मलु जसु महियलु लद्धउं ।
अत्थि थिरा पंचमु धमंम्गो,
णिच्च विहिय-बुहयण-जण-संगो ।
गिरणारहु जत्तहं सघाहिउं,
चउविह सघभारु णिव्वाहउं ।
छट्ठउ जाला सुवणिय जाणणु,
परिवारहु भत्तउ कमलाणणु ।
सहजपाल णंदणु पुणु तीयउं,
जिण सासण वि जेण मणि भाविउं ।
मणवंछिय-दायण-चिंतामणि,
खेमद णामें विक्खायउं जणि ।
भीखुहीय तहो पियमम-सारी,
पुत्त चउत्थहिं सोहा-धारी ।
पढम पुत्त खेत्ता खेमकरु,
बीयउ चाचा चाएं सुंदरु ।
ठाकुरु णामें तीयउं णंदणु,
भोजा चउथउं जण आणंदणु ।
सहजपाल सुउं तुरिउं पुणु हूउं, डाला णामें पीण भुउं ।
आभाहिय तहु पिया णं रामहु सिया, चारि पुत्त संजाय धुउं ॥३३
जिणदेव-भत्तु दूदणु गरिट्ठु,
परिवारु भत्तु दरवेसु सिट्ठु
सेखू णामें तिय सपुण्णु,
जासा चउत्थ णं दाण-कण्णु ।
पुणु सहजपाल सुउ पचमिल्लु,
थील्हा णामें बहु-गुण-गरिल्लु ।
केसा हिय भासिय तहु कलत्त,
तहु तिण्णि पुत्त जाया पवित्त ।
पहराजु पसिद्धउ मज्झ लोइं,
चउविहदाणें भो भव्व जोइं ।
हरिराजु जि पडिय गुण-पहाणु,
छक्कम्म-रत्तु गुण-गण-णिहाणु ।
जगसीहु जयम्मि मई पहाणु,
णिय-कुल-कमलस्स वियास-भाणु ।
सिरि सहजपाल सुउ भणिउ छट्ठु,
संसार-महण्णव-पडण भट्ठु ।
सग-वसण-विरत्तउं धम्मि रत्तु,
पालियउं जेण सावय-चरित्तु ।
गेहम्मि वसंति अइ पवित्तु,
धणु अज्जिउ जिं दाणहु णिमित्तु ।
तोसउ णामें तोसिय जणोह,
आजाही तहु पिय जणिय णोह ।
णं कुलहर-कमल-निवास-लच्छि,
सुर-सिंधुर-गामिणि दीहरच्छि ।
सुर-वल्लि व परियण-पोसयारि,
जुवई-यण सयलहं मज्झि सारि ।
दाणिं पोणिय णिरु तिविह पत्त,
मह सील पइव्वय णाह-भत्त ।
तहिं गब्भि समुब्भव पुत्त दुण्णि,
णं महिं पयरवउ वउं य विण्णि ।
जेणहु दंसण-रयणहु करंडु,
कुल-कमल-वियासण-किरण चंदु ।
खेल्हण णामें गुणसेण संड,
मिच्छत्त-सिहरि-सिर-वज्ज-दंडु ।
कुरुखेत्त देसवासिय पवित्त,
सावय-वय पालण-विमल-चित्त ।
जिण-पूयाइवि-छक्कम्म-रत्त,
परिवारहु मंडण गुण-णिउत्त ।
जिण-धम्म-धुरंधर पुत्थु लोइं,
तहं गुण को वण्णणि सक्कु होइ ।
सहजा साहहिं पमुह जि रवणु,
भायर चउक्कजुउ पुणु वि अण्णु ।
सिरि सेट्ठिवंस उप्पण्णु धम्मु,
तेजा साहु जि णामें पसण्णु ।
तहु पिय जालपहिं य वण्णणीय,
परिवार-भत्त सीलेण सीय ।
तहि गब्भि उवण्णा सुव सपुण्णि,
राजा स पालु ढाकरु जि तिण्णि ।
तुरिया वि पुत्तिजा पुण्णमुत्ति,
णिच्च जि विरइय जिणणाह-भत्ति ।

खीमी णामा वरसील थत्ति,
को कइं वण्णइं तहिं गुणहं किंत्ति॥
सा परिणिय तेण गुणायरेण,
बहुकालें जं तें सायरेण॥
णिय भायर णंदण गुण णिउत्त,
मागेप्पिणु गिण्हिउं कमलवत्त।
हेमा णामें परिवार-भत्तु,
तहो धरहो भारु देप्पिणु विरत्तु॥
विसयह सुहु मणिवि दुह-णिमित्तु,
. . . . ।
जिण-वय-धारण-उक्कंठएण,
ससारु असारउं मुणिमणेण।
जणणी जणणुवि परिवार-लोउं,
सयलहं वि खमावणु करिवि सोउ
अप्पणु वि खमेप्पिणु तक्खणेण,
जिणवेसु धरिउं णीसल्लएण॥
जसकित्ति मुणिंदहु णविवि पाय,
अणुवय धारिय ते विगय-माय।
तोसउ णदणु दिवराज अण्णु,
साधाहिय पिय णेहें पसण्णु।
परिवार-भत्तु गुणसेणि-जुत्तु,
णिय-वंस-गयण-उज्जोइ-मित्तु।
सच्चावभासि सच्चेयलीणु,
जिणधम्म कम्मु कारण पवीणु।
तहु णंदणु जाया दुण्णि वीरु,
जिणधम्म-धुरंधर गुण-गहीरु।
चंदुव्व कलायरु सिहरुचंदु,
पढमउ सज्जणजणाइ अणदु।
बीयउं पुणु णामें मल्लिदास,
बीसेगूणहं जिणवरहुँ दास।
तोसउ हु पुत्ति तुणु विणिय जाय,
जिणधम्म-कम्मि रय विगय-माय।
जेठी णामें जीवो जि उत्त,
जिण-पय-गधोवइ णिच्च सित्त।
वय-णियम-सील-पालण-समग्ग,
जिण-समयहुभरु धरणि अभग्ग।
लहुबी णामें सेल्ही पवित्त,
विहु परिवारहं जा णिच्च-भत्त।
सीलें सोहग्गें सिय-समाणु,
णिरु पत्तहं चउविह देय दाणु।
तहिं णंदण हूया विण्णि सज्ज,
झांडू भोजा णामें मणोज्ज।
पंच जि सायरह वि अण्ण सूय,
जाल्ही वीरो पमुहाइ हूय।

इहु परियणु वुत्तउं, सजस पवित्तउं, जा कणयायलु सूर ससि।
जावहिं महिमडलु, दिवि आहडलु, णंदउ तावहिं सजसत्तसि॥३४

इय-सम्मइ-जिण-चरिए, णिरुवम-संवेय-रयण-संभरिए, वरचउवग्गपयासे, बुहयण-चित्तस्स जणिय-उल्लासे, सिरि-पंडिय-रइधू-विरइए, साहु सहजपालु-सुय सिरि संघाहिव सहएव-लहुय-भायर-महाभव्व-तोसउ-साहुणाम-णामंकिय-कालचक्क तहेव द्वायारस्स वसणिद्देस-वण्णणो णाम दहमो संधी परिच्छेओ समत्तो। सधि १०। लिखितं पांडे केसा॥

वि० स० १६०० प्रति सिद्धान्त भवन, आरा,
नया मदिर धर्मपुरा दिल्ली।

३६ सुकोसल चरिउ — रचनाकाल सं० १४९६
(सुकोशल चरित्र) — पंडित रइधू

आदिभाग—

जिणवर-मुणिविंदहु थुव-सय-इंदहु चरण-जुवलु पणवेवि तहो
कलिमल-दुहनासणु सुहयण-सासणु चरिउ भणमि सुकोसलहो

तिहु भेय पसिद्ध जि भुवणि सिद्ध,
णिक्कल तहं सयल विसद्द-रिद्ध।
वसुगुण-समिद्ध वसुकम्म-मुक्क,
वसुमी वसुहहिं जे णिच्च थक्क।
परमाणंदालय अप्पलीण,
उप्पत्ति-जरा-मरण त्ति-हीण।
वर णाणामए णारसेण सिच्च,
ते णिक्कल सिद्ध णवेवि णिच्च।
जे घायइं कम्म विणासणेण,
महि विहरहिं केवल-लोयणेण।
अड पाडिहेर अइसय सु-सोह,
भावल्वि-विभासणि भवणिरोह।
अहि-णर-सुर-वइणा णमिय-पाय,
सव्वहं हिय मागहि जाइ वाय।
ते सकल सिद्ध तहं पुणु णवेवि,
पुणु वारसंग सुय पथ सरेवि।

जिण-वयण-विणिग्गउ वयण-पिंडु,
तं सद्द सिद्धु झाइवि अखंडु ।
ए सिद्ध तिविह पणविवि णिरीह,
मिच्छत्त-माण-णिद्दलण-सीह ।
तह गणहर सामिय सुह गइ गामिय भव-सर सोस-दिणेसर
जे सत्त सत्तसय पयडिय सहिदय, तेवरण हियं णिहय सर ॥१
ते पणविवि बहु भत्तिए गणहर,
ताहं पट्टि पुण जे हुव मुणिवर ।
विजयसेण पमुहाय गुणायर,
आयम-सत्थ-अत्थ-रयणायर ।
तेहिं अणुक्कमि सूरि पहाणउं,
छंद-तक्क-वायरणहं ठाणउ ।
खेमकित्ति णामेण जईसरु,
महिउ जेण दुम्महु ऩिरई सरु ।
तासु पयासणि कलिमल-चत्तउ,
णिच्च चित्त भाविउ रयणत्तउ ।
बारह-विह तव भेय सुहंकरु,
हेमकित्ति अहिहाणु दुरिय-हरु ।
तासु पट्टि तव लच्छिहि मंदिरु,
अइ अकंपु णं छट्टउ मंदिरु ।
दुद्दम-इंदिय बल-दमणायरु,
भव्वह-मण-संसय-तम-भायरु ।
मणसिय-विसहर-विस-विणिवारउ,
तेरहविह चारित्त जो धारउ ।
आयम रस रसेण जो सित्तउ,
अहणिसु जें भाविउ रयणत्तउ ।
कुमरसेणु णामें कलि गणहरु,
पणविवि निय-झाण-सुद्धिए भव-हरु ।
अवर वि जे णिग्गंथ महामुणि,
णवकोडि वि तिहु ऊणिय बहु गुणि ।
अण्णहिं दिणि जिणहरि धयलग्गंवरि रइधू बहु-सुह-झाण-रओ
जिणवर दिट्ठउ णयण मणिट्ठउ सिरु धर धरियण वाउ-कओ ॥२
तहिं वंदिउ गच्छहं परमेसरु,
कुमरसेणु पुणु परम जईसरु ।
आसीवाउ दिण्णु तहु राए,
णेहु समप्पि वि अविरल वाए ।
पुणु गुरुणा जंपिउ भो पंडिय,
रइधू णिसुणहि साल अखंडिय ।
तुव जुग्गउ भणेमि हउ पेसणु,
त करणिज्जु अवसु दुह-णासणु ।
जहं पइ णेमि जिणिंदहु केरउ,
चरिउ रइउ बहु सुक्ख जणेरउ ।
अण्णुवि पासहु चरिउ पयासिउ,
खेऊ साहु णिमित्त सुहासिउ ।
बलहद्दहु पुराण पुणु तीयउ,
णियमण अणुराए पइं कीयउ ।
तहु सुकोसल चरिउ सुहंकरु,
विरयहि भव-सय-दुक्ख-खयंकरु ।
तं णिसुणिवि हरसिंघहु णंदणु,
पडिजंपइ किमे जिण-पय-वंदणु ।
सत्त-अत्थ-हीणउ हउ सामिय,
किम पंगुल हवंति णह गामिय ।
किम अतरंडु तरइ पुणु सायरु,
किम अभिडइ रणं गणि-कायरु ।
वोक्कडु धूलु करिहु किं बोल्लइ,
किम वच्छउ धवल हर भरु भिल्लइ ।
आसि कइंदहिं चरिउ जि भासिउ,
कह विरयमि हउं तं णेहासिउ ।
पिंगल छंदु विहत्ति ण जाणवि,
किम अप्पउ कइत्त गुणि माणवि ।
अहं तुम्हह वयणहिं करमि सत्थु सुहसय-यरणु ।
पर कारणु सामिय तव पइ गामिय, एकु अत्थ संसय-हरणु ॥३

अंतिमभाग—

जं गण मत्ताहीणउं चरित्तु,
मम भणिउ किंपि इहु गुण पवित्तु ।
तं कोसलमुह णिग्गय सुवाणि,
महु खमहु भडारी अत्थ-खाणि ।
वुहयण मा गिण्हहु किंपि दोसु,
सोहेज्जहु एहु चएवि रोसु ।
भवि भवि होज्जउ महु धम्म बुद्धि,
संपज्जउ तह दंसण-विसुद्धि ।
भवि भवि दुल्लभ समाहि बोहि,
संपज्जउ महु भव-तम-विरोहि ।
राणउ णंदउ सुहि वसउ देसु,
जिण-सासण णंदउ विगय-लेसु ।

सावय-यण णदहु किय सुकम्म,
जे वय-भरु धारहि णट्ट-छम्म ।
णंदउ रणमलु पुणु साहु धणणु,
जिं चरिउ कराविउ इहु रवण्णु ।
मुणियण सहसारहो तव-वयधारहो
मरुसेण सामिहु तणओ।
उवएससुहंकरु णासिय-भव-दुहु
महु मणि णिच्च थुणि कुणओ ॥२॥

सिरि विक्कम समयंतरालि,
वट्टंतइं दुस्सम विसम कालि ।
चउदह सय संवच्छरइं अण्ण,
छण्णउव अहिय पुणु जाय पुण्ण ।
माइ दुजि किण्ह दहमा दिणम्मि,
अणुराहु रिक्खि पयडिय सकम्मि ।
गोवागिरि (गोवग्गिरि) डूगर णिवहु रज्जि,
पइ पालतइ अरिराय तज्जि ।
जिण-चरण-कमल णामिय सरीरु,
सावय-वय-रहधुर-धरण-धीरु ।
*सिरि अयरवाल कुल गयण चंदु,
सघवीर विधा जण जणिय णंदु ।
वे पक्खुज्जल सात णिय भज्ज ?,
अभणी णामा वय-सील-सज्ज ।
तहि उवरि उवण्णउ णर-पहाणु,
अह-णिसु भाविउ जिं धम्म-झाणु ।
महलगि दिउ णामें साहु धण्णु !
णिय जसेण महि वीढ छण्णु ।
तहु भज्जा दुक्खिय-जण जणेरि,
मइ सील तीर वहणेक्क धीरि ।
वीरो णामा वर चाय-लीण,
गइ हंसिणीव सद्देण वीण ।
तहु पुत्तु पढमु जिण-पाय-भत्तु,
आणाहिहाणु गिह-धम्मि रत्तु ।
तहु धरिणि गुणायर सुद्ध सील,
जिण-धम्म-रसायणि जाहि कील ।

वीवो णामा गेह-लच्छि,
चउविह-सघह दाणेण दच्छि ।
तहि उवरि उवण्णा गुण संपुण्णा, पुत्त तिण्णि लक्खणहि जुवा
ताह जि पुणु पढमउ ण ससि पढमउ, पीथा णामें दीह भुवा
तासु पिया पियचित्त सुहायरि,
भणिय कुवेरदेव णं सुरसरि ।
बीयउ णंदणु फुडु जस जसयरु,
णिय-कुल-कमल वियासण-भायरु ।
पल्हण सी (सा) हु वसण-मण-चत्तउ,
जिण-चरणारविंद-रय-रत्तउ ।
कउर पालही तहु [सुह] भामिणि,
णाहहु चित्त णिच्च अणुगामिणि ।
तीयउ सुउ पुणु बहु लक्खण धर,
जो आराहइ अह-णिसु जिणवर ।
देव-सत्थ-गुरु पायहि लीणउ,
कहमवि वयणु ण जंपइ दीणउ ।
रणमलु णामु महिहि विक्खायउ,
जालपही पियथम-अणुरायउ ।
ति सुक्कोसल चरिउ कराविउ,
णिच्च चित्ति पुणु तहु गुण भाविउ ।
जामहि रयणायर णहि ससि भायरु, कुलगिरि-वर-कणयद्दि वरा
तावइं ज तउ बुहहि णिरुत्तउ चरिउ पवट्टउ एहु धरा ॥२३

इय-सुकोसल-मुणिवर-चरिए णिरुवम-सवेय-रयण-संस (भ) रिए सिरि-पंडिय-रइधू विरइए सिरि-महा भव्व-आणासुत-रणमल-णाम-णामकिए सुकोसल-णिव्वाण-गमणं णा म चउत्थो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥ छ ॥ संधि ४॥

प्रति देहली पंचायती मन्दिर लिपि सं० १६३३

सिरि पासणाह चरिउ (पार्श्व पुराण)

पं० रइधू

आदिभाग—

पणविवि सिरिपासहो, सिवउरि-वासहो,
विहुणिय पासहो गुण-भरिओ ।
भवियहं सुह-कारणु, दुक्ख-णिवारणु,
पुणु आहासमि तहु चरिओ ॥

पुणु रिसहणाहु पणविवि जिणिंदु,
भव-तम-णिण्णासणि जो दिणिंदु ।
सिरि अजिउ वि दोस-कसायहारि,
संभउ वि जयत्तय-सोक्खकारि ।

*—सिरि अयर वाल वंसहि पहाणु,
सिरि विधा सघइ (ई) गुण णिहाणु ।

अहिणंदणु जिणु पुणु णाण-चक्खु,
सिरि सुमइदेउ पोसिय-सपक्खु।
पउमप्पहु पउमाऽऽलिंगि अंगु,
सिरि जिणु सुपासु पुणु विगय-संगु।
चंदप्पहु जिणु चंदंसु वाणि,
सिरि पुप्फयंतु तित्थयरु णाणि।
सीयलु वि सील-वय-विहि-पवीणु,
सेयंसु वि सिव-पय-णिच्च-लीणु।
वासवेण महिउ जिणु वासुपुज्जु,
विमलुवि विमलयर गुणेहि सुज्जु।
तित्थयरु अणंतु वि अत चुक्कु,
अरि-कोह-माण-मय-सयल-मुक्कु।
सिरिधम्मु वि धम्मामय-णिहाणु,
पुणु संति जिणेसरु जय-पहाणु।
सिरिकुंथु वि णंत-चउक्कठाणु,
अरणाहु वि लोयालोय-जाणु।
सिरि मल्लिणाहु तित्थयरु संतु,
मुणिसुव्वउ अइसय सिरि महंतु।
तह णमि जिणेसु पावाहि मंतु,
पुणु रिट्ठनेमि राइमइ-कंतु।
सिरि पासणाहु विग्घंत-यारि,
पुणु वड्ढमाणु दुग्गइ-णिवारि।
तसु तित्थ पवट्टइ भरह खेत्ति,
पयडिय धम्माहम्म जुत्ति।

ये सयल जिणेसर, हुव होसहि धर, ते सयल वि पणवेवि धरा
पुणु जिणवर-वाणी लोय-पहाणी, णियमणि धारिवि परमपरा

पुणो वि गोयमो मुणी पयासिया जिणज्झुणी,
पयत्थ जेण भासिया सुसव्व जीव भासिया।
अणुक्कमेण तासु जे, जई वि जाय सव्व ते,
णाविवि णाण-धारया भवण्णबोहि-तारया।
मुणिंदु ताहं संतई, विराय-रोस संजई,
जिणेस सुत्त भासओ गुणाण भूरिवोसओ।
सुचेयणत्थ तम्मओ तवेण सोसिओ वओ,
सहस्सकित्ति पट्टि जो गुणास्सुकित्ति णाम सो
सुतासु पट्टि भ.यरो वि आयमत्थ-सायरो,
रिसीसु गच्छणायको जयत्तसिक्ख-दायको।

जसक्खुकित्ति सुंदरो अकंपु णाय-मंदिरो,
सुसिस्सु तस्स जायओ खमागुणेण राइओ।
सुखेमचंद पायडो जिओ जिणि गजो भडो,
रिसीस सव्व मज्झु ए मई विसाल दिंतु ते।

महिवीढि पहाणउं णं गिरि राणउं, सुरहं वि मणि विंभउ जणिउं
कउ सीसहिं मंडिउ णंइहु पंडिउ, गोयायलु णामें भणिउं ॥२

जहिं सहहिं णिरंतर जिण-णिकेय,
पंडुरसुवण्णधयवसु समेय।
सट्टाल-सतोरण जत्थ हम्म,
मणसुह संदायण णं सकम्म।
चउहट्ट चच्च सद्दाम जत्थ,
वणिवर ववहरहिं वि जहिं पयत्थ।
मग्गण ठाण कोलाहल समत्थ,
जहिं जण णिवसहिं परिपुण्ण अत्थ।
जहिं आवणम्मि थिय विविह भंड,
कसवट्टहिं कसियहिं भम्मखंड।
जहिं वसहिं महायण सुद्धबोह,
णिच्चंचिय पूया-दाण सोह।
जहिं वियरहिं वर चउवण्ण लोय,
पुण्णेण पयासिय दिव्वभोय।
ववहार-पार-संपण्ण सव्व,
जहिं सत्त-वसण मय-हीण भव्व।
मोवण्णचूड मडिय विसेस,
सिंगार भारकिय णिरवसेस।
सोहग्ग-णिलय जिणधम्मसील,
जहिं माणिणि माण महग्घ लील।
जहिं चरड चाड कुसुमाल दुट्ठ,
दुज्जण सखुद्द खल पिसुण धिट्ठ।
णवि दीसहिं कहिंमिव दुहिय हीण,
पेमाणुरत्त सव्वजि पवीण।
जहिं रेहहिं हय-पय-दलिय-मग्ग,
तंबोल-रंगरगिय-धरग्ग।
जहिं सच्च अणुच्चणई विहाइ,
दुग्गहु अवरुंडइ एहणाइ।
सोवण्णरेख णं उवहिं जाय,
णं तोमर णिव पुण्णेण आय।

ताइ विसोहिउ गोयायलक्खु,
णं भज्ज समाणउ णाहु दक्खु।
सुहलच्छि जसायरु णं रयणायरु, बुहयण जुहुण इंदउरु।
सत्थत्थहिं सोहिउ जणमणु मोहिउ, णं वर णयरह एहु गुरु।३

तहिं तोमर कुल सिरि रायहसु,
गुणगण रयणायरु लद्धसंसु।
अण्णायणाय णासण पवीणु,
पंचग मंत सत्थहं पवीणु।
अरि राय-उरत्थलि-दिण्ण-दाहु,
समरंगणि पत्तउ विजय-लाहु।
खग्गग्गि डहिय जें मिच्छ-वंसु,
जसऊरिय ऊरिय जे दिसंतु।
णिव-पट्टालंकिय विउल भालु,
अतुलिय बल-खल कुल-पलय-कालु।
सिरि णिवगणेस णंदणु पयंडु,
णं गोरक्खण विहिणउ वसंडु।
सत्तंगरज्ज भरदिण्ण खंधु,
सम्माण-दाण-तोसिय-सबंधु।
करवाल पट्टि विप्फुरिय जीहु,
पव्वत णिवइ-गय-दलण सीहु।
अइ विसम साह सुद्दाम धामु,
सायरहु तीर संपत्तु णामु।
छत्तोसाउह-पयडण-पसिद्ध,
साहण-सायरु जस-रिद्ध-रिद्धु।
पर-बल-संतासणु णिव-पय-सासणु ण सुरवरु बहु-धण-धणिउ
णव जलहर खस्सरु पहुपहुई धरु, डोंगरिंदु णामें भणिउ।।४

तहु पट्ट महाएवी पसिद्धु,
चंदादे णामा पणयरिद्ध।
सयलते उर मज्झहं पहाण,
णिय-पइ-मण-पोसण-सावहाण।
तहु णंदणु णिरुवम गुण-णिहाणु,
तेयगलु ण पचक्खु भाणु।
णं णवउ जसकुरु पुहमि जाउ,
णं जय-सिरीए पयडियउ भाउ।
सिरि कित्तिसिंधु णामें गरिट्ठु,
णं चंदु कलायरु जय मणिट्ठु।
सिरि डूंगरसीह णरिंद रज्जि,
वणिवरु णिवसइ पुणु बहु दु सज्जि।

दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-णिहाणु,
जो अयरवाल-कुल-कमल भाणु।
मिच्छत्त-वसण-वासण-विरत्तु,
जिण सत्थ णिग्गंथहं पायभत्तु।
सिरि साहु पहुणुजि पहसियासु,
तहु णंदणु णिरुवम गुणणिवासु।
सिरि खेमसीहु णामेण साहु,
जिण धम्मोवरि जें बद्ध-गाहु।
जिणचरणोदएण वि जो पवित्तु,
आयम-रस-रत्तउ जासु चित्तु।
उद्धरिउ चउव्विह संघ भारु,
आयरिउ वि सावय चरिउ चारु।
रिसि दाणवंतु णं गंधु-हत्थि,
वियरेइ णिच्च जो धम्म-पंथि।
सम्मत्त-रयणलंकिय सरीरु,
कणयायलुव्व णिक्कंपु धीरु।
सुह-परियण-कइरव-वण-हिमंसु,
उद्धरिउ पुण्ण पालहु जि वंसु।
धण-कण कंचण-संपुण्णु संतु,
पंडियह विं पंडिउ गुण-महंतु।
दुहियण दुह-णासणु बुह-कुल-सासणु जिण-सासण-रहधुर-धरणु
विज्जालच्छीधरु रूवेणं सरु अहणिसु-किय-विह उद्धरणु।।५

तहु पणयणि पणाय णिबद्धदेह,
णामेण धणोवइ सीलगेह।
सुर सिंधुरगइ पायडिय लील,
परिवारहु पोसण सुद्ध सील।
णर रवणहं णं उप्पत्ति खाणि,
गय-हंसिणीव कलयंठि-वाणि।
सोहग्ग-रूव चेल्लणि व दिट्ठ,
सिरि रामहु जिह पुणु सीय सिट्ठ।
तहिं उवरि उवण्णा रयण चारि,
णं णंत चउक्क सरूव धारि।
तह मज्झि पढमु वियसिय सुवत्तु,
लक्खणं लक्खकिउ वसण-चत्तु।
अउलियसाहु सहसेक्क-गेहु,
सिरि सहसराजु णामें सुणेहु।
विण्णाण कुसलु बीयउ सुपुत्तु,
जो सुणइ जिणेस-भणिउ सुत्तु।

सुपवीणराय वावार-कज्जि,
गंभीरु जमायरु बहु-गुणज्जि ।
पहराजु पहायरु पुहमिणाइ,
जो णिव मणु रंजइ विविह भाइ ।
अण्णु वि तीयउ रिसि-देव-भत्तु,
गिह-भार-धुरंधरु कमल वत्तु ।
सिरि देवसीहु देवावयारु,
जो करइ णिच्च उवयारु सारु ।
चउथउ णंदणु पुणु कुलु पयासु,
अवगमिय-णिहिल विज्जाविलासु ।
जिण समयामय-रस तित्त चित्तु,
सिरि होलिवम्मु णामे पवित्तु ।
एमहिं चहुं सहियउ गुणगण अहियउ खेउंसाहु जसायरु ।
णाणासुह विलसइ जईयण पोसइ णिय-कुल-कमल दिवायरु

अण्णहिं दिणि आयम सत्थदत्थु,
सम्मत्त-रयणलकिय समत्थु ।
गउ जिण-हरि खेउं साहु साहु,
भावें वंदिउ तहि णेमिणाहु ।
पुणु पाल्हबंभु पणवियउ तेण,
सिद्धत्थ भाव भाविय मणेण ।
पुणु तहिं दिट्ठउ सरसइ-णिकेउ,
रइधू पंडिउ पयडिय विवेउ ।
तेण वि सभासणु कियउ तासु,
जो गोट्ठि पयासइ बहु सुयासु ।
ता जिण अच्चण पसरिय भुवेण.
जपिउ हरसिय सव्वी सुवेण ।
भो अयरवाल कुल कमलसूर,
पंडिय-जणाण मण आसपूर ।
जिणधम्म-धुरंधर गुण-णिकेय,
जस-पसर-दिसतर किय ससेय ।
सिरिपजणसाहु णंदण सुणेहि,
कलिकालु पयडु णिय-मणि मुणेहिं ।
दुज्जण अवियड्ड वि दोसगाहि,
वट्टंति पउर पुणु पुहइ माहि ।
मइं सुकइत्तणि पुणु बद्धुगाहु,
पणविव अणुराएं पासणाहु ।
तुहु सत्थु कुसलु लेलेहि भारु,
सिरि पासचरित्तहु जणण-तारु ।

तहु वयण सुणेप्पिणु मणि-पुलएप्पिणु, जंपइ खेउं तासु पुणु ।
भो रइधू पंडिय सील अखंडिय, तुहु वि एक्कु महु वयणु सुणु

णिय गेहि उवण्णउ कप्प-रुक्खु,
तहु फलु को णउ वंछइ ससुक्खु ।
पुण्णेण पत्तु जइ कामधेणु,
को णिस्सायइ पुणु विगय-रेणु ।
तह पइ पुणु महु किउ सइं पसाउ,
महु जम्मु सयलु भो अज्जु जाउ ।
तुहुं धण्णु जासु एरिसउ चित्तु,
कइयण-गुणु दुल्लहु जेण पत्तु ।
बहु जोणि अणंताणंत कालु,
भवि भमइ जीउ मोहेण बालु ।
कहमवि पावइ णउ मणुव जम्मु,
अह पावइ तो पयडइ कुकम्मु ।
बालत्तणि असइ अभक्खु-भक्खु,
रंगइ महि सहइ अणंत दुक्खु ।
कहमवि पावइ तारुण्ण भाउ,
वम्मह-वसेण सेवेइ पाउ ।
ण विआणइं जुत्ताजुत्त-भेउ,
णउ सत्थु ण सरु अरहंतु देउ ।
धावइ दहदिहि दविणच्चि खिण्णु,
णउ भावइ चेयणु परहु-भिण्णु ।
लोहें बद्धहु अलियउ रसंतु,
पर-धणु-पर-जुवई मणि सरंतु ।
मिच्छत्तु विसम-रस-पाण-तत्तु,
णउ कहमवि जिणवर धम्मु पत्तु ।
अहवा विपत्तु णउ मुणइं तत्तु,
विहलउ हारइ पुणु ताण रत्तु ।
रयणुव्व दुलहु सावयहु जम्मु,
मह पुण्णें मइं लद्धउ सकम्मु ।
भो पंडिय सिरि पासहु चरित्तु,
पभणहिं हउं सुणमिसु एयचित्तु ।
ते सवणजि सुणहिं जिणिंद-वाणि,
संदेहु किंपि मा चित्ति ठाणि ।

इय साहुहु वयणें वियसियवयणें पंडिएण हरिसेप्पिणु ।
तें कव्व रसायणु सुहसयदायणु पारद्धउ मणु देप्पिणु ॥८॥

अन्तिमभाग :—

सिरि अयरवाल-कुल-लद्ध-ससु,
एं डिल गोत्तें वरणाइं हसु ।
जोइणिपुरम्मि णिवसंतु आसि,
सिरि देदासाहु स पुण्ण-रासि ।
पुणु तासु अणुक्कमि लच्छिकोसु,
महियाणामें जण जणिय-तोसु ।
तहु णदणु पैरूपावहीणु,
पुणु तासु तणुब्भउ धम्मि लीणु ।
अच्चियति जिणवर चरणारविंद,
मह दाणें पोसिय वंदिविंद ।
णामेण पुण्णपालु जि पउत्तु
चाहडिय णाम पुणु तहु कलत्तु ।
तहु पुत्तु विणिण चदवक सोह,
जिणधम्म धुरधर पयड गोह ।
तह गरुवउ साहु जा पउत्तु,
नाथू साहु वि पुणु तासु पुत्तु ।
नाथूसाहुहु सुव बिणिण हूव,
झामणु बीधा गुणसारभूव ।
बीयउ जि पुण्णपालहु जि पुत्तु,
जायउ भावियउ जिणिंद सुत्तु ।
जिणवरपयभत्तउ गिह वयरत्तउ, जसु जसु वदियणहिं गुणिउं ।
परियण-सुह-दायणु गुणसय भायणु पजणसाहु णामें भणिउं
तहु पिय वील्ही णाम गुणायर,
पियथम चित्तहो णिच्च सुहायर ।
ताहि तणुब्भउ महि विक्खावउ ,
अहणिसु पवयण-गुण-अणुरायउ ।
चउविह-संघ-भार-धुर-धारिउ,
जें मिच्छत्त-महागउ मोडिउ ।
संसारहु ससरणे भीयउ,
दाणेण सेयंसु जि बीयउ ।
खेउं णाम साहु विक्खायउ,
देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ ।
तासु धणो णामा पियवइं मइं,
जिम राहवहु सीय वम्महु रइं ।
णदण चारि तासु जय सारा,
सजाया गुणियणह पियारा ।
ते चत्तारि वि चहु दिसि मंडण,
जाचय जण-मण-रोस विहंडण ।
सहसराजु पढमउ तहं सच्चइ,
जो सघवी गिरनारहु वुच्चइं ।
स-रतनपालही णामा तहु पिय,
उधरण सुव उच्छगिरमियमिय ।
पहाराजु जि बीयउ ससिकर-पहु,
दाण भोय उवमिज्जइ सो कहु ।
मयणपालही तहु पिय धरणी,
सोणपाल णंदणेण सउरणी ।
तीउ पुत्तु पुणु रइपति भासिउ,
गिह-भर-भारु वहणु जसु भासिउ ।
कोडी णामा तासु जि भामिणि,
अहणिसु सधव-चित्तमण-रामिणि ।
ताहि पुत्तु लोहगु ण सलहरु,
वंजण लक्खण चच्चिव मणहरु ।
चउथउ सुउ विज्जारस भरियउ,
होलिवम्मु णामें विप्फुरियउ ।
तहु कलत्त सरसुत्ती णामा,
दाण सील सु दर अहिरामा ।
तहु पुत्तु गुणायरु णाउं कलायरु, चदपालु णामेण सिसु ।
इहु वंसु पवित्तउ जिण-पय-भत्तउ, णदउ महि-धण कण-वरिसु
एयहं सव्वह जो मज्झि सारु,
खेऊं सुसाहु करुणावयारु ।
तें काराविउ पासहु पुराणु,
भव-तम-णिण्णासणु णाइ भाणु ।
कइणा विरएप्पिणु सुह मणेण
रइधू णामेण वियक्खणेण ।
संपुण्ण करेप्पिणु पयड अत्थु,
खेऊसाहुहु अप्पियउ सत्थु ।
बहु विणए त गिण्हियउ तेण,
तक्खणि आणदिउ णिय-मणेण
दीवंतर-आगय- विविह-वत्थु,
पहिराविव अइसोहा पसत्थु ।
आहरणहिं मंडिउ पुणु पवित्तु,
इच्छादाणें रंजियउ चित्तु ।
संतुट्ठउ पडिउ णिय-मणंमि,
आसीवाउ वि दिण्णउ खणम्मि ।

अविरल-जल-धारहिं तयह णिवारहि तप्पउ मेहणि णिच्चपरा
कलि-मल-दुह खिज्जहु मंगल गिज्जहु पास-पसाए घरि जि घर।
णिरुवद्दव णिवसउ सयलु देसु,
पय पालउ णंदउ पुणु णरेसु।
जिण-सासणु णंदउ दोस-मुक्कु,
मुणिगणु णंदउ तहिं विसय-चुक्कु।
णंदहु सावय-यण गलिय-गाव,
जो णिसुणहिं जीवाजीव भाव।
सिरि खेऊंसाहु सुधम्मि रत्तु,
णंदणहिं सभउ णंदउ बहुत्तु।
णंदउ महि णिरसिय असुह कम्मु,
जो जीव दयावरु परम धम्मु।
अहि णंतउ पास पुराणु एहु,
सज्जण जणाह जि जणिउ णेहु।
कचण महिहरु जा ससि दिणिंदु,
जा पुणु महियलि कुल महिं हरिंदु।
जा सक्क सग्गि सुरसिय समिद्धु,
ता सत्थ पवट्टउ अत्थ सिद्धु।
मच्छर-मय-हीणउं सत्थ-पवीणउं पंडिय-मणा-णंदउ सुचिरु।
पर-गुण-गहणायरु वय-णियमायरु, जिणपयपयरुह णविय सिरु
इय सिरि पासणाह-पुराणे आयम-अत्थ-सुणिहाणे सिरि-पंडिय-रयधू-विरइए सिरि महाभव्व-खेऊंसाहु णामकिए सिरिपासजिण-पंचकल्लाण-वण्णणो तहेव दायार-वंस-णिद्दे सो णाम सत्तमो संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ॥छ॥ संधि ७ ॥छ॥

प्रति तेरापन्थी बड़ा मन्दिर जयपुर, लिपि सं० १६२९

३८—पउमचरिउ (पद्म पुराण) कवि रइधू

आदिभागः—

पर-णय-विद्धंसणु मुणिसुव्वय जिणु,
पणविवि बहु-गुण-गण-भरिउ।
सिरिरामहो केरउ सुक्ख जणेरउ,
सह-लक्खण पयडमि चरिउ ॥
सिरि आइणाह-भव्वयणु इट्ठु,
पणवेप्पिणु लोयत्तय-वरिट्ठु।
पुणु ससि-पहु धम्मामय सवतु,
भव्वयणहं भवतणह संमतु ॥
तहिं संतित्ति जीव-दया-पहाणु,
जिं भासिउ महियलि विमल-णाणु।
पुणु वड्ढमाणु चरमिल्ल देउ,
सो सव्वहं जीवहं करय-सेउ ॥
पुणु ताहं वाणि ज्झाए विचित्त,
लोयत्तय-गामिणि वयण दित्ति।
पुणु इंदभूइ गणहरु णवेवि,
सोधम्मु वि जंबूसामि तेवि ॥
पुणु ताइं अणुक्कमि देवसेणु,
इंदिय-भुअग-णिद्दलण-वेणु।
पुणु विमलसेणु तह धम्मसेणु,
सिरिभावसेणु गय-पाव-रेणु ॥
तह सहसकित्ति आयम-पहाणु,
तहिं पट्ट-णिसण्णउ गुण-णिहाणु।
गच्छह णायकु सिरि गुणमुणिंदु,
सहत्थ-पयासणु विणय-तंदु ॥
तहु पट्ट जईसरु णिहय-रईसरु जसकित्ति मुणियण-तिलउ।
तह सिस्स पहाणउं तव-वय-ठाणउं खेमचंदु आयम-णिलउ॥१
गोवग्गिरि णामें गढु पहाणु,
णं विहिणा णिम्मिउ रयण-ठाणु।
अइ उच्च धवलु णं हिमगिरिंदु,
जहिं जम्मु समिच्छइ मणि सुरिंदु ॥
तहिं डुंगरिंदु णामेण राउ,
अरिगण-सिरग्गि-संदिण्ण-घाउ।
तुंवर-वर-वंसहं जो दिणिंदु,
जिं पवलहं मिच्छहं खणिउ कंदु ॥
तह पट्ट घरणि णं रूव-लच्छि,
णामें चंदादे अइ-सुदच्छि।
तहु सुत्त कित्तिसिघु जि गुणिल्लु,
जो रायणीइ-जाणण-छइल्लु ॥
पिउ-पाय भत्तु परचक्ख मारु,
पज्जुण्ण व महियलि कुमर सारु।
तहिं रज्जि वणीसरु सुद्धचित्तु,
संचियउ जेण जिणधम्म-वित्तु ॥
जसु वित्तु सु-पत्तहं दाण-रत्तु,
जिणणाह-पूय जो णिच्च-भत्तु।
झाणामएण अह-णिसिहि लीणु,
काउस्सग्गें तणु कियउ खीणु ॥
आयमु-पुराण-पढणहं समत्थु,
णिय-मणुय-जम्मु जि किउ कयत्थु।

जो अयरवाल-वसहं मयंकु,
विहु-पक्ख-सुद्ध सो रोय वंकु ॥
वाट्टूसाहुहु गांदणु पवीणु,
णिय-जणणिह-लोइय-विणय लीणु ।
जिण-सासणु-भत्तु कसाय-खीणु,
हरसीहु साहु उद्धरिय-दीणु ॥
तहो भज्जा गुण-गण-सज्जा धोचंदही णामें भणिया ।
मुणिदाण पियंकर वय-णियमायर णं पवित्ति रूवहो तणिया ॥ २
बीई तिय वील्हाही गुणग,
अइसील-विसुद्ध वि णाय-गग ।
जेठिहि गांदणु सिरि करमसीहु,
गिह-भारु धुरंधरु बाहु दीहु ॥
मुणिसह णिवसह जसु पढम लीह,
जाचय-जणाण पूरिय-समीह ॥
तसु भज्जा जौणाही पवीणु,
गुरुदेव सत्थ-पय-भत्ति लीण ।
तहु वहुणीऽणंतमती पहाण,
मइ-सील-लीण गिह-लद्ध-माण ॥
चउविह दाणें पोसिय-सुपत्त,
अह-णिसु जिणवर-कम-कमल-भत्तु
लहुईहिं पुत्ति रुवें सुतारु,
णामेण नतो नेहें सुसारु ॥
जिण-चरण-कमल णाविय सरीरु,
वय-तर-णिव्वाहण-धीरु वीरु ।
अण्णहिं वासरि चिंतियउ तेण,
हरसीह णाम इच्छिय सिवेण ॥
किं किज्जइ वित्तें विहिय ममत्तें जेण ण दीणु भरिज्जइ ।
किं तेण जि काएं पयडियराएं वय-तरु जिण ण धरिज्जइ ॥ ३
णरभउ पाविव करणीउ एम,
भवदहि णिवडणु णो होइ जेम ।
चिंतिव्वउ दसणु णाणु इट्ठु,
चरणु वि पुणु लोयत्तय-वरिट्ठु ॥
धम्मु जि दहलक्खणु लोयसारु,
सेविव्वउ एत्थु भवण्णतारु ।
विणु धम्में जीउ ण सुक्खि थाइ
त विणु कर चडिउ वि सयलु जाइ ॥
इय चिंतिवि पुणु गउ साहु तत्थ,
अच्छइ पंडिउ जिणगेह जत्थ ।
बहु विणएं पुणु विण्णत्तु तेण,
कर आरोप्पेविणु णिय-सिरेण ॥
भो रइधू पंडिय गुण-णिहाण,
पोमावइ-वर-वंसहं पहाण ।
सिरिपाल बम्ह आयरिय सीस,
महु वयणु सुणहि भो बुह-गिरीस ॥
सोढल-णिमित्त णेमिहु पुराणु,
विरयउ जहं कइ-जण-विहिय-माणु ।
तहं रामचरित्तु वि महु भणेहिं,
लक्खण समेउ इउ मणि मुणेहिं ॥
महु साणराउ तहु मित्त जेण
विण्णत्ति मज्झु अवहारि तेण ।
महु णामु लिहहि चदहो वि माणि,
इय वयणु सुद्ध णिय चित्ति ठाणु ॥
इय णिसुणिवि वयणइं, जपिय सवणइं पंडिएण ता उत्तउ ।
हो हो किं वुत्तउ एत्थु अजुत्तउ हउं गिह कम्में गुत्तउ ॥ ४ ॥
घडएण मवइ को उवहि-तोउ,
को फणि-सिर मणि पयडइ विणोउ ।
पंचाणण-मुहि को खिवइ हत्थु,
विणु सुत्तें महि को रयइ वत्थु ॥
विणु बुद्धिए तह कव्वहं पसारु,
विरएप्पिणु गच्छमि केम पारु ।
इय सुणिवि भणइ हरसीहु साहु,
पावियउ जेण महि धम्म लाहु ॥
तुहं कव्वु धुरंधरु दोसहारि,
सत्थत्थ-कुसलु बहु-विणय-धारि ।
करि कव्वु चिंत परिहरहिं मित्त,
तुह मुहिं णिवसइ सरसइ पवित्त ॥
तं वयणु सुणिवि भणियउ तेण,
पारद्धु सत्थु पुणु पंडिएण ।
तह विहु दुज्जण महु भउ करंति,
भूयउ जह दुमणिय भय उवंति ॥
जहं काय-णिंद मउयहु सरीरु,
सेयंति पेय-वणि लोय भीरु ।
तह अवगुणु गुणु ते पाव लिंति,
णिय पयडि सहाउ जि पायडंति ॥
सज्जण अब्भत्थमि हंउ सतुम्ह,
एत्थेव खमेव्वउ दोसु अम्ह ।

इहु तुम्ह पसाएं करमि कव्वु,
हउं मइ-विहीणु सोहेहु सव्वु ॥
जसु मइ इह जोत्तिय सो पुणु तेत्तिय पयडउ दोसु ण अत्थि इह णिय धणु अणुसारें सहु परिवारें ववसाउवि सो करउ तिहा ॥५

× × ×

इय बलहद्द-पुराणे बुहयणविंदेहिं लद्ध-सम्माणे सिरिपंडिय-रइधू-विरइए पाइय-बंधेण अत्थि विहि-सहिए सिरि हरिसीहु साहु-कंठ-कठाहरणे उहय-लोय-सुह-सिद्धि-करणे वंस-णिद्देस-रावण उप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो संधि-परिच्छेओ समत्तो ॥

चरम भाग :—

भव्वहं गुण णंदउ किउ सुकम्मु,
अरु णंदउ जिणवर-भणिउ धम्मु ।
राउ वि णंदउ सुहि पय समाणु,
णंदउ गोवग्गिरि अचलु ठाणु ॥
सावय जणु णंदउ धम्म-लीणु,
जिणवाणी आयण्णण पवीणु ।
देसु वि णिरवद्दउ सुहि-वसेउ,
घरि घरि अच्चिज्जउ आइदेउ ॥
णंदउ पुणु हरसीसाहु एत्थु,
जिं भाविउ चेयण-गुण पयत्थु ।
सइं अंगिमतु जसु फुरइ चित्ति,
कलिकाल-धरिय जिं झाण सत्ति ॥
सिरि रामचरित्तु वि जेण एहु,
काराविउ सव्वहं जणिय णेहु ।
तहु णंदणु णामें करमसीहु,
मिच्छत्त महागय-दलण-सीहु ॥
सो पुणु णंदउ जिण-चलण-भत्तु,
जो राय महाथणि माणु पत्तु ।
सिरि पोमावइ परवाल वंसु,
णंदउ हरिसिंघु सघवी जासु संसु ॥
वाहोल माहणसिंह चिरु णंदउ
इह रइधू कइ तीयउ विधरा ।
मोलिक्क समाणउ कल गुण जाणउ
णंदउ महियलि सोवि परा ॥ १७ ॥

इय बलहद्द-पुराणे बुहयण-विंदेहिं लद्ध-सम्माणे सिरि पंडिय-रइधू-विरइए पाइय-बंधेण अत्थ-विहि-सहिए सिरिहरिसीह-साह-कंठ कंठाहरणे उहयलोय-सुह-सिद्धिकरणे सिरिराम-णिव्वाण-गमणो णाम एकादसमो संधि परिच्छेओ समत्तो ॥११॥

प्रति आमेर भंडार, लिपि सं० १५५१
(सं० १५४६ की लिखित नया मन्दिर धर्मपुराकी अपूर्ण प्रतिसे संशोधित)

३६—मेहेसर चरिउ
(मेघेश्वर चरित) कवि रइधू

आदिभाग—

सिरि रिसह जिणेंदहु थुवसय इंदहु भवतम चंदहु गणहरहु ।
पय-जुयलु णवेप्पिणु चित्ति णिहणेप्पिणु चरिउ भणमि मेहेसरहु

जय रिसहणाह भव-तिमिर-सूर,
जय णासिय तासिय कुमइ दूर ।
जय करण हरण गणहरि अपाव,
जय ति-जय-सुहंकर सुद्धभाव ॥
जय तियस-मउड-मणि-घिट्ट-पाय,
जय आइ जिणेसर वीयराय ।
जय णिम्मल केवल णाण वाह,
जय अठदह दोस-विगय अबाह ॥
जय भासिय तच्चं रूवसार,
जय जणणोवहि णिरु पत्त पार ।
जय वाएसरि वह हिम-गिरिंद,
जय घरुह निरामय महि अणिंद ॥
जइ निहय पमाय भयंत संत,
जय मुत्ति-रमणि-रंजण-सुकंत ।
जय धम्मामय ससि सुजस सोह,
जय भव्वहं दुग्गइ-पह-निरोह ॥
पुणु सिरि वीर जिणेंदु पणविवि भत्तिए सुद्धउ ।
सम्मदंसणु सारु जासु तित्थें मइ लद्धउ ॥१॥
साय-वाय-मुह-कमल-हसंती,
वे पमाण-णयणहिं पेच्छंती ।
पवयण अत्थ भणइ गिरि कोमल,
णाणा-सद्द दसण-पह-णिम्मल ॥
वे उवओय कण्ण जुमु संठिउ,
नासा वंस सुचरित्तु परिट्ठिउ ।
रेहा विग्गह तह गल कंदलि,
वे णय उररुह सहहि उरत्थलि ।
वायरणंगु उयरु णिरु दुग्गमु,
णाहि अत्थ गंभीर मणोरमु ।

दुविह छंद भुयदंड रवएणी,
जिण मय सुत्त सुवत्थहिं छएणी ॥
सुकह पसारु णियंबु विसालउ,
अग पुव्वश्रो तूसु रमालउ ।
संधि-विहत्ति-पयहि णिरु गच्छइ,
रस णव णाट्टभाव सु पयच्छइ ॥
पंचणाण आहरणहिं लंकिय,
मिच्छावाइहि कहि व ण पंकिय ।
विमल महाजस पसर विहूसिय,
जम्म-जरा-मरणत्ति अदूसिय ॥
सा होउ महुप्परि तुट्ठमणा, कुमइ-पडल णिरण्णासणि ।
तिल्लोय पयासणि णाणधरा रिसहहु वयण णिवासिणि ॥२

पुणु सिरि इंदभूइ गणसारउ,
पणविवि जिण-णाहहु गिरिधारउ ।
तासु अणुक्कमेण पुणि पावणु,
जायउ बहु सीसु वि ण उ रावणु ॥
णं सरसइ सुरसरि रयणायरु,
सत्थ-अत्थ-सु-परिक्खण-णायरु ।
सिरि गुणकित्ति णामु जइ-पुंगमु,
तउ तवेइ जो दुविहु असंगमु ॥
पुणु तहु पट्टि पवर जस-भायणु,
सिरि जसकित्ति भव्व-सुह-दायणु ।
तहु पय पंकयाइं पणमंतउ,
जा बुइ णिवसइ जिणपयभत्तउ ॥
ता रिसिणा सो भणिउ विणोएं,
इत्थुणिए वि सुमहु तेजोएं ।
भो रइधू पंडिय सुसुहाएं,
होसि वियक्खणु मज्झु पसाएं ।
इय भणेवि मतक्खरु दिएणउ,
तेणाराहिउ तं जि अच्छिएणउ ॥
चिर पुएणें कइत्त गुण सिद्धउ,
सुगुरु पसाएं हुवउ पसिद्धउ ।
एत्थत्थि वि सुंदरु रयणाणिहि भूयलि पायडु सुक्खयरु ।
दे यहहु कुडुव अयलु णिरु गोपायलु णामें णायरु ॥३॥

णर रयणाहरु णं मयरहरु,
अरियण भयहरु णं वज्जहरु ।
णं णाय कणय कसवट्ट पहु,
णं पुहइ रमणि सिरि सेहरहु ॥
वण उववण छएणउ णाइ भडु,
णयणाहं रुहदातण णाइंणाडु ।
सोवएण रेखणइ जहिं सहए,
सज्जण वयणु व सा जलु वहए ।
उत्तुंगु धवलु पायारु तसु,
णं तोमर णिव संताण जसु ।
जहिं मणहरु रेहइ हट्ट पहु,
णीसेस वत्थु संचय जि बहु ।
वर कणय रयण पह विप्फुरिउ,
ण महियलि सुरधणु वित्थरिउ ।
जहिं जण णिवसहिं उवयार-रया,
धण-कण-परिपुएण-सधम्मसया ।
तहिं राउ गुणायरु पवर जसु अरियण-कुल-सतावरु ।
सिरिडुंगरिंदु णामें भणिऊ स-पयावें जिउ सहसयरु ॥४॥

णीइ तरंगिणि णावइ सायरु,
सयल-कलालउ ण वि दोमायरु ।
वे पक्खुज्जलु णिय पय पालउ,
म्लिच्छ-णरिंद-वंस-खय-कालउ ।
एयच्छत्तु रज्जु जि जो भुंजइ,
गुणियण विंदइ दाणें रंजइ ।
सयल-तेउराइ णिरु सेवी,
पट्ट महिसि तहु चंदाएवी ।
तहु णंदणु भूयलि विक्खायउ,
रयदाणें कलिकएणु समायउ ।
कित्तिसिंह णामेण गुणायरु,
तोमर-कुल-कमलायर भायरु ।
सिरि डुंगरणिव रज्जि वणीसरु,
अत्थि दुहियजण-मण-चिंताहरु ।
अयरवाल वंस वर-भायरु,
दाण पूय-बहुविहि-विहियायरु ।
पजणु साहु जिणपय-भत्तिल्लउ,
पर-उवयार-गुणेण अभुल्लउ ।
तहु णंदणु दमवल्ली सुर-तरु,
जें णिव्वाहिउ जिणसघहु भरु ।
अप्पा-पर सरूव-गुण-जाणणु,
कुणय-गइंद विंद-पंचाणणु ।
गुणमंडिय विग्गहु जस-लुद्धउ,
रयणत्तउ मणि भावइ सुद्धउ ।

बुहयरणह विदहँ णिरु सम्माणइ,
पवयण--अत्थ सचित्ति पमाणइ ।
खेमसीहु णामेण पवित्तउ,
वीयराय-कम-कमलहिं भत्तउ ।

घत्ता—

तहु भज्जा सीलगुणेण जुया,सुद्ध-सलक्खण ललिय-गिरा ।
जाणइ वसणाहहु भत्तियरा पयडधणोरु णामेण वरा ॥५॥

णदणु चारि ताह सजाया,
दाण चार ण महि विक्खाया ।
पढमु ताहि परिणारि सहोयरु,
विणयकिउ णियकुलगिह-सेहरु ।
गिरणारहु सघाहिउ बधरु,
सहसराजु णामे णर-सिधुरु ।
पुणु बीयउ आणदिय सज्जणु,
किउ ववसाए जेण धणज्जणु ।
जाणि विबुद्धि विसालु णरेदि (दे)
थप्पिउ अप्पपासि आणिदि (दे) ।
पहराजु जि वि णामेण पसिद्धउ,
जो जिणवयणु यं मण्णइ सुद्धउ ।
पुणु तीयउ णदणु गुणमदिरु,
सज्जण-जणमण-णयणाणदिरु ।
वुहयण-तरुवर-पोसण-कधरु,
रइ(ह)पति-गिहभर-धरण-धुरधरु ।
विज्जा कोसुदत्थु अइ दुल्लहु,
तुरियउ सयल-बधव-जण-वल्लहु ।
जे अवगमिउ सुयगु अभगउ,
बुहचूडामणि विणय वसगउ ।
होलू साहू णिहिल-गुण-भायणु,
जो सेवइ णिय-धम्म-रसायणु ।

घत्ता—

एयहिं चउसुउहिं पसाहियउ खेऊ साहू पसण्ण-मणु
सुहु भुंजइ रजइ परियणह विलसइ धम्म णिग्रोय धणु ॥६॥

अण्णहि दिणि सो पुणु गिहि थक्कउ,
णिय-मणि चितइ साहु गुरुक्कउ ।
पाविवि वित्तु पवरु जो माणउ,
धम्मि ण सेवइ सो जि अयाणउ ।
सो अप्पें अप्पाणउ वचइ,
जो धणु महियलि लोहे संचइ ।
दाणु ण देइ ण मिट्ठउ भक्खइ,
णिय-पाणहु स भूमि णिक्खिव्वइ ।
घिप्पइ परियणहिं बलि मडइ,
लेइ चोरु अह राणउ दडइ ।
डहइ अग्गि अहठाणु जि भुल्लइ,
इह अत्थहु गइ कहव ण चल्लइ ।
इ एउ जाणे वि सहिउ णिरु किजइ,
पत्तहु दाणु णिरतरु दिजइ ।
सइ विढत्तु णिय सत्थे णिजइ,
किं पि ण पत्थलि त पाविजइ ।
इम चिंति वि जिणमदिर पत्तउ,
तहि बुह दिट्ठउ विण्सिय वत्तउ ।
सघवीय हरसिंघउ णदणु,
मिच्छत्तावलि वल्लि-णिकदणु ।
भणइ साहु भो सुणि सुय-सायर,
विमलचित्त गुरुभत्ति-कयायर ।
किं णिय कालु गमहिं अविणोए,
मज्झु वयणु अवहारहिं मोए

घत्ता—

करिकव्वु गुणायर भव्वणिरु मेहेसर रायहु चरिउ ।
जिं कलिमलु खिज्जइ सुहु हवइ जो धम्मामय विप्फुरिउ ॥७॥

इय णिसुणिवि जंपियउ गुणालें,
कइणा विणय गुणेण रसालें ।
भो सइंसण मणि रयणायर,
पुण्णपाल कुलकमल-दिवायर ।
जिणधम्मालकिय णिम्मच्छर,
बुहयण-जण-मण-रजण-कोच्छर ।
सयल-जीव-रक्खण सुदयावर,
णिसुणहि खेऊसाहु सुहकर ।
पचम-काल-पहाउ गुरुक्कउ,
धम्ममग्गि जणु अह-णिसु वकउ ।
घरि घरि दुज्जणु जणु अकयायरु,
विरलउ दीसइ कुवि सज्जण णरु ।
हउ पुणु छदु विहत्ति ण जाणउ,
वायरणोवहि-तरण अयाणउं ।
सद्दासद्दहु भेउ ण बुज्झमि,
गणमत्ता भेउ ण मणि सुज्झमि ।

दुविह छंद भुयदंड रवण्णी,
जिण मय सुत्त सुवत्थहिं छण्णी ॥
सुकइ पसारु णियंबु विसालउ,
अग पुव्वओ तूसु रमालउ ।
संधि-विहत्ति-पयहि णिरु गच्छइ,
रस णव णट्टभाव सु पयच्छइ ॥
पंचणाण आहरणहिं लंकिय,
मिच्छावाइहि कहि व ण पंकिय ।
विमल महाजस पसर विहूसिय,
जम्म-जरा-मरणत्ति अदूसिय ॥
सा होउ महुप्परि तुट्ठमणा, कुमइ-पडल णिरणासणि ।
तिल्लोय पयासणि णाणधरा रिसहहु वयण णिवासिणि ॥२

पुणु सिरि इदभूइ गणसारउ,
पणविवि जिण-णाहहु गिरिंधारउ ।
तासु अणुक्कमेण पुणि पावणु,
जायउ बहु सीसु वि ण उ रावणु ॥
णं सरसइ सुरसरि रयणायरु,
सत्थ-अत्थ-सु-परिक्खण-णायरु ।
सिरि गुणकित्ति णामु जइ-पुंगमु,
तउ तवेइ जो दुविहु असंगमु ॥
पुणु तहु पट्टि पवर जस-भायणु,
सिरि जसकित्ति भव्व-सुह-दायणु ।
तहु पय पंकयाइ पणमंतउ,
जा वुइ णिवसइ जिणपयभत्तउ ॥
ता रिसिणा सो भणिउ विणोएं,
हत्थुणिए वि सुमहु तेजोएं ।
भो रइधू पंडिय सुसुहाए,
होसि वियक्खणु मज्झु पसाएं ।
इय भणेवि मतक्खरु दिएणउ,
तेणाराहिउ तं जि अच्छिएणउ ॥
चिर पुण्णें कइत्त गुण सिद्धउ,
सुगुरु पसाए हुवउ पसिद्धउ ।
एत्थत्थि वि सुंदरु रयणणिहि भूयलि पायडु सुक्खयरु ।
दे यहु कूडुव अयलु णिरु गोपायलु णामें णायरु ॥३॥

णर रयणाहरु णं मयरहरु,
अरियण भयहरु णं वज्जहरु ।
णं णाय कणय कसवट्ट पहु,
णं पुहइ रमणि सिरि सेहरहु ॥
वण उववण छण्णउ णाइ भहु,
णयणाहं रुइदातण णाइंणाडु ।
सोवण्ण रेखणइ जहिं सहए,
सज्जण वयणु व सा जलु वहए ।
उत्तुंगु धवलु पायारु तसु,
णं तोमर णिव संताण जसु ।
जहिं मणहरु रेहइ हट्ट पहु,
णीसेस वत्थु संचय जि बहु ।
वर कणय रयण पह विप्फुरिउ,
ण महियलि सुरधणु वित्थरिउ ।
जहिं जण णिवसहिं उवयार-रया,
धण-कण-परिपुण्ण-सधम्मसया ।
तहिं राउ गुणायरु पवर जसु अरियण-कुल-संतावरु ।
सिरिडुंगरिंदु णामें भणिऊ स-पयावें जिउ सहसयरु ॥४॥

णीइ तरंगिणि णावइ सायरु,
सयल-कलालउ ण वि दोसायरु ।
वे पक्खुज्जलु णिय पय पालउ,
म्लिच्छ-णरिंद-वंस-खय-कालउ ।
पयच्छत्तु रज्जु जि जो भुंजइ,
गुणियण विंदह दाणें रंजइ ।
सयल-तेउराह णिरु सेवी,
पट्ट महिसि तहु चंदाएवी ।
तहु णंदणु भूयलि विक्खायउ,
रयदाणें कलिकण्णु समायउ ।
कित्तिसिंह णामेण गुणायरु,
तोमर-कुल-कमलायर भायरु ।
सिरि डूंगरणिव रज्जि वणीसरु,
अत्थि दुहियजण-मण-चिंताहरु ।
अयरवाल वंसं वर-भायरु,
दाण पूय-बहुविहि-विहियायरु ।
पजणु साहु जिणपय-भत्तिल्लउ,
पर-उवयार-गुणेण अभुल्लउ ।
तहु णंदणु दमवल्ली सुर-तरु,
जें णिव्वाहिउ जिणसंघहु भरु ।
अप्पा-पर सरूव-गुण-जाणणु,
कुणय-गइंद विंद-पंचाणणु ।
गुणमंडिय विग्गहु जम-लुद्धउ,
रयणत्तउ मणि भावइ सुद्धउ ।

बुहयरणह विदहँ णिरु सम्माणइ,
पवयण--अत्थ सचित्ति पमाणइ ।
खेमसीहु णामेण पवित्तउ,
वीयराय-कम-कमलहिं भत्तउ ।

घत्ता—
तहु भज्जा सीलगुणेण जुया,सुद्ध-सलक्खण ललिय-गिरा ।
जाणइ वसणाहहु भत्तियरा पयडधणोरु णामेण वरा ॥५॥

णंदणु चारि ताह सजाया,
दाण चार ण महि विक्खाया ।
पढमु ताहि परिणारि सहोयरु,
विणयकिउ णियकुलगिह-सेहरु ।
गिरणारहु सघाहिउ बधरु,
सहसराजु णामे णर-सिंधुरु ।
पुणु बीयउ आणंदिय सज्जणु,
किउ ववसाए जेण धणज्जणु ।
जाणि विबुद्धि विसालु णरेंदि (दे)
थप्पिउ अप्पपासि अणिंदि (दें) ।
पहराजु जि वि णामेण पसिद्धउ,
जो जिणवयणु य मण्णइ सुद्धउ ।
पुणु तीयउ णंदणु गुणमंदिरु,
सज्जण-जणमण-णयणाणंदिरु ।
बुहयण-तरुवर-पोसण-कधरु,
रइ(ह)पति-गिहभर-धरण-धुरधरु ।
विज्जा कोसुदत्थु अइ दुल्लहु,
तुरियउ सयल-बधव-जण-वल्लहु ।
जे अवगमिउ सुयगु अभगउ,
बुहचूडामणि विणय वसगउ ।
होलू साहू णिहिल-गुण-भायणु,
जो सेवइ णिय-धम्म-रसायणु ।

घत्ता—
एयहिं चउसुउहिं पसाहियउ खेऊ साहू पसण्ण-मणु
सुहु भुजइ रजइ परियणह विलसइ धम्म णिओय धणु ॥६॥

अण्णहि दिणि सो पुणु गिहि थक्कउ,
णिय-मणि चिंतइ साहु गुरुक्कउ ।
पाविवि वित्तु पवरु जो माणउ,
धम्मि ण सेवइ सो जि अयाणउ ।
सो अप्पें अप्पाणउ वचइ,
जो धणु महियलि लोहें संचइ ।
दाणु ण देइ ण मिट्ठउ भक्खइ,
णिय-पाणंहु स भूमि णिक्खिवइ ।
घिप्पइ परियणहिं बलि मडइ,
लेइ चोरु अह राणउ दडइ ।
डहइ अग्गि अहठाणु जि भुल्लइ,
इह अत्थहु गइ कहव ण चल्लइ ।
इ एउ जाणे वि सहिउ णिरु किजइ,
पत्तहु दाणु णिरतरु दिज्जइ ।
सइ विढत्तु णिय सत्थे णिजइ,
किं पि ण पत्थलि त पाविजइ ।
इम चिंति वि जिणमंदिर पत्तउ,
तहि बुह दिट्ठउ विअसिय वत्तउ ।
सघवीय हरसिंघउ णंदणु,
मिच्छत्तावलि वल्लि-णिकंदणु ।
भणइ साहु भो सुणि सुय-सायर,
विमलचित्त गुरुभत्ति-कयायर ।
किं णिय कालु गमहिं अविणोए,
मज्झु वयणु अवहारहिं मोए

घत्ता—
करिकव्वु गुणायर भव्वणिरु मेहेसर रायहु चरिउ ।
जिं कलिमलु खिज्जइ सुहु हवइ जो धम्मामय विप्फुरिउ ॥७॥

इय णिसुणिवि जंपियउ गुणाले,
कइणा विणय गुणेण रसाले ।
भो-सद्दंसण मणि रयणायर,
पुण्णपाल कुलकमल-दिवायर ।
जिणधम्मालंकिय णिम्मच्छर,
बुहयण-जण-मण-रजण-कोच्छर ।
सयल-जीव-रक्खण सुदयावर,
णिसुणहि खेऊसाहु सुहकर ।
पचम-काल-पहाउ गुरुक्कउ,
धम्ममग्गि जणु अह-णिसु वकउ ।
घरि घरि दुज्जणु जणु अकयायरु,
विरलउ दीसइ कुवि सज्जण णरु ।
हउ पुणु छदु विहत्ति ण जाणउं,
वायरणोवहि-तरण अयाणउं ।
सद्दासद्दहु भेउ ण बुज्झमि,
गणमत्ता भेउ ण मणि सुज्झमि ।

घत्ता—
ज कव्वभारु दुद्धरु विसमु अस कइहिउ उद्धरिउ सिरि।
त हउ जडु हीण-परक्कमु वि किहउच्चाविम णिय य करे।८।

वाएसरि सुरसरि रयणायर,
हुअ पुणु आसि कइद गुणायर।
सुय-पवणोद्दाविय मिच्छारय,
धीरसीणु कइचक्कि विहिय दय।
देवणदि गणि विज्जामदिरु,
जेण विहिउ वायरणु महाचिरु।
छह'सण-पमाणु पविसेएें।
विरयउ पालिय जिणवरसेएें।
मेहेसरहु चरिउ सुरसेणें,
चरिउ अणगहु दिणयरसेणें।
पुणवि सयंभु महाकइ जायउ,
चउमुहु पुप्फयंतु विक्खायउ।
इय वर विज्जहिं ६र कइ जाया,
तिह कारणि महु फुरइ ण वाया।
खेऊ साहु सुणिवि त जपइ,
भो बुह चितवयहि तुह संपइ।
जइ मयकु' किरणहिं धवलइ भुवि,
खज्जोउ ण छडइ णिय छवि तुवि।
जसु जेत्तउ मइ पसरु पउत्तउ,
सो तेतउ पायडइ णिरुत्तउ
इय णिसुणि साहुहु वयणुल्लउ,
कइणा वुत्तउ पुणु वि अतुल्लउ।
करमि कव्व तुम्हह वयणें हउ,
पर मण्णमि मणि खलह महाभउ।
पावकम्म पर-रध णिहालउ,
सविसु दुजीहु णाइ अहिकालउ।
भणइ साहु पुणु त णिसुणेप्पिणु,
सुद्ध-चित्तु वहु भत्ति करेप्पिणु।
खीरें णिवु कोवि जइ सिंचइ,
कडुवत्तणु तुवि कहव ण मु चइ।
तिलु तिलु उच्छु को वि जइ खडइ,
सो महुरत्तणु तो वि ण छडइ।

घत्ता—
इय णिसुणिवि तेण वुहेण पुणु, णिययचित्त ग्रथविवि थिरु।
गुरुयण वच्छल्लें सुहमणेण, कहणाढत्त सुसत्थु णिरु।।९।।

भो अयरवाल-कुल-कुमुय ससि,
जस उर पउरिय सयल दिसि।
णिसुणहिं अणुराए रस-भरिउ,
सिरिमेहेसर गणहरचरिउ।
णासइ णिसुणतह ज दुरिउ,
मण वछउ सुहु वड्डइ तुरियउ।
जह पच्छमि जिणहु समोसरणि,
गणिणा गोयमेण तिजय सरणि।
सेणिय णर-णाहहु अक्खियउ,
पुणु जइवर गणहिं जि लक्खियउ।
हउ तुव तिह जपमि साहुवरा,
गुणियण विदह दालिद्दहरा।

× × ×

इय सिरि महाराय-मेहेसरचरिए आइपुराणस्स सुत्त-अणुसरिए सिरि-पडिय-रइधू-विरइए सिरिमहाभव्व खेऊ-साहु णामणामकिए छक्कालणिद्देसवण्णणो णाम पढमो सवी परिच्छेओ समत्तो ।।१।। सवि १।।

अन्तिमभागः—

णंदउ सो जो लिहइ लिहावइ,
णदउ सो जो पढइ पढावइ।
णदउ सोयारउ सो पवीणउ,
विज्जा-कव्व-रसायण लीणउ।
णदउ सिरि हरसिघु सघाहिउ,
देवराज सुउ पवर गुणाहिउ।
जसु सताणि कईसु अमच्छरु,
रइधू सजायउ गुणकोच्छरु।
जेण चरिउ मेहेसर केरउ,
विरयउ वुहमण सुक्ख जणेरउ।

घत्ता—
ज मइ हीणाहिउ कि पि विसाहिउ त वहुसुय सोहतु णिरु।
कुपय फेडेप्पिणु भव्वु ठवेप्पिणु महि वित्थारहु सत्थु चिरु।११

जय लद्धसमु दायार वसु,
अहुणा भणेमि पायडु कुणेमि।
इह अयरवाल अण्णइ गुणालि,
ए'डिलहि गोत्तु पयडिय सुसत्ति।
देदाहिहाणु हुउ चिरु पहाणु,
तहु अग जाउ जायउ अपाउ।
पइतु पवित्तु जिणधम्म तित्तु,
तणुरुह वि तासु कुलहर-पयासु।

सो पुण्णपाल णामे गुणाल,
चाहडिय पत्ति तहु सील थत्ति ।
तहि गब्भजाय सुय विण्णि भाय,
चदक्क-तेय वड्ढिय-विवेय ।
छाजा गरिट्ठु बुहयण मणिट्ठु,
तहु सुउ अबाहु नाथू जि साहु ।

घत्ता—
णाथू साहुहु सुय विण्णि ललिय भुय झाझणु वीधा णामु हुय
ते एदउ भूयलि णिण्णासिय कलि धण-कण-पुत्त-पउत्त-जुय

पुण्णपाल साहुहु सुउ वीयउ,
पर-उवयार-विहाण-विनीयउ ।
देव-सत्थ-गुरु-भत्ति कयायरु,
पज साहु णामे णियमायरु ।
वील्हाही पिययम तहु सारी,
सीलाहरण-विहूसण-धारी ।
ताहि तणुब्भउ बुह-मण-रजणु,
जाचय-जण-दालिद्द-विहडणु ।
जिणसमयाणु भत्ति अणुरायउ,
खेऊसाहू णाम विक्खायउ ।
धणसिरि तहु भज्जा गुणवंती,
चदहु रोहिणीव पहवती :
एदण चारि ताहि उर जाया
चारि णाण ण जीव-सहाया ।
चार दाण ण पायडि भूयलि,
चारि वि दिग्गय ण जस णिम्मलि ।
ताह पढमु गुणमणि रयणायरु,
सहसराज कुल-कमल-दिवायरु ।
रतनपालही तासु जि भामिणि,
णिय-भत्तार-चित्त-अणुगामिणि ।
उद्धरणाहिहाणु हुउ णदणु,
परियण-जण-चित्तह आणदणु ।
तणु पह जि णिज्जिणिउ मयको,
वीयउ पहराजो गयसको ।
सुरतरु ण दुक्खिय जण पोसणु,
पर-उवयार-सार सुपयासणु ।
मयणपालही तासु जि भज्जा,
दाण-पूय-विहि-करण-मणोज्जा ।
भोणपाल तहि णदणु णदउ,
णिच्च जिणिंद सूरि-पय वंदउ ।

घत्ता—
पुण सुउ तहु तीयउ अइव विणीयउ जिणसासण-रह-धुर धरणु
रइपति रयणोवमु पालिय-कुलकमु दुत्थि(क्खि य-जण)
दुहभर हरणु १३ ॥

रइपति भामिणि कुलगिह सामिणि,
कीडीणामा पूरियकामा ।
सुउ खेमकरु -सुक्खरि बक्खरु,
तुरिउ वि पुत्तो गुणगण जुत्तो ।
साहु हु भासिउ पवर जसाहिउ,
विज्जामदिरु वसहु चदिरु ।
बुह-चूडामणि णिम्मच्छरु गुणि,
होलू पायडु सयलकला पहु ।
तासु कलत्ता सररुहवत्ता,
भणिय सरासइ विणउ पयासइ ।
ससिव कलालउ पुत्तु जसालउ,
चदपालु हुउ इहु परियणु धुउ ।
णदउ सुक्खें सयलु पयक्खें,
जा ससि दिणयरु जाम धराधरु ।
जा दिविइदो जाम अहिंदो तिहुयण चदो
ताखेमक्खो णदउ दक्खो ।
मज्झु सहाइ गुण अणुराइ,
जासु णिमित्ते णेहासत्ते,
विरइउ कव्वो इहु मइ भव्वो ।

घत्ता—
तसु दूरि पवट्टउ एत्थुमहि पाढिज्जतउ बुहयणहिं ।
सिरि मेहेसर गणहरचरिउ णिब्भरु पूरिउ गुणगणहिं ।

इय मेहेसरचरिए आइपुराणसुत्त-अणुसरिए सिरि पडिय-रइधू-विरइए सिरि महाभव्व-खेमसीह-साहुणाम-णामकिए सिरिरिसहेसर-निव्वाण-गमण-वण्णणो भरह चक्काहिवइ-मेहेसर-णिव्वाण-गमण-वण्णणो अण्णोवि सग्गगमण-वण्णणो णाम तेरहमो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥

सधि १३ ॥

प्रति स० १८५१ नजीबाबाद जैनमदिर और आमेर-भडारकी प्रति स० १५६६ से सशोधित ।

४०—सम्मत्तगुणणिहाण (सम्यक्त्वगुणनिधान)

कवि रइधू (रचनाकाल स० १४९२)

आदिभाग:—

सिव-पय-सुह-सासणु कुणय-विणासणु तिजय-पयासणु भव-हरणु

पणविवि सद्दसणु दुग्गय-भसणु विहुणिय-जम्म-जरा-मरणु ॥

× × × ×

वीयराय मुह-कमलहु णिग्गय,
वहु-वण्णकिय ग्रत्थ-समग्गय ।
छद्दालकारेहिं रवण्णी,
सा भारइ महु होइ पसण्णी ।
ससारोवहि-पोय-समाणा,
विगय-दोस जणि मुणिय-पमाणा ।
मइ-सुइ-ग्राभिण-णाण-दिवायर,
तस-थावर-सत्ताह-दयावर ।
जे हुय गोयम पमुह भडारा,
ते पणवेप्पिणु तिहुवण-सारा ।
तह पुणु सुतव-ताव-तवियगो,
भव्व-कमल-सवोह-पयगो ।
णिच्चोब्भासिय पवयण-ग्रगो,
वदिवि सिरिजसकित्ति ग्रसगो ।
तासु पसाए कव्वु पयासमि,
ग्रासि विहिउ कलि-मलु णिण्णासमि ।

घत्ता—

एत्थु जि भारहि खेत्ति जणि पसिद्धु ण इदउरु ।
गोपायलु णामेण त जइ वणइ तियस्स गुरु ॥२॥

जहिं उवणाइ (उववणाइ) रय-परिमलाइ,
कइ कलहाइ मुहखडिय फलाइ ।
जहिं सरवराइ णिम्मल जलाइँ,
पोसिय-मराल-सारस-कुलाइ ।
जहिं दीहयाउ वहु जलयराउ,
जल-कीलिय वर णिव णारवराउ ।
जहिं मदिराउ वहु भोमयाइं,
छुह-पह दित्तीए रहिवोमयाइ ।
जहिं ग्रावणाइ मणि सामलाइ,
वित्थरिय-रयण-पु ज्जुज्जलाइ ।
वत्थ वि वणि-कुल विक्किय स-वत्थ,
मूढ्व सह विक्कय सण्ण हत्थ ।
सिहिं तावें सुज्झइ कुणइ केम,
मह तव-सतत्ता भव्वु जेम ।
जहिं पुण्ण पऊरिय पण्णसाल,
णामर-णरेहिं भूसिय विसालं ।
जिण सिव विवुज्जल णियय सम्म,
ग्रघग्ग-धयावलि-रुद्ध-धम्म ।
सतिक्क एह वण महिमा स-सोह,
सावय जणाह पयणिय-पवोह ।
चउसाल णय तोरण सहार,
जहिं सहहिं सुभ सोहण विहार ।

घत्ता—

जह जिणहरि जिणपडिम चंदकंति-विद्दुम-घडिया ।
सोहति णिच्च वुहयण-महिय भव्वह सिव-सपय-घडिया ॥३

जहिं घरि घरि सुम्मइ वर मगलु,
जहिं घरि घरि ग्रचिय ग्रविज्जइ गयमलु ।
जहिं घरि घरि पोसिज्जइ दुत्थिउ,
जहिं घरि घरि जणु दीसइ सुत्थिउ ।
जहिं घरि घरि पविहिय सम्माणइ,
पत्त जि भेयहिं दिज्जहि दाणइ ।
जहिं घरि घरि दसणु गाइज्जइ,
घरि घरि सद्दसणु वण्णिज्जइ ।
घरि घरि सद्दसणु सुमियारउ,
घरि घरि जणु सद्दसणु धारउ ।
जहिं णारीय सुसील ग्रखडिउ,
घरि घरि सद्दसणु गुण-मडिउ ।
ग्रविहव-सुहव णाह-विवज्जउ,
वाल विद्ध जे तरुणि सलज्जिउ ।
तेहिं जि सयलहिं दोस-ग्रछिण्णउ,
सम्मद्दसणु दिढु पडिवण्णउ ।
डिंभ ज्जि दसणु दसणु घोसहिं,
चच्चरि चच्चरि वुह सतोसहिं ।

घत्ता—

तव-ताव-पवित्ता विगय-रया पवयणत्थमणि गण-उवहि ।
दोविह-सजम-भर-धरण-खमा रिसिवर जिणहरि वसहिं जहिं ॥४

जिणवर-सासण-सररुह पयग,
भवियण-कइरव वण-मिय-पयग ।
मिच्छत्त-महद्दिय-वज्जदड,
परिपालिय-दुद्धर-वय-ग्रखड ।
णिच्छम्म धम्म पइउण ग्रमद,
भव्वेहिं णिच्च पय-कमल-चद ।
एरिस जइवर जहिं णिच्च ठति,
सम्माइ झाण कम्मइ हणति ।
तहिं डुंगरेंदु णामे णरिंदु,
तोमरकुल कमलायर-दिणिंदु ।

मुणिय इण भुयवल पमाणु,
समरगणि अण्णु ण तहु समाणु ।
णिरुवम-अविरल गुण-मणि-णिकेउ,
. . . .
साहण समुद्दु जयसिरि-णिवासु,
जस ऊपरि पउरिय दह दिसासु ।
करवाल-णिहाए अरि-कवालु,
तोडिवि घल्लिउ ण कमल-णालु ।
दुप्पिच्छु मिच्छ रणरगु मल्लु,
अरियण-कामिणि-मण दिण्णु सल्लु ।
सपयावे जिय ण तरणि जेण,
जसु रज्जि पयावट्टिय सिवेण ।

घत्ता—
उव्वासिय परमडलु रामयद संका जसु ।
छलबल साम छहुणी इणियच्छ हो कवणु राउ उवमिय तसु ॥५

तहु रज्जि महायण बहु घण ढ्ढ,
गुरु-देव-सत्थ विणए वियड्ढ ।
जहिं सति वियक्खण मणुव सव्व,
धम्माणुरत्त वर गलिय-गव्व ।
जहिं सत्त-वसण -चुय-सावयाइ,
णिवसहिं पालिय दो-दह-वयाइ ।
सम्मद्दसण मण (णि) भूसियग,
णिच्चोब्भासिय-पवयण-सुयग ।
दारापेखण विहि णिच्च लीण,
जिण-महिम-महुच्छव णिरु पवीण ।
चेयण-गुण अप्पारुह पवित्त,
जिण-सुत्त-रसायण सवणतित्त ।
पंचमु दुस्समु अइ विसम कालु
णिद्दलिवि तुरिउ पविहिउ रसालु ।
धम्मज्झाणें जे कालु लिंति,
णवयारमतु अह-णिसु गुणंति ।
संसार-महण्णव-वडण,भीम,
णिस्सक-पमुह-गुण-वण्णणीय ।
जहिं णारीयण दिढ-सील-जुत्त,
दाणे पासिय णिरु तिविह पत्त ।
तियमिसेण लच्छि अवयरिय एत्थु,
गयरूव ण दीसइ वि कावि तत्थु ।
वर-अंवर-कणयाहरणएहि,
मडिय-तणु सोहहिं मणि-जडेहिं ।
जिण-ण्हवण-पूय-उच्छाह-चित्त,
भव-तणु-भोयहिं णिच्च जि विरत्त ।
गुरू-देव-पाय पकयहिं लीण,
सम्मद्दसण-पालण- पवीण ।
पर-पुरिस स-बंधव सरिस जाहिं,
अह-णिसु पडिवण्णिय णिय मणाहिं ।
किं वण्णमि तहि हउ पुरिस-णारि,
जहिं डिभवि सग-वसणावहारि ।
पव्वहिं पव्वहिं पोसहु कुणति,
घरि घरि चच्चरि जिण-गुण थुणति ।
साहम्मि य वच्छलु णिरु वहति,
पर अवगुण झपहि गुण कहति ।
एरिस सावयहिं विविहिय माणु,
णेमीसर जिण हरि वड्ढमाणु ।
णिवसइ जा रइधू क व गुणालु,
सुकवित्त रसायण णिहि रसालु ।

घत्ता—
तास जस पसर-पूरिय-णहेण सग-भार-धुर-धरिय सिह ।
सिरि कमलसीह सघाहिवेण बुहयणु त्ति विणत्तउ ॥६॥

× × × ×

अम्हहिं किंपि धम्मु चिंतिज्जइ,
त ण करहु सक्कमि सकिज्जइ ।
पडि दिणम्मि इय चिंत कुणिज्जइ,
तुम्हाएसे तं सपज्जइ ।
जस कित्तणु तउ णिरुवद्द सइ,
पुणु अखड्डु अणतु हवे सइ ।
हउ वराउ महियलि असमत्थउ,
मणुव-जम्मु किं णेमि णिरत्थउ ।
त णिसुणेप्पिणु पुलइय-कायें,
कित्तिचंद कुमरहु पुणु तायें ।
वियसि विजपिउ डुगररायें,
कमलसीह वणिवर सपायें ।
पुण्णु कज्जु जं तुव मणि रुच्चइं,
त विरयहि साहु समुच्चइ ।
जे पुणु अण्ण केवि सु-सहायण,
करहु करहु ते धम्म महायण ।
किं पि सक मा किज्जइ चित्तहिं,
सतुट्ठउ हउ धम्म-णिमित्तहिं ।

जहिं सोरट्ठि वीसल णिव रज्जहिं,
धम्म पविट्ठिउ चिरु णिखज्जहिं ।
वच्छ-तेयपालक्ख-वणिदहिं,
पवर तित्थ णिम्मिय गयदर्तहिं ।
जिह पेरोजसाह सुपसाएँ,
जोइणिपुर णिवसत अमाएँ ।
सारंगसाहु णाम विक्खाएँ,
पविहिय जत्त धम्म अणुराएँ ।
तिहु तुहुँ विरयहि एत्थु गुणायर,
लइ लइ पउरु दव्वु धम्मायर ।
न सु जेत्तइ उविरि अच्छइ,
सो सयलु ज्जि वेक्कउ कय-णिच्छइ ।
ऊणइ हउ असेसु पूरेसमि,
ज ज मग्गहु त त देसमि ।
पुणु पुणु तेण एम तहिं भणिउँ,
पुणु तबोलु देवि सम्माणिउ ।
पुणु सुरिताणसीह णिय भिच्चहु,
सामिय धम्म चिंतियहु णिच्चहु ।
तहु आएसु णिवेण पुणु दिण्णउ,
किज्जहिं धम्म-सहाउ अछिण्णउ ।
कमलसीह ज तुम्ह [हु] भासइ,
त तहु पविहिज्जहि सु-समासइ ।
भणिवि पसाउ तेणा पडि वणऊ,
अज्जु सामि किंकरु हउ घणऊ ।

घत्ता—
सुपसाउ अतुल्लु णेरसरहो लहिवि वणीसरु तुट्ठमणि ।
चउविह-सघें जुउ सोज्जि पुणु उडवाविहि सपत्तु खणि ॥१५॥

× × × ×

जो देवाहिदेव तित्थकरु,
आइणाहु तित्थो य सुहकरु ।
तहु पडिमा दुग्गइ णिण्णासणि,
जा मिच्छत्त-गिरिंद-सरासणि ।
जा पुणु भव्वह सुहगइ-सासणि,
जा महिरोय-सोय-दुह-णासणि ।
सा एयारह कर-अविहगी,
काराविय णिरुवम अइतुगी ।
अगणिय अण पडिम को लक्खइ,
सुरगुरु ताह गणण जइ अक्खइ ।

करिवि पयिट्ठ तिलउ पुणु दिण्णउ,
चिरु भवि पविहिउ कलिमलु छिण्णउ ।
चउविह-सघहु विणउ पयासिउ,
कज्जु सयलु जा सिद्धु सुहासिउ ।
ता हउ णिय मणम्मि सतुट्ठउ,
ण भवेणिहाणु थुड्ड दिट्ठउ ।
एँ वासागमु लद्धमु ऊरें,
ए समरगणु णिब्भय सूरें ।
ए जोईसहु झाणु जि सिद्धउ,
एँ विज्जे पारय रसु वद्धउ ।
इय सतोस परायण सते,
मइ सुहेण पुणु घरिणि वसतें ।
अण्णहिं दिणि ज चिंतिउ पडिय,
त णिसुणहि भो सील अखडिय ।

घत्ता—
ज ज इह तिय जम्मि सुहयारउ णिरु दीसइ ।
त त सयलु अखडु जिणधम्महु फल सीसइ ॥ १७ ॥

त सपज्जइ दय-परिणामे,
त सपज्जइ वियलिय-कामे ।
त सपज्जइ वय-तवयरणें,
त सपज्जइ णिज्जिय-करणें ।
त सपज्जइ उवसमभावें,
त सपज्जइ वज्जिय-गव्वें ।
एरिसु धम्मुवि ति-जय पयत्थउ,
सम्मत्तें विणु त पि णिरत्थउ ।
ससारऊ कारण जाणिज्जइ,
मज्जणिविंत्ति सहु त किज्जइ ।
त सम्मद सणु अइ-दुल्लहु,
मज्झु पयासहि त पडिय लहु ।
कासु जाउ चिरु दमणु सुद्धउ,
केण केण फलु लद्ध-विसुद्धउ ।
त सोउ कइमुहउ वछमि,
सद्दहामि रोएमि समित्थमि ।
तुहु पुणु कव्व-रयण-रयणायरु,
वालमित्तु अम्हह णेहायरु ।
तुहु महु सच्चउ पुण्ण-सहायउ,
महु मणित्थ पूरण अणुरायउ ।

जिण-पइट्ठ महु णिरुवम होति,
चरिय पुराण गुणेण महंति ।
पइयणु विरइय सत्थ अणेइय,
चरिय पुराणामय बहु भेइय ।
एव्वहि महु विण्णत्ति य माणहिं,
सत्थ चदि णायर करु ढाणहि ।

घत्ता—

णसुणिवि कइणा णिम्मलमइणा पडि जपिज्जइ सुहमणिणा
हरिसिघहु पुत्ते गुणगणजुत्ते हसिवि विजयसिरि णदणेण ।।

अन्तिमभागः—

मइ अमुणते अक्खरविसेसु,
णउ मुणमि कव्व पुणु छदलेसु ।
मइधिट्ठत्तणेण रयउ सत्थु,
णउ बुज्झिउ सद्दासद्द अत्थु ।
दुज्जण सज्जण ससहाव जे वि,
महु मूढउ दोसु मलेउ कोवि ।
हीणक्खरु मणि विरयरु तत्थ,
सथवउ अण्णु वज्जिवि अणत्थ ।
ज अहियक्खरु मत्ताविहाउ,
त पुसउ मुणिवि जणियाणुराउ ।
चउदह सय वण्णव उत्तरालि,
वरिसइ गय विक्कमराय कालि ।
वक्खेयत्तु जि जणवय सभक्खि,
भद्दव मासम्मि स-सेय पक्खि ।
पुण्णमि दिणि कुजवारे समोइ,
सुहयारें सुहणामे जणोइ ।
तिह्न मासयरति पुण्णु हूउ,
सम्मत्तगुणाहिणिहाणु धूउ ।
जिणणाहु पिया महु चरमदेहु,
अविचल केवल-लच्छीहिं मेहु ।
भवि भवि तित्थकर मज्झ देउ,
होअउ गुरु णिग्गथु वि अलेउ ।
संपज्जउ बोहि-समाहि-लाहु,
ससार-महण्णव-दिण्ण-थाहु ।
उत्तमखमाइ दह भेय धम्मु,
सभव दयावरु भुवण रम्मु ।
हे वीयराय जिण जणिय भोउ,
मग्गमि णाहं संसार-भोउ ।
देवाहिदेव दय करहि मज्झु,
महु भत्तिभाउ पय होउ तुज्झु ।

घत्ता

विरएप्पिणु कइणा एहु दिणु हत्थि सघाहिवहो ।
सा णट्ट चित्तिणा सघाहिव वित्तिणा सम्माणिउ त्ति बहुजि बहु

गोयायलि डुंगरराय रज्जि,
सिवओ सइ वइणा विहिय कज्जि ।
तहि णिव-सम्माणें तोसियणु,
बुहयणह वित्तिउ ज णिच्च सगु ।
करुणावल्ली वण धवणकंदु,
सिरि अयरवाल कुल कुमुदचदु ।
सिरि भोया णामे हुवउ साहु,
सपत्तु जेण धम्मे लहाउ ।
तहु णाल्हाही णामेण भज्ज,
अइ साहुहाण सा पुण्णकज्ज ।
तहु णदण चारिउ गुणोहवासु,
ससि-णिह-जस-भर-पूरिय-दिसासु ।
खेमसिह पसिद्धउ महि गरिट्ठु,
महराजु महामइ तहु कणिट्ठु ।
असराज दुहिय-जण आसऊर,
पाल्हा कुल-कमल-वियास-सूर ।
एयहु गरुवउ जो खेमसीहु,
वण्णियउ एत्थु भव-भमण-वीहु ।
तहु णिउरादे भामिणि पउत्त,
गुरु-देव-सत्थ पय-कमल-भत्त ।
तहि उयरि उवण्णा विण्णि पुत्त,
विण्णाण-कला-गुण-सेणि-जुत्त ।
पढमउ सघाहिउ कमलसीहु,
जो पयलु महीयलु सिव-समीहु ।
णामेण सरासइ तहु कलत्त,
वीई जिस सेविय-पायभत्त ।
चउविह दाणें पीणिय सुपत्त,
अह-णिसु विरइय जिणणाह जत्त ।
तहु णदणु णामे मल्लिदासु,
सो सहत्तउ सुह गइ णिवासु ।
सघाहिव कमलहु लहउ भाउ,
णामेण पसिद्धउ भोयराउ ।
तहु भामिणि देवइ णाम उत्त,
विहि पुत्तहिं सा सोहइ सउत्त ।

णामेण भणिउ गुरु चदसेणु,
पुणु पुण्णपालु लहुवउ श्ररेण ।

घत्ता—
इय परियण जुत्तउ एत्थु णिरु कमलसीहु सघाहिव ।
चिरु णदउ एत्थु पसण्णु मणु णिद्दय-दुहिय-जणग्रा(उ) इ ॥

णदउ वीर जिणेसहु सासणु,
लोयालोय सरूव-पयासणु ।
णदउ सूरि चरित्तचरतउ,
सिरि जसकित्ति महातव तत्तउ ।
णदउ वसुहाहिउ वसुधारउ,
चउवण्णस्स सति पययारउ ।
णदउ सयलु महायणु सारउ,
घय णिय मायरु कलिमलु हारउ ।
णिय समयहिं घणु अविरल धारहिं,
वरिसउ णिच्च चित्त सुह यारहिं ।
मेइणि सयल-सालि णिप्पज्जइ,
घरि घरि मगल विहि सपज्जइ ।
घरि घरि सव्वहु जिण अचिज्जइ,
घरि घरि पत्तदाणु णि दिज्जइ ।
णदउ कमलापहु सघाहिउ,
भोयराय सहु पवर गुणाहिउ ।

घत्ता—
पाडिजतउ बुहयणहिं इह सत्थु असत्थु सपत्थउ ।
णदउ चिरु वीढम्मि थिरु पयडिय जे परमत्थउ ॥ ३६ ॥

इय सिरि सम्मत्तगुणणिहाणे णिरुवम-सवेयभाव-सुपहाणे सिरि बुहु-रइधू-विरइए सिरि-सघाहिव-कमल-सीह-णामकिए पहावणगगुण-वण्णणोणाम चउत्थो सधि-परिच्छेउ समत्तो ॥ सधि ४ ॥

४१ अरिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण)

आदिभागः— **कवि रइधू**

सुर-वइ-सय वदहु तिजय श्रवदहु सिरि अरिट्ठणेमिहु चरण ।
पणविवि तहु वसहु कहु जय ससहु, भणमि सवण-मण-सुद-रमणं ॥६॥

नोट—इस घत्ता के अनतर 'जय जिण उसह (उभय) सुहकारण । जय जय अजिय भवतुह तारण' रूप से चतुर्विशति तीर्थकरो का स्तवन दिया है ।

जिण-मुह-णिग्गय देवि भडारी,
वाएसरि तिल्लोय-पियारी ।
साय-वाय-विहि-पयडण-सारी,
मिच्छावाय-वाय-अवहारी ।
केवलणाण-पमुह गुणधारी
पणवेप्पिणु सामिणि सुहयारी ।
चउदह सय तेवण जिण वणिहिं,
णिच्च-भव्व-मण-उप्पाइय दिहि ।
कम्म-दारु-पज्जालण-खरसिहि,
भोयण-काल वसहि सावय-गिहि ।
विसयसेणु धुरि अति जि गोयमु,
ते पणवेप्पिणु पयडिय गोयमु ।
जाहु अणुक्कमि जे मुणिजाया,
णाणभोणिहि जहु विक्खाया ।
देवणदि वाएसरि-भूसिउ,
जेहि जइणिद-वायरण पयासिउ ।
जिणसेण वियक्खण विगयलड्डु
जेण महापुराण किउ पयड्डु ।
तह रविसेणु सु-तव-विप्फुरिउ,
ते रामायण-सायरु-तरियउ ।
एवमाइ बहुसूरि अणुक्कमि,
सजायउ रिसि-पुग-मुणित्तमि ।
कमलकित्ति उत्तमखम-धारउ,
भव्वहु भव-अबोणिहि-तारउ ।
तस्स पट्ट कणयट्टि परिट्ठिउ,
सिरि-सुहचद सु-तव-उवकट्ठिउ ।

घत्ता—
सद्दसण णाणइ चरिय-समाणइ अह णिसि भावतउ सुमणि ।
गुरुपय सेवतउ तच्च-सुणतहु णिवसिय जा पडिय भवणि ॥

ताम अणुव्वय-धरण-पहावें,
पीणिय सावय-जण सुहदाणें ।
एयादह पडिमा गुणठाणें,
तित्तउ सिद्धतामय पाणें ।
सिरि-गुणकित्ति सूरि पयभत्तें,
देह-भोय-ससार-विरत्तें ।
बभयारि खेल्हा अहिहाणें,
आहासिज्झइ भव्व-पहाणें ।
भो रइधू पडिय सुहभावण,
पइ वहु सत्थ रइय सुह-दावण ।
सिरि तेसट्ठि पुरिस गुणमदिरु,
रइउ महापुराण जयचदिरु ।

तह भरहहु-सेणावइ-चरियउ,
को मुह पवधु गुण-भरियउ ।
जसहर-चरिउ जीव-दय-पोसणु,
वित्तसार सिद्धत-पयासणु ।
जीवंधरहु वि पासह चरियउ,
विरइवि भुवणत्तउ जस-भरिउ ।
भो कइ-तिलय महागुणभूसणु,
सिरि अरिट्ठनेमिहु जण-पोसणु ।
विरइय चरिउ मज्झ उवरोहे,
सोउ वछमि पयणिय मोहें ।

घत्ता –
इय खुल्लय वयणाइ पोसिय जयणाइं
अवहारिवि पसु रयण माणिउ ।
को जडु घड उल्लेखें मवड जय विरय गुत्त
णियइ ते पल्लउ सहसकिरण पुरु किं जोइल्लउ ॥

× × × ×

तास णिउ बंभवय-धारएण,
णेमित्तिउ णिसुणहि थिरमणेण ।
जोइणिपुराउ उत्तर-दिसासु,
तहु णिवडु झुणु-झुणु पुरु पयासु ।
ण लच्छि हि केरउ वर विलासु,
चउवण्णासिय-जण-कय-णिवासु ।
चउहट्ट चच्चरुद्दाम जत्थ,
वदियण वयण-कलरव पसत्थ ।
जिण-महिम-महोच्छव दाणसोह,
सावय णिवसहिं जहि सुद्धबोह ।
जहि णिच्च ण्हवण पावावहार,
धय-अड-दड-राइय-विहार ।
जहिं धीर वियक्खण वसहि लोय,
तियसत्थ समासिय-दिव्व-भोय ।
तहिं आसि वणीवर-कुल पहूउ,
अग्गोयवसु पयसार भूउ ।
दुव्वसण-पाव-वासण अगम्मु,
सघाहिउ लक्खू णामु रम्मु ।
तहु पिय देवाही सच्चवाय ।
सु-पसण्ण सील ण सीय जाय ।
तहु तणुरुह बुहयण कप्पविक्खु ।
पोसियउ णिच्च जिण-समय-पक्खु ।
परियण-गण-यगण-उदयभाणु ।
सिरि-लाहासाहु गुणाण ठाणु ।
दिव्वराजही तिय तहु तणिय कति ।
णं परम मुणिदंहु सुद्ध खति ।

घत्ता—
तहि गब्भ-उवण्णा सुह-सपुण्णा णदण णिरुवम सोहधरा ।
दुक्खिय-जण-पोसणु कुलहर-भूसणु तिणि पन्हव पलवकरा ॥४

तह पढमउ णदणु दुरिय-हरु,
जस-वल्लि-पसर-आहार-तरु ।
परिवार-धुरा-धारण-धवलु,
णिग्गथ-सवण--णुय-पय-कमलु ।
दाणेण पयोसिय विकुह मणु,
लोणा सघाहिउ भूरि धणु ।
बीयउँ णदणु सवेय-णिहि,
पयणिय गुणियण सदोह दिहि ।
पर-णारि-परम्मुहु सपियरउँ,
अरियण-सघह-पलद्ध-जउँ ।
ओदा अहिहाण गुण-णिलउँ,
बुह-चिंतामणि पुरयण-तिलउ ।
पुणु पउमसीहु तीयउ पसिद्धु,
सम्मत्ताइयवर-गुण-समिद्धु ।
उव्वहि जेण जिण-समय-आण,
णिव्वाहिय पत्त-तिभेय-दाण ।

घत्ताः—
एयाह जि गुरुयरु जण विहियायरु, दुहियण-जण-णव-कप्पतरु
लोणा जु पउत्तउ जिणपय भत्तउ, अच्छमु कुलणाह दिवसयरु

इय सिरि-अरिट्ठणेमिचरिए हरिवस-कहतराइ गुण-भरिए सिरि लाहासुअ-साहुलोणा-अणुमण्णिय-सेणिय-समवसरण-गमणो पढमो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्तिमभागः—

जिण-सुत्त-अत्थ-अलहतएण,
सिरि कमलकित्ति -पय-सेवएण ।
मइ जड हीणाहिउ भणिउ किंपि,
बुहयण सोहेप्पिणु सयलु तपि ।
कायव्वु सुद्धु इहु हरिपुराणु,
जिम लोय पवट्टइ लद्धमाणु ।
सिरि-कंजकित्ति-पट्ट बरेसु,
तच्चत्य-सत्य-भासण दिणेसु ।

उदइय-मिच्छत्त तमोह-णासु,
सुहचंद भडारउ सुजस-वासु।

घत्ता —

तहु पय सेवति जिणहरि ठंति कइणारिट्ठणेमिचरिउ।
विरइउ पुणु विरयमि जेण अवकमुहु उदापारु गुणुक्करिउ॥

अग्गोयवंसु गुण णलिण-हंसु,
गोयल सुगोत्तु जण लद्धथोत्तु।
जिण-समय भत्तु राईव वत्थु ?
राजेहिंहाणु तहि हु उ पहाणु।
तहु सुउ सुणेहु सुह-लच्छि गेहु,
बाटू सुसाहु करि-सु ड-बाहु।
णयणा सुभज्ज तह गुण सहेज्ज,
सुभयनाम पंच कय सुकय संच।
पढमउ भणिदु पाल्हा वणिंदु,
लाखू विदीउ दोदा तिदीउ।
लक्खणु चउत्थो लक्खण पसत्थु,
पुणु अरुहदेव सेवासु सेउ॥

घत्ताः—

पाल्हा साहुहु सुउ विणय अग जुउ धील्हा णामें तासु पिया
काल्हाही सुउ तहि साथर गुणणिहि सहदेवी पियणाम सिय

सहदेवी णदण वे वि जाण,
दीवा ओल्हा णिरु णेह भाण।
जो बाधू सुउ लाखू पउत्तु,
तहु गुण वण्णें सुरगुरु जहुत्तु।
तहु पिय णयणवइ देह जायदर्ण,
ए साणउ पिय-दुक्ख घायण।
देवाही णामा सुह चरित्त,
जिणधम्म-रसायण-पाण-तित्त।
तहि गब्भि उवण्णउ कुल-णिहाणु,
कुल-कुवलय-पोसणु सेय-भाणु।
बुहयण-चिंतिय-सुह-कामधेणु,
सव्वत्थ विणमिय सुजस-रेणु।
जिणधम्म-लाह सतुट्ठ-चित्तु,
सिरि लाहा साहु बुहाणि मित्तु।
तहु पिय सपइव्वय वयणसार,
णयणहे सुह-यरण खीर-धार।
मल-पडल णासि ए सुकइ-वत्ति,
दिवराजही ति अहिहाणु जुत्ति।

घत्ता—

तहि देहि उवण्णा चिर सुह-पुण्णा, तिण्णि तणुब्भव परिमल मणा
दुक्खिय-जण-पोसण णिय-कुल-भूसण विबुह महीरुह वणसघणा

पढमु ताहं लायण पहणाउ,
लोणासधाहिं वरवणउ।
दाजाही पिययम साहीणउ,
णिच्च जिणिंद-भत्ति-भर-लीणउ।
तिपरदास पुत्तेंहि पउण्णउ,
दाण-पूय-विणएंहि सउण्णउ।
पुणु बीओ पुण्णोदयचंदो,
उदयचंदु उवयार अणदो।
भामिणी चोचाही सुहु भावण,
णदण तिण्णि हुया घर पावण।
सहसराजु गुण-सहसह भायणु,
वच्छराजहो पियराइय मणु।
भमराज जगमलु पुणु तीयउ,
देव-सत्थ गुरु पाय-विणीयउ।
पुणु छज्जीव-णिकाय-दयावरु,
पदमासाहु सउल-णह-भायरु।
जीदाही अद्धंगिणि सोही,
पुत्त-जुयल-णेहेण ण मोही।
खेमवतु खेतागरु णारउ,
गुरुदासु जि जणविंद-पियारउ।
तीया पुत्तु दगाई जगि विक्खाया,
. . . .।
पुणु चउत्थो चाउ-गुण-भायण,
दाण-सील-विणए सुह-पावण।
पुणु बाधू साहुस्स तणुब्भउ,
दोदा जो पयत्तु महि णिब्भउ।
बालाही पिययम मोहिल्लउ,
जाटा णदणेण सोहिल्लउ।
सूदाही जाया पिय उत्ती,
विण्णि पुत्त-पुत्तेंहि सउत्ती।
पाहा पढमु पहिय-विस्सामो,
बोहिच्छहं पिय पूरिय-कामो।
सुय वहोरु उल्हो वे भासिय (?)
धम्ममेण अण्णोण्ण पयासिय।
जाटा साहुहु णदणु बीयउ,

धारिउ जेण धम्मु वर दसणु ।
मेल्हू णामें जय-विक्खायउ,
डूंगरही भज्जा अणुरायउ ।

घत्ता—

पुणु वर जस फुरिउ लक्खमणु तरियउ दिउराजही तासुपिया
वे णदण जाया णेह सखाया वागुण सोहिय धम्महिया । २७

तिहुणा तिहुवण-वइ पय-भत्तउ,
खेताही तहु भणिउ कलत्तउ ।
णागराजु बीयउ णेहासिय,
चूहडही णामे तिय भासिय ।
पुणु जो सेवा साहु जि पचमु,
णिरसिउ जेण अट्ठमय भरतमु ।
जमु पिय भीमाहिय जिय पव्वय,
जा पालइ कासण्णें वरदय ।
तहु णदणु मेहा जिण-भत्तउ,
कोलाही पिययम आसत्तउ ।
णाणू णदणु मुणि-पय व दउ,
एहु सयलु परियणु सणदउ ।
णँदउ समउ वीर-जिण केरउ,
धम्मु पवट्टइ सुक्खु जणेरउ ।
णदउ सूरि सुगुरु सुहुचदो,
कमलकित्ति-पट्ट वर-च दो ।
णदउ महि वइणीय पणासणु,
भव्व विणिदउ सच्च पयासणु ।
चिरु ण दउ लोणा सघाहिउ,
भायर परियण जुत्तु जस हिउ ।
जासु भत्ति-भारेण जि कइणा,
रइधू णामेण जि सुहमइणा ।
उदयराज जणणे जि रइयउ,
सिरि अरिट्ठणेमिहु जिण-चरियउ ।

घत्ताः—

चिरु णदउ सत्थो जाम णहत्थो रवि ससि गह णक्खत्तणु ।
कइयण णिरु सोहहु दोसु णिरोहहु सुणइ पयभ भव्वयणु ८

इय हरिवसपुराणे मण-वछिय-फलेण सुपहाणे सिरि-पंडिय-रइधू-वण्णिए सिरिमहाभव्व-साधु लाद्दा-सुय सघाहिव-लोणाणुमणिए सिरिअरिट्ठणेमिणिव्वाण-गमण तहेव दायारवसु-देसणणाम चउदहमो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥

४२—धणणकुमार चरिउ (धन्यकुमार चरित)

कवि रइधू

आदिभाग—

पणविवि सिरिवीरहो णाणसरीरहो कमजुओ धणकुमारचरिओ।
अक्खमि सुपसिद्धओ गुणगणरिद्धहो धम्म-रसायण-रस-भरिओ।

जे हूवा होसहि तित्थकर,
वट्टमाण पणविवि सुहकर ।
साय-वाय-वयणइ दरिसती,
णय-पमाण-विहि जा भासती ।
णिच्च भाइ सा देवि सरासइ,
णविवि जेम मइ विउल पयासइ ।
पुण गणेसु गोयमु गणसारउ,
जणण-समुद्द-पार-उत्तारउ ।
तह सुधम्म पमुहाइ जईसर,
पणविवि भत्तिए वय-भारधर ।
ताह अणुक्कमि सूरि पहाणउ,
सहसकित्ति तव-वय-गुण-ठाणउ ।
तास पट्टणि रूव-गुण-भायणु,
जे भाविउ मणि णाण-रसायणु ।
सिरिगुणकित्ति विबुह-चितामणि,
पणविवि तिरयण सुद्धिए बहुणि ।

घत्ता—

इय जिण मुणिवरविंदु साइ वि मण वय-काए ।
तुणु पयडमि जणिसधु गुरुगुणकित्ति पसाए ॥ १ ॥

अण्णहिं दिणि जिणगुणसु विसालें,
विहसि विजपिउ बुद्धि-विसाले ।
भो सद्दत्थ-रयण-रयणायर,
मिच्छमय-तम-णाण-दिवायर ।
रइधूपंडिय सुणि णिम्मत्थर,
बुहयण जण-मण-रजण-कोत्थर ।
जह पइ पास-जिणंदह केरउ,
चरिउ रयउ बहु सुक्ख-जणेरउ ।
पुणु बलहद्द पुराणु सुहकरू,
णेमि-जिणिंद-चरिउ विरयउ वरु ।
सादल साहु णिमित्ते सु दरु,
जह-पय वट्टमाण भासिउ वरु ।
तहिं सिरिधणकुमार पुण्णह फलु,
महु वयणे पयडहि पुणु गयमलु ।

ता गुरुभणियालाव सुणेप्पिणु,
रइधू बुहु जपइ पणवेप्पिणु ।

घत्ता —

तुम्हह आएसें कव्वुविसेसें करमि ण ससउ धरमि मणि ।
परकारण वट्टइ चित्ति पवट्टइ सेयोरुण कुवि णियमि जिणि॥२

त सुणिवि भणइ गुणकित्ति एम,
भो पडिय तुह णउ मुणहि केम ।
गोवागिरि णियड पएसि धम्मु,
पुरुपाल सडु णामेण मणु ।
इक्खाइ वसि तहि चिरु वणेंदु,
अगणिय जाया पणविय जिणेदु ।
जसवालु जसायरु गुण-महतु,
करमु पटवारि जणि महतु ।
तुहु णदणु णिरुवमु गुण णिवासु,
अहणिसु जो अच्चइ जिणवरासु ।
चउविह सॅघ विणयाणुरत्तु,
सिरि पूनउ साहु सधम्मि वत्तु ।
तुहु भज्जा सील गुणस्स खाणि,
सव्वहि य णाइ तित्थयर-वाणि ।
तिहुवण सिरि मुणियण-पय-विणीय,
सिरिहरसिरि जिम राहवहु सीय ।
एयहि सजणिया चारि पुत्त,
लक्खण-लक्खकिय विणय-जुत्त ।
णिय-कुल-मयकु पुणु पढमु ताह,
भुल्लणु जि साहु पयडहु जणाहं ।
वीयउ पुणु बुहयण-जण-निवासु,
सिरि रूले णामे जस-पयासु ।
तइयउ णदणु मयणावयारु,
सिरि कामराजु णामेण साहु ।
चउथउ णदणु आसण्णि वासु,
आ-लु णामे सो कुल-पयासु ।
एयहि जो पढमउ गुण-गरिट्ठु,
सिरिभुल्लण णामे साहु सिट्ठु ।

घत्ता:—

आरउण पुरवरे मुह लच्छिधरे, तहि पहुवइरि-णिकदणु ।
तोमरकुल मडण अरि-सिर खडणु, सिरि डूंगरिंद णदणु ॥३॥

× × ×

इय सिरि धणकुमार-चरिए कय सुह-भावण-फलेण विप्फुरिए सिरि पडिय-रइधू-विरइए सिरि पुण्णपाल-सुत साधु सिरि भुल्लण-णामकिए धणयत्तजम्म वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

णदउ महिवइ णाए पवीणु
णदउ सज्जण यणु भरिय-दीणु ।
णदउ स-धम्मु सिव-सोक्खयारि,
णदउ जइवर वट्टय-भार-धारि ।
इक्खकु वस-मडण-मयकु,
सिरि पुण्णपाल-सुअ विगय-सकु ।
णदउ भुल्लण णामेण साहु,
णिउरादे वल्लहु दीह-बाहु ।
महु होज्जउ विमलसमाहि-बोहि,
जा दुग्गइ-गमणहु पह-णिरोहि ।
णिय-कालें वरसिउ मेघमाल,
गिहि गिहि समुहु मगल व माल ।
बहु-अत्थ-समिद्धहु चरित्त एहु,
परिपुण्ण करिवि सवेय-गेहु ।
पडिएण समप्पउ पाव-णासु,
भुल्लण हु हत्थि पयडिय-पयासु ।
तेण जि णिय सीसि चढाविएण,
पुणु पडिउ पुज्जिउ पणमिएण ।

घत्ता—

गुण मुणिहु पसाए पयडिय-राए सिद्धउ कव्व-रसायणु ।
सो पाइज्जतउ अत्थ-समतउ वट्टउ सुह-सय-भायणु ॥१६॥

जिण गुण गणराए वज्जियमाए,
चरिउ कराविउ एहु वउ ।
तहु वसु पसिद्धउ सुह जण रिद्धउ,
पयडमि जणमण-सुक्खकरु ।
धण-कण-जण-पुण्णउ सुह-णिवासु,
पुरुपालि सडु अरि विहिय तासु ।
तहि वणिवरु जिण-पय-चचरीउ,
भव भमणहु जो मुणि णिच्च भीउ ।
करमू पटवारिउ गुण-गरिट्ठु,
सोइ सुणाइ मुणि-दाण इट्ठु ।
तहु भज्जा रूवा रूवसार,
णं सील-वयहु पढमिल्लकार ।
तहु णदण णव ण णव-पयत्थु,

गोवद्धणाइ भणि मुणिय-सत्थु ।
उद्धरणु पढमु उद्धरिय-दीणु,
साधारणु सावय-धम्म-लीणु ।
तीयउ खझ्झउ खम-गुण-महतु,
तुरियउ पुण्णउ पुण्णे महतु ।
मल मुक्क मल्हि पचमउ वुत्तु,
जो परियणाइ आयमु पवितु ।
रयणत्तय-भत्तउ रयणु साहु,
हरि भुत्ति हरु पुणु दीह-बाहु ।
अट्ठमउ घिरराजु गुणोह ट्ठाणु,
घूघलि नवमउ तुज्झिय पमाणु ।
एह जि मज्झि चउत्थउ ज्ञि वुत्तु,
सिरि पुण्णपालु भणि मुणिय सुत्तु ।

घत्ता—

तहु पढमीभामिणिकुलगिह-सामिणितिहुवणसिरि णामेभणिया
बीई पुणु मणसिरि ण पीयउ सिरि अह पवित्तु रूवहु भणिया ।।

णदण य चारि तहु विणयवतु,
ण णतचउक्क जि जणि सहतु ।
ताह जि गुरुम नतणि अ भुल्लु,
सिरि भुल्लणु णामाणे जि अतुल्लु ।
तदुभय चउविह-पत्त-भत्त,
णिउरादे णामा गिह महत ।
बीयउ णदणु सूलेसु वाणि,
तहु भज्जा महासिरि णेह खाणि ।
तहु तिण्णि पुत्त कुल-भवण दीउ,
... .काम दीउ ।
अमरदिउ लाडमखु .... ?...
ए रयणत्तउ जायउ पयक्खु ।
तीयउ णदणु पुणु कामराज,
कल्लाणसिरी भज्जा सराज ।
चउथउ सुउ आसलु विगय-पाउ,
परिवार-पहू णदउ सराउ ।

घत्ता—

एयह सव्वह पुणु पयडिय बहुगुण णदउ भुल्लणु गुण भरिउ
धणयत्तकुमारहु सुहफल सारहु कारिवओ वइ इहु चरिउ

इय सिरि धणकुमार-चरिए कय-सुय-भावण-फलेण विप्फुरिए सिरि पडिय-रइधू-विरइए सिरि पुण्णपाल-सुय-साधु मिरि-भुल्लण-णामकिए भव्वजीवाणुमण्णिए धणकुमार-णिव्वाण-गमण-वण्णणो णाम चउत्थी सधी परिच्छेओ समत्तो ।।४।।

४३—जसहरचरिउ (यशोधर-चरित)

कवि रइधू

आदिभागः—

सिरि रिसह पवित्तहु केवल-णेत्ताहु सिव-सिरि-पत्तहु कम-जुयल
पणविवि तिजईसहु विजिदर ईसहु जसहर-कह पयडमि विमलं

जाम सुक्इ जिण-पय-पणमतउ,
अच्छइ चेईहरि णिवसतउ ।
ताम ईसि विहसेवि पयत्तें,
णिव्वाराहिय मणि रयणत्तें ।
दो-विह-सुनव ताव सतत्तें,
णिम्मल-गुण गणाण णिरु पत्ते ।
कमलकित्ति णामेण जि गुरुणा,
तेण पवत्तउ मइ सुइ-गुरुणा ।
भो भो सुणहि रइधू पडिय,
पइ कइत्त बुहयण सह-मडिय ।
दय-गुण-सार जसहर-चरियउ,
विरयहि धम्म रसायण-भरियउ ।
अयरवाल-वसवर-ससहरु,
जिण-पय-कमल-दुरेहु दुरिय-हरु ।
व मलसीह-साहुहु जो णदणु,
णिच्च तियाल-विहिय-जिण-वदणु ।
मिच्छा-समय-परम्मुहु सतउ,
णिम्मल-जस-भूसिय-नोयत्तउ ।

छह-कम्माणुरत्तु गुण-मदिरु,
रायहस गणि तेयें चदिरु ।
कचणु दाणे परिणिय बुहयण,
हेमराय णामे भाव [हि] मण ।
सो सोयारु पयड्ड जणि जाणहि,
तासु णामु सुकइत्तणि ठाणहि ।
सो कइत्त आयासु पमाणई,
अइसएण तुम्हह सम्माणई ।
तव-वय-सम-दाणाइ गुणावर,
जीव-दया-विण सयल अहलयर ।
इदि सिरि गुरुणा देसिउ जामहि,
कइणा सव्वय मण्णिउ तामहि ।
हेमणामु णिरु तुम्हाएसें,
कव्व सुरायलो ठवमि विसेसें ।

घत्ता—

जीवाह सुहकरु धम्म इह जइ दय-लक्खण इरि कहिउ ।
ता णिसुणहु णिरु जसइंरहु कहा जणु महोउ उप्पह पहिउ।।

× × × ×

अन्तिमभाग —

इह मज्झलोय जण पवर भोय,
लाहड पुरक्खु खय वइरि-पक्खु ।
वण-उववणेहि मंडिउ घणेहिं,
सुह-वस-सेणि ण कुतिय-बेणि ।
साहार उच्च जहिं सहल णिच्च,
सप्पुरिस जेम ते सहहि तेम ।
दारु-मय गेह कय-चित्त-णेह,
रयेहिं चत्त ण जाणवत्त ।
तत्थट्ठियाह सावय जणाह,
.. .. ।

भवजलहि पारु होही अपारु,
जहिं जण सदिट्ठि णिवसहिं सहिट्ठि ।
घरि घरि जिणिंदु केवल दिणिंदु,
पुज्जति भव्वु जहिं गलिय-गव्वु ।
पत्ताह दाण विणएँ पहाण,
घरि घरिवि जत्य दिज्जहि पसत्थ ।
तहिं अत्थि राउ अरि-खय कयाउ,
णिव णीइ-वतु जयलच्छि-कतु ।
सुलिताण साहि सुउ पयडु आहि,
... . ।

ईसप्फ णामु रूवेण कामु,
सगामि मल्लु अरि-चित्तु सल्लु ।
तसु तणइ रज्जि णिम्मल जसज्जि,
अग्गोयवंसि बुहयण पसंसि ।
जोयणिपुराउ चिरु वसिवि आउ,
जिणसमय-भत्तु पोसिय-सुपत्तु ।
चौदेहिड्डाणु वणिवरु पहाणु,
तहु सुउ उप्पण्णु गुण-गण-पसण्णु ।
कुलकमल भाणु कलविबुह माणु,
दय-धम्म-लीणु चाएँ पवीणु ।
पालिय सवग्गु दिढ समय लग्गु,
पाल्हा सुसाहु णामें अवाहु ।।

घत्ता—

तहु णंदणु आणंदिय सयणु कमलालंकिय वत्थयलु ।
तिहुँ सुद्धिए अहणिसु जिणवरह भत्तिए पणमिय पय-जुयलु

कमलसीहु णामेण पसिद्धउ,
जिण समयाण भत्ति पडिबद्धउ ।
साधम्मिय-जणाण णेहद्धउ,
णिय-कुल-भवण सिहर मडणद्धउ ।
तहु तिय सील-रयण वर-साला,
णिम्मल-गुण-पसूण-ए माला ।
वीयराय-पूया-रस-रत्ती,
पत्त-तिभेयह पयडियभत्ती ।
णामें रूपा कुल-सर-हसिणि,
ण ससिलेहा दुरिय-विहसिणि ।
ताहि गब्भि वे णंदण जाया,
ण चदक्क स-तेय-सहाया ।
ण गुणियण-तरु-पोसण कधर,
विण्णि वि जिणवर-धम्म-धुरधर ।
ताह पढमु बुहयण-चिंतामणि,
अवरुज्जिय समतु झावइ मणि ।
जे गिरिणयरहु जत्त पवित्त(उ),
पविहिय णिय-परियण-सजुत्त(उ) ।
कियउ स-णार-भउ महलु णिरुत्तउ,
पेमराजु णामे से वुत्तउ ।
तणिय वधो णामे तहु भज्जा,
पयडिय ताए णिच्च सुहकज्जा ।
मदणु णामु जायउ तहु णंदणु,
पयडिय परियण-जण-आणंदणु ।
कमलसीहु साहुस्स तणुब्भव,
वीयउ णं रूवेण मणुब्भव ।
चडिय गुणेण आरज्जिय दुज्जण,
विणय-पसारे रज्जिय सज्जण ।
णिम्मल-जस-भूसिय भुवणत्तउ,
पचपरमेट्ठी पाय णिरुत्तउ ।
अवजस-दुह-दुव्वयणहिं चत्तउ,
राय सहगणि वड्ढिय पत्तउ ।
बुहयण कचण-दाणे तोसिय,
पर-उवयार महीयलि पोसिय ।
हेमालय समु णिच्चल चित्तउ,

णामे हेमराजु गुणवित्तउ ।
तासु पसिद्धा हुय बे भज्जा,
रूवामल गुण-सील सहिज्जा ।
धणराजहि य णाम गुणरिद्धा,
परियण-पोसणेण सुपसिद्धा ।

घत्ता—

बीई पुणु कामिणि मयगय-गामिणि सामिणि णियपरियण-यणहु
जिणधम्मासत्ती पिय-पय-भत्ती महणसिरी णामें मुणहु ।१७

लक्खण-लक्खंकिय तिण्णि पुत्त,
परिवारहु मण्ण विणय-जुत्त ।
तहु मज्झिम पुत्तउ कुल कमल-भाणु,
जिण-पाय-भत्तु सत्तत्थ जाणु ।
परिवारहु मण्ण कमल-खेत्तु,
णाणेण सक्खिव भूरि-वित्तु ।
ए वित्थिय जेमि णिरु विबुह सग्गु,
णामेण य कुसलु भासिउ गुणग्गु ।
चाल्हाही तहु भामिणि पसिद्ध,
णिम्मल सुसील विहुकुल विसुद्ध ।
तहु णंदणु चंद पसण्णु गुणालु,
जणणी-जणणहु मोहण रवालु ।
सिरि हेमराज सुउ अप्पमु वीरु,
णिय वस मेगि उज्जोय दीउ ।
सग-वसण-विवज्जिउ सत्ति मुत्ति,
गुरु-देव-सत्थकय णिच्च भत्ति ।
णामेण रयणपाल हियय रज्जु,
....।

मोल्हण णामे तीयउ जि पुत्तु,
तहु परियणु णंदउ चिरु णिरुत्तु ।
णंदउ जिणसासण दुरिय हारु,
णंदउ गुरुयण भव-सत्त पारु ।
णंदउ गुणियण जे सुकइ कव्वु,
सोहेविवि सुद्धउ करहि सव्वु ।
णंदउ भव्व जि सम्मत्तवंत,
बहु-रोय-सोय-दुह खयहु जंत ।
लाहडपुर-वासिय सावयाइं,
दुक्खिय-जणाह हय-आवयाइं ।
ते णंदहु णिरुवम कण-समिद्ध,
....।

पोमावइ-पुरवाडस्स वंसु,
उज्जोयउ जेण जि लद्ध-ससु ।
सो उदयराज पिउ सुकइ धीर,
हरिसिंघहु णंदणु पाव-भीरु ।
सिरि कमलकित्ति गुरु-पायभत्तु,
णंदउ रइधू परिवार-जुत्तु ।
सिरि हेमराजु णंदउ बहुत्त,
जसु-भत्ति वसें जसहरचरित्तु ।
विरयउ दय-रस-भर-गुण पवित्तु,
. ...।

सिरि जोधा साहहु वर विहारि,
चउवीस पट फलगह धारि ।
तत्थट्ठिएण विरइउ जि एहु,
ज हीणाहिउ त बुह खमेहु ।

घत्ता:—

बुह पाढिज्जंतउ चरिउ महंतउ णंदउ लाणहि दिवसयर ।
गरगइ जि खगहु महु ज अविणउ बहु पयडिउ जह तह भासयर

इय सिरि जसहरचरिए दयलक्खण-भावणाभरिए सिरि पंडिय रइधू-विरइए भव्वसिरि-हेमराज-णामंकिए भवांतर-वण्णण तहेव दायार-वंसणिद्देस-वण्णण णाम चउत्थउ संधी परिच्छेओ समत्तो ॥

· (प्रति सचित्र, ७६ पत्रात्मक ऐ० प० सरस्वती भवन, ब्यावर, स० १७६६)

४४—अणथमी कथा (अनस्तमितसंधि कथा)

कर्ता—कवि रइधू

आदिभाग —

णवेप्पिणु सामिय देव जिणिंद, समाण पयासण गणहरविंद ।
णिरुवम-दव्व-पयत्थह खाणि .तहा पुणु वंदमि-जिणवरवाणि।१
पयासमि पुणु अणथमिउ जणाह,सुणंतु सु सावय एयकमणाह ।
सुणेप्पिणु चित्ति धरेउ झडत्ति, पतुट्टइ पावहु पास तडत्ति ।२
ण सोहइ जिम करि दंतविहीण, ण सोहइ दसणुविणु तव-खीणु
ण सोहइ सुयविणुजिमकुलगेहु, ण सोहइ जिम-णरणारिअसीलु

अन्तिमभाग.—

जुसावय-धम्महु मूलु पउत्तु, सुकिज्जइ अणथमियउ जि णिरुत्तु ।
धरिज्जइदंसणणाणचरित्तणियचित्ति,सिवालय-पंथगमणइहजुत्ति
जु णारि णरो कु विसुणइजिएहु, जु पढइ पढावइ विय मण-णेहु
सु पभणइ रइधू सासय सुक्खु, लहेइ सुमण वंछिय उ पयक्खु ॥

४५—अप्पसबोहकव्वं (आत्मसंबोध काव्य)

कवि रइधू

आदिभाग:—

जय मंगल-गारउ वीर भडारउ भुवण-सरणु केवल-णयणु ।
लोगोत्तमु गोत्तमु सजण सोत्तमु आराहमि तह जिण-वयणु

चउवीसमु जिणु हय-पच-वाण,
तिहुवण-सिरि-सेहरु वड्ढमाणु ।
चउगइ-गमणागमण- चुक्कु,
कम्मट्ठ-निविड-बंधण-विमुक्कु ।
णव-भावजोणि-उप्पत्ति-हीणु,
परमप्पय-सुद्ध सहाव-लीणु ।
परिसेसिय-पच-सरीर-भारु,
पाविय ससार-समुद्द-पारु ।
आवरणु हीणु गय-वेयणीउ,
आउसु-विमुक्क हय-मोहणीउ ।
धुवनाम-गोत्तु विगयतराउ,
परिगलिय सुहासुह-पुण्णु-पाउ ।
अवहत्थिय पच-पयार-दुक्खु,
सपत्तु सहोत्थाणत-सुक्खु ।
चुव जोणि-लक्खु चुलसीदि जम्मु,
ससार असेसावइ अगम्मु ।
णासिय तिलिंगु पज्जत्तिछक्कु,
खीणाडयाल-सय-पयडि चक्कु ।
अणु-खध-दव्व-सबध-चत्तु,
सय-केवल-अप्प-सरूव-पत्तु ।
फेडिय अट्ठारह-दोस भाउ,
धोविय-अणाइ-दुव्वार-राउ
छद्दव्व-सरूव फुरत णाणु,
सहजाणदाचल-सुह-णिहाणु ।

घत्ता—

सो वीरु जिणेसरु भुवण-दिणेसरु हियइ धरेविणु भव-हरणु ।
जह बुद्धि पयासें करमि समासें णिय-सबोह-पवित्थरणु ॥१॥

× × ×

अन्तिमभाग:—

इय सखेवें हय-गव्वयाइ पचवि भासियइ अणुव्वयाइ ।
जो पालइ सो तिहु गई न जाइ, उप्पज्जइ सुरगइ विमल ठाइ
वउ हवइ तासु इय पच भेउ,
जो अरुहागमि बुज्झेवि अणेउ ।
बुज्झइ परमागमु पुणुवि सोइ,
जसु तच्चत्थइ सद्दहणु होइ ।
तच्चत्थइ पुणु सम्मत्तु जाणु,
विणु सम्मत्तें ण वि होइ णाणु ।
विणु णाणें चारित्तु वि अलक्खु,
विणु चारित्तें लब्भइ न मोक्खु ।
विणु मोक्खें सुह लेस वि ण होइ,
तेण जि सम्मत्तु महतु लोइ ।
दिढु करि सम्मत्तु लहेवि णाणु,
चउ चिज्जइ कय णिव्वुइ विहाणु ।
णिय सत्तहो अणुसारेण लोइ,
पालिज्जइ दिढ वउ गुरु-णिओइ ॥

घत्ता—

सम्मत्तबलेण णाणु लहेवि चरेवि चरणु ।
साहिज्जइ मोक्खु भव्विहि भव-दुहु अवहरणु ॥११॥

इय अप्पसबोहकव्वे सयल-जण-मण-सवण्ण-सुहयरे अवला-बाल - सुहबुज्झ-पयडत्थे तइओ सधि - परिच्छेओ समत्तो ॥

४६–सिद्धंतत्थ-सार (सिद्धान्तार्थसार)

कवि रइधू

आदि भाग:—

मुत्ति-रमणि-कताए अरिहताए णवेवि सनाए ।
णिरुवमगुणजुत्ताए पायबुरुह पवित्ताण ॥१॥
सिद्धत-अत्थसारं भव-भय-हार गुणट्ठ-साहार ।
वण्णातीद-महप्प सिद्धयण यापि पायड बुच्छ ॥ २ ॥
सुद्धप्पभावणाभवसुहेण तित्तस्स भव-विरत्तस्स ।
पत्तस्स धम्मलाह जिण-सुय-मुणि-पायभत्तस्स ॥ ३ ॥
वत्तस्स तोमराए वणिवरणाहस्स खेमसीहस्स ।
तस्स णिमित्त किज्जइ रइधूणामा बुहेणेद ॥ ४ ॥
दसण-जीवसरूव गुणठाणाण पि भेय किरियाय ।
कम्म सुयग लद्धी अणुवेहा धम्म-झाण च ॥ ५ ॥
एयाण हि सरूव पयडताणं छल ण गाहिव्व ।
जइ चुक्कमि ता भव्वा कायव्व [सुद्ध] भव्वेहिं ॥ ६ ॥

× × ×

इति श्रीसिद्धातार्थसारे शुद्धात्मतत्त्व सवित्याधारे श्री प० रैधू [रइधू] कृतौ [कृते] ससार-सरण -भय-भीतेन खेमसीसाधुनानुमोदितो सम्यग्दर्शन-कथनमुख्यत्वेन प्रथमोऽङ्ग: ॥ १ ॥

नोट.—प्रति मे अन्तिम भाग उपलब्ध नही है ।

४७-वित्तसारं (व्रतसार) कवि रइधू

आदिभागः—

सासयपयपत्ताए वसुगुणजुत्ताण कम्मचत्ताए ।
णमिऊण सिद्धाए भणामि ण वित्तसारवख्व ॥ १ ॥
अरहाइ परमेट्ठीए वारस-अगाण सूरिविंदाए ।
तयरण-सुद्धीए पय तह पणविप्पिणु ति-जय झेयाए ॥ २ ॥
अग्गोयवंस-एह-ससि दाण-विहाणेण णाइ-सेयसो ।
कइयण मणक्कय-तोसो हालू साहुस्स अगश्रो विदिदो ॥३॥
परमेट्ठि-पायभत्तो चत्तो विसणाण रत्तु पत्ताण ।
णिदूभो सुविणीश्रो आदू आंहिहाण साहु सीलगो ॥ ४ ॥
तेणाऽवियं भव-भीए णाविय सीसेण धम्मराएण ।
भणिश्रो सुकइ-पहाणो लहिवि खण पावर्णे णेम ॥ ५ ॥
भो सत्थोवहि-पारय रइधू कइ-तिलय पइजि बहु भेयइ ।
चरिय पुराणइ विरइवि सज सरसें पीणिश्रो भुवणो ॥६॥
महु पुण माणस-कमल सकुइश्रो अत्थि जणण-भय-भीश्रो ।
तुह वयण-सूर-किरणहिं त वियसइ णिच्च कालम्मि ॥७॥
जइविहु अत्थि अणग्घो सम्मत्तो वय-तवाण धुउसारे ।
तहवि हु तेण जुदो कुवि बद्धाउसु जाय णरयम्मि ॥ ८ ॥
जइ पुणु चरिय-पउत्तो सम्मत्तो होदि भव्वजीवाण ।
ता पुग्गइ णहु गच्छइ एरिसु माहप्पु वित्तस्स ॥ ९ ॥
जह-कणय-कडय-जडिश्रो रयणो दीसइह णिरुवमो लोए ।
तह सजमेण सहिदो सम्मत्तो भव्व-सत्ताए ॥ १० ॥
तमहं चरित्त सार सोऊ वेच्छेमि तुम्ह वयणादो ।
जि हवदि जम्मु सहलो सासय-पह-सवलो चेव ॥ ११ ॥
इदि वाया श्रवसाणे कइणा भणिदो विश्रड्ढवयणेण ।
अइभव्व अइभ व्व स-पर-हिंद तुम्ह वयणेद ॥ १२ ॥
जगमल्ल ताप-पावण सुहभावण सुद्ध-चित्त कइ-रजण ।
जपइ एउ पउत्त त वसिदं माणसे अम्ह ॥ १३ ॥
जो कवि चरित्तसार पुच्छदि भणदीह सुणदि कथराश्रो ।
सो भव्वत्तणगुणजुश्रो हवदि कयत्थो जणे-पुज्जो ॥ १४ ॥
भणमीह वित्तसारं स मइ विहूईए दोससगहणे ।
मा होतु जणा तप्पर सोहिं सुद्ध हि कायव्व ॥ १५ ॥

अन्तिमभागः—

हरसिघ सघाहिव-सुश्रो कइत्त-पब्भार-वूढणिय-खधो ।
गुरुयण भत्ति कुणतो स णदउ उदयराएण ॥ १३४ ॥
गुणियण-पविहिय-राश्रो सुपत्तचाश्रो सदिट्ठि णिम्माश्रो ।
आदूसाहू चिर इह जीवउ तिय-पुत्त-पोत्तेहिं ॥१३५॥

४८-पुण्णासवकहा (पुण्याश्रव कथा) कवि रइधू

आदि भागः—

पणविवि सिरिवीर णाण-गहीर भव-जलणिहि-परतारपय ।
पुण्णासव-सत्थ सुरहर-पथ भणमि कहाणिउब्भवमय ॥१॥

वदिवि पुणु अरहताण पय,
दसिय-सासय-णिल्लेव-पय ।
वसु कम्म-पयडि-चुय-सिद्धाण,
सम्मत्ताईयगुण-रिद्धाए ।
लोयग्गसिहरि ट्ठिदि-पत्ताए,
उप्पत्ति-मरण-जर-चत्ताए ।
छत्तीस-गुणायर-सूरीए,
रायाइदोस-कय-दूरीए ।
दो-दह-सुअग-अज्झयणिरय,
वज्जिय-सग-भय-पाढय विरय ।
स-सरूव सुहायर साहए,
परि सेसिय-चउ-विकहा-कहए ।
विद्दुम इव णिय रसरत्तयहं,
... ...
एयह वि समाणसकमलिणिरू,
तिरयण सुद्धिए धारेवि थिरू ।

घत्ता—
जिण हिमगिरिवयण पोमदहहो सरसइ सुरसरि णिगमिया ।
जासा फिडेप्पिणु मल-पडलू सुमइ पयत्थरु रणमिया ॥१॥

दो-विह-तव-पह-अग्गेसरेण,
खडिय झाणा सिरईसरेण ।
पण-इदय-उरय-दियेसरेण,
भव्वह मणकज-दिणेसरेण ।
गोयम-गणि-अणुकम्म-पयट्टिएण,
सिरि कमलकित्ति गुरुणा जवेण ।
एकहि दिणि धम्माएसु दिणु,
भो वुह किं वासरु गमहि सुणु ।
स-कइत्त-विणोए जाउ कालु,
पुण्णासउ विरयहि जणि विसालु ।
पुण्णा सवेण सुह सिद्धि होय,
त विणु माणुस भउ विहलु लोय ।
सुह भाउ पवट्टइ जेण जेण,
त त कायव्वउ इह बुहेण ।
अइकामिऊण तारिसि वयणु तेण,
त पड़ि वण्णउ पणमिय सिरेण ।

घत्ता—

सकरत्त महाभरु भव-भय-समहरु दुद्धरु होइ जयम्मि णिरु।
जो तहो णिव्वाहइ पउअवगाहइ सो कुविदीसइ विरलु णरु॥२

इय चिंतति तहु विप्फुरियउ,
भव्व विणउ णिय माणसि सरियउ।
पत्थु-दीवि भारह वरिसतरि,
विसइ कुसत्थलिदो रवि पहयरि।
चदवाड पट्टण विक्खायउ,
तियस णय तुण (णिलय ण) वुह सुह दायउ।
कालेंदी सरि चउदिसु रुद्धउ,
ण भजइ पिउ पणय पमुद्धउ।
घण-कण-कचण-सिरि-सपुण्णउ,
ण कयपुण्णु महाणरु घण्णउ।
सइं चित्तु व परणरह अगम्मो,
सव्वह सुहयरु णदय धम्मो।
वायरणु व परिहा-सालकिउ,
पर विवाय-अरिविंद-असंकिउ।
पडुर पायारालय वित्तउ ?,
ण णिव स-वर-जसेण सुपवित्तउ।
धवलहरइ धवलइ ण सुर-हर,
दाणुण्णय कर जाण रिद्धीसर।
बावाराणुरत्त जहि वणिवर,
वसहि णिव्व णिव सम्माणेंवर।
जहि जिणबिंब समुज्जल पुज्जिय,
मडपसिहरिधयावलि-सज्जिय।
तोरण पउलि पयार दुरिय-हर,
सोहण पउर-विहारि मणोहर।

घत्ता—

तहि णिउ णिवणीइ तरगिणीहिं सायरु पवर रज्ज सालउ।
सिरि चाहुवाणि कुल-गयण-रवि सत्तित्तय गुण-पालउ॥३॥

सिरि रामइदु वड्ढिय विवेउ,
दालिद्द भोणिहि-तरण-सेउ।
त णिय-हत्थें जाणिवि समुत्थु,
णदणुरज्जारुह गुण-महत्थु।
णिव पट्टय थप्पिउ वइरिअ-मद्दु,
महिवइ णामेण पयावरुद्द।
गभीरत्तणि रणि दुद्धरासि,
तेए दिणवइ सण्णय पयासि।
मेरुवि कीरत्तें णउ जडत्तु,
रूवेण णगु वि गहिय-गत्तु।
अह भीरु वि जो आहवे अभग्गु,
रिउ सीस णिवेइय णिसिय-खग्गु।
अपमिद-कुल खल-बल-पलय-कालु,
गुणियण-सदोह-समाहि-यालु।
चउ-सायर-तडि सपत्त-णामु,
अतुलिय-साहस उद्दाम पामु।

घत्ता—

जय-लच्छि-णिवासउ सुगुण-पयासउ चाए कण्णु व विमलमई
सिरिराम-पभत्तउ अवजस-वत्तउ रुद्दु व पयणुय जणणिवई।

तहो रज्जि वणिसउ लद्ध-माणु,
जिणधम्म-रसायण-तित्त-पाणु।
सिरि पउमावइ पुरवाड वंसु,
उद्धरिउ जेण जय-लद्ध-ससु।
जोइणिपुराउ चिरु वसिविभाउ,
तोसउ णामेण विसुद्ध थाउ।
तहो णदण [चउ] जणिया णदणु,
चारिदाण पा यड पवितणु।
जायाणतचउक्क मुत्त,
ण पुणु णिओय चारि वि ससुत्त।
तइ पढमिल्लउ जस-भर-णिवासु,
सघाहिव णामे णेमिदासु।
अग्गेसरु-णिव-वावार-कज्जि,
सुमहत-पुरिस-पहु-रूद्द रज्जि।
जिण बिंब-अणेय-विसुद्धबोह,
णिम्माविवि दुग्गइ-पह-णिरोह।
सुपइट्ठ करविउ सुह-मणेण,
तित्थेस गोत्तु बधियउ जेण।
पुणु सुर-विमाण समु सिंह खेऊ,
णिय-पह-कर-पिहियउ-चद-तेउ।
काराविउ जि जिणणाह-भवणु,
मिथ्यामय-मोह-कसाय-समणु।
वुहियण-चिंतामणि जस-मयकु,
बदियण विंद-थुड खलअसकु।
तहो णदणु पुणु बीयउ गुणिल्लु,
परणारि परम्मुह सुद्ध सीलु।
अतुलिय-साहस सहसेक्क धामु,

साधारणु णामे रूव-कामु
पुणु तीयउ सग-वसणा वहारि,
जिण-भणिय-सत्थ-अत्थावहारि।
णिग्गथ-सवण-पय भत्ति लीणु,
णामेण होलि उद्धरिय दीणु।

घत्ताः—

तुरियउ गुण-पावणु कम-सुह-भावणु जसवल्ली आहारतउ।
गुणियण-कय-मित्ति णिरुवम भत्ती वारसिधु ण कुसमसरु

एयह ' ···सगरीय सेण,
सोमसिरि जणणि गब्भु वेण।
मि सत्त वसण-णिरुवभ-चुएण,
·· ··· ··· · · ······ ।
सत्थत्थ-परिक्खा-णायरेण,
कुल-कुसुम-वियासणि सायरेण।
णिय-जस-धवलिय-महिवीढएण,
सम्मत्त-पमुह-गुण बूढएण।
कइणा वच्छल्ल-परायणेण,
परियाणिय-सारासार एण।
पं खेमिदास सधाहि वेण,
सहु आयेरण पणमिय-सिरेण।
एकहिं दिणि हउ सठिउ सलीणु,
णुवि णत्तु तेण बहु करिवि माणु।
भो रइधू बुह वड्डिय पमोय,
··· ················· ।
ससिद्ध जाय तुहु परम-मित्तु,
तउ वयणामिय-पाणेण तित्तु।
पइकिय पइट्ठ महु सुहमणेण,
जाजय-पूरिय-धण-कचणेण।
पुणु तुव उवएसें जिणविहारु,
काराविउ मइ दुरियावहारु।
पइ होति···· ·········,
एकज्जि चिंता वड्ढइ पस।
तुहु सकइत्तण फल कामधेणु,
महु सागु रायमणु पुणु अरेणु।
पइ विरयाइ णाणा पुराण,
सिद्धतायम जुत्तिए पहाण।
पुण्णासउ हउ वयणाउ तुज्झु,
सोह वट्टमि इय चित्त मज्झु।

सकयत्तें [थापहि] मज्झु णामु,
जिह होइ अयलु सासउ सधामु।
इय सधाहि व विण्णति वाय,
तहि कालसुणेविणु मइ अमाय।
सधाहिउ बुत्तउ वियसिएण,
पइ जुत्तु भणिउ सण यज्जुवेण।
परकारणु वट्टइ दुसमु कालु,
परदोस गाहि खलयण करालु।
ते दूसहि कव्वु सहाव सुट्ठु,
कालाहि जेम वि सुखि विविदुद्धु।
दुज्जण परगुण ण सहनिपाव,
साणे विजि पुण्णिणाम ससि-पयाव।
जइ विहु एरिस ते तह वि कव्वु,
तं उविणे (वणिय ?) पेरिउ करमि भव्वु।
सज्जण दुज्जणह णिसग्गहोति,
गुण-दोसगाहि पयडिउण भति।
पुण्णासव विरयमि पुण्ण होय,
तव जसु वित्थारमि एत्थु लोय।

घत्ता—

तइया पडिवण्णाउ मइ जि अत्थिण्णउ एतिउ कालुजि वजिणिरु
वीसरिउ सुहावउ कय सुहभावउ एवहि महु मणिप्पककुथिरु ॥६

अन्तिमभाग—

घत्ता—

तहिं सोमवंसि पुण गुणहं णिहि जोइणिपुरि सजोउचिरु
तेजू णामे तयाहियउ बुद्धिए कणया यलु व थिरु ॥१॥

जिह मुणिहु खमासुह गइ सहिज्ज,
ण णामेण कल्ही तिह तासु भज्ज।
तहि उवरि उवण्णउ कुल-पयासु,
जसु जसु वित्थरियउ दह-दिसासु।
चरम्ह ? अहि हाणें विइउ लोइ,
धण-दाण-विहाणें बुह पमोइ।
साइति पिपयम तहु विमल चित्त,
ण सील-वित्ति सुहगइ-णिमित्त।
तहु सुउ जिण-पय-पयरुह-दुरेहु,
णिम्मल-मणु कमलावास-गेहु।
परियण-सुह-पोसण-कप्परक्खु,
निरसियउ दुरासउ जि विवक्खु।
णामेण साहु तोसउ अलेउ,

पविमाणिउ जि जिण-समय-भेउ ।
तह पिय पइ-वय-वर-सलिल-गंग,
मलणासिणि णावइ सत्त भंग ।
ए णर-रयणह उप्पत्ति खाणि,
अइ सोममुत्ति सोमाहि हाणि ।

घत्ता—

...हि गब्भ-उवण्णा लक्खण-पुण्णा दुण्णय-चत्ता-विमल-मणा
...त्थि.(क्खि)य जण-पोसण णिय-कुल-भूसण चत्तारि जिणु
यजिणचरणा ॥१॥

चारि झाण ए सुह-पय-भायर,
ठिय-मज्जाय चारि ए सायर ।
ताह पढमु वुहयण वक्खाणिउ,
णिव पयावरुद्द सम्माणिउ ।
वहु-विह-धाउ-फलिह-विद्दुम-मउ,
कारावेप्पिणु अगणिय पडिमउ ।
पतिट्ठाविवि सुहु आवज्जिउ,
सिरि तित्थेसर-गोत्तु समज्जिउ ।
जि णह-लग्ग सिहरु चेईहरु,
पुणु णिम्माविय ससिकर-पह-हरु ।
णेमिदासु णामे सघाहिउ,
जि जिण-संघ-भार-णिव्वाहिउ ।
तस्स पिया लच्छी वसुहायर,
णाम भिखो वण्णिय विणयायर ।
अवर वि मणिको सुद्धपइव्वय,
ण धम्मह सहयारि वरदय ।
तिण्णि तासु णंदण सजाया,
ए लवणकुस जय विक्खाया ।
जो इच्छिय-दाणे सुर-भूरुह,
जो चिंतामणिव्व पोसिय सुहु ।
जो पर सुव्व कणय दाणेट्ठउ,
रिसराम णामे सो जेट्ठउ ।
तस्स पिया गइसिरि सजाया,
णिय-पिययम-भत्तिए अणुराया ।
जसु जम्मागमि जिणवर-विवह,
तिलउ पदिण्णउ दुरिय-णिसुंभह ।
कुलहु तिलउ तिलकू ति वुत्तउ,
तोसउ साहहु पुणु वीयउ सुउ ।
अइरावइ करि कर सण्णिह भुंउ,

....
परजुवईण णिच्च परम्मुह,
दह-लक्खण धम्मेहु णिरु सम्मुहु ।
अतुलिय साहस सय साहारउ (णु),
साहु सधू दाणे ण वारणु ?

घत्ता—

तेहु पिय कुलहर-मडण सधया सिंघो णामें गुण गरुया ।
वीई पुण पावए धम्मरया भणिय चंदोमुणि-भत्ति-जुया ॥११

अज्जुण णामें तह सुउ वुत्तउ,
वीरदासु पुण लक्खण-जुत्तउ ।
जसु जम्मणि पुण्णासउसत्थो,
हत्थि चडिउ पयडिउ परमत्थो ।
तोसउस्स पुण तीयउ णदणु,
चउविह-सघ-चित्त-अणरजणु ।
होलिवम्भु अज्ज व गुण सोहिउ,
देवसिरि भज्जइ णिरु मोहिउ ।
वामदेव हरपति वेणदण,
तासु पसिद्धा णयणा णदण ।
पुणु तुरियउ सुउ सुणहिण मुच्चइ,
गिरणारहु सघाहिउ वुच्चइ ।
वीरसिंघु वदियणहि थुत्तउ,
भज्जा कल्हो कम्म अणुरत्तउ ।
खोल्हा णदणेण नदतउ,
रेहइ जिणवर-पय-वदत्तउ ।
अह पुणु तोलस्स इक्कोयर,
बधव तिण्णि अत्थि णेहायर ।
देल्हा सावधा (य) वय सोहिल्लउ,
पुणु साल्हे णामेण गुणिल्लउ ।
कमलसीहु तीयउ जिण-भत्तउ,
मिच्छा-समय-परम्मुहु सतउ ।
हसराजु णामें देल्हू सुउ,
साल्हे पुत्त अजू जिण-पय-णुउ ।
महिपति कमलसीह कुल मडणु,
विणए गुरुयणाह आणदणु ।

घत्ता—

इय-परियण-जुत्तउ सोम-कलत्तउ णेमिदास सुय-भाय-जुउ
णदउ जा रवि ससि णहि कय दिणणिसि जाकणयायलु
अयलु धुउ ॥१२॥

णदउ जिणसासणु सुगइ-ठाणु,
तिल्लोय,सरूप-पयास-भाणु ।
णदहु गुरुयण णिग्गंथ रूव,
जे आणे थक्क पलब-भूव ।
णदउ चिरुराउ पयावरुद्दु,
अवगाहिउ जि आहव-समुद्दु ।
भव्वयण वि णदहु सच्च भासि,
सिरि चदवाड पट्टण-णिवासि ।
णदउ वुहियण सत्थत्थखाणि,
पयडी कयजेहिं जिणिंदवाणि ।
सिरि पोमावइ पुडवार-वसु,
णदउ महिमडल विगय-पसु ।
णदउ सवि हूइ ए उदयराउ,
रइधू कइ जासु पसिद्धु ताउ ।
णदहु सज्जण कय सव्वमित्ति,
परिभमिउ णेमिदाससा कित्ति ।
णिय समए सया वरिसतु मेह,
मगल हव तु णिरु गेह गेह ।
तह सयल पया सुक्खेण ठाउ,
सपज्जउ वोहि-विसुद्ध-भाउ ।

घत्ता—
सवेया णदहिं वुहियण विदहिं पयडिज्जतउ गणुइहु ।
णदउ चिरु सायरु इच्छिय ससुहर कुमइ-तिमिर-भर-दलण-विहु ॥१३॥

इय-पुण्णासवसत्थे पयडिय-सुह-हेउ-परम-परमत्थे सिरि पडिय-रइधू-वण्णिए सिरि महाभव्व-सघाहिव-णेमिदास-अणुमण्णिए पत्त-दाण-फल-वण्णणो णाम तेरहमो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥१३॥

४६—जीवधरचरिउ (जीवधर चरित)
कवि रइधू

आदिभागः—
सिव सिरि रयणयरु सव्वदयावरु भूरि गुणायरु जय तिलओ ।
पणविवि तित्थेसरु जिणु जीमधरुचरिउभणमितहुसुहणिलओ ॥

जय आइदेव तियसेससेव,
जय अजियसामि लोयग्गगामि ।
जय सभवेस हय भव-किलेस,
अहिणदणक्ख जयअजय पक्ख ।
जय सुमइ सत तिजय हु महत,
जय पउमणाह गय सयलदाह ।
जय जिण सुपास पूरिय-जणास,
जय णिसिवई सखय तिमिररासि ।
जय पुप्फयत पडिय सुतत्त,
सीयल जिणेद जय कुरुह कद ?
सेयस सस जय कुगइ-भस,
जय वासुपुज्ज हरि सयहिं पुज्ज ।
जय विमल सुद्ध अप्पे सुवुद्ध,
जय पहु अणत गुणगण अनत ।
जय धम्मधार भव उवहिं पार,
जयदेव सति हय लोय-भति ।
जय कुंथ कुंथ पमुहह अमथ,
जय अर हयारि तच्चह वियारि ।
जय मल्लि मल्ल चूरिय-तिसल्ल,
मुणि सुव्वयक्क जय भव असक ।
जय णमि णिरीह पायड णिसीह,
जय रिट्ठणेमि सुह सुरह णेमि ।
जय पासणाह णाणे अथाह,
जय जयहि वीर सुरगिरिव धीरु ।

घत्ता—
ए ए तित्थयरा तिजय महिया णाणे भोणिहि विगय मला ।
महु पणमतहु भत्तीभरि (रे) ण सुमइ पयासहु ते सयला ॥१॥

सरस्सई सुसामिणी सु सत्थपाय गामिणी,
जिणेस वत्त वासिणी पमाण-वाय-भासिणी ।
सुवण्ण वण्ण देहया कईय ण ण मोहया,
कुमग्गजाण रोहिणी जडाण चित्त बोहिणी ।
सुमायरी महसया हवेउ णेह सजुया,
सुभव्व कव्वभोयण जणाण चित्त मोयण ।
पयत्थिऊण पीणउ हवामि जिय वीणउ ?
णिगथमग्गचारिणो सुयग सग धारिणो ।
कसायचक्कहारिणो सुजम्मसिधुतारिणो,
सुधम्मरुक्ख वारिणो दुहग काण सारिणो ।
सुगोयमाइ सूरिणो णिरास आस दूरिणो,
सुताह पायकजय णवेवि पाव-भजय ।

घत्ताः—
इह गोपायलिजणधण पउरे मदिर-सिर-धय छिविय-गहे ।
हय-गय-घड-सकड-हट्ट-वहे सेविय-मडलीय-णिवहे ॥२॥

तहि णिवसते जणियाणदें,
पोमावइ सुवस-णह-चदे ।

हरिसिंघ सघाहिव तणुजाए,
रइधू कइणा वियलिय माए ।
तेणेक्कहिं दिणि जिणहरिवदे,
गुरुयण लद्ध पमाणु गुरुवर्के ।
णिय विरयउ भवसेणि णिवारउ,
रिसह पमुह कह सुणण पियारउ ।
महापुराण वक्खाणिज्जतउ,
णिसुणिउ तेण जि गुरु मुह होतउ ।
तह सम्मद् सण पह धारउ,
को मुह कह पवधु जय सारउ ।
इय वण्णिज्जतउ णिसुणेप्पिणु,
णिय मणि अइव पमोउ वहेप्पिणु ।
जिण गुण वण्णणि महणिरुणामो,
अखउ जाउ पोसिय बुह कामो ।
इय जपत्तउ जण पुरओ कई अच्छय जाम णिसण्णउ ?
भाणियय दोसु फेडनुमणे चितइ बहु सुय पुण्णउ ? ॥३॥
मह पुराण सिरि सेहरु चरियउ,
को मुह कह कुडल पुणु घडियउ ।
कुंथुदास दाहिण कण्णतरि,
मइ पहिराविउ त इच्छतरि ।
जइ वि सुगुण रयणहिं सोहिल्लउ,
तहि वि ण सोहइ सो इक्कल्लउ ।
कणायायलहु एम भाम (स?) हिजण,
एक्कु सुरु (सूर?) कि देइ पयक्खण ।
पउ (त) सचित्ति चितेप्पिणु कइणा,
भासिउ वणिवरस्स सुहयइणा ।
भो भो कुथग्रास ग्रायण्णहि,
जइ वि अम्ह तुहु किंपि ण भण्णहि ।
तह विवाम कण्णहिं तउ सघमि,
जीवधर गुण चरिउ पवधमि ।

घत्ता—
इय सुकइ पउत्तउ णेह-जुओ णिसुणिवि आणदियसमणु ।
वियसति वयणु कु थु जि भणइ विणयरायभरण वियत्तणु ॥४

अन्तिमभाग—
तहो पाय कमल तत्ती जुवेण ?मइ हरिसिघ सघाहिव सुवेण ।
सोलहकारण वय फलु वहुत्तु, थो उविअविक्खउ सत्तिएणिरुत्तु ।

घत्ता—
जाणारि अहव पुणु कोविणरु सोलहकारण वउ करइ ।
सो तित्थयरत्तु लहेविणिरु, पच्छइ सिउपुरि सचरइ ॥२६॥

कुंथयास साहुहु सिरि सेहरु,
ठविउ महापुराण, दुक्किय हरु ।
दाहिण सवणि सुवण्णहिंसिद्धउ,
सम्मद्दसणु रयण णिबद्धउ ।
को मुह कह पसारु वर कुडलु,
पहिराविउ पहु जिय रविमडलु ।
सोलह-भावण-मणिगण-जडियउ,
जीवधर-गुण-कचण-घडियउ ।
वीयउ सवणाहरणु अतुल्लउ,
वाम सवणि सघिउ सोहिल्लउ ।
रइधू कइणा णिय विण्णाणें,
पवियाणिय सत्थत्थ-पहाणें ।
सुगुरु-वयण-सिहिणा सजोए,
असुहि धम्म-पज्जालण-मोए ।
हियय मूसि पक्खित्तु सुवण्णइ,
लेहिणि हत्थउ तेण पसण्णइ ।
धरि विज्जा सो वणिवरु भूसिउ,
साहु साहु ता लोयहिं आसिउ ।
सुणइ णारि पिच्छिवि अणुरत्ती,
अच्चइ तस्सा लिगणि सत्ती ।
तेहु जि भूसिउ सो इह साहउ,
चिरु णदउ होज्जउ दीहाउउ ।

घत्ता—
सयतीस पमाण सलोयाहि जि वण्णिउ जीवधर चरिउ ।
कुथयाइ जीवह णिच्च हिओ णदउ रइधू गुणभदिउ ॥२७

इय जीमधरजिणचरिए सोलहकारण विहाण फल सरिए सिरिमहाकइ-रइधू-वण्णिदे सव्वेहिं सवणि-अणुम-ण्णिदे सिरिमहाभव्व-कुथयास-सवणभूसणे जीवधरजिण विहारवण्णए णाम तेरहमो सधी परिच्छेओ समत्तो ॥१३॥

जा सुरगिर कणयगो जा ससि सूरो महीबल उवही ।
तज्जीवधरचरिओ स णदउ कुंथुयासेण ॥ १ ॥

इत्याशीर्वाद.

५०-सवणवारसि विहाणकहा (श्रवणद्वादशी विधानकथा)

कर्ता—भट्टारक गुणभद्र

आदिभागः—
वदिवि वाएसरि सद्दखाणि, अणुसरि गोयम सेणि यहो वाणि
पभणेमिसवणवारसिविहाणु,भव्वहँ सिव-साहणु सुह-णिहाणु

नोट—प्रति बहुत ही अशुद्ध लिखी हुई है ।

अन्तिमभागः—

सुणि पय पणविवि घरि गय अपाव, जाणिय-चउगइ-दुह-सुहसहाव

सीनवइ एवउ किउविहिय जेम, मुणि भासिउ सव्वह हुवउ तेम

अण्णु विजो णरणारी करेइ, सो एरिसु फलु अवसें लहेइ।

सारग साहु सुउ गुणविलासु इय कह मणि भावइ देवदासु

घत्ताः—

सिरीगुणभद्द मुणीसरेण यह कह किय पवयणु अणुसरेण

जिण एत्ति उमग्गिउ देहिलहु जर-जम्मण-मरणु हरेहिं लहु

५१—पक्खवइ वय कहा (पाक्षिकव्रतकथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

वंदिवि सिरि वीरहो पय जुयलु भत्तिए णासिय कम्ममलु।

पक्खवइवयहो कह कहमितिहा, गणहर पयडिय पुव्वजिहा

अन्तिमभागः—

घत्ता—

अवगोइवि मणु थिरु ठाविवि पुव्वसूरि-विरइय-कहा।

गुणभद्दें कोमलसद्दें पयडिय णंदउ भुवणि इह ॥८॥

५२—आयासपंचमी कहा (आकाशपंचमी कथा)

कर्ता—भ. गुणभद्र

सिद्धि विलासिणि कंतु पणविवि भावें हय मरणु।

वीरजिणिंदु महंतु कम्म-महिहरण-दवजलणु ॥

णहपंचमिविहि विरयमि अउव्व, जिह पुव्वायरियहिं रइय भव्व

अन्तिमभागः—

घत्ता—

कह अक्खिय जिहमइ लक्खिय मलयकित्ति पयभत्ते।

गुणभद्दें कोमलसद्दें मुत्तिसुहा-मय सत्ते ॥६॥

५३—चंदायणवय कहा (चन्द्रायणव्रत कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग.—

णविवि रिसिहेसरु परमजिणु,णासिय भवियण दुरियरिणु।

फलु पयडमि चंदायणव्वयहो तारिय जन्म जलहि जणहो ॥

अंतिम भाग.—

घत्ताः—

इय चंदायणवउ अक्खिय कयसिउ मलयकित्ति पय-भत्तिए।

गुणभद्द गणीसें विगलमणीसें भव्वयणहें णिय-सत्तिए ॥२॥

५४—चंदण छट्ठी कहा (चन्दनषष्ठी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग.—

पणविवि जिणपयजुयल जम्म-जरा-मरण-खय पयडियतच्चें सहिट्ठिहिं।

फलु अक्खमि सव्वउ दक्खमि भवियह चंदण छट्ठिहिं ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

सिरि मलयकित्ति मुणिवरहु पयाणिय मणि झाइवि विगयरय

गुणभद्द गणीसें रइय इह चंदण छट्ठिहिं सरस कह ॥५॥

५५—नरकउतारी दुग्धारस कथा

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

वंदिवि सिरि पासु कय-दुह-णासु विरइय मोक्खणिवासु।

वरणाणविलासु हय समलासु वियसिय तामरसासु ॥

अन्तिमभागः—

सिरी वीधू णंदणु संहणपालु, ते काराविय इह कह गुणालु।

णंदउ सो णहि जा सूर-चंदु, णिय-कुल मंडणु कित्तीइ कंदु ॥

घत्ता.—

सिरीमलयकित्ति पय-पंकयह भसलें गुणभद्द मुणीसरेण

वरइय कह इह भवियण गणह णिय मण अणुसारे दय धरेण

५६—णिद्दुख सत्तमी कहा [निर्दुःख सप्तमी कथा]

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

सासय सिरिकंतहो अगहियकंतहो अरहंतहो कलिलंतहो।

णिज्जिय णियकंतहो अइसयवंतहो पणविवि पयजुय संतहो ॥

अन्तिमभाग—

घत्ता—

गोवग्गिरिणयरि वसंवएण मलयकित्ति पय-भत्तएण।

गुणभद्दसूरि णामेण इय णिद्दुखि सत्तमी रइया ॥५॥

५७—मउडसत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

पणविवि सिरि रिसहहु पयजुयलु जम्मजरामरणत्तिहरु।

आहासमि जिम जिण लद्धु फलु मउडाइहि सत्तमिहिवरु ॥

अन्तिमभाग—

घत्ता—

सिरि मलयकित्ति सीसेण इह विरयइ गुणभद्दें सुकह।

णियमइ अणुसारें विहिय सिव सोहहु मुणिवर रइयकिव ॥

५८—पुप्फञ्जली कहा (पुष्पांजलि कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

सिरि अरुहुणेवप्पिणु हियइधरेप्पिणु सासयसिव-सुहकारणु ।
णियगुरु कम वदिवि मणि अहिणदिवि भवदुह-भूरुह-वारणु

अन्तिमभाग—

सिरि लक्खणीहु कुल-कमल-बधु,
वहु भीमसेणु गुण-रयण-सिधु ।
तहु उवरोहे कहकहिय एह,
णदउ चिरु पसरउ कह सुमेह ।

घत्ता—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्तियइ, रइय कहाणिय सत्तियइ ।
गुणभद्द गणीसें अप्पहिय भव्वह लोयह अइमहिया ॥८॥

५६ - रयणत्तयवयकहा (रत्नत्रय व्रतकथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

पणविवि जिणइदु णिहणिय तदु केवलणाण दिवायरु ।
ससारहु तारु कय सुहसारु रयणराय रयणायरु।
पुणु पणविवि सिरिपरमेट्ठि पचणियमणिधरिगुरु-पय-हय-पवच
रयणराय कह विरियमि विचित्ति सेणियहु जेम गोयमेण उत्त

अन्तिमभाग—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्ताएण जिणवर-गुण-अणुरत्ताएण
गुणभद्दें विरइय एह कहा णदउ णासिय जम्म-दुहा ॥७॥

६०—दहलक्खणवय कहा [दशलक्षणव्रतकथा]

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

सिवसिरि भत्तारहो णिहणियमारहो विय लियहारहो सीयलहो
परमप्पयलीणहो दुह-सय-खीणहो पणविवि पयगिरि सीलहो

अन्तिमभाग—

पढइ गुणइ सद्दहइ जु भावइ,
मुत्तिसिरि अवसें सो पावइ ।
लक्खणसीहु चउधरिय सुपुत्तहो,
भीमसेण णामहो गुणजुत्तहो ।
तह उवरोहे गुणभद्द मुणीसें,
विरइय इह कह विगय मणीसें ।
मलयकित्ति मुणिणाहहो सीसें,
मण मह लेलिहाण वरवीसें ।
सादय लोयह होउ सुमगलु,
वरिसउ पावसु वज्जइ मद्दलु ।
घरिघरि णच्चहु कामिणि सहसु,
घरिघरि रिद्धि विद्धि जायउ वसु ।

घत्ता—

जिणणाह करहि दयमहकिज्जउ मयाएत्तिउलहु सपज्जउ ।
रयणत्तउ मारउ भवदुहतारउ जिणवर सामिय दिज्जउ ।७

इति दशलक्षणव्रत कथा समाप्ता

६१—अणतवय कहा (अनंतव्रत कथा)

कर्ता—भ गुणभद्र

आदिभाग—

पणविवि सिरिजुत्तह गुत्तित्ति गुत्तह पचगुरुहु पय-पकयइ ।
आहासमि सुकय पयासमि भवियह पाविय सपवइ ।

अन्तभाग—

सिरीजयसवाल-कुल-गयण-चदु,
चउधरिय लखणु धम्माहिणदु ।
सउ पडिय सिरीमणि भीमसेणु
कलि-कलिल-पय-सदोह-सेणु ।
तहो अणुरोहे किय कह अपुव्व,
आइरिय गुणभद्देण दिव्व ।
जो पढइ पढावइ एयचित्त,
त णाण पयासइ णाइमित्त ।
णदउ जिणधम्मु सुदया-समेउ,
णदउ णरिंदु अरिगण-अजेउ ।
णदउ चउविहु सघु वि सु-भव्वु,
णदउ मुणि-णियरु विणट्ठ-गव्वु ।
सखेवें वित्थरु परिहरेवि,
णियगुरु-पय-पकयमणिधरेवि ।
मइ हीणें भत्ति-विसालएण,
सिरिजय अणतकय जिय-मएण ।

घत्ता—

एत्तिउ महु दुज्जिउ लहु सवज्जउ केवलणाण मरणु विमलु ।
णउ अण्णु जि मग्गमि जिण-पइ लग्गमि भवि भवि वोहिहोउ सयलु ॥८॥

इति अनत व्रतकथा समाप्ता

६२—लद्धिविहाणकहा (लब्धिविधान कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग —

पणविवि जिणसामि सिव-पय-गामि सग्ग फलोह तरु ।
वइ लद्धि-विहाणु सुक्ख-णिहाणु भणामि जण-मण-णदयरु ।

अन्तिमभाग—

उधरण सघनइ जिणालयम्मि,
णिवसने गुणभद्दें सुधम्मि ।
इय कह विरइय पद्धिडियवध,
सखेवे कम जण पुण्णबध ।
सारंग साहु सुउ गुणविलासु,
इय कह मणि भावइ देवदासु

घत्ता:—

सिरि गोयम सामि एत्तिउ लहु मह देहि तुहु ।
जहि जम्मु ण गामि मइ विपराणहि तित्थु लहु ॥८॥

६३—सोलह कारणवयकहा (षोडशकारण व्रत कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

अ दिभागः—

वदि अपवग्ग मग्गु अण्णहु जेण होइ जणु मुत्ति पहु ।
सोलहकारणवयविहि कहमि जें भवसायर लहु परिलहमि ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जीवंधरसामि सिवउरगामि एत्तिउ लहु महु दिज्जइ ।
जहि गउ तहु ठाणि मइ वि पराणिअण्णु ण मग्ग सिविज्जइ॥

६४—सुगंधदहमी कहा (सुगंधदशमीकथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

... ...
... ...

अन्तिमभाग—

सिरि मलयकित्ति गुरु-पय णविवि सिरि गुणभद्दें रइय कहा
सखेवें कह जिह गणहरि ण णिय-मइ-अणुसारेण तिहा ॥८॥

६५—अणंतवयकहा (अनन्तव्रत कथा)

कर्ता भ. गुणभद्र

आदिभाग—

णमो जिण पाय पसूरण सुअध,
णमो परमेसरऽकप्पिय-बध ।
णमोवर·····पुज्जिय देह,
णमो मयणग्गि-विज्झावण-मेह ।

अन्तिमभागः—

जो पढइ पढावइ सुद्धमणु लिहइ लिहावइ णिच्छउ ।
सो भण्ण भवंतरे गुणसहिउ णिरु पावइ मणवंछिउ ॥

६६ आराहणासार (आराधनासार)

आदिभागः— —वीर कवि

णाणपिंड गुण सायर भुवणदिवायर पणविवि सिद्ध जिणेसर ।
वोच्छमि आराहण सिव-सुह-साहण जह अक्खिय जिणवर

भरहेसर पु छियउ जिणेसरु,
आइणाहु जो जग परमेसरु ।
जह तह सेणिय पु छिउ सम्मइ,
णाण दिवायरु चत्तउ दुम्मइ ।
मोक्खह कारणु अक्खिय सामिय,
अवरुवि तह फलु सिवसुह गामिय ।
ससारह भय-भीरु णरेसरु,
पु छिय सेणिय जो जगईसरु ।
वीरु भणइ चउविह आराहणु,
जा दुहु-णासण-सिव-सुह-साहण ।
सो णिच्छय-ववहार मुणिज्जइ,
सो भवियण जिणवरु भासिज्जइ ।
दसण णाणु चरित्तु पयासइ,
महण्णव तारउ जग विक्खायइ ।
जे तच्चहरु सम्मत्त भणिज्जइ,
जाणिज्जइ सो णाणु मुणिज्जइ ।
जो थिरु भावइ परु विवज्जइ,
सो चारित्तु मणहिं भाविज्जइ ।
तेरह विहि जिणवर अक्खिज्जइ,
ववहारइ सु बुह जाणिज्जइ ।
जो बारह विहु तउ जिण सासणु,
अक्खहि बुह सो मुणहिं वियक्खणु ।
पर सुव्वहारणिवित्ति जो किज्जइ,
सो तउ णिच्छउ बुह जाणिज्जइ ।
इय चउविह आराहणु जाणहि,
ववहारेण परह वक्खाणहिं ।
णिच्छइ जाणइ जिणवर बुह अक्खहि,
अप्पा अप्पउमाण उवलक्खहि ।
आराहण फलु जिणवर भासइ,
केवलणाणु अणत पयासइ ।

घत्ताः—

इय आराहणसारु कारण-कज्ज वियाणियइँ ।
जो अक्खहि जगणाह-जाणि विणिय मणिमाणियइँ ॥१॥

अन्तिम भाग —

अहो अहो सत्थवाहि कुलभूसरगु,
रिगसुरिग धम्मु तउ कहमि अहिंसरगु ।
विरगकज्जेरग जीउ जे मारहिं,
कु तलवडि असियाय [प] हारहिं ।
ते दालिद्दिम- दुह उप्पज्जहिं,
रगारइ (य) पडता केरग धरेज्जहिं ।
जे अहिलास जाहिं परयारहिं,
जाहिं पुरिस ते सढ । वियारहिं ।
जे पेसुण्ण भासरय अरगुदिरगु,
सुह जरिग रिंगदा करहिं जि कुम्मरगु ।
रिगच्च गुत्ति उप्पज्जहि ते रगार,
हीण सत्त वहु दुक्ख परपर ।
दउलायति भमहि परिद्धें,
ते जम्मति इत्थु विरगु विध्दें ।
खास-सास वहु वाहहि गीढा (हा)
भवि भवि हु ति पुरिसभइ मूढा ।
छिंदह दहहि विविह जे तरु वरु,
कुदृवाहितहु दो सइ रगारवर ।

घत्ता —

जे कहहि अदिट्ठ विदिट्ठउ,
असुवउ सुवउ कहति ।
ते अ धवहिर रग पाविय,
दुक्किय भमति ॥२०॥

(गुटका आमेर भडार)

६७ हरिसेरग चरिउ (हरिषेरग चरित्र)

आदिभाग —

भावें परगविवि मुरिग सुव्वय हो चररग कमल भवताव महा ।
नि (रिग) सुरगहु भवियहु वहु रस भरियहु हरिसेरगहु पयडेमि कहा ॥
जिरग सासरिग दुरिय परगासरिग अहो जरग कण्ग महोच्छउ दिज्ज हो ।
विमलुज्जलु तव निम्मलुयउ हरिसेरग हो चरिय मुरिगज्ज हो ॥

× × × ×

अन्तिमभाग.—

वुहयरगाह रगव परियव्वहो गुरु उवएसिं जारिगयओ ।
काविज्जीयइ जिरगु परगवेप्पिरगु तें हरिसेरग सम्माणिओ ।
महा चक्रवर्ती हरिषेण चरित्र समाप्त ।

६८ मयरग पराजय (मदन पराजय)

कवि हरदेव

मगलाचरण:—

कमल-कोमल-कमलक तिल्लोक मलकिय कमल गय ।
कमल हणरग सिहरेण अ चिय, कमलपिय कमलपिय ।
कमल भवहि कमलेहिं पुज्जिय ।
ते परमप्पय पय कमल परगमवि कलिमलचत्त ।
मयद जिरगदह जेमरगु पयडमि साजइ वत्त ।

× × × ×

अन्तिमभाग·—

विसयसेण मुरिगवर अच्छेसइ, तचारित्तनयरु रक्खेसइ ।
इम भरगेवि गउ मोक्ख हो जिरगवरु विसयसेरगु पालइ सजमभरु ।
अमुरगतह का इवि साहिउ, मुणिवरत खमतु ऊरगाहि उ ।
जिरग वरि दे पये पकय भसलि-नाविज्जाहर गणहर कुसलि ।
मयरग पराजएरग विरइय कह, हर एविरेति विघुहयरग सह
गुरगदोस पयाउ अविखउ भाउ मह्ु छलेरग विरइय कह ।
भव्वयण-पियारी हरिसजरगेरी न (रग) दउ चउविह सघह ॥२५
इय मयरगपराजयचरिए हरिएव कइ विरइए मयरग पराजयरगाम दुज्जओ परिच्छेओ समत्तो ॥

प्रति आमेर भडार, स० १५७६

६९ सिद्ध चक्क कहा (सिद्धचक्र कथा)

प० नरसेन

आदिभाग ·—

सिद्धचक्कविहि रिद्धिय गुरगहि समद्धिय परगविवि सिद्धि मुरगीसर हो ।
पुरग अक्खमि भव्वह वियलिय गव्वह सिद्धि महापुरि सामिय हो ॥

× × × ×

घत्ता :—

जो जिण गुणमाल पढेसइ मणि भावेसइ रिद्धि विद्धि जसु लहइ पउ।
जो सिद्धि वरगण णारिहिं हयजर मारिहिं सुहु णरसेणह परमपउ ॥१॥

जिण वयणाउ विणिग्गय सारी,
पणविवि सरसइ देवि भडारी।
सुकइ करतु कव्वुरसवतउ,
जसु पसाय बुहयणु रजतउ।
साभय वय महु होउ पसण्णी,
सिद्ध चक्क कह कहमि रुवण्णी।
पुणु परमेट्ठि पच पण वेप्पिणु,
जिणवर भासिउ धम्मु सरेप्पिण।
विउल महागिरि आयउ वीरहो,
समवसरणु सामिय जयवीर हो।
तहो पय वदण सेणिड चलियउ,
चेल्लणाहि परिवारह मिलियउ।
तिण्णि पयाहिण देवि पससिउ,
उत्तमगु भूरोवि णमसिउ।
जाय ति भा मरि देविणु णाह हो,
पणविवि बहु भाविहि हयमोहहो।
गणहर णिग्गथह पणवेप्पिणु,
अज्जियाह वदणइ करेप्पिणु।
खुल्लय इच्छाकारु करेप्पिणु,
सावहाणु सावय पुच्छेविणु।
तिरियह उवसम-भाउ गरि ट्ठउ,
पुणु णरिंदु णरकोट्ठे णिविट्ठउ।
पुच्छइ सेणिउ वीर जिणेसर,
सिद्ध चक्क फलु कहि परमेसर।
ता उच्छलिय-वाणि सव्वगहो,
सुय-सायर-पवरि तरगहो।

घत्ता—

गायमु गणि साहइ अण पडिगाहइ ए उद्देसे पयासइ।
सिद्ध चक्क विहि इट्ठिय णिसुणि सइट्ठिय सेणिय कहिम समासइ ॥२॥

× × × ×

अन्तिमभाग:—

घत्ता—

सिद्ध चक्क विहि रइयमइ णरसेणु भणइ णियसत्तिए।
भवियण जणमण आणदयरे करिविजिणेसर-भत्तिए ॥३६

इम सिद्ध चक्क कहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए महाराय चपा-हिव सिरिपाल देव-मयणासु दरिदेवि-चरिए पडिय सिरिणरसेण विरइए इहलोय-परलोय-सुह फल कराए रोर-दुह-घोर-कोट्ठ-वाहि-भवणासणाए सिरिपाल णिव्वाण-गमणोणाम बीओ सधि परिच्छेओ समत्तो ॥ सधि २ ॥

७० अणत्थिमिय कहा (अनस्तमित कथा)

कर्ता—हरिचन्द्र कवि

आदिभाग:—

वासरि मेल्लतह णिसि भु जतह पाव पिसाए गाहिय मणु।
गुण-दोस-वियारणु सुह-दुहकारणु त परमत्थु कहेमि जिणु ॥

आइ जिणिदु रिसहु पणवेप्पिणु,
चउवीसहं कुसमजलि देप्पिणु।
वड्ढमाणु जिणु पणविवि भावें,
कलिमल-कलुस-विवज्जिउ पावे।
सचालिवि अइरावउ गइदु,
जसु जम्म ठहवण आयउ सुरिंदु।
णिउ मेरु सिहरि तिल्लोक णाहु,
अइ-विसम-कम्मवण-डहण-दाहु।
कलसेहिं ण्हायउ सिहासणत्थु
चल चामरेहिं विज्जिउ पसत्थु।
बालउ णिएवि इदस्स ताम,
जल सकपईसइ हियइ ताम।
ता अवहिणाणु परिकप्पियउ,
तें मेरु अ गट्ठइ चप्पियउ।
थर-हरिय धरणि बभडु खसिउ,
गिरि डोल्लिउ सुर-समूह तसिउ।

घत्ता—

परमेट्ठि पयासणु णिरुवम सासणु इंदि वण्णिय जासु गुणा।
जिण णवेवि पयत्तें कहमि हियत्ते थुइ अणथमिय सुणेहु जणा ॥१॥

जय वड्ढमाण सिव उरि पहाण,
तइलोय-पयासण-विमलणाण ।
जय सयल-सुरासुर-णमिय-पाय,
जय धम्म-पयासण वीयराय ।
जय सील-भार-धुर धरण धवल,
जय काम-कलंक-विमुक्क अमल ।
जय इंदिय-मय-गल-वहण वाह,
जय सयल-जीव-असरण-सणाह ।
जय मोह-लोह-मच्छर-विणास,
जय दुट्ठ-धिट्ठ-कम्मट्ठणास ।
जय चउदह-मलवज्जिय-सरीर,
जय पंच-महव्वय-धरण-धीर ।
जय जिणवर केवलणाण-किरण,
जय दंसण-णाण-चरित्त-चरण ।

घत्ता—

जिणवरु वंदे विण गुरुहु णवेविणु भाव वाएसरि सरिवि ।
अणथमिउ पयासमि जण उब्भासमि णियमण सुद्ध भाव करिवि ॥२

अन्तिमभाग.—

पुणु पाविट्ठह हउं आसक्कमि,
धम्मकहा पयडे विण सक्कमि ।
तेण समुच्चएण मइ जंपिउ,
भव्वयणह उवसंतह जंपिउ ।
इउ अणथमिउ जिणागमे उत्तउ,
एव्वहिं मइ हरियंद णिवुत्तउ ।
इहु अणथमिउ जु पढइ पढावइ,
सो णरु-णारि-सुरालउ पावइ ।
जो पुणु अविचलु मणि णिसुणेसइ,
तहो सुह विमल वुद्धि पयडेसइ ।
जो अक्खलिउ अणथमिउ करेसइ,
सो णिव्वाण णयरि पइसेसइ ।
मइ पुणु भावें कव्वु चडावइ,
सुणअं सुअण वहुगुण अणुरायइ ।
पाविउ वील्हा जडू तणए जाएं,
गुरु-भत्तिए सरसइहिं पसाए ।

गाथा—

अयरवालवंसे उप्पण्णइ मइ हरियंदेण ।
भत्तिए जिणु पणवेवि पयडिउ पद्धडिया छंदेण ॥१॥
इय अणथमी कहा समत्ता ।

७१ चूनडी (रास)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

आदिभाग.—

विणएँ वंदिवि पंचगुरु,
मोह-महा-तम-तोडण-दिणयर ।
वंदिवि वीरणाह गुण गणहर तिहुयण सामिउ गुण णिलउ
मोक्खह मग्गु पयासण जगगुर,
णाह लिहावहि चूनडिय,
मुद्धउ पभणइ पिउ जोडिवि कर ॥१॥ ध्रुवक
पणवउँ कोमल-कुवलय-णयणी,
लोया लोय-पयासण-वयणी ।
पसरिवि सारद-जोण्ह जिम,
जा अंधारउ सयलु विणासइ ।
सा महु णि-वसउ माणसहिं,
हंसवधू जिम देव सरासइ ॥२
माथुर संघहँ उदय मुणीसरु,
पण विवि वालइंदु गुरु गणहरु ।
जंपइ विणय मयंकु मुणि,
आगमु दुग्गमु जइ विण जाणउँ ।
मालेज्जउ अवराहु महु,
भवियहु इह चूनडिय वखाणउँ ॥३

अन्तिमभाग.—

तिहुमणि गिरिपुरु जगि विक्खायउ,
सग्ग खंडु णं धरयलि आयउ ।
तहिं णिवसंते मुणिवरेण,
अजयणरिंद हो राय-विहारहिं ।
वेगे विरइय चूनडिया सोहहु,
मुणिवर जे सुय धारहिं ॥३२॥
इय चूनडीय मुणिंद-पयासी,
संपुण्णा जिण आगम भासी ।

पढहिं गुणहिं जे सद्दहहिं,
तेण सिवसुह लहहिं पयत्तें।
विणए वंदिवि पचगुरु ॥३३

७२ णिज्झर पंचमी कहा (निर्झर पंचमी कथा)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

आदिभागः—

पणविवि पच महागुरु धरिवि मणे,
उदयचद गुरु सुमीर विबदिविबाल मुणें।
विणय चदु फलु अक्खइ णिज्झर पचमिहिं,
निसुणहुँ धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमिहिं ॥

अन्तिमभागः—

तिहुअणगिरि तल हट्ठिय इह रासउ रइउ,
माथुरसघहँ मुणिवरु विणयचद कहिउ।
भवियहु पढह पढावह दुरियह देहु जलु,
माणुम करहु मरुसहु मणुरवचहु अचलु।
जे (जि) ण भणंति भडारा पचमि पचपहु,
अम्हंहि दरिसावहु अविचलु सिद्धि सुहु।

७३ कल्याणक रासु

कर्ता—विनयचन्द्र

आदिभागः—

सिद्धि-सुहकर सिद्धि-पहु पणविवि ति-जय-पणासण।
केवलसिद्धिहिं कारणि थुणमि हउ, सयल विजिण कल्याण णिहियमल।
सिद्ध सुहकर सिद्धि-पहु ॥१॥

पढम पक्खि दुइज्जहिं आसाढहि
रिसह गब्भुतहिं उत्तर साढहिं।
अंधियारी छट्ठिहि तहिमि (हउ)
वदमि वासुपुज्ज गब्भुत्थउ।
विमलु सुसिद्धउ अट्ठमिहि दसमिहि
णमि जिण जम्मणु तह तउ।
सिद्ध सुहकर सिद्धि पहु ॥२॥

अन्तिमभागः—

एयभत्तु एक्कवि कल्लाणइ णिवि
णिव्वयडि अहइकल ठाणउ।
तिहि आयविलु जिण भणइ
चउहिमि होइ- उववासु गिहत्थह।
अहवा सयलह खवणविहि
विणयचदु मुणि कहिउ समत्तह

इति श्री भट्टारक विणयचद विरचित कल्याणक विधि समाप्त।

७४ सोखवइ विधान कथा

कर्ता—विमलकीर्ति

आदिभागः—

पणविवि तित्थकर सिद्धि सुहकर सुह सपइविहि मणहर।
गुण गणहर विरयतह वर दितु वोहि महु सुन्दर ॥

अन्तिमभागः—

रिसिहेस विण्णवइ मुणि विमलकित्तित्ति।
लहु देहिउ सत्त सम सिद्धि रुपत्ति ॥

घत्ता—

जो पढइ सुणइ मणि भावइ
जिणु आरहइ सुह सपइ सोणरु लहइ।
णाणु वि पज्जइ भव-दुह-रिवज्जइ
सिद्धि विलासणि सो रमइ ॥

७५ चंदणछट्ठी कहा (चन्दनषष्ठी कथा)

कर्ता—प० लाखू (लक्ष्मण)

आदिभागः—

पणवेप्पिणु भावे विमलसहावे पाय पोम परमेट्ठिहे।
अक्खमि निय-सत्तिए भवियण-भत्तिए ज फलु चदण-छट्ठिहे ॥

अन्तिमभागः—

इय चंदणछट्ठिहि जो पालइ बहु लक्खणु।
सो दिवि भुजिवि सोक्खु मोक्खहु णाणे लक्खणु ॥

७६ णिद्दुक्खसत्तमी कहा (निदु:खसप्तमी कथा)

कर्ता—मुनि बालचन्द्र

आदिभागः—

संति जिणि दह पय-कमलु भव-सय-कलु स-कलंक-निवारु।
उदयचद गुरु धरेवि मणे बालइदु मुणि णविवि णिरतरु।

अन्तिमभाग —

किज्जइ धण सत्तिहि उज्जवणउ,
विविह णहावणेहि दुह-दमणउ।
आयण्णि वि मुणि भासियउ,
राए गुण अणुराउ वहतें।
लयउ धम्मु सावय जणहि,
ति-यरणेहि विहिउ उत्तम सत्तें।

७७ नरक उतारी दुधारसी कथा

कर्ता—मुनि बालचन्द्र

आदिभाग —

समवसरण-सीहासण-सठिउ
सो जि देउ महु मणह पइट्ठउ।
अवर जि हरिहर बभु पडिल्लउ,
ते पुण णमउ ण मोह-गहिल्लउ॥
छह दसण जा थिरु करइ वियरइ बुद्धि-पगासा।
सा सारद जइ पुज्जियइ लब्भइ बुद्धि सहासा।
उदयचद्र मुणि गणहि जुगहणउ सोमइ भावें मणि अणुसरिउ।
बालइंदु मुणि णवि वि णिरतरु णरगउतारी कहमि फ़ुहतरु।

अन्तिमभाग.—

वर वियहु विहाणु जे धण्णा, करहि उदय जुवइहि संपुण्णा।
गु मोक्खु ते लहहि विसिट्ठिउ, ज जिह विणयचंद मुणि-दिट्ठिउ।

७८ रविवय कहा (रविवारव्रतकथा)

कर्ता—कवि नेमचन्द

आदिभाग —

आइ अ त जिण वदे वि सारद धरेवि मणि,
गुरु णिग्गथ णवेप्पिणु सुयणह अणुसरेवि।
पुच्छतह भव्वयणह सदुपदेसु चवइ,
माथुरसघह मुणिवरु णेमियदु कवइ।
पासनाह रविवार वउ पभणमि सावयह,
जासु करतह लब्भइ सम्पइ पाइय पय परह।

अन्तिमभाग —

जे इहु पढइ पढावइ निसुणइ कण्णेदइ।
सो सुरानर-सुहु भु जिवि पावइ परमगइ॥

७९ सुगंधदहमी कहा (सुगन्ध दशमी कथा)

कर्ता—कवि देवदत्त

आदिभाग —

जिण चउवीस णवेप्पिणु,
भाउ धरेप्पिणु देवदत्तहं चउवीसह।
पुणु फलु आहासमि धम्मु पयासमि,
वर सुयध दसमीहि जिह।

पुच्छिउ सेणिएण तित्थकरु कहहि सुयध दसमि।
णइ जिणिदु णिसुणि अहो सेणिय भव्वरयण गुणरयण णिसेणिय।

अन्तिम भाग —

जहिंकोहु न लोहु सुहि न विरोहु जिउ जर-मरण विवज्जिउ।
जहिं हरिसु विसाउ पुण्णु ण पाउ तहि णिवाणु महु दिज्जउ॥२॥

८० मुत्तावली कहा (मुक्तावलि कथा)

कर्ता— .. ..

आदिभाग —

वीर जिणिदह पय-कमलु वदिवि गुरु गोयमु पणविज्जइ।
रयणत्तउ मणिधर वि मइ मुत्तावलि-विहाणु-भलु गिज्जइ।

अन्तिमभागः—

जो विहिणावसइ एह विहि सो कमेण जिह पउम रहो।
सिव-सोक्खु लहइ सइ उतरे वि भवसमुद्द दुग्गहु लहु॥

८१ अनुवेक्खारासो (अनुप्रेक्षारास)

कर्ता—कवि जल्हिगि

आदिभाग.—

मोक्खह कारणु जाणि, भासिय जिणेंद णाणि।
दो दह भावणु जाणि मणि भावि जिया॥छ॥
सपइ अथिर एह जइ सिय विज्जुल-रेहा,
सुर धणुहर समु जोव्वणु जिया, दीसइ जु सुन्दर दव्वु,
जाइ सीखयहु सव्वु मोह न जाणसि जीव तुहु॥१॥

अन्तिमभाग.—

जो भावइ भावण सारु, मेल्लि वि मण वियारु।

पावइ चारुसो नरु परमसुहो, जो पढइ अणुवेहारासु,
सोतरु फेडइ पाव पासु, समावासु पावइ सुह निलउ ॥१५
जइ मुणिउ नकव्वब धु, तह विपयासिउ छडु ।
नियय सत्तिए जल्हिगि रयउ, जय किंपि वि अहिउ हीणु,
अक्खर-मत्त-विहीणु, सोहतु मुणीसर-विगय-मला,
मोक्खह कारण जाणि भासिय जिणेंद णाणि,
दोदह भावणु जाणि मणि भावि जिया ॥१६

८२ बारह-अणुवेक्खा रासो
(द्वादश अनुप्रेक्षा रास)

कर्ता—प० योगदेव

आदिभाग:—

णविविचलण मुणि सुव्वयहो णरसुरखयर महोरगमहिय हो ।
सयलविमल केवल गुण सहिय हो, बारह अणुवेक्खउ कहमि ।
भव्वयणहु णम विणयहु सहियहु णवि विचलण मुणि सुव्वयहो ॥

अन्तिमभाग:—

एहु रासु जिणवर पयभत्तें विरयउ कुंभणयरे णिवसतें ।
जोगदेव पडिय पुरउ विसयसेण मुणिवर पयभत्तें ।
पढइ सुणइ जो सद्दहइ सो णरु सिव सुहु लहइ पयत्तें ।
णवि विचलण मुणि सुव्वय हो ॥२०॥

८३ अणुवेक्खा दोहा (अनुप्रेक्षा दोहा)

कर्ता—लक्ष्मीचन्द्र

आदिभाग:—

पणविवि सिद्धमहारिसिहिं जो परभावह मुक्क ।
परणाणद परिट्ठियउ चउग्इ गणमह चुक्क ॥१॥
जइ वीहउ चउगइ गमण तो जिण उत्तु करेहि ।
दो दह अणुवेहा मुणहि लहु सिव सुक्खु लहेहिं ॥२॥
अधुव असारण जिणुभणइ, ससारुवि दुह-खाणि ।
एकत्तु वि अण्णत्तु मुणि असुइ-सरीरु वियाणि ॥३॥
आसव-सवर-णिज्जर वि लोया भाव विसेसु ।
धम्मुवि दुल्लह वोहिजिय भावे गलय किलेसु ॥४॥

अन्तिमभाग —

जो अप्पा णिम्मलु मुणइ वय-तव-सील-समाणु ।
सो कम्मक्खउ फुडु करइ पावइ लहु निव्वाणु ॥४६॥
ए अणुवेहा जिणभणिय, णाणी बोलहि साहु ।
ते तावज्जिहि जीवतुहु, जइ चाहहि सिव लाहु ॥४७

८४ अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा)

कर्ता—अल्हू कवि

आदिभाग.—

राव जिय छडहि . मनुमडहि देव-गुरु-वयण सो गहु गहहि ।
अप्पु थिरु मनहिं परु अवगण्णहिं चेइ जिय भवसरि मा पउहिं ।
सतगुरु दीसइ सीखु होहि जिय सामिय पचमगइ करि जिम चडहि ।

अन्तिमभाग:—

णिच्चु णिरजणु णाणमउ चित्तधरि भवियहु मल्हु कवि वज्जरए ।
जो मुणि पढइ पढावए हद्दहइ सो णनो सिवपुरी जाइ सरए ॥११०॥

८५ हरिवस पुराण

कर्ता—कवि श्रुतकीर्ति

रचना १५५२

आदिभाग:—

ससिइण वोमसइ ते हरिवसइ पाव-तिमिर हा विमलयरि ।
गुण-गण-जस-भूसिय तुरय अइसिया सुव्वय-णेमियहलिय हरि ।
सुरवइ-तिरीड-रयण किरणावु-पवाह-सित्त-णह-चलण ।
पणविवि तह परम जिण हरिवस कयत्तण वुच्छे ॥१॥

चरमभाग:—

तह कमेण सुयणाणिउ छिण्णइ,
अग अग देसइ धर अण्णइ ।
पचम काल चलण पढ मिल्लइ,
तह उवण्ण आयरिय महल्लइ ।
कुदकुंद गणिणा अणुकम्मइ,
जायइ मुणिगण वितिह सहम्मइ ।
गणवाल तवा गेसरि गच्छइ,
णदिसघ मणहर मइ-सुच्छइ,

पहाचन्द्र गणिणा सुद पुण्णइ ।
पोमणदि तह पट्ट उवण्णइ ।
पुणु सुहचददेव कम जायउ,
गणि जिणचद्र तहय विक्खाउ ।
दिज्जाणादिकमेण उवण्णइ,
सीलवत तहु गुण-सपुण्णइ ।
पोमणदि सिस कमेण ति-जायइ
जे मडलामरिय विक्खायइ ।
मालव-देस-धम्मु सुपयासणु,
मुणि देविंदकित्ति मिउ भासणु ।
तह सिसु अभियवाण गुण धारउ।
तिहुअणकित्ति पवोहण सारउ ।
तह सिसु सुदकित्ति गुरु भत्तउ,
जहिं हरिवसु पुराणु पउत्तउ ।
मच्छर-उज्झिउ बुद्धि-विहीणउ,
पुव्वाणरियहि वयण पय लीणउ ।
अप्पबुद्धि बुह दोसुण दिज्जउ,
ज असुद्ध त सुद्धु करिव्वउ ।
एयहु सयल गथ सु-पमाणहु,
तेरसद्ध सहसइ बुह जाणहु ।
सवतु विक्कमसेण णरेसह,
सहस पचसय वावण सेसह ।
मडवगढु वर मालव देसइं,
साहि गयासु पयाव असेसइ ।
णयर जेरहड जिणहरु चगउ,
णेमिणाह जिण-विवु अभगउ ।
गथ सउण्ण तत्थ यहु जायउ,
चउविहु सघु णिसुणि अणुतायउ ।
माधक्ण्हि पचमि ससिवारइ,
हत्थणखत्त समत्तु गुणालइ ।

८६ परमेट्ठिपयाससारो (परमेष्ठी प्रकाशसार)

कर्ता—भ० श्रुतकीर्ति

रचना १५५३

आदिभाग —

. . . .

।।।... .. ..।।।..................।।

चरमभाग —

घत्ता—

दहपणसय तेवण्ण गयवासइ पुण विक्कमणिव सवच्छरहे
तह सावण-मासहु गुर पचमि सहु गथु पुण्णु तय सहस तहें

मालवदेसइ गढुमाडव चलु,
वट्टइ साहि गयासु महावलु ।
साहिणसीरु णाम तह णदणु,
राय धम्म अणुरायउ बहुगुणु ।
पुज्जराजु वणिमति पहाणइ,
ईसरदास गयदह आणइ ।
पत्थाहरण देसु बहु पावइ,
अह-णिसि-धम्महु भावण भावइ ।
तह जेरट णयर सुपसिद्धउ,
जिण चेईहर मुणिसु पबुद्धइ ।
णेमीसर-जिणहर-णिवसतइ,
विरयहु एहु गथु हरिसतइ ।
जइ सिघु तह सघवइ पसत्थइ,
सकरु णेमिदासु बुहतत्थइ ।
तह गथत्थभेउ परियाणिउ,
एउ पसत्थु गथु सुहु माथिउ ।
अवर सघवइ मणि अणुराइय,
गथ-अत्थ-सुणि भावण भावइ ।
तेहिं लिहा [व] इ णाणा गथइ,
इय हरिवस पमुह सुपसत्थइ ।
विरइय पढम तिअहि ? वित्थारिय,
धम्मपरिक्ख पमुह मण हारिय ।
पढहिं भव्व जहिं पडिय-लोयइ,
सतिहोइ सुणि अत्थमणोयइ ।

घत्ता—

पुर णयर णरेसहिं गामह देसह मुणिगण सखयलोय सहे ।
धणु कणु मणि सारइं धम्मुद्धारइ करहिं सति परमेट्ठि पहो ॥७५

इय परमेट्ठि पयाससारे अरूहादि गुणेंहि वण्णणाण लकारे अप्पसुद-सुदकित्ति जहासत्ति कहाकव्वु विरयतो णाम सत्तमो परिच्छेओ समत्तो । सधि ७॥ इति परमेष्ठि प्रकाशसार ग्रथ समाप्त. ।

८७ संतिणाह चरिउ (शांतिनाथ चरित्र)

रचना १५८७

कर्ता—महिन्दु या महाचन्द्र

आदिभाग:—

जिणभय-तरु कंधर णाय भुविकधर सुर वइ संतिहु पय-जुयलु।
उत्तमु तहु केरउ सुक्ख जणेरउ चरिउ कहमि पणविवि अमलू ॥१॥

× × × ×

पावेवि देसु-कुलु-जम्म-रूउ,
आउवि-अरोय-वीरिय-सविणउ।
वर-सवण-गहण-मइ-धारणासु,
जणि मण्णिउ वण्णिउ बुहयणासु।
तह भत्तउ-भायरु-सुक्ख-हेउ,
दोदा णामेण मयर-केउ।
लहुणिय घर पुत्तहु धरिय-भरु,
कंचण वाणिज्जउ महुर सरु।
तुहु सुत्थिउ दुत्थिउ णउ कयावि,
किण कहहिं धम्म-कहा सयावि।
कइ पुप्फयत सिरि महपुराण,
तहु मज्झि णिसुणउ मइ गुण-णिहाणु।
चरियउ सिरि संतिहु तित्थणाहु,
अइ णिविड-रइउ गुण-गण-अथाहु।
गंभीर-बुद्धि दुल्लहु ण होइ,
सो तुच्छ-बुद्धि सुलहउ ण जोइ।
बुहयण हू जि एहु सहाउ हु ति,
सव्वहि हिययत्ताणु चिंतवति।
तहिं हु तउ कड्ढिबि वित्थर हि,
पयडेसमि हउ मा भंति करहि।
बोलिज्जइ कव्वकिय मएण,
महु तुच्छ बुद्धि खलयण अएण।
....जिह पित्त गहिय,
विवरीय पय पहि महुर-रहिय।
जल-सप्पिणि इव दुज्जण हवंति,
मुह दुद्ध थणहु रुहिरु वि असंति।
दोसायरेहिं ण णिसियरेहिं,
पर-छिद्दाण्णेसहि रइ-यरेहिं।
वेजीह वंक गइ सरल-रहिय,
किं कीरइ कह बुहु धम्म-सहिय।
वर-बुहयण-कमल-दिणेसरासु,
णिय-कुल णह-मडणु-सस-हरासु।
अत्थी-मण-पूरिय-कंचणासु,
जपइ साहारणु मइ वरासु
सल वलिय किमिहि उलु गलिय रधु,
मिल्लेवि देहु बहु पूइ गंधु।
कक्कस-भासी अइ किहणु धिट्ठु,
उत्ताम पएसि किं रमइ रिट्ठु।
णिक्कारणेण करि रोस भाउ,
पर-दोस-गहणु-पिसुणहु-सहाउ।
हण तिमिर-पसरु तेएण पूरु,
को सियहु ण भावइ उयउ सूरू
जइ तासो पोसिय खडय राह,
किं णउ सावय लच्छी हराह।
सुहिगण-छेमाणव भेइ पाउ,
तह कवणु गणइ असहिय पयाउ।
कोल्ही देवी पय-भत्तएण,
ताजपिउ कव्व रसद्द एण।

घत्ता—

पुण णिसुणहि इव्वहि वियलिय गव्वहि जेहु आसरसइ णिलया।
सो या जण-वल्लह पालिय वय दुल्लह पणविवि ते कइयण-तिलया ॥४॥

अकलंक सामि सिरि पाय पूय,
इंदाइ महाकइ अट्ठहूय।
सिरि णेमिचंद सिद्ध तियाइ,
सिद्ध तसार मुणि ण विवि ताइ।
चउमुहु-सुयंभु-सिरि पुप्फयंतु,
सरसइ-णिवासु गुण-गण-महंतु।
जसकित्ति मुणीसरु जस-णिहाणु,
पंडिय रइधू कइ गुण अमाणु।
गुण भद्दसूरि गुणभद्द ठाणु,
सिरि सहणपाल बहु बुद्धि जाणु।

णउ दिट्ठाणउ सेविय सुसेय,
मइ सद्द-सत्थ-जाणिय ण भेय।
णो कत्ता कम्मु ण किरिय जुत्ति,
णउ जाइ धाउ णवि सधि उत्ति।
लिंगालकाह ण-पय-समत्ति,
ण बुज्झिय मइ इक्कवि वि विहत्ति।
णिग्घटु वि यो जो अमरकोसु,
. ...।
× × ×

घत्ता—

भो सुणु वुद्धीसर वरमहि दुहहर,
इल्लराज सुअणा खिरूजड।
सण्णाण सुअ साहारण दोस
णिवारण वरणरेहिं धारिज्जउ॥

इय सिरि सतिणाह चरिए णिरुवम गुणरयण सभरिए अण्णाणमयो (?) इल्लराजसुअ-महिदु विरइए मिरिणाणा सुअ-सघाहिव-महाभव्व साहारणस्स णामकिए भव्वयण जण-मणाणदयरे मिरि इट्ठदेव-णमोयारकरणं सेणिय महाराय सिरि वड्ढमाण समवसरण गमण-धम्मक्खाण-निसुणण पढमो इमो परिछेओ समत्तो॥

अन्तिमभाग.—

घत्ता—

महुणा णामावलि, वण्णवि आउलि पभणउ अइसुहयारी।
सिरि वीरु णवेपिणु हियइ धरेविणु सुद्धविदा पहुकेरी।

पद्धडी—

इह जोयणिपुरु पुरवरहँ सारु,
जहु वण्णणि इह सक्कु वि असारु।
सालत्तय मडिउ सो विभाइ,
कोसी सहि परिहा दुग्गणाइ।
जो वण-उववण-मडिउ विचित्तु,
ण मेरुवि चेईहर-पवित्तु।
तणियड वि जउणा-णइ वहेइ,
ण गग वि ईसहु सहु वहेइ।
खड गोउराइ अइ जिगि मिगति,
खण मुहहु वि ण अवयारु दिंति।
जहु रक्खइ गोउव दडधारि,
अरियण-गणाह जो सपहारी
पच्चत णिवड संगहइ दड्ड
रायाहिराउ वव्वरु पयडु।
मिच्छाहिउ अइ व विणाय जाणु,
महसूलणोव्व जणदिण्णमाणु।
जहिं चाउवण्ण पय सुहि वसति,
णिय णिय किरियाइविरत्तचित्ति।
तहिं चेत्तालउ उत्तु ग सहइ,
धयमडिय मोक्ख [सु] मग्गु वहइ।
जहिं मुणिवर सत्थइ वायरति,
मह जण्ण-पूय सावय करति
तहिं कट्ठसघ माहुर वि गच्छि,
पुक्खर गण मुणिवर चइविलच्छि।
जसमुत्ति वि जसकित्ति वि मुणिंदु,
भव्वयण-कमल-वियसण-दिणिंदु।

तहु सीसुवि मुणिवरु मलय कित्ति,
अणवरय भमइ जागि जाहु कित्ति।

तहु सीसु वि गुण गणरयण भूरि,
भुवणयलि सिद्धु गुणभद्द सूरि।

सोरठा—

तहु पय भत्तउ साहु भोमराउ जाणिज्जइ।
गुण वड्ढियइ णिवास जोयणिपुरि णिवसज्जइ॥१॥

चौपाई—

जें तित्थयर वि गोत्तु णिबद्धउ,
करि पयट्ठ सुह-पुण्ण वि लद्धउ।
सघाहिउ गयपुरि सजायउ,
अयरवालु सघह सुह-भायउ।
गग्गगोत्त-णिम्मल गुण सायरु।
सुथिरें मेरुवि-तेय-दिवायरु।

पद्धड़ी—

तहु भज्जवि घील्हाही विसार,
णाहहु गामिणि ण गगफार।
तहु पुत्त पचण मेरुपच,
मह-वयइ पच ण समिइ पच।

पहिलारउ संघहु भारधरणु,
चउभेय संघ बहु भत्ति-करणु।
संघाहिउ खीमविचंद सारु,
तहु विण्णि भज्ज गुणगण विसारु।
पढम वि घीकाही गुणवरिट्ठ,
बीई नानिगही अइव इट्ठ।
तहु पुत्त चयारि वि चउ णिओस।
छीथा पढमउ भज्ज वि असोय।
तिहुणाही णामें णेमिदासु,
तोउ वि जायउ सीस किरणहासु।
तहु कामिणी वि गज्जो वि णाम,
बीयउ सुउ पिरथी मल्लु नाम।
तहु पिययम हिउणाही पसिद्ध,
तहु पुत्त चयारिवि गुण-समिद्ध।
पढमउ उधरणु रणाणउ विवीउ,
गण गण गरिट्ठ धणराउ तीउ।

चौपाई—

चउत्थउ मानसिंघु वि भणिज्जइ,
खेमचन्द्र सुउ तीयउ गिज्जइ।
इदेव कीउ सो इंदराउ,
रावणाही कामिणि जो सराउ।
तहु पुत्त विण्णि ण लच्छिपिल्ल,
सतीविहासु तारणु रसिल्ल।
पुणु चउथउ चदु वि चदहासु,
दोदाही बहु सुउ सामिदासु।

घत्ता—

भोयहु सुउ बीयउ गुण गण जूयउ,
णाणचंदु पभणिज्जइ।
तहु भामिणि गुण-गण-रामिणि,
सउराजही कहिज्जइ ॥२॥
तहु तिण्णि अ गसू तिण्णि-रयण,
ण तिण्णि लोय ते सुद्धवयण।
पढमउ सम्मेय वि जत्त करणु
सारग विणामे सुद्ध करणु।
तहु ललण तिलोकाही गुणाल,
राका-ससहर-दिप्पत-भाल।
बीयउ संघउ भार धुरधरु,
देवसत्थ गुरु भत्ति वि आयरु।
जिण सह पोमिणि महिरायहसु,
पावारिणाय जो पवरहंसु।
जुण्णय-सेतु जय जत्तकारि,
विहवेण विजित्तउ जे मुरारि।

चौपई—

पडियसमूह दप्पणु गिज्जइ,
पडियाह गुणणाय भणिज्जइ।
साधारणु णामे सो भाणिउ,
उवमा रहिउ वि जण-अहि-माणिउ।
तहु वणिया सीवही णामे,
ण सरधोरणि पेसिय-कामे।

पद्धडी—

तहु चारि तणुब्भव गुण महत,
जेहुवि सुअ अभयहु चदु सत।

चौपई—

चंदणाही भज्जहि रसइल्लउ,
बीयउ जेट्ठवि मल्लु गुणिल्लउ।
वर भदासही भज्ज अलकिउ,
तीयउ जितसल्लो वि असकिउ।
सो पिया वि समदो रइ माणइ,
पुणु चउत्थु सोहिलु पिउ भाणइ।
तासु णारि भीखणाही पावण,
ण मदोयरि सीलहु भायण।
सघाहिव णाणातीउ पुत्तु,
सघाहिउ ताल्हणु गुणविचित्तु।
सघवइ वि भोयहु तीउ तोउ,
सिरियचदुमाणतु भोउ।

घत्ता—

तहुभज्जा गुणहि मणोज्जा हरराजही य भणिज्जइ।
सीलेण वि सीया अइव विणीया ण सुतार जण गिज्जइ॥

पद्धडी—

तहु भुल्लणु णामे तीउ (य) जाउ,
वे कामिणीहि मडियउ काउ।

पढमी उधरण पुत्ती विचित्त,
वीया चुहडही पियहु रत्त ।
स-भोयउ तुरिउ वि तोउ सालु,
गज्रभच्छणामु गुणियण- रसालु ।
वे कामिणी भरहविपालधी य,
दुइया साल्हाही अइविणीय ।
तहु अ गब्भउ सयतणु रमालु,
बूढणही भज्ज हि अइ रमालु ।
तहु कुच्छिजाउ सुहवत सूख,
णं हर्सपिल्लु णामेण सूवु ।
पुण भोयहु पचमु पुत्तु साहु,
रणमलु णामे अच्चत साहु ।
वे भज्जहि मोहिउ जासु मणु,
पढमा चूहडही भज्ज-रयण
तहु जटमल्लु वि णामे विणीउ,
तहु तीयवि रावणधी य णीउ ।
तहु पुत्त चयारि वि कामकासु,
पढमउ हिमारउ विवुह-विसेसु ।

चौपई—

वीयउ मेइणिमल्लु पउत्तउ,
तीयउ वाइ विमल्लु वि उत्तउ ।

पद्धडी—

चउथउ चउहत्थु वि दाण जुत्तु,
स रणमल्लहु वीयउ कलत्तु ।
पयुही तहु सुउ सूरदासु,
पियमाइ भत्तु जिणवर वि दासु ।
एयाह मज्झि साहारणेण,
काराविउ एहु गथुतेण ।

चौपई—

कम्मक्खय वि णिमित्तें सारउ,
सतिणाह चरि वि गुणारउ ।
आयहु गथ पभाणु विलिक्खिउ,
तेयालसइ गणि कइयण अक्खिउ ।

पद्धडी—

विण्णहेण वि ऊधा पुत्तएण,
मूदेवेण गुणगणज्जुएण ।
लिहियाउ चितेण वि सावहाणु,
इहु गथ विवुहसर-जाणभाणु ।

चौपई—

विक्कम रायहु ववगयकालइ,
रिसि-वसुसर-भुवि-अ कालइ ।
कत्तिय-पढम-पक्खि पचमिदिणि,
हुउ परिपुण्ण वि उग्गतइ इणि ।

घत्ता—

जावहि महि-सायरु गयणु दिवायरु.
मेरु-महीहरु चंदउ ।
जउण वि गणाणई जिणवाणीसई,
एहु सत्थु ता णदउ ।।
इति श्री शातिनाथचरित्र समाप्तमिति ।

८८ मियकलेहाचरिउ (मृगांक-लेखा-चरित)

कर्ता—प भगवतीदास रचना—१७००

आदिभाग:—

पणविवि जिणवीर णाण-गहीर,
तिहुवण-वइ रिसिराइ जई ।
णिरुवम मविसत्थ सील पसत्थ,
भणमि कहा ससिलेह सई ।।१।।
पुणु पभणमि सील-महप्पु लोइ,
हरिणक-किरण-सिय-कित्ति होइ ।

× × ×

इय सिरि चदलेहा-कहाए रजिय-बुहचित्त-सहाए भट्टारय सिरि महिंदसेण-सिस्स-पडियभगवईदास-विरइए ससिलेहा-विवाह-भत्तार मिलाव वण्णणो णाम पढमो संधि परिच्छेओ समत्तो ।।

अन्तिमभाग —

कट्ठासघ सु माहुर-गच्छए,
पुक्खरगण-णिम्मल-वय सच्छए ।
जिनवाणी पुव्वग समाधरु,
अवइ ण्णाउ णावइ जणि गणहरु ।
धम्मज्झाण-साहण पउ-सासओ,
मिच्छ-कसाय- राइ रु भासओ ।
भविय-कमल-हिद-णाण-दिवायरु,
रिसि जसंकित्ति गुरू तव-सायरु ।

तासु सीसु गुणचदु जु साहियउ,
पर-वाइय-मय जूहमि गाहियउ ।
चउविह-स । महाधुर-धारणु,
दुस्सह-मयरण-सरणि घोर बारणु ।
धम्मवरिसु सम-गुणि ससि रूवउ,
गुण-ससि पट्ट-सीसु सभूवउ ।
णोमि सयलससि सत्थ कलालउ,
जिणहरि सावय सहसु मरालउ ।
धम्मामिय वरिसण सुपयोहरु,
तासु पट्ट तव-भार-धुरा धरु ।
वर-जस-पसर-पसाहिय-महियलु,
णियम-महत्थ य रज्जिय-णहयलु ।
भट्टारउ महियलि जाणिज्जइ,
माहिंदसेणु विहाणे गिज्जइ ।
तासु सीसु यहु चरिउ पयासिउ,
भगवइदासे णाणिरु भासिउ ।
सील-पहाउ-अवणि-जस-कित्तणु,
ससिलेहा-चारित्तु सइत्तणु ।
लिहइ लिहावइ आइण्णइ णरु,
सो सुर वर पउ लहइ मणोहरु ।
अमुणते णिरु जुत्ति अजुत्तउ,
लक्खण-छदु जु हीणउ वुत्तउ ।
त खम करउ सरसइ देविय,
इंद-अहिंद-णरिंद-सुसेविय ।
सील-चरित्त-विचित्तु-पियारउ,
पण बुह सोहि करहु गुण सारउ ।
हीण-अहिउ-किर-वण्ण वियारए,
ठाण ठविज्जइ पर-उवयारए ।

घत्ता—

सग-दह-सय सवदतीद तहा विक्कमराम महप्पए ।
अगहणसिय पचमि सोम दिणे पुण्ण ठियउ अवियप्पए ॥१५।

दु-ई—

चरिउ मइक-लेह चिरु णंदउ जाम गयणि रवि ससिहरो ।
मगलयारुह वड्ड अणि मेइणि धम्म-पसग-हिदकरो ॥१६

गाहा—

रडअो कोट हिसारे जिणहरि वर वीर वड्डमाणस्स ।
तत्थ ठियो वयधारी जोईदासो वि बभयारीओ ॥१॥
भगवई महुरीआ वत्तिग-वर-वित्ति-साहणा विणिए ।
विवुह सु गंगारामो तत्थठिओ जिणहरेसु मइवतो ॥२॥

दोहा—

ससिलेहा सुयबधुजे अहिउ कठिण जो आसि (स) ।
महुरी भासउ देसकरि भणिउ भगोती दासि (स) ॥१
जाव-गयणि-रवि-ससि भमहि जाव भरह थिरु खित्तु ।
ससिलेहा सुदरि भई णदउ ताउ चरित्तु ॥२॥

इय चदलेहा-कहाए रजिय-बुह-चित्त-सहाए भट्टारक-सिरि मुणि माहिंदसेण सीसु-विबुहश्भगव इदास-विइइए ससिलेहा-सग्ग-गमणाइ-त्थिलिग-छेउ-इंद-पयवी-पघण-सायर-चंदणिव्याण गमण....... ...साहण णाम चउत्थो सधि परिच्छेओ समत्तो ।।सधि ४।।

८९ अजियपुराण (अ...त पुराण) बुध विजयसि

रचनाकाल १५०५

आदिभागः—

मुत्तिपियावरु संकरु दसिय तव भरु तिहुवण भवणहि मडण
णविवि पणय पुरदरु णियगुण सुदरु रिसहु नाहि णिव नदण

× + ×

दिवसेक्कहि सज्जण रमिय रम्मे,
धय वड रोहिय विसि यत धम्मे ।
चोरारि अलक्खिय मज्झ मग्गे,
अमुणिय दुक्काल महोवसग्गे ।
सुहयारि वणिप्पुरे रम्मगामे,
वड्ढारियमिहुणहु सुहसंकामे ।
सिरि सुंदरे मंदिरे ठिदिरस्पणा,
पडिय खेता कुल नहइणेण ।
बुह काम राय कमला सुएण,
सव्वण्हु कहा थुइ थोत्त एण ।
सम्मत्त पवित्त सुचित्तएण,
सद्दाण पओसिय पत्तएण ।
मिच्छायम वायण मूयएण,
सलक्खण चज्जिय विग्गहेण,
जिणदास रयण सु सहोयरेण,
इसिय दुस्सीलवय सामलेण ।
परगुण गणेच्छिय मानसेण,
दुम्मइ दुप्पसु सुपाउसेण ।

विज्जाणदिय दसण साहारण भणिया ।
पडिय सोहि पयासहु कोइल पचमिया ॥

इति श्री नरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत कोकिला पचमी कथा समाप्त ॥

६१ मउडसत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभाग —

दसण गुणसार हो केवलधार हो तिहुवण कज दिणेसर हो ।
कलिमल णिण्णासहो धम्म पयास हो पणविवि वीर जिणेसर हो ॥

जिण वयणुब्भव सरसइ पवित्त,
भुवणत्तय दसण सहृदित्त ।
सिरि कुंदकुंद गणि रयण कित्त,
पहसोम पोमणदी सुवित्ति ।
हरिभूसण सीसु णरिंद कित्ति,
विज्जाणदिय दसणचरित्ति ।
वदे वि पयासमि सुह-णिहाण,
पुब्वुत्त मउडसत्तमि विहाणु ।

अन्तिमभाग.—

अण्णजि पाले सहिं वय-विहाणु,
ते पावेसहिं अमरत्त ठाणु ।

घत्ता—

जे किरीड सत्तमि विहि सुह मगल णिह पालहि भवसरि तारण ।
ते णरिंदकित्ती धर खयर पुरदर होति बभसाहारण

इति श्री नरेंद कीर्ति-शिष्य ब्रह्म साधारण कृत मुकुट सप्तमी कथा समाप्तम् ।

६२ दुद्धारसि कहा (दुग्ध द्वादशी कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

जिण सिद्ध भडारहो तिहुअण सारहो आयरियहो पुणु उज्झयहो ।
वंदे वि मुणिद हो कुवलयचद हो दुद्धारसि पभणमि जणहो ॥१॥

जिण वयण कमल रुहदिव्व वाणि,
पणमामि जगत्तय पुज्ज जाणि ।
णिगथ सवण णिय मणि धरे वि
पहचद भडार हो थुइ करे वि ।
दुद्धारसि कह फलु सावयाह,
जह गोयम भासिउ सेणियाह ।
तह भासमि जइ हउ मद बुद्धि,
सर सइहि पसाए कव्व सुद्धि ।

अन्तिम भाग :—

अण्णुवि जो इय विहि पालेसइ,
णरु तिय सो सुरलोय गमेसइ ।
जिणवर दसण मूल गुणायर,
पोमणदि हरिभूसण भायर ।
सोसु णरिंदकित्ति भवतारण,
विज्जाणंदि बभ साहारण ।
पयडिय एह कहा जणमणहर,
णदउ ताम जाम रवि ससहर ।

घत्ता—

जे पढहि पढावहिं भव्वयण णियमणि णिच्चउ भावहिं ।
ते बभ सहारण वय फलेण, अमर लोय-सुहु पावहिं ॥५॥

इति णरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत क्षीरद्वादशी कथा समाप्त ।

६३ रविवय कहा (रविव्रत कथा)

ब्रह्म साधारण

आदिभाग —

केवल सिरि सारहो गुणगणधारहो कम्मकलक वियारहो
उवसग्ग णिवारहो णयसुयर सारहो पणविवि पास भडारहो ॥१॥

वदि वि परमेसरु वड्ढमाणु,
जसु तित्थे धम्म पवट्टमाणु ।
सुर असुर णमसिय परम वाणि,
पणविवि गोयम गणि दिव्व णाणि ।
जिण समय मूल सिरि कुदकुदि,
पहचद मुणीसर पोमणदि ।
हरिभूसण सीस णरिंद्रकित्ति,
गुरु चरण णमसि वि पयड कित्ति ।

पुणु दिणयर वासर कह करेमि,

भव्वयणहो मणि ससउ हरेमि ।

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जो रविवासर-वउ करहि गलिय-मउ दसणुत्त वय धारणु ।

ते णरिंदकित्तितणु लहहिं सुरत्तणु परम बभ साहारणु ॥५॥

इति रविवासर कथा ᐟ नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत समाप्त ॥

९४ तियाल चउवीसी कहा (त्रिकाल चौवीसी कथा) ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

तिहुवण सिरि तिलयहो गुण-गण-णिलयहो भविय कुमुय-वणचदहो ।

रयणत्तय-जुत्तहो कलिमलचत्तहो पणविवि परम जिणिंदहो ॥१॥

अन्तिमभाग —

घत्ता—

जे तियालचउवीसहे णिहय रईसहि विरयहि विहि गुण धारणु ।

ते णरिंदकित्ती पउ अमरेसर जउ लहहि बभ साहारणु ॥५॥

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत त्रिकाल चउवीसी कथा समाप्त।

९५ कुसुमंजलि कहा (पुष्पांजलि कथा) ब्रह्मसाधारण

आदिभाग. -

परमप्पय सारहो गुणगणधारहो, पयडिय तच्च वियारहो ।

पालिय वय बभहो दुक्ख णिसु भहो पणविवि वीर भडारहो ॥

अन्तिमभाग.—

घत्ता—

जे कुसुमजलि विहि विरयहि कयदिहि पाव-किलेसणि

ते णरिंद कित्तेसर अमर खगेसर पयड बभ साहारण ॥५॥

इति श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत पुष्पांजलि कथा समाप्त ॥

९६ णिद्दूसी संत्तमिवय कहा (निर्दोष सप्तमी व्रत कथा) ब्रह्म साधारण

आदिभाग·—

रयणतय धारहो भवसरितारहो समय कमल सरणे सरहो ।

गुणगण सजुत्तहो सिवपुरपत्तहो वदिवि वीर जिणे सरहो ॥

अन्तिम भाग·

घत्ता—

जे णिम्मल भावहि वज्जि य गावहि पढहि पढावहि एह कहा ।

ते णर सुर सुक्खइ लहहि असखइ बभ सहारण कहिय जहा ॥५॥

इति नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत निर्दुंख सप्तमी कथा समाप्ता ।

९७ णिज्झर पंचमी कहा (ब्रह्मसाधारण)

आदिभागः—

पणविवि परमेसरु वीर जिणेसरु वाए सरि णियमणि धरि वि ।

पहु-कित्ति पसाए मणि अणुराए णिज्झर पचमी फलु कहमि ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

सिरि मूलसघ उदयद्दिगिरि मुणि पहु किन्ति दिणेसरु ।

तहो सीसु सहारणु बभवरु ते पयडिय पणवेवि गुरु ॥५॥

इनि श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत निर्झर

६८ अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा) ब्रह्मसाधारण

आदिभाग —

वंदिवि जिणवर वाणिगुरु पयडि तित्थ बहु सत्थ पयासिणि ।
पडिय लोयहो जडमइ णासिणि सरसइ होउ पसण्ण महु ॥

सुरणर खेयर णमिय भंडारी बंभ सहारण विण्णवइ ।
जह अणुवेहा कव्वु पयासमि । वंदि वि जिणवर वाणि गुरु ।

अन्तिमभाग —

परम तच्च सिद्धंत पयासणु,
गोयम कुंदकुंद गणि सासणु ।
पहसंसि पकयणंदि गुरु,
हरिभूसण णरिंदकित्ति तणु ।
विज्जाणंदिय सीसभरु,
परम बंभ साहारण पणविय वंदिवि ।

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत अनुप्रेक्षा समाप्ता ।

६८ सिरिपाल चरिउ (सिद्धचक्रव्रत कथा)

कवि रइधू

आदिभाग —

सिद्धह सुपसिद्धह वसु-गुण-रिद्धह
हियम कमले धारे वि णिरु ।
अक्खमि पुणुसारउ सुह सय-सारउ
सिद्धचक्क-माहप्य-वरु ॥
छागे साहु हु वस अलकिउ,
गुणिवर गुण भावइ निसंकिउ ।
वाटू साहुहु पुत्तु धुरधरु,
जिणणाहहो पय-पयरुह-महुयरु ।
दाणें तिविह-पत्त-पोसणयरु,
दिउचदही भज्जहि पुण जो वरु ।
करमसिंह णदणेण समाणउ,
सोहय महियलिउ नय-माणउ ।
सो हरसीहु साहू विक्खायउ,
जो-जिण-पय-पकय-अणुरायउ ।
जो सावय-वय-दिढधरकधरु,
जो गुणियण तरु-पोसण-कधरु ।
जो चेयणु सु एकु मणि भावइ,
झाणें चेयण जो पुणु झावइ ।
तिण्णि काल रयणत्तउ अचइ,
जो णिउय चारिवि स सुच्चइ ।
जो परमेट्ठि पंच आराहइ,
जो पचेंदिय विसयह साहइ ।
मिच्छामय पंचवि अवगण्णइ,
जो वासरु छह कम्मह मण्णइ ।
जो छद्दव्व--भेय सुणिहालइ,
सत्त-तच्च-सद्दहइ रसालइ ।
सग-दायार-गुणहि अणुरत्तउ,
सत्त-वसण-वासणहि विरत्तउ ।
अट्ठ-सिद्ध-गुण-चिंतण-तप्परु,
णिस्सकाइ अट्ठगुण सुंदरु ।
अट्ठ-दव्वजिण-चरणह पुज्जइ,
पत्तदाणु दें विसयइ भुंजइ ।
णव-पयत्थ-भेयें जो जाणइ,
दहविह धम्मह जो रइ माणइ ।
तहु विण तिवसें भव-हारी,
अक्खमि सिद्धचक्क कह सारी ।

घत्ता —

भव-भय-सयहारी तिहुवणसारी
सिरिपालें जा विहिय चिरु ।
सा रुय-णिण्णासणि विग्घ विणासणि
भणमि लोयमणुधरि वि चिरु ॥

× × × ×

इय सिरि सिद्धिचक्क सुविहाणे महा मंडलेसर सिरि-पाल-आयसुपहाणे सिरि महाभव्व-हरसीसाहु णामकिए मयणसुंदरि-विज्जालाहो नाम पढमो संधि परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिमभाग —

घत्ता —

पुणु देवि सरासइ णविवि समासइ
णेमित्ति हु वसु जि भणमि ।

पुणु जा सुहिरज्जे दुण्णयवज्जे
हुवउ सत्थु पुणु थुणामि ॥
गोपाचलु दुग्गु पसिद्धु णामु,
धय-कंचण-रिद्धु जणाहिरामु ।
गोउर-पायारंकेउ सुवित्तु,
पर नर अगमु न सयहि चित्तु,
तहिं अत्थि राउ अरि कुल कयतु,
तोमर-कुल-पायडु मह महतु ॥
सिरिडू गरिंदु णामेण सूरु,
विप्फुरिय पयावे णाइ सूरु ॥
तहु कित्तिपालु णंदणु गरिट्ठु,
णं रूवि कामु सव्वह मणिट्ठु ।
तहु रायरज्जि सम्माणवतु,
सिरि अयरवाल वसहि महतु ।
सावय-वय-पालण-विगय-तंदु,
रिसि दाण पहावें जो अमदु ।
वाटहु जि साहु हुउ आसि धण्णु,
णिय जसेण जेण दिसि मग्गु छण्णु ।
तहु भज्ज जसोवइ कमलवत्त,
तह उवरि उवण्णा विण्णि पुत्त ।
गुण गण भायण राहु सुजेट्ठु,
जिण चरण कमल जो भसलु सिट्ठु ।

घत्ता—

वीयउ णदणु पुणु भाविय
जिण गुणु सकल कलालउ सुद्धमणु ।१॥
तहु नियसील विसुद्ध पउत्ती,
असपालहिय णाम सा उत्ती ।
णदण चारि ताहि उर जाया,
चारिदाण णं पायउ नाया ।
पढमु साहु णयणसिहु पउत्तउ,
णीयमग्गु जि मुणिउ णिरुत्तउ ।
विजयपालहिय तासु पुण भामिणी,
सुहम-शील-महाधण सामिणी ।
बादु साहु हु वीयउ तणरुहु,
धण णामु सुपरियण-किय-सुहु ।
बील्हाही पिय पय-अणुरायउ,
पुत्तहु जयलु ताहि उर जायउ ।
जाटा णामे पढम भणिज्जइ,
गायणेहे जो अहणिसु मिज्जइ ।
जोल्हाही तहु पियय मउत्ती,
सा गोविंद सुवेण पउत्ती ॥
गोविंदहु तिय धोल्ही बुच्चइ,
तहु नदणु तुणु चेचा सुच्चइ ।
धणसीहहु सुतीयउ माला,
तहु तिय लाडो अइ सुकमाला ।

घत्ता—

बादू साह हु सुउ तीयउ पुण
हूओ वोहिथ नामे दीहि-भुओ ।
गुणगण रयणायर जिणवयणायरु
नानिगही पिय भज्ज जुओ ॥२॥
जो पुणु बादूसाहु पयासिउ,
तह चउत्थणदणु विजयासिउ ।
हरसीसाहु नामु महि पायडु,
जो जिणभणिय सत्थ-अत्थहु पडु ।
तहु कलत्त परियणह पहाणी,
जिह सिरि रामहु सीया जाणी ।
देव-सत्थ-गुरुवयण-कलायर,
दिव वदही नामे नेहावर ।
बीजी भज्जा पुणु वील्हाही,
ण गोविंदहु लच्छि पसाई ।
तहु नदणु पुणु कइयण वणिउ,
जो डूगर राय निरु मणिउ ।
नामे करमसीहु सो नदउ,
अह-निसु जिनवर चरणइ वदिंउ ।
जउणाही तिहु तियसु पसिद्धी,
विहुकुल सुद्धरूव गुण-रिद्धी ।
पुणु हरसीहहु पुत्ति पउत्ती,
नामा नतमई गुण-जुत्ती ।
जाइ अखडु शीलुवउ पालिउ,
कलि-मलु असुहु सचित्तहु खालिउ ।
पुणु विननो तहु लहु सुय सारी,
सयलहु परिवारहु सुपियारी ।
एहु गोत नंदउ महि मडलि,
जा रवि-ससि निवसहि आहुडलि ।

एयह् सव्वह् मज्झि पहाणउ,
सत्थ-पुराण-भेय-वहु जाणउ ।
कलिकालेंजि आणुद्धरियउ,
चेयण गुण अखडु विप्फुरियउ ।
तिण्णिकाल रयणत्तउ अचइ,
सुद्ध धम्म जो अह-णिसु सचइ ।
जेण लिहाइ पुराण सुह करु,
काराविउ अपमत्तें मणहरु ।
सो हरुसीह् साहु चिरु णदउ,
सज्जण चित्तहु जणिया णदउ ।

घत्ता—

पोमावइ पुरवाड वसिउ वणिउ कुल-तिलउ ।
हरसिंघ सघविहु पुत्तु, रइघकइ गुणगण णिलउ ।

इति श्रीपाल चरित्र पडित रइघू कृत समाप्तम् ।
आमेर भडार प्रति स० १६३१
(दिल्ली पचायती मदिर प्रति स० १६७३ से सशोधित)

६६ पार्श्वपुराण

कवि तेजपाल

रचना काल स० १५१५

आदिभाग—

गुण-वय-तव-सायरु उवरि जसायरु णिरुवम सासय-सुह णिलओ ।
पणविवि तित्थकरु कइयण सुहयरु रिसहु रिसीसर कुल तिलओ ॥

देविंदेहि णओ वरो सियरो जम्मवुही पारणो,
कम्मारीणवि इसणो भय हरो कल्लाण मालायरो ।
झाणे जेण जिओ चिर अणहिओ कम्मट्ठु पुट्ठासवो,
सोय पास जिणिंदु सघवरदो वोच्छ चरित्त तहो ॥

(इसके आगे चौवीस तीर्थंकरो का स्तवन है)—

घत्ता—

ससारो वहि तारण कुमइ णिवारण
विगय दोस गुण गण णिलया ।
गोयम पमुह भडारा णिज्जियसारा
पणवेप्पियु तिहुवण तिलया ॥२॥

जो पच महव्वय धरणधीरु,
सुइ समिति गुत्ति भूसिय सरीरु ।
मुणि पउमणदि तिरयणे णिहाणु,
सिवणदि सीसु तहो गुण पहाणु ।
तहो णदणु मुणियणपायभत्त,
वुच्छिय जणाण पूरण सुसत्त ।
पढमउ भीखमु परियण सहारु,
णिव्वाहिउ जें चउ सघ-भारु ।
पुणु तहो अणूउ आणदु जाउ,
जिणधम्म धुरधरु-विगय पाउ ।
जिणदासु पुणु वि सव्वह् समत्थु,
सिवदासु अवर णामेण सत्थु ।
पचमु रुकसुखु गुणगण पवीणु,
छट्ठमउ चित्तू जिण समय लीणु ।
पुणु सत्तमु उत्तम जीव दुक्ख,
अवहत्थिय विहल जणाण दुक्ख ।

घत्ता—

जो तुरियउ भायरु धम्म कयायरु
रेहइ जिणमइ मत्ति रउ ।
सावय-वय उत्तिउ वसण विरत्तउ,
सेवदासु वणि विगय-भउ ॥३

तहो णदणु णियकुल कमल मित्तु,
सव्वासा पूरण जासु चित्तु ।
जदुकुल कुवलय रयणीस तुल्लु,
पर उवयारह् जो मणि अमुल्लु ।
काराविय वहु संतीय जेण,
लच्छिहि फलु गिण्हिउ सुहमणेण ।
जिण चरण कमल गधोवएण,
तणुसिंचिवि कलि-मलु-हीणउ चित्तिजेण ।
सम्मत्तरयण भूसिय णियगु,
जो पालिय सावय वय अभगु ।
दाणेहि गुणेहि विअइ पयोणु,
बुहयणभत्तिए जसु चित्तुलीणु ।
मायरिहि लोभेण जे पूरियासु,
अवगण्णिय वहुदुज्जणु दुरासु ।
णामेण मदो पिय सुह-णिहाणु,
सम-वसण-तिमिर-हरणेकू भाणु ।
णियजस धवलिय जे भुवण सत्थु,
जे विद्ध सि णामे परम भव्वु

घणसण्ह गुरु व भायरुगुणालु,
ते णाउ उच्चिउ बुह तेजपालु ।
भो परम मित्त गुण गरुय गेह,
अरवालिय पयावसुविसुद्ध देह ।

घत्ता—
जिणमय धु लिणक्खण ? सुहवालक्खण णिय सुकयत्तु पयासहि ।
सिरिपासकइ रइ सुक्कणिरतरु, महोविरएवि समासहि ।।४।।

× × × ×

सिरिपासचरित्तं रइय बुह तेजपाल साणंद ।
अणु मण्णियं सुहद्द घूघलि सिवदास पुत्तेण ।।१।।
देवाण रयण विट्ठी वम्माएवीए मोलसोदिट्ठो ।
कय गब्भ सोहणत्थ पढमो सधि इमो जाओ ।।२।।

अन्तिमभाग—
सुपहाण चरिउ पद्धडियबधु, घूघलिकारा विउरमणिबद्धु ।
कम्मक्खय कारणु जिणचरित्तु, विरयउ भवसायर जाणवत्तु ।।

घत्ता—
आउच्छण कुच्छण सुच्छमई, वउ-तव-सजम-णियम-वहा ।
अमुणत पयत्थह कहियलहु, पास जिणिंद अणिंद हो ।।३७
जिण सासण वड्ढउ सयण काल,
जणु वड्ढउ वरिसउ मेह माल ।
सुपयासउ सासउ महि सुहिक्खु,
पय वड्ढउ दड्ढउ रोरु दुक्खु ।
जिण पासु हरउ जर-जम्मवहि,
महो देउ सुद्ध सु दर समाहि ।
णदउ महियलि सिवदासु साहु,
सभवउ विमलु सम्मत्तलाहु ।
घूघलि साहु हो कय सुयणमित्ति,
धवलतिय भमउ धरणियले कित्ति ।
महि मेरू जलहि रवि-चदु जाम,
सिवदास वसु णदउ वि ताम ।
विक्कम णरणाह पसिद्ध कालि,
परिरायपट्टि धण-कण-विसालि ।
पणरह सय पणरह अहियएहिं,
एत्तियइ जि सवच्छर गएहिं ।
पचमिय किण्ह कत्तियहो मासि,
वारे समत्तउ सरय भासि ।
सिरि पासणाहु भव-जलहि जाणु,
महो एत्तिउ दिज्जउ विमलणाणु ।

घत्ता—
कइयण सिसु मायरि भुवण सुहायरि परमिट्ठ हो मुह णिग्गमिया ।
कइ तेय सुहत्तिए, घूघलि भत्तिए तियरण वाएसरि णमिया ।।३८
णामें सुरजण साहुदयावरु,
लंबकचु जणमण तोसायरु ।
धणसिरि रमणि सुहवणेहासिय,
णिय जस पसरदि सरमुह वासिय ।
लोअवर पइव्वय सायर,
भयणदण गुणमणि रयणायर ।
सुरजणसाहु सपरियण जुत्तउ,
मच्छइ घरि सुहि णिवसतउ ।
ता ससारु णिए वि विरत्तउ,
भावण वारह मणि सुमरतउ ।
वेराए णउणिय घर सठिउ,
मुत्ति रमणि राएणुक्कठिउ ।
पणविवि पोमणंदि मुणिसारउ,
दिक्खकिउ सिवणदि भडारउ ।
सुरजस पसरबसि दिव्वासउ,
कय मासोपवास दिव्वासउ ।
कइ वय वरिस अण्णु परिचत्तउ,
अणसणेणतणु मुएवि सुपवित्तउ ।
धम्मज्झाणे भव-सायर-तारउ,
गउ सुर हरि सिवणदु भडारउ ।

घत्ता—
तहो णदण आणद मण अहिणदहु महि विगयभय ।
ताह जिणभावलि णिरुभणामि सावय-जिणधम्मरया ।।३९
भीखमु साहु णामचिरुवुत्तउ,
पुणु आणंदु सुपरियण जुत्तउ ।
घरणि उदयसिरि गेह पहाणी,
वं ई हरसिरि ण इदाणी ।
देवराजु तहो णंदणु जायउ,
रयणु दुइज्जउ जणि विक्खायउ ।

तइयउ ग्गोमिदासु जगि सुहियरु,
आगाद हो जिणदासु सहोयरु।
तासु महादे रमणि पउत्ती,
साजिणपाय सरोरुह भत्ती।
तासु पुत्तु मण सुक्ख मणोज्जउ,
लहु भायरु माणिक्कु दुइज्जउ।
सा सुरजणहु पुत्तु चउत्थउ,
सेवदासु भुवणयलि पसत्थउ।
गहिणिहलो सुभत्त जिणिदहो,
णाइ सुलोयण जयहु णरिंदहु।

घत्ता—

तहो कुच्छि उ वण्णउ लक्खण पुण्णउ कुलसुहयरु पुत्तत्तउ।
ण जिणवर सासणि दुरिय पणासणि सहइ परम रयणत्तउ ॥४०

पढमउ घूघलि गुणसपुण्णउ,
णररूवे जिणधम्मु उवण्णउ।
जिणपूया विहि करण पुरदरु,
सील णिहाण सव्वजण सुदरु।
कम्मक्खय कारणु मणि भाविउ,
जेण जिणिंद चरित्त कराविउ।
तित्थयरत्त गोत्तु णिरु वद्धउ,
माडणि रमणिहि पिउ जस लुद्धउ।
णदणु तहो दसरहु पिउभत्तउ,
सिरिचदु वि णदउ गुणवतउ।
सा घूघलिहि धणू लहु भायरु,
गेहिणि दीयाणेह कयायरु।
पुणु विसणहु वुच्चइ लहुयारउ,
कुमुम सिरिहि घरिणिहि मणहारउ।
पच··· ·· ·····

(Incomplete meeter)(१०२वा पत्र नही)
प्रति—भट्टारकहर्षकीर्ति भडार, अजमेर
पत्र १०१

१०० सिरिपाल चरिउ (श्रीपाल चरित्र)

कवि दामोदर

आदिभाग—

·· · ·
·· ··· ·
·· ·· ···
··· ·······

·····

सो कुदकुंद-मुणिवरु जियक्खु,
दिवि दिवि थुयमाणुण्णय विवक्खु।
दीसइ पर्सतु जगि कयकयतु
सरतिय रइत्तणु रय महत्तु।
मयइ गोरसु मिण्हइ ण तक्कु,
परितत्रइतवणु गच्छइणवक्कु।
रयणायरु णउ पय पुण्ण देहु
गभीरुण सरयब्भुवि सुमेहु।
मतोवहि वद्दण पुण्णिमिदु,
पहचदु भडारउ जगि अणिंदु।
तहो पट्ट वर मडल मियकु,
भव्वाण-पवोहणु विहुय सकु।
सिरिपोमणदि णदिय समोहु,
सुहचदु तासु सीसुवि विमोहु।
परवाइ मयगय पचमुहु,
परिपालिय सजम णियम विहु।
तह पट्ट सरोवर रायहसु,
जिणचद भडारउ भुवणहसु।
वदिवि गुरुयण वरणाणवत,
भत्तीइ पसण्णायर सुसत।

घत्ता—

महो कव्व करणि गुरुयण,
सयला करहु सहाउ जि महुरसरा।
भव्व कुमुय वोहण दिणयर
णिण्णासिय कदप्प भरा ॥२॥
वुच्छामि पापभजण पवित्तु,
सिरिपाल णराहिव वर चरित्त।

सिरि सिद्धचक्क वउ वयहसारु,
मुत्तिप्पि य माणस हरण चारु ।
पुव्विल्ल सत्तु पिक्खिवि मणुज्ज,
विरइउ कर भूमी सरहि सज्जु ।
जिणचद सीसु भो बभयारि,
दामोयर कइवर भव्वयारि ।
इक्खुवाय वस सभूयएण,
सुहिणा विणीय मइणा विएण ।
कुल्लिउ दिवराजहु वर सुएण,
णक्खत्तसाहू साहिय भएण ।
पुण्णिम मयक वयणें वरेण,
परिचत्त पाव भारे परेण ।
कहि रम्मु कहतरु पुण्यधामु,
सजणिय मणोहर फलु सुकामु ।
जासु सु जिसुणत भव्वयणलोय,
पावति परम गइ विगय-सोय ।
भायण्णहो इच्छमि धम्मठाण,
सिरि सिद्ध चक्क कह जगि पहाण ।
णिय मइ करे विथिर भव्वणाय,
मग्गण जण पोसण अयर वाल ।
तहो वयणु सुणि वि हरसिउ कहेइ,
सिरि सिद्ध चक्क कह गुणि सहेइ ।
णिंदितिहि दुज्जण सुकइ कव्वु,
सज्जणु थुवति सव्वाण भव्वु ।
अप्पाणउ सहाउण ते मुवति,
सज्जणु-दुज्जणु जगि णत्थि भति ।
वइसाणरु उण्हु सहाउ जाउ,
हरिणकु जि सीयलु णिहयताउ ।
इय ते वि सहावें परिणभत्ति,
दुट्ठत्तणु सिट्ठत्तणु धरति ।
आयण्णहि कह सिरि सिद्धचक्क,
णामकिय विहुणिय पावचक्क ।
पभणामि समासें पुण्णणाम,
सिरि णखत भव्व गुणि गण सुधाम ।
आय तहिउ गयणु जि अणतु,
भासिउ जिणणाहे भइमहतु ।
तिविहु जि परिसठिउ मज्झितासु,
अह मज्झउ छ मामए सुवासु ।
पढमिल्लु लोउ मुणिवर चवति,
विवरीय सरायण णिह कहति ।
बीयउ वज्जायातु वि कुइद,
तीयउ मुयग सिरि सुवि अणिद ।
केणवि करिउण धरिउ पुव्व,
रक्खिउणतेण सव्वत्थ भव्व ।
सममेयसिद्धु तह लोउ एहु,
भासिउ पुव्वायरियति समोह ।

× × × ×

अन्तिमभाग—

दिवराज साहु वर णदणेण,
सिरि णक्खत्तु भव्वें सुहमणेण ।
सिरिपाल णरेसहोपुहचरित्तु,
धम्मत्थ-काम-सिव कहणसत्तु ।
त महु विरयउ दामोयरेण,
जिणचद चरण भत्तीधरेण ।
णदउ सया वि सिरि सिद्धचक्कु,
वउएउ णिहय पहुरियारि चक्कु ।
ज सरसु वधि वजणु विहीणु,
लक्खण छदालकार खीणु ।
अहिहाण पयत्थ वियार भाणु,
आयम विरच्छु उ मग्ग लागु ।
सोहत कईसर त चरित्तु,
तह अहिउ हीणु धरयलि पवित्तु ।
गिण्हु म दोसु महोतणउ तेवि,
उवयार वरण आयर जि जेवि ।
जे लिहहि लिहावहि सुहमणीस,
वम्पवाणहि पढहि विज्जा मरीस ।
सद्दहहि कयायर जे अतद,
पवियारहिं अत्थुवि मणि महिंद ।
ते सयलवि णदहु जामतरणि,
ससहरु धुवतारा धम्मसरणि ।
कचण सुसेलु कुल गिरिउ ताम,
सिरि सिद्धचक्कव पयडु णामु ।

घत्ता—

महु खमहु जिणेसर वयण सह माइ महासइ णिहयमला ।
वाए सरि ते मुखेसरहो दामोयर वदिय कर कमला ॥

इय सिरिपाल महाराय चरिए जय पयड सिद्धचक्क परमातिसय विसेस गुण णियर भरिए वहुरोर-घोर-दुट्ठ-यर-वाहि-पसर-णिण्णासणे। धम्मइ पुरि सत्थपय पयासणो भट्टारयसिरि जिणचद सामिसीस बह्म दामोयर विरइए सिरि देवराज णदण साहु णक्खत्त णामकिए सिरिपालराय मुक्त गमण-विहि वण्णणो णाम च उत्थो सधि परिच्छेओ समत्तो ॥

१०१ पार्श्वनाथ चरित

कवि असवाल
(रचनाकाल स० १४७९)

आदिभाग —

सिव-सुह सर सारग हो सुय-सारगहो सारग कहो गुण
भरिओ।
भणमि भुअण सारग हो खमसारगहो पणविवि पास
जिण हो चरिओ ॥

भाविय सिरि मूलसघ चरणु,
सिरि बलयारयगण वित्थरणु।
पर हरिय-कुमम पोमायरिउ,
आयरिय सामि गुणगण भरिउ।
धरमचदु व पहचदायरिओ,
आयरिय रयण जस पहु धरिओ।
धरपच महव्वय कामरणु,
रणुकय पचिदिय सहरणु।
वरधम्म पयासउ सावयह,
वयधारि मुणीसर भावयह।
भवियण मण पोमाणदयरु,
मुणिपोमणदि तहो पट्ट वरु।
हरि समउ ण भवियणु तुच्छ मणु,
मणहरइ पइट्ठ जिणवर भवणु।
वर भवण भवणि जस पायडिउ,
पायडु ण अणग मोहणडिउ।
णडिया वय रयणत्तय धरणु,
घर रयणत्तय गुणवित्थरणु।

घत्ता—

तहो पट्ट वर ससि णामे सुहससि
मुणि पय-पकयचद हो ॥१॥

कुलुखित्ति पयासमि पहु आहासमि,
सघाहिव हो वहो अणिद-हो,
इय जबूदीवह पहाणु,
भरहकिउ ण पुर एव णाणु।
खेत्ततरि देसकुसट्ठु रम्मु,
दो वीसमु जिण कल्लाणु जम्मु।
कालिदिय सुरसरि मज्झ गाइ,
दस्सा छणयतरि पक्खु णाइ।
करहलु वरणयरु करहलुसुरम्मु,
यणिव परिपालणि पयलहइ सम्मु।
चहुवाण वसि अरि कुरुहणाइ,
भोइव भोयकिउ भोयराउ।
णाइक्कुदेवि सुअ अरिमयद,
चदुवकुवलय ससारचदु।
जसुरज्जि पुव्व परिसाहि माणु,
सघाहिवेण विज्जइ पमाणु।
सयचउवह इगहत्तरि समेय,
माहव धण सणिवासर पमेय।
रयणमय बिंब जिण तिलक सिद्धु,
तित्थयरणामु कुल आउ बद्धु।
तहो जय रज्जिउ कय पुहइ रज्जु,
अरिकुल क्यतु पुह पुहइ रज्जु।
तहो समइ रएउ गुणगण पसत्थु,
लेहाविउ सघाहिवेण गथु।
जदुवस विकासणुभाणु सेउ
बभुव।य पालउ बह्म एउ।

घत्ता—

एहु रज्जि धुरधरु उण्णयकधरु णिव कुवेर पहचद गुरु।
णयकयसुज्जिणालउ चउवीसालउ मतत्तणि पहु सतियउ ॥२॥

तहो भज्जा तिण्णि कुसुवा पहिल्ल,
सुअकरम समरासह गुण गरिल्ल।
सूहव बोई णक्खत्त कुमर,
मायरि पउमा लक्खणहे णवर।
हुव पच पुत्त गुणगण महत,
धीरत्तणेण णं मेरु सत।
करमसिह समरणक्खत्त सीहु,
तुरियउ सुअकुमर अमरसीहु।

णिव भोयमंति मंतण वियड्ढ,
लक्खणो जेट्ठ भायरु गुणड्ढ ।
कमलसिरि जाय तहो तणिय भज्ज
पइवय-वयधारिणि पिय सलज्ज ।
तहिउ अरि पुत्तउ (अ) तिण्णि केय,
जि णवणिहि रयणइ तिण्ण जेम ।
पढमउ मण णंदणु णंदणक्खु,
सोणिग्गु बीउ सघवइ दक्खु ।
लहुभाइग लूणि व कज्जि दत्थु,
जिण जत्त पवित्त ण वित्त सत्थु ।
बहु विह विहाण उज्जावणासु,
कइहल्ल कवित्त पससणासु ।
जिण मल्लचरित्त णामकियासु,
सुअ तिलयताय जस पूरियासु ।
अट्ठविह पुज्जसुहदाणयासु,
जो भाइ जेट्ठु उवसमधरासु ।

घत्ता—

गुणियणहं गुणायरु मतणि कुलगुरु जिण गिहतुंग विसालउ ।
कारावण तप्परु सघाहिउ गुरुदाणेण मयपालउ ॥४॥

तहो रामाणामे रामलच्छि,
सुरवइ सईव कुल कमललच्छि ।
सुउ गुण सघट्टवघाट मुक्खु,
णिव पयरु पियक्खर सयल चक्खु ।
इक्कहि दिणि जिणहरि ठतएण,
जिणसत्थतच्च-पयड तएण ।
घाटेम्मताएं एह संतएण ?
दह लक्खण धम्मासत्तएण ।
जिणजत्ता-पइट्ठ कयायरेण,
सयत्त रयणा रयणायरेण ।
लोणासिह भाइ णिव दुल्लहेण,
वोलिज्जइ रामावल्लहेण ।
अहो पंडिय लक्खण सुयगुलग,
गुलराड वसि धयवड अहग ।
किं धम्मे अहधणु णिग्गुणेण,
रयणोहे बुह णिव फग्गुणेण ।
कीरइ जाणे विणु मणुयजम्मु,
सहलउ पयडेवि अहिंसधम्मु ।
ससार असारउ मुणहि एउ,
सारत्तण वुद्धिहि तच्च हेउ ।

उक्तंच—

'बुद्धे फल तत्त्व विचारण च,
देहस्य सार व्रत धारण च ।
अर्थस्य सार किल पात्रदान,
वाचाफलं प्रीति कर नराणा ॥'
रयणोहे किं कर जपिएण,
किं वुद्धिए तच्च अ जपिएण ।
इउ सुणिवि मज्झु पोसेहि चित्तु,
करि कव्वु पासणाहहो चरित्तु ।
ते णिसुणवि कव्वह तणउणाभु,
बुहु आसुवालु हुउ जो सधामु ।
खणु इक्क विलबिवि भणइ तासु,
किं कुणमि कव्वु सघाहिवासु ।

घत्ता—

हउ मुक्ख णिरक्खरु अमुणिय सक्खरु चिरु महकइ कह सोहणु ।
पावमि किरणोहे रविससि बोहे खज्जोवय किं बोहणु ॥५॥

१०२ सांतिनाह चरिउ (शांतिनाथ चरित्र)

कवि ठाकुर रचना-काल १६५२

आदिभाग.—

अति अनुपम अगु जित्त अनगु,
साति सदा जगि सातियरो ।
रवि जिम कमलाई भवि जन भाई
तह गुणकित्ति उछाह करो ॥१॥

दुवई—

जिनगुण चरित्त उदित उग्गत रवि,
जगि भवि कम्मल केवल ।
बोहति भवि-समूह सरमडलि
दोस म वहति अति अल ॥२॥

गाथा—

सो जग साति चरित्त पुव्वायरिएहिं परिभिउ लोए ।
तहु कह कहण णिमित्तें ठाकुर कवि आयर कुणए ॥३॥

दोहडो—

वाणी णिम्मल णीरवहि, आगमु सरिसु पयट्ट ।
सागर वीर जिनिन्द भरि सेणिक सवणि सुइट्ठ ॥४॥

× × × ×

भट्टारक पणमि णमो जति सासणि,
सासणि जे चदकित्ति हि लार ।
पणमो पुहवि अवर महिमडलि,
भवणकित्ति पट्टि जे सार ॥
मानो मडलीइ मोरिय महि,
कित्ति वत जगकित्ति विसास ।
अनेकान्त आचार अधिक मति,
नेमिचद सासन रखिपाल ॥

× × × ×

अन्तिमभाग —

दुवई—

एयहि अवर अवर गुण सतति,
जिण सोलहम सुह-यरो ।
ता गुण चरण चारु चितवनि महि,
ठाकुर किय कवि-सरो ॥५८॥
सवत सोलासइ सुभग सालि,
बावन वरिसउ ऊपरि विसालि ।
भादव सुदि पचमि सुभग वारि,
दिल्लीमडलु देसु-देसहु मझारि ।
अकबर जलालदी पातिसाहि,
वारइ तहु राजा मानसाहि ।
कूरमवसि आवैरि सामि,
ढूढाहड देसहु सोभिराम ।
कइ इणि णरिंदु जो अखयराज,
भगवानि सुत न कूरम सुसाज ।
सिरि मूलसघ नद्याम नाइ,
सुरसइ गच्छि सासन सुभाइ ।
कुदकुदाचारिज अनुकमेण,
सिरि पदमनदि भट्टारकेण ।
पढहु सुतासु सुभचददेव,
जिणचद भट्टारक सुभगसेव ।
सिरि पहाचद पापाटि सुमत्ति,
परिभणहु भट्टारक चदकित्ति ।
तहु वारइ किय सुकहा-पबधु,
सुसहावकरण जगि जेम वधु ।
आचारिय धुरि हुउ रयणकित्ति,
तहु सीसु भलो जग भुवणकित्ति ।
ता कय सिक्ख-साखा बहु सुजति,
नामाय नाम गणती अमित्ति ।
सिखि हूवउ सुमम साहण सु-सत्ति,
हुव सासण कमल-विकास मित्ति ।
दिक्खा-सिक्खा-गुण-गहणसार,
सिरि विसालकित्ति विद्याअपार ।
तहु सिखि हूवउ लक्ष्मीसुचद,
भवि-बोहण-सोहण-भुवण मिंदु ।
ता सिक्खु सुभग जगि सहसकित्ति,
नेमिचद हुवो सासनि सुयत्ति ।
अज्जिका अन्नतिसिरि ले पदेसि,
दाभाडाली वाई विसेसि ।
की कथा सुभग आगम-पमाण,
सासय ललोय बुज्झहि अयाण ।
पुविल्लि कथा जु हती अछूट,
किम् वाणइ बहु जगि जटाजूट ।
सासारि कथा किय सुगमसारि,
साह ठाकुर कवि मडी विथारि ।
सवारहु सज्जन त्रिविह-छद,
मत्तागण लगिलकार छंद ।
जिणवाणि अण्णु गति लव्धपार,
सतिणाहकथा जलणिही अपार ।
जाणहु जिणसासणि जैनधम्मु,
कुलि जेणे दे साधुसुकिय कम्मु ।
खडेलवाल साल्हा पससि,
लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुससि ।
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह,
पडितजन प्रीति वहइ उछाह ।

तहु पुत्त पयड जगि जसु मईय,
मानिसालोय महि मडलीय ।
गुरुयण सुभत्त गोविंददास,
जिणधम्म वुद्धि जगि धम्मदास ।
णदहु लुवायणिपुर लोपविद,
णदहु जिण सासण जगि जिणिंदु ।
चंदप्पहु जिनमदिर विसाल,
णदहु पाति मडल सामिसाल ।
णदहु जातिवाइ वह्मचारि,
णदहु पडित सावय सुधारि ।
राजा सुकलत्त तहपुत्तजुत्त,
वालक विनोयकाता कलत्त ।
कीलति विलासणि रमउ बाल,
गायति धवल मंगल विसाल ।
वासौ सुमेघ रुतिरुति पमाणि,
सत्त ईति जगति मा करहु णाणि ।
दुरभिक्ष पणासउ चोर-मारि,
मा होसहु पीडा-रोग-भारि ।
जिण-धम्म-चक्क सासणि सरति,
गयणय लहु जिम ससि सोह दिति ।
जिण धम्म-णाण केवल रवीय,
तह अट्ठ-कम्भ-मल-विलयकीय ।
एत्तउ मांगउ जिण सतिणाह,
महु किज्जहु दिज्जहु जइ वोहि-लाह ॥५६॥

घत्ता—

कवि कला कवितणा पयडथ कियउ
गुण चिर किय कम्म पणासणे ।
दुग्गम जो कव्व कये किय सुगमा
भुवे ठकुर पसन्न जिण सासणे ॥६०॥

दुवई—

संवारहु कवित्त वुहयण जण मत्ताकल वि छदय ।
ण कियउ अघ लोह लालच मय माणेंदहु अणिदियं ॥६१

इति श्री सातिनाथचरित्रे आचार्य विशालकीर्ति शिष्य ठाकुर विरचिते श्रीशातिनाथ णाण-णिव्वाण कारणं पचमो संधि समत्तं । सपूर्ण ।

भ० हर्षकीर्ति भडार, अजमेर

१०३ मल्लिणाह कव्व (मल्लिनाथ काव्य)

(जयमित्रहल)

आदिभाग—

(प्रथम तीन पत्र न होने से नही दिया गया ।)

अन्तिम भाग

मुणि पहचद पट्ट सुपहावण,
पउमणदि गुरु विरियउ पावण ।
घरि घरि जणह मणरह-पुज्जहु,
धवल मगलुच्छव गाइज्जहु ।
पच सद्दगाय हरिसु मुणणइ,
हु तुगिच्छह कर दाणुणइ ?
चउविह सघु महग्घिम पावउ,
बुहयण जण वट्टउ अणुरायउ ।
चिरु णदहु कइ हल्लइ णदणु,
आल्हसाहु साहसु अरि वदण ।
वच्छउ बाह्मसाहु कुल सारउ,
तु बर रतणउ सज्जण मणहारउ ।
गल्हू गटिहु असछुण सदण,
होउ चिराउसु कलुस-णिकदणु ।
मल्लि-चरिउ जेण वित्थारिउ,
लेहाविवि गुणियणि वित्थारिउ ।
ते णदहु जे लिहहि लिहावहि,
मणिमाणद जि पढहि पढावहि ।
ते णदहु जे णियमणि भावहि,
सत्थ-पसत्थ वि जे जण दावहि ।

घत्ता—

चिर णदउ देसु पुहमिणरेसु,
जिण सासणु वच्छलु धारहु ।
महु वयणु सुहावउ गय परतावउ,
कुणउ चित्त सतोसुरणा ॥२०॥
इय मल्लिणाह कव्व रयणत्तय
रयण कु डलु महग्घ ।
जय मित्तहल्ल कइणा
अणग्घमइणा वि णिम्मिय भव्य ॥

× × × ×

इति सिरि जयमित्तहल्ल कइणा रइय मल्लिणाह कव्व समत्त ॥

(अन्तिम पत्र नही) आमेर भडार

१०४ वड्ढमाण कहा (जिणरत्तिविहाणकहा)
जिनरात्रिविधानकथा
कवि नरसेन

आदिमगल

तव-सिरि भत्तारहो णिज्जिय मारहो पणविवि अम्मइ
जिणवर हो।
वय जिणरत्तिहे फलु अक्खमि णिम्मलु भव-सयसंचय
दुह-हरहो ॥१॥

× × × ×

अन्तिमभाग.—

इय जिण रत्ति विहाणु पयासिउ,
जह जिण सासण गणहर भासिउ।
ज हीणाहिउ काइमि वुत्तउ,
तं बुहयण महु खमहु णिरुत्तउ।
एहु सत्थु जो लिहइ लिहावइ,
पढइ पढावइ कहइ कहावइ।
जो णरु णारि एहु मणि भावइ,
पुण्णह अहिउ पुण्ण फलु पावइ॥

घत्ता—

सिरि णरसेण हो सामिउ सिवपुर
गामिउ वड्ढमाणु तित्थकरु।
जा मग्गिउ देइ करुण करेइ
देउ सुबोहिउ णरु॥

आमेर भडार

१०५ सम्मत्तकउमदी (सम्यक्त्व कौमुदी)
कवि रइधू

आदिभागः—

... .
... .
.. . .

× × × ×

पुणु टेकणि जपइ विय सियासु,
एत्थु जि गोवग्गिरि सुहपयासु।
तोमर-कुल-कमल-विपास-मित्तु,
दुव्वार वैरि सगर अतित्तु।
डूंगरणिव रज्ज धरा समत्थु,
वदियण समप्पिय भूरि अत्थु।
चउराय विज्ज पालण अतदु,
णिम्मल-जस-वल्ली-भवणकदु।
कलि चक्क वट्टि पायड णिहाणु,
सिरिकित्तिसिंघु महिवइ पहाणु।
तहु रज्जि वणी सु-महाणुभाउ,
गोलाराडिय अण्णइ अपाउ।
सेओ सेयाहिउ विदिय णामु,
बुहयण कुवलय पालेय धामु।

× × × ×

अन्तिमभाग.—

इय धण कण रयण गुणोह पुण्णु,
वितमत्थ गिरि व जिण उर रवण्णु।
वहु वि बुहा सिउ णतिम सवासु,
गोवग्गिरि दुग्गु मही पयासु।
तहि महि वय णामे कित्तिसिंघु,
अरि-वर-गय-घड णिद्दलण सिंघु।
तस्सेव रज्जि या पडु वणिदु,
गोलाराडय-कुल-कुमय-चदु।
चिरु हूवहू महरू णाम साहु,
गुण मदिरु सीया भज्ज णाहु,
तहु णदणु जिणपय-पयम-भाणु,
विहडिय जणाण अद्धार ठाणु।
लडर्काहि दाण पालिय सधम्म,
रूपा पिय मम तुहू रूप रम्म।
तह जिस्सुओ तिस्सुओ सुक्खयारि,
डू गरणिव भडाराहि यारि।
सिरि सेऊसाहु पसिद्ध साहु,
सजाउ जासु वर धम्म लाहु।
सुहगा तहु पिय यम सुह पवित्ति,
मलहारिणि ण जिणणाह कित्ति।

घत्ता—

हुय चारि वि णदण जग आणदण
धम्मकज्ज धुरधरण वरू।

भवियरण मण सुंदर पुज्ज पुरदर
मग्गरणजरण दालिद्द हरु ॥
गुणहि गरिट्ठु जेट्ठु सुह भावरणु,
सुह सहयरु अरियरण सतावरणु ।
सिरि माणिक्क साहु विक्खायउ,
तिय लक्खरण सिरि सुह अणुरायउ ।
तहु णदणु चउक्कु गुण भूसिउ,
पढमु वण्णु कइयरण हिय ससिउ ।
ही॰ सिघु हरिसुप्पायणु अण्णो,
पहरूब पहाय पसण्णो ।
कुमुमचदु चदुव सु-कलालउ,
जिण पय पुरउ णमिय णिय भालउ ।
पुणु ीयउ णदणु सकियत्थे,
.... ।
सघाहिउ असपत्ति असकिउ,
ससि-पह कर णिम्मल जस अकिउ ।
णिर सिय पाव-पडल णिरु रंभइ,
जेण पइट्ठाविय जिण विवइ ।
तहु थिरमास जाया भण्णइ,
... .
जिण सय लक्खणजसु मणोज्जणु,
तहु सुह माघहु अरियण गजणु ।
[तह तिय होत्था] पुत्त वियक्खणु,
उधरण देवचन्द सल्लक्खणु ।
सेऊ साहुहु णदणु वीयउ,
सिरि कुसुराज सय पि विणीयउ ।
तस्स पिया मुणिदाण कयायर,
लोहब णामे सुह भावण पर ।
बीई वीरा जिण गुण मण्णइ,
रूवे रइ सीलेण जाणइ ।
णदणु णेमिदासु सुह-योसणु,
पावणु परियण-जणमण पोसणु ।
पुणु सेउय साहहु सुउ तुरिओ,
पर उवयार-रयण-गुण भरिओ ।
जु जिय जुत्ता जुत्त वियारो,
णामें जे जिय हिय जिणयारो ।

घत्ता—

जो जिउ पिय रइ सो पाण-णिय
सुय मंडण मडिय अण्णह ।
णदउ सिरि सुक्ख अखंडउ,
पाइय चदु भायर वत कहा ।
इय चिरू णदउ सुह लच्छि गहु,
सिरि वीयराय जिण समउ एउ ।
णदउ णिग्गथ रिसिदविंद,
ये दुविह महातव पह-दिणद ।
णदउ महिवइ सिरिकित्ति सिंघु,
समरगण पगण अरि अलघु ।
जे धम्म कम्म णिरु सावहाणु,
सम्मदंसणु भावण पहाणु ।
गोपालय वासिय सावयावि,
णदणु ओह अप्पणयि सभावि ।
णदउ गोलालाडयउ वसु ।

Incomplete matter

नोट—प्रस्तुत प्रशस्ति अधूरी है, इसे नागोर के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने पूरी नहीं उतारने दी थी ।

१०६ जोगसार (योगसार)

श्रुतकीर्ति (रचना १५५२ लि० १५५२)

आदिभाग—

पणविवि जिण वीरहु णाण गहीरहु
तह गिर गणि गोयम हससु ।
जह जोय पउत्तउ ति-जय-पवित्तउ
अक्खमि भवियहु तं जि कमु ।
सव्वह वम्म जोउ जगि सारउ,
जो भव्वयण भवोवहि-तारउ ।
सोलइ सिद्धिय सिद्ध अणतइ,
जम्मण-मरण-भवोवहि-चत्तइ ।
सासय णत चउट्ठय लाहइ,
दसण-णस णाण सु-पवाहइं ।
वीरिय णत सुक्ख त जाणइ,
सम्मत्तादि गुणट्ठ विरायइं ।

इसके वाद पञ्चपरमेष्ठियो का स्तवन है—

दुवई—

णाणा वरण कम्मखय-कारण

त सुदकि ि उत्तमभइ ।

सुक्क-झाणु जिण सासणु

तव पय पुर पवित्त ओ ॥

अन्तिमभाग —

गण जि वलातकार वागेसरि,
गच्छ पसिद्धु जाय ओ ।
तह पोमणदि गुरु गणहरु,
वहु-सुद-तवणु रायओ ।
तह वहु सिस्स जाय गुणवतइ,
विज्जा विणइ सीलमइ वतइ ।
मुणि देविंदकित्ति अहिहाणइ,
मालवदेस पसिद्ध पहाणइ ।
जहसु पवाहिय सावय वग्गइ,
तिहुवणकित्ति सिस्समइ उग्गइ ।
ते मडलायरिय विक्खायइ,
सिस्सवग्गतह धम्मणुरायइ ।
पुण सुदकित्ति पयडु अहिहाणइ,
आयम-भेय किंच सो जाणइ ।
धम्मपरिक्खा गथु खडकम्मइ,
पत्त परिक्ख तहय मुणि धम्मइ ।
त हरिवस सगथु चिरु पिक्खउ,
पद्धडिया छदेण पलक्खिउ ।
पुणु परिमिट्ठ पयासु तदतर,
सिद्धचक्क कह वहव् महत्तर ।
पुणु वर जोय-झाणु तद अक्खिउ,
सवर चिर पारभिवि रक्खिउ ।
जोय-झाणु मणि सो अणुरायउ,
णाणाणउ णिए वि विक्खायउ ।
तह सुत्ताणु सार पारंभिउ,
पद्धडियाँ छदें मणि विंभिउ ।
गिह वावार तेम सो रहियउ,
सोवइ मरु सुदकित्तिहिं कहियणउ ।

घत्ता—

त विय उस उण्णउ वहु पय पुण्णइ
ज चिर आयम सद्दहि ओ ।
जायहु गुण अक्खिउ झाण पलक्खिय
... तोणं महिओ ॥७१॥

चेवि सहस मुणि अत्थ अउव्वइ ।
जे सद्दहइ ते गइ सुह गच्छइ ।
अत्थ जि दय-धम्मह मण लीणइ ।
ते सासय-सुह लहहि पवीणइ ।
विक्कय रायहु ववगइ कालइ ।
पण्णारह सय ते वावण अहियइ ।
रयउ गथु त जाउ सउण्णउ ।
सेय पक्खु मग्गसिर मणुण्णउ ।
पच •• दासरू जायउ ।
[सद् अत्थ पुण जग विक्खायउ ।
मडवचलगढ जो सु पसिद्धउ ।
साहि गयासु जयम्मि णरिंदउ ।
साहि णासीरु ताहि सुइ णदणु ।
दुट्ठ दमणु सिट्ठ ति आणदणु ।
पु जराज वणि मति पहाणइ ।
ईसरदास गयदइ आणइ ।
वत्थाहरण देंस वहु पावइ ।
अह-णिसि-धम्मह भावण भावइ ।
(सावय-धम्म) मणाहि अणुरायउ ।
तह जेरहद णयरु विक्खायउ ।
चेईहर सावय मणि हिट्ठइ ।
णेमिणाह जिणहर मुद्दिट्ठइ ।
तह यहु गथु जाउ परिपुण्णउ ।
णिसुणिउ सखय-सघ मणुण्णउ ।
मण आणदिय सावय वग्गइ ।
जयसिंघ णेमिदास सु-हग्गिगइ ।

घत्ता—

अवर जि अणुराइय गण लिहाइय
पुण्ण पवि ढप्पिउ तह घणउ ।
कुण्णाणु विहट्टइ णाणु पवट्ठइ ।
सो सिव सपइ सुह जणउ ॥७२॥

दुवई—

देसहं भरहे णासणि वरिट्ठह, चउ विह संघ भव्वहे ।
रिसह जिणद पमुह वीरतइ साति करेहि सव्वहे ।
इयजोग झाणाणुसारे चिरसूरि पउत्तियाणु अणुसारे ।
बहु जोयस्स विसेसो पढभा रभेण सकरु ट्टेसो ।
कय सुयकित्तिसउण्णो भविया आयण्णि चित्त सतोसो ।
सो बुहयण गुरुपय भत्तो णाम विदीओ परिच्छेओ ॥
समत्तो ॥

तेरापथी मदिर प्रति जयपुर स० १५५२

१०७ मउड सत्तमि कहा (मुकुट सप्तमीकथा)

भगवतीदास

आदिमगल—

पणविवि पच परम गुरु सारद धरि वि मणे ।
सत्तमि मउड तणउ फलु भासमि भेउ जणे ॥

अन्तिमभाग:—

अण्णुवि जो णरु णारी करणी भाउधरे ।
सो एरिसु फलु लहसी वमु अरि निहाणि के ।
गुरु मुणि माहिंदसेण चरणयुग धरै विमणा ।
दासुभगौती भासै निसुणहु भविकजणा ॥१४
पढहि गुणहिं जे बुहियण सुणाहि सुजाण णरा ।
राज रिद्धि लुमगलु दिण दिण ताह धरा ॥१५

इति मउडसत्तमि कहा समत्ता ।

१०८ सुगंधदहमी वय कहा (सुगंधदशमी व्रत कथा रासु)

भगवतीदास

आदि—

वीर जिणिंद चरण जुग पणविवि गोयमु ज्ञान विसाला ।
वउ सुगंधदसमी गुण निम्मल भासमि रासु रसाला ।
भविकजण यहु दसमी वउ कीजइ, दुक्ख जलाजलि दीजइ ।

अन्तिमभाग:—

गुरु मुणि माहिंद सेणु
भट्टारउ चरण कमल नमि तासो ।
रुहतग वीर जिनालय मणिहरि
भणत भगौतीदासो ॥
भविक जण यहु दसमी वउ कीजइ ।
णर णारि जो गावहिं मन वचि
सुणहि चतुर मनि धारी ।
राज रिद्धि सुर नर सुहु भुंजिवि
मुकति वरहि वर नारी ।
भविकजणु यहु दसमी वउ कीजइ,
दुक्ख जलजलि दीजइ ॥२७

इति सुगध दसमी कहा समात्ता ।

परिशिष्ट १

कुछ मुद्रित ग्रन्थ प्रशस्तियाँ

२०६ स्सयंभुछंद (अपभ्रंश)

महाकवि स्वयम्भू

आदिभाग:—

जो पाउअस्स सारो तस्स मए लक्ख लक्खरण सिट्ठम् ।
एत्ताहे अवहसे साहिज्जन्त रिणसामेह ॥१॥
इहि आरा विन्दु जुआ पआवसारण्म्मिजह हुवन्ति लहू ।
तह कत्थ वि छन्द वसा का अन्वा उहुह आरावि ॥२॥
उआरो विन्दु जुओ पआवसारण्म्मि लहू चउमुहस्स ।

× × × ×

अन्तिमभाग —

पद्धडिया पुरण जेइ करेन्ति,
ते सोउह मत्तउ पउ धरेन्ति ।
विहिपअहिं जमउ ते रिणम्मअन्ति,
कडवअ अट्ठहिं जम अहि रअन्ति ॥३०
आइहिं पुरणु घत्ता समामणन्ति,
ज आवसाण छड्डुणि भरणन्ति ।
सखारिणवद्ध कडवेहिं सधि,
इह विविह पआरहिं तुह विवन्धि ॥३१
सधि भेआाड ते रइअ एअ,
छड्डुरिणयावि घत्ता भण सु भेअ ।
अण्णाउ विविह पआरिआउ,
घत्ताउ छड्डुरिण विआरिआउ ॥३२
तीए सुण वि वज्झन्ति ताउ,
लोएहिं केण विण्णारण ताउ ।
सालाहरणेरण धवलाइं जाइं,
विरइ आइ अरणे आइ बहु विहाइ ॥३३
इअ एम असेसव वज्झन्ति,
सअल उणा अरिअ ।
सुपसिद्धा लोए पडिअ,
जरणेहिं समाअरिअ ॥३४
सधिहिं आइहिं घत्ता,
दुवई गाहाडिल्ला ।
मत्ता पद्धडिआए, छड्डुणिआ वि पडिल्ला ॥३५

संधिघत्ता जहा—

जिरणु पच हुँ रत्तुप्पलहिं, दीवा वे विणुवारि ।
एक्कमि जम्मरणु पुरणु माणु, छिण्णहु अट्ठ पहा (या) रि ॥३६

अह दुवई—

पडिहि अमिण्ण कण्ण गंडत्थले विउरणो विट्ठ पुञ्छओ ।
रिणइ अवलिअकर पहर परिअर थिरकअणिज्ज सरीरओ ॥
छल दलिवलय मधुर झकार विराजित कुम्भ मडलं ।
तव नम नेन नाथ नाक्रामत्ति परि कु पितोपि केसरी ॥३७

अह गाहा जहा—

तुम्ह पअ कमल मूले अम्ह जिण दु ख भावत विआइ ।
ढरु ढुल्लिआइ जिणवर ज जाणसु त करेज्जासु ॥३८

अह अडिल्ला जहा—

अक्क पलास विल्लुअड रूसउ,
घम्मिअ एम एम महु अरु तूसउ ।
ड्ढाइञ्च बह्म हरिसकरु,
जे मेराउ देउ हरिसकर ॥३९

मत्ता जहा—

जअहिं जिरणवर सोम अकलक सुर सण्णअ विगअ भअ ।
राअ-रोस-मअ-मोह वज्जिअ, मअण णासण भव-रहिअ ॥४०

पद्धडिया जहा—

जिण णामे मअगगल मुअइ दप्पु,
केसरि वसहो ण डसइ सप्पु ।
जिण णामे ण डहइ धअ धअन्त,
हुअ वह जालासअ पज्जलन्त ॥४१
जिण णामे जलणिहि देइ थाहु,
आरण्णे वण्णु ण वधइ वाहु ।
जिण णामे भव सवसअ सखलाइ,
टुट्टन्ति होन्ति खण मोक्कलाइ ॥४२
जिण णामे पीडइ गहु ण को वि,
दुम्मइ पिसाउ ओसरइ सो वि ।
जिण णामे डुग्गअ ख हिज्जन्ति,
अणुदिण वर पुण्णइं उब्भवन्ति ॥४३
जिण णामे छिंदे वि मोहजालु,
उप्पज्जइ देवल्ल सामि सालु ।
जिण णामें कम्मइ णिद्दले वि
मोक्खग्गो पइसिअ सुह लहे वि ॥४४

छड्डुणिया जहा—

जिण णाम पवित्ते, दिव्वसुव्वन्ते, पाउ असेसु वि छिज्जइ ।
ज जिण मणे भावइ, त सुह पावइ, दीणु ण कासु वि किज्जइ ॥४५

सगी अवज्ज अहिणअ सहुत्त तालमे अमिह सुणसु ।
सत्तच्छन्दो रूअ सत्ततालं हुवे कव्वे ॥४६
पचच्छन्दो रूअ पचत्ताल च होइ कव्वम्मि ।
तेहिं रूएहिं रइअ तित्ताल त मुणिज्जासु ॥४७
छन्दो रूएहि विहि जुअल चक्कलअमेव च चऊहिं ।
कुलअ सेसेहिं हुवे चक्क सम तेहि तेहित ॥४८

घत्ता—

छड्डुणिआहिं पद्धडिआ (हिं) सुअण्ण रूएहिं ।
रासा बन्धो कव्वे जणमण अहिरामओ होइ ॥४९
एक्क वीस मत्ता णिहणउ उद्दाम गिरु ।
चउदसाइ विस्सामहो भगण विरइ थिरु ॥
रासाबधु समिद्धु एउ अहिराम अरु ।
लहुअ तिअल अवसाण विरइ अमुहुर अरु ॥५०

जहा—

सुर वरणेरे वरथुअउर अवरंण मिअउ चरण कम (?)
मअणं महेण जलहिग अरोस जाअ समदम ।
पराधीर जिण एव जअणिहि वरसर णिलअ ।
पहअ दुरिअ सतावहरण गुरु मोह विलअ ॥५१

जहा—अ—

जइ विण वसुमइ मगगहं इह को वि सचरइ ।
अइ किलेसे ससिणि सुद्देअ वि जइ फुरइ ।
तो वि एहु मोरी वाणि विलट्ठ कला गवइ ।
अहिणव घण पअ पसरहि अवहसे हिं रसइ ॥५२
पच ससार हूअ बहुलत्थ लक्ज लक्खण विसुद्धम ।
एत्थ सअभुच्छन्द अवहसन्त परिसमत्तम ॥५३

सवत् १७२७ वर्षे आश्विन सुदि पचम्या गुरौ राम नगरे लिखित मिद कृष्ण देवेन ।

Journal of the University of Bombay,
Vol. V, November, 1936, Part III.

११० भविसयत्त कहा (कवि धणवाल)

आदिभाग—

जिण सासणि सा तु णिद्धुअ पाव-कलक-मलु ।
सम्मत्त विसेसु निसुणहु सुय पचमिहि फलु ।।
पण विप्पिणु जिणु तइलोय बधु,
डुत्तरतर भव णिव्वुढ खधु ।
भव्वयण वयण पकय पयगु,
कय कसण मोह तिमिरोह भगु ।

× × × ×

इय भविसत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काममोक्खाए बुह धणवाल कयाए पंचमि फल वण्णणाए भविसयत्त जम्म-वण्णणो नाम पढमो सधी सम्मत्तो ।१।

अन्तिमभाग :—

घत्ता—

धक्कडवणिवसि माएसरहो समुब्भविण ।
धणसिरि देवि सुएण विरइउ सरसइ सभविण ॥८॥
दूरयर पणासिय पावरेण,
एह जा सा वुच्चइ कामधेणु ।
फलु देइ जहिच्छिउ मत्तलोई,
चिंतामणि वुच्चइ तेण लोई ।
एह जा सा वुच्चइ भुवणसत्ति,
अह मुक्ख हो सुह सोवाण यत्ति ।

नर नारिहि विग्घइ अवहरेइ,
जो ज मग्गइ तहो तजि देइ ।
निव्वाहइ जो निय सिवि भरेण,
सुपुन्नवतु किं वित्थरेण ।
उववास करइ जो सत्तसट्ठि,
उज्जमणि तहो सुहि तुट्ठि पुट्ठि ।
जइ भज्जइ अतरि विग्घु होइ,
तहु सद्दहाणि फलु त जि तोइ ।

घत्ता—

अहो किं वहुवाया वित्थरेण, एक्कवि चित्ति महत्तरिण ।
अणुमोए ताहिं तिहु सपन्न गुणतरिण ।१०।

अरि उरि अडरायइ दीहरच्छि,
धणयत्तहो गेहिणि घणयलच्छि ।
उज्जमिय ताए चिरु सजुण्ण
भाविय धणमित्ते तहिं सुएण ।
तह कित्ति सेण नामुज्जयाइ,
अणुमोइय वज्जोयर सुआइ ।
तहो फलिण ताए तिण्णमि जणाइ
चउ थइ भवि सिवलोयहो गयाइ ।
पहिलइ धणयत्त हो घणयदित्ति,
इयरइ बिन्नि वि धणमित्तु कित्ति ।
विज्जइ भवि पकयसिरि सरूअ
सुउ भविसयत्तु भविसाणु रूअ ।
तिय लिंगु हणि वि तिन्निमि सुतेय
पहचूल रयण चूलाइ देव ।
तइ यइ भविसत्तु वि कणय तेउ
हुउ दहमइ तहिं जि विमाणि देउ ।
चउथइ भवि सुव पचमि फलेण
निद्दड्ढु कम्मु झाणानलेण ।

घत्ता—

निसुणत पढतह परिचिततह अप्पहिय ।
घणवालि तेण पचमि पच पयार किय ।११।

इय भविसयत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खवाए बुहधणवाल कयाए पचमि फल वण्णणाए कमलसिरि भविसदत्त भविसाणुरूव मोक्ख गमणोणाम वावीसमो सधी परिच्छेओ सम्मत्तो ।

१११ महापुराण

महाकवि पुष्पदन्त

आदिभाग—

सिद्धिवहू मणरजणु परमणिरजणु भुवण कमल सरणेसरु ।
पणविवि विग्घविणासणु णिकवमसासणु रिसहणाहु परमेसरु ।।ध्रु•

सुपरिक्खिय रक्खिय भूय तणु,
पचसय धणुण्णय दिव्वतणु ।
पयडिय सासण पयणयर वह,
परसमय भणिय दुण्णयर वह ।
सुहसीलगुणोह णिवास हर,
देविंद थुय दिव्वास हर ।
जुइ णिज्जय मदर मेहलय,
पवि मुकक हार मणि मेहलयं ।
सोहता सोयरमिय विवर,
उव्वासिय वहुणारय विवर ।
सुरणाह किरीट पहिट्ठ पय,
अइ पउर पसाय पहिट्ठ पय ।
णवतरणि समप्पहभावलय,
णिर दुस्सह दुम्मण भावलय ।
हरि मुक्क कुसुम चित्तलियणह,
अरुहत मणंत जस अणह ।
सीहासण छत्त त्तय सहिय,
उद्धरिय पर स किवं सहिय ।
दुदुहि सरपूरिय भुवण हर,
बधूअ फुल्लस णिहणहर ।
पुरुए व जिण जिय कामरण,
दूरुज्झिय जम्म-जरा-मरण ।
विरय वरय णिय मोह रण,
उद्धूय भीम णिय मोह-रय ।
पणमामि रवि केवल किरण,
मत्ता समय मणिय किरण ।

घत्ता—

अवरु वि पणविवि सम्मइ विणिहय दुम्मह कोव पाव विद्धंसणु

ासु तित्थिमइ लद्धउ णाणसमिद्धउ णिम्मलु
सम्मद्दसणु ॥१

× × × ×

इय महापुराणे तिसट्ठि पुरिसगुणालकारे महाकइ
प्फयत विरइए महाभव्व भरहाणु मण्णिए महाकव्वे
म्मइसमागमो णाम पढयो परिच्छेओ समत्तो ॥१

ान्तिमभाग.—

सिद्धि विलासिणि मण हर दूए,
मुद्धएवी तणु सभूए ।
णिद्धण सधण लोय सम चित्तें,
सव्वजीव णिक्कारण मित्ते ।
सद्दसलिल परि वड्ढिय सोत्ते,
केसव पुत्ते कासव गोत्ते ।
विमल सरासय जणिय विलासे,
सुण्ण भवण देवलय णिवासें ।
कलि-मल पबल पडल परिचत्तें,
णिग्घरेण णिप्पुत्तकलत्ते ।
णइ वा वीतलायकयण्हाणे,
जर चीवर वक्कल परिहाणे ।
धीरे धूलिय धूसरियंगे,
दूरय रुज्झिय दुज्जण सगे ।
महि सय णमले करि पगुरणें,
मग्गिय पडिय पडिय मरणें ।
मण्ण खेड पुरवरि णिवसन्ते,
मणि अरहत धम्वु झायन्ते ।
भरह सण्ण णिज्जे णय णिलए,
कव्व पवध जणिण जण पुलए ।
पुप्फयत कइणा चुय पके,
जइ अहिमाण मेरु णामके ।
कयउ कव्व भत्तिट्ठें परमत्थे,
जिण पय पकय मउलिय हत्थे ।
कोहण सवच्छरि आसाढइ,
दह मइ दियहि चद रुइ रुढइ ।

त्ता—

णिरु णिरहहु भरहहु वहु गुणहु कइकुल तिलए भणियउं ।
ुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहि मि पुरिसह चरिउ समाणि
यउ ॥१४

इय महापुराणे तिसट्ठि महा पुरिस गुणालकरे महाकइ पुप्फयत विरइए, महा भव्व भरहाणुमणिए महा कव्वे जिणिंद णिव्वाण गमण णाम दुत्तरसय परिच्छेदाण महापुराणं सम्मत्त ॥१०२

११२ जसहर चरिउ (यशोधर चरित)

महाकवि पुष्पदत

आदि भाग.—

तिहुवणसिरिकतहो अइसयवतहो अरहतहो हय
वम्मह हो ।
पणविवि परमेट्ठिहि पविमल दिट्ठिहि चरण जुयल णय
सय महहो ॥

कोंडिल्ल गोत्तणह दिणयरासु,
वल्लह णरिंद घर महयरासु ।
णण्णहो मदिरि णिवसतु सतु,
अहिमाणु मेरु कइ पुप्फयंतु ।
चिंतइ य हो घण णारो कहाए,
पज्जत्त उ कय दुक्किय पहाए।
कह धम्म णिबद्धी का वि कहमि,
कहियाइ जाइ सिव सोक्खु लहमि ।
पचसु पचसु पचसु महीसु,
उप्पज्जइ धम्मु दया सहीसु ।
धुउ पंचसु दससु विणासु जाइ,
कप्पधिवखइ पुण पुणु वि होइ ।
काला वेक्खइ पढमिल्लु देइ,
इह धम्मवाइ सिय वसह केउ ।
पुणएउ सामि रायाहिराउ,
अणदिउ चउसुरवर णिकाउ ।

घत्ता—

वत्ताणुट्ठाणे जणुधणदाणे पइ पोसिउ तुह खत्तधरु ।
तव चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परम परु ॥१

× × × ×

अन्तिमभाग —

चिरु पट्टणे छगे साहु साहु,
तहो सुउ खेला गुणवतु साहु ।
तहो तणुरुहु वीसलु णाम साहु,

वीरो साहु णियहि सुलद्ध णाहु ।
सोयारु सुणाण गुण गण सणाहु,
एक्कइ या चिंतइ चित्ति लाहु ।
हो पडिय ठक्कुर कण्हपुत्त,
उवयारिय वल्लह परममित्त ।
कइ पुप्फयतु जसहर चरित्तु,
किउ सुट्ठु सद्द लक्खण विचित्तु ।
पेसहि तहि राउलु कउलु अज्जु,
जसहर विवाहु तह जणिय चोज्जु ।
सयलह भव-भमण भवत राइ,
महु वछिय करहि णिरतराड ।
ता साहु समीहिउ कियउ सव्वु,
राउलु विवाहु भव-भवण-भव्वु ।
वक्खाणि उ पुरउ हवेइ जाम,
सतुट्ठउ वीसल साहु णाम ।
जोयणि पुरवरि णिवसतु सिट्ठु,
साहुहि घेर सुत्थियणहु घुट्ठु ।
पण सट्ठि सहिय तेरह सयाइ,
णिव विक्कम सवच्छर गयाइ ।
वइसाह पहिल्लइ पक्खि वीय,
रविवार समित्थिउ मिस्सतीय ।
चिरुवत्थु वधि कइ कियउ जजि,
पद्धडिया वधि मइ रइउ त जि ।
गधव्वें कण्हड णदणेण,
आयह भवाइ किय थिर मणेण ।
महु दोसु ण दिज्जइ पुव्वि कइउ,
कइ वच्छराइ त सुत्तु लइउ ।

घत्ता—

जो जीवदयावरु णिप्पहरण करु बभयारि हय-जर-मरणु ।
सो माण णिसभणु धम्मु णिरजणु पुप्फयतु जिणु महु मरणु ॥३०

पावणि मु भणि मुद्धाबभणि,
उयरुप्पण्णों सामलवण्णे ।
कासवगोत्ति केसवपुत्ति,
जिण पयभत्ति धम्मासत्तिं ।
वय सजुत्ति उत्तम सत्ति,
विमलियस किं अहिमाण किं ।
पहिसिय तु डि कइणा खडें,
रजिय बुह सह कय जसहर कह ।
जो आयण्णइ चगउ मण्णइ,
लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ ।
जो मणि भावइ सो णरु पावइ,
विहुणिय घणरय सासय सपय ।
जण वय णीरसि दुरियमलीमसि,
कइ णिदायरि दुसहे दुहयरि ।
पडिय कवालइ णर ककालइ,
बहु रकालइ अइ दुक्कालइ ।
पवरागारि सरसाहारि,
सण्हि चेलि वरतबोलि ।
महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ,
गुण भत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ ।
होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु,
तिप्पइ मेइणि घण कण दाइणि ।
विलसउ गोमिणि णच्चउ कामिणि,
घुम्मउ मदलु पसरउ मगलु ।
सति वियभउ दुक्खु णिसु भउ,
धम्मुच्छाहि सहु णर णाहि ।
सुहु णदउ पय जय परमप्पय,
जय जय जिणवर जय भय भय हर ।
विमलु सु केवलु णाणु समुज्जलु,
महु उप्पज्जउ एत्तिउ दिज्जउ ।
मइ अमुणति कव्वु करति,
ज हीणाहिउ काइ मि साहिउ ।

घत्ता—

त माय महासइ देवि सरासइ णिहय सयल सदेह-दुह ।
महु खमउ भडारी तिहुवणसारी पुप्फयतु जिण वमण कह ॥३१

इय जसहर महाराय चरिए महामहलणण्ण कण्णाहरणे महाकइ पुप्फयत विरइए महाकव्वे चडमारि देवय मारिदत्तरायधम्मलाहो णाम चउत्थो परिच्छेऊ समत्तो ॥४

११३ णाय कुमार चरिउ (नाग कुमार चरित)
(महा कवि पुष्पदन्त)

आदिभागः—

पणवेप्पिणु भावे पच गुरु कलिमलवज्जिउ गुणभरिउ।
आहासमि सुय पचमिहे फलु णायकुमार चारुचरिउ ॥ध्रुवकं

दुविहालंकारे विप्फुरंति,
लीला कोमलइ पयाइ दिंति।
महकव्वणिहेलणि सचरति,
बहु हाव भाव विब्भम धरंति।
सुपसत्थें अत्थें दिहि करंति,
सव्वइं णिण्णाणइ सभरति।
णीसेंसदेसभासउ चवंति,
लक्खणइं विसिट्ठइ दक्खवंति।
अइरुंद छद मग्गेण जंति,
पाणेंहिं मि दह पाणाइं लेंति।
णवहिं मि रसेहिं सचिज्जमाण,
विग्गह तएण णिरु सोहमाण।
चउदह पुव्विल्ल दुवालसगि,
जिणवयण विणिगय सत्तभगि।
वायरण वित्ति पायडियणाम,
पसियउ महु देवि मणोहिराम।

घत्ता—

सिरि कण्हराय करयलि णिहिय असिजलवाहिणि दुग्गयरि।
धवल हरसिहरि हममेह उलि पविउल मण्डखेड णयरि ॥१

मुद्धाई केसव भट्ट पुत्तु,
कासव रिसिगोत्तें विसाल चित्तु।
णण्णहो मंदिरि णिवसंतु संतु,
अहिमाणमेरु गुणगणमहतु।
पत्थिउ महियणवियसीसएण,
विणएण महोवहि सीसएण।
दूरुज्झिय दुक्किण मोहणेण
गुणधम्मे अवर वि सोहणेण

भो पुप्फयत पडिवण्णपणय,
मुद्धाई केसवभट्ट तणय।
तुहु वाई सरिदेवीणिकेउ,
तुहु अम्हह पुण्ण णिबधहेउ।
तुहु भव्वजीव पकरुह भाणु,
पइ धणु मणि मण्णिउ तिण समाणु।
गुणवंत भत्तु तुहु विणयगम्मु,
उज्झाय पयासहि परम धम्मु,

घत्ता—

ओलग्गिउ भावें दिणिजि दिणे णियमण पकइथिरु थविउ।
कइ कव्वपिसल्लउ जस धवलु सिसु जुयलेण पविण्णविउ ॥२

भणु भणु सिरिपचमिफलु गहीरु,
आयण्णहिं णायकुमारवीरु।
ता वल्लहराय महंतएण,
कलि विलसिय दुरिय कयंतएण।
कोडिण्णगोत्त णह ससहरेण,
दालिद्द कद कंदल हरेण।

× × × ×

इय णायकुमार चारुचरिए णण्णामंकिए महाकइ पुप्फयत विरइए महाकव्वे जयधर विवाह कल्लाणवण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ॥

अंतिमभागः—

गोत्तम गणहर एवें सिट्ठउ,
सूरि परयराए उव इट्ठउ।
णायकुमार चरित्तु पयासिउ,
इय सिरि पचमिफलु मइ भासिउ।
सो णंदउ जो पढइ पढावइ,
सो णदउ जो लिहइ लिहावइ।
सो णदउ जो विवरि विदावइ,
सो णदउ जो भावें भावइ।
णदउ सम्मइ सासणु सम्मइ,
णदउ पय सुहु णदउ णरवइ।
चिंतउ चिंतउ वरिसउ पाउसु
णदउ णण्णु होउ दीहाउसु।
णण्णहो संभुवतु सुपवित्तइ,
णिम्मल दसण णाण चरित्तइ।

णण्णहो होतु पचकल्लाणइं,
रोय-सोय-खयकरण विहाणइं ।
णण्णहो जसु भुअणत्तए विलसउ,
णण्णहो घरिवसुहार पवरिसउ ।
सिवभत्ताइ मि जिणसण्णासें,
वेवि मयाइ दुरिय णिण्णासें ।
वभणाइ कासवारिसि गोत्तइ,
गुरुवयणामय पूरिय सोत्तइ ।
मुद्धाएवी सवणासइ,
महु पियराइ होतु सुहधामइं ।
संपज्जउ जिणभावें लइयहो,
रयणत्तय विसुद्धिदगइ यहो ।
मज्झु समाहिवोहि सपज्जउ,
मज्झु विमलु केवलु उप्पज्जउ ।

घत्ता—

णण्णहो मज्झु वि दयकरउ पुप्फयत जिणणाह पियारी ।
खमउ असेसु वि दुव्वयणु वसउ वयणे सुयदेवि भडारी ॥१

सुहतु ग भवण वावारभार णिव्वहण वीर धवलस्स ।
कोंडिल्लगोत्त णहससहरस्स, पयईए सोमस्स ॥१
कुड्ड दव्वा गब्भ समुब्भवस्स, सिरिभरहभट्टतणयस्स ।
जस पसरभरियभुअणो यरस्स, जिणचरणकमल भसलस्स ॥
अणवरय रइयवर जिणहरस्स, जिणभवण पूयणिरयस्स ।
जिण सासणाय मुद्धारणस्स मुणि दिण्णदाणस्स ॥३
कलिमल कलकपरिवज्जियस्स, जिय दुविहवइरि णियरसस्स ।
कारुण्णकदणवजल हरस्स, दीणयण सरणस्स ॥४
णिव लच्छी कीलासरवस्स, वाएसरि णिवासस्स ।
णिस्सेसविउस विज्जा विणोय णिरयस्स सुद्ध हिमयस्स ॥५
णण्णस्स पत्थणाए कव्वपिसल्लेण पहसिय मुहेण ।
णायकुमार चरित, रइय सिरि पुप्फयतेण ॥६

११४ करकड चरिउ (करकुंड चरित)

मुनि कनकामर

आदिभाग.—

मण-मारविणासहो सिवपुरिवासहो पाव-तिमिर-हर-
दिणयर हो ।
परमप्पयलीणहो विलय विहीणहो सरमि चरणु सिरि
जिणवर हो ॥

जय अणुवम-सिव-सुह करण देव,
देविंद फणिंद णरिंद सेव ।
जय णाणमहोवहि कलिय पार,
पारा विय सिव पहे भवियसार ।
जय कम्म भुवगम दमणमत,
मताण वीज मण गह कयत ।
जय चउ गइ डरिय जणेक्कसरण,
रण रहिय सुयण-दुहणिवह-हरण ।
जय सयम सरवर रायहस,
हसोवम वुहयण कय पसस ।
जय कोह-हुआसण पडर वारि,
वारिय-तम केवल णाण धारि ।
जय सासय सपय हियववास,
वासव सय सेविय सुह णिवास ।
जय भविय सरोरुह कमल बधु,
बंधुर गुण णियरस बहुलसिंधु ।

घत्ता—

जयदेवणिरजण भव-भय भजण मदण भुवण महाधर हो ।
तव चरण णभत हो मणे सुमरतहो होइ समिच्छउ
फलु णरहो ॥१

मणि धरि वि सरासइ दिव्वदाय,
तह पडिय मगल एव पाय ।
जण सवण सुहावउ महरुललिउ,
कल्लाणय विहिर यणेण कलिउ ।
पुणु कहमि पयडु गुण णियर भरिउ-
करकंडणरिंदहो तणउ चरिउ ।
जइ दुज्जण वकुड मणि णिरुत्तु,
जइ जणवउ णीरसु मलिण चित्तु ।
वायरणु ण जाणमि जइ वि छदु,
सुअजलहि तरेव्वइ जइ वि मदु ।
जइ कह व ण पसरइ ललियवाणि,
जइ वुहयण लोयहो तणिय काणि ।
जइ कवियण सेवहु मइ ण कीय,
जइ जडयण सगइ मलिण कीय ।

तो सिद्धसेण सुसमतभद्द,
अकलकदेव सुअजल समुद्द ।
जयएव सयंभु बिसालचित्तु,
वाएसरि वरु सिरि पुप्फयतु ।

घत्ता—

इय हियए सरतहो विणउ करत हो महु सजायउ जजि फलु ।
तम्हा सुह भरियउ दुह परिहरियउ पयडमि वंछिउ णत्थि छलु ॥२

× × × × ×

इय करकड महाचरिए मुणिकणयामर विरइए भव्वयण कण्णा वयसे पच कल्लाणविहाण कप्पतरु फुल संपत्ते करकड जम्मोप्पत्ति वण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ॥ सधि १

अतिमभाग—

चिरु दियवर वसुप्पण्ण एण,
चदारिसि गोत्तें विमलएण ।
वइराइ हुयइ दियवरेण,
सुपसिद्धणाम कणयामरेण ।
बुह मगलएव हो सीसएण,
उप्पाइय जण मण तोसएण ।
आसाइय णयरि सपत्तएण,
जिण चरण सरोरुह भत्तएण ।
अच्छ तइ तहि मइं चरिउ एहु,
घर पयडिउ भवियणि विणउ णेहु ।
भइ सत्थ विहीणईं भडिउ किंपि,
सोहेविणु पयडउ विबुहु त पि ।
परकज्ज करण उज्जुय मणाह,
अप्पाणउ पयडिउ सज्जाणह ।
कर जोडिवि मग्गिउ इउ करतु,
महो दीणहो ते संयलु वि खमतु ।

घत्ता—

जो पढइ सुणइ मण चिंतवइ जणवए पयडउ इउ चरिउ ।
सो णरु भुवणहो मडणउ लहइ सकित्तण गुण भरिउ ॥२८

जो णवजोव्वणे दिवसहि चडियउ,
अमर विमाणहो ण सुरु पडियउ ।
कणयवण्णु अइमण हरगत्तउ,
जसु विजवालु णराहिउ रत्तउ ।
धम्म महातरु सिंचिय अप्पुणु,
जो विजवालहो ण मुहदप्पणु ।
जो अरि णिहणइ दुस्सह नीलइ,
जसु मणु रजिउ कुजर कीलइ ।
बधव इट्ठ मित्त जण रोहणु,
णिव भूवालहो जो मणु मोहणु ।
दीणाणाहहो जो दुह-भजणु,
कण्णणरिंद हो आसयरजणु ।
जो बोलतउ णिव सखोहइ,
जो ववहारइ णरवइ मोइइ ।
जो गुरु सगरि अइसय धीरउ,
जो जण पयडु ण कायर हीरउ ।
जो चामीयर ककण वरिसणु,
जो वदीयण सहलउ करिसणु ।
जो जिण पाय सरोयहू महुयरु,
जो सव्वगु वि णयणहं सुदरु ।
जो कामणिहिं मणम्मि ण मुच्चइ,
जो जण सील तरगिणि उच्चइ ।
किंत्ति भमतिय कह व ण थक्कइ,
जसु गुण लिंती सरसइ संकइ ।
तहो सुय आहलु रल्हो राहुल,
मुणि कणयामर पय उव्वाहुल ।

घत्ता—

तहो अणुराए इउ चरिउ मइ जणवइ पयडिउ मणहरउ ।
ते बधव पुत्त कलत्तसहु चिरु णंदहु जा रवि-ससि हरइ ॥२९

इय करकड महा राय चरिए मुणि कणयामर विरइए भव्वयण कण्णा वयसे पचकल्लाण कप्पतरु फलसपत्ते करकड सव्वत्थ सिद्धिलाहोणाम दहमो परिच्छेउ समत्तो ॥१०

परिशिष्ट २

लिपि प्रशस्तियाँ

पुष्पदन्त के आदिपुराण, बाराबंकी की लिपि-प्रशस्ति

(सं० १५२१)

घत्ता—

पणविवि रिसहेसरु विणिहय
पणसरु लोयालोय पयासणु।
वरमुत्ति रमण यरु जम्म मरणहरु
कम्म महारि विणासणु।
मय नयण वाण ससहर भेएसु
सक्करेसु पच्छइ गएसु।
विक्कमरायहो सुइ सेय पक्ख
णवमी बुहवारे सचित्त रिक्खु।
गोबग्गरि णयरि णिउ डूगरिंदु,
हुय पय पाडिय सामंत विंदु।
तहो सुउ सकित्ति धवलिय दियतु,
सिरिकित्तिसिंहु णिव लच्छिकतु।
सिरि कट्ठसघ मडण मुणिंदु,
गुणकित्ति जईसरु जए अणिंदु।
जसकित्ति कित्ति मडिय तिलोउ,
तहो सीसु मलयकित्ति जि असोउ।
गुणभद्दु तहो पट्टिसूरि,
जें जिणवयणामिउ रसिउ भूरि।
सिरि जइसवाल-कुलणह-ससकु,
सिरि उल्ल। साहु सया असकु।
तहो जाया गयसिरि णामधेय,
तहि सुअ हसराजु दया अमेय।
उल्हा चउघरु यहु णारि अण्ण,
भावसिरि णिय गुण पमाण्ण।
तहें पुत्त चयारि हयारिमल्ल,
सिरि पउमसिंह जिट्ठउ अतुल्ले।
लच्छीहरु माणिकु मणि समाणु,
घेना रायालय दीवमाणु।

घत्ता—

सिरि हसराय चउधरिय घेर
विज (य) सिरि भज्जा महिया।
तहो सुय गुणसायर सुह पउरेसर
परिमिय मय गण रहिया।
तहिं लल्ला रयणु सुबुद्धि धामु,
मयणुजि वीरु मडेहिहाणु।
सिरि पउमसिंह भज्जा सुपुज्ज,
वीरा णामे वरगुण समुज्ज।
तहे सुउ-सोलिग णामेण धीरु,
सूआ घरिणी एसहु जणि अभीरु।
बीई वल्लह लडहग वग्ग,
वीधो हिहाण सय दल करग।
अण्ण जि घरिणी मीया, अहिक्ख,
सिरि पउमसिंह घरे लीलसिक्ख।
तहें चारि पुत्त हिय पियर चित्त,
सिरि चित्त वालू डालू विचिंत्त।
तीयउ कुल दीवउ सो पपच्छु,
तह मयणवालु चउथउ पसत्थु।

माणिक माणिणि ण कामिमल्लि,
लखणसिरि णाम णारी मतल्लि।
धेणा धरणिउ ण काम अत्थु,
सगहिउ जाहि जिण धम्म वत्थु।
मयणा भज्जो यति भाह भीय,
णामेण सया सीलेण सीय।
लल्ला पिय मणसिरि पढम अण्ण,
पट्टो मगा भिक्खो सुवण्ण।
सुम रामचंदु कुल कमलनंदु,
णंदउ चिरु इह ण वीरचंदु ॥१५६
नंदा पूना वे भज्ज जुत्त,
चिरुजीवउ वीरु कमलवन्तु।
एयाहि मज्झि सिरि पोमिसिह,
जिण सासण णदणवण सुसिह।
विज्जुल चचलु लच्छी सहाउ,
आलो इवि हुउ जिण धम्मभाउ।
जिणगंथु लिहावउ लक्खु एक्कु,
सावय लक्खा हारीति रिक्ख।
मुणि भोजण भुजाविय सहासु,
चउवीस जिणालउ किउ सुभासु।
धेना पाउधरियनिमित्त दव्वु,
तेणज्जिउ लाइवि जें अउव्व।
पुरु एव जिणा मदणु जि विचित्तु,
ससिहरु सुपाडि हेरट्ठ जुत्तु।
णिम्मविउ भवं वुहि जाणवुत्तु,
रयणत्तय जुय जुय पास जुत्तु।
कारिय पइट्ठ जिण समय दिट्ठ,
अवलोय णणवि सयल सचित्ति हिट्ठ।

घत्ता—

णंदउ सिरि हसराउ सुहउ, णदउ पउमसिहु सुसउ।
णदउ परिवारु लच्छि कलिउ णदउ लोउ गुणोह जुउ।
आयासम्स जिणस्स य जिह अतं को वि लहइ न गुणस्स।
सिरिपोमसिह तिहते को पारइ गुण णिहालस्स ॥१
सिरिपउहमसिह पउमें इह लोए अइ ण हों तु वा पउमा।
कीला कत्थ करती सुदाणु पूया विणोएहिं ॥२

(जैन साहित्य संशोधक खंड २ अंक १ पृष्ठ ५०)

विबुध श्रीधर के भविष्यदत्त चरिउ (की लिपि प्रशस्ति)

सं० १५३०

माहुरकुल णहलच्छेण ससंकु,
जिण भासिय धम्मे विमुक्क सकु।
वुह णियर दाणविहि करणधुत्तु,
णय-मग्गणि रउ वज्जिय अजुत्तु।
तहो माढी णामे घरिणि जाय,
णावइ लच्छी सयमेव आय।
कोइल इव सुहयर ललियवाणि,
पवि रइय कज्ज जाणे वि जाणि।
तहो गब्भें समुप्पण्णउ रवण्णु,
साहारणु सुउ णय कणयवण्णु।
पढमउ परियाणिय णाय मग्गु,
जिण धम्म-कम्म साहिय सुमग्गु।
बीयउ णारायणु णयणिउत्तु,
मणे परियाणिय जिण माणिय सुत्तु
णिम्मलयर जसलच्छी णिहाणु,
माहुर गयणहयल सेय-भाणु।
मइवत सतु पाविय पसमु,
जिणवर कहे कय कण्णावतसु।
करुणालउ किरियावंतु साहु,
सुद्धासउ मयरहरूव-अगाहु।
तह रुप्पिणि णामे जाय-भज्ज,
सिरिहरहो सिरि व जाणिय सकज्ज।

घत्ता—

सज्जण सुहयारिणि पाव-णिवारिणि
पविमल सीला लकरिया।
बधवहं पियारी भीयणसारी
विण पाइय गुणगण भरिया ॥२
तहो पढमु सुउ पट्टु णामे,
हुउ ण अप्पउं दरसिउ कामे।
माणवरूवु लएप्पिणु लोयहो,
धम्मं पहावे माणिय भोय हो।
बीयउ वासुएउ सजायउ,
वासुएउ जिह तिह विक्खायउ।

तिज्जउ पुणु जसएव पवुच्चइ,
जो णीसेसहं बंधहु रुच्चइ ।
लोहडु तुरिउ समासंहि पियरहिं,
आवज्जिय णिम्मल गुण णियरहिं ।
पचमु लक्खणु कलिउ सलक्खणु,
कमल वयणु कज्जेसु वियक्खण ।
पच वि मय मणगण पचाणण,
पच वि पिसुण जणोइ भयाणण ।
ताहं मज्झे जो सुप्पडु भायरु,
वरवच्छल्ला णंदिय णहयरू ।
जिण-पय पुज्जकरण उच्छल्लउ,
लीलागइ जिय पाडल पिल्लउ ।

घत्ता—

तेणेहु मणोहरु तिमिर तमीहरू णियजणणी णामकियउ ।
अब्भत्थें वि सिरिहरु कइगुण सिरिहरु पचमिसत्थु करावियउ ॥३

सुप्पट तणय जणणि जा सुहमइ,
तियरण विणिवारय कुसुमय रइ ।
धम्म पसत्त हे मज्झ खामहो,
गुरुयण भत्तिहें रुप्पिणि णाम हो ।
होउ समाहि-वोहि रय-हारिणी,
अट्ठम महि लच्छी सुह कारिणी ।
सुप्पट साहुह वसु-कम्म-क्खउ,
होउ तहय अवरूवि दुक्खक्खउ ।
मज्झु एउ णउ अण्णु समीहमि,
भवजलणिहि णिवउण णिरू वीहमि ।
णंदउ संघु चउव्विहु सुंदरु,
णिय-जस-पूरिय गिरिवर कंदरु ।
विलउ जतु धण पडलुव दुज्जण,
चिरु णंदतु महीयले सज्जण ।
एयहो सत्थहो सख पसाहिय,
पचदह जि सय फुडु तीसाहिय ।
जाम जउण अमर सरि सुरालय,
कुलगिरि तारा भयण धरायल ।
विजयामल गिरि तास रसायर,
सिसिर किरण दिणयरय णायर ।
ताम मुणिदहि एहु पढिज्जउ,
भवियणु लोउ सयलु वोहिज्जउ ।
सुन्दर पर भायरह विराइउ,
काम-कोह-मच्छर अवराइउ ।
णिय जणणीए समाणउ सुंदरु,
पुज्जा विहि वि भविय पुरंदरु ।

घत्ता—

सम्मत्ता लंकिउ धम्म असकिउ दाण विहाण विसत्तउ ।
सुप्पट्टु अहिणंदउ जिण-पय-वदउ तव सिरिहर मुणि भत्तउ ॥४

(आमेर भडार प्रति)

भ० श्रुतकीर्ति के हरिवंस पुराण की लिपिप्रशस्ति

(सं० १६०७)

इय हरिवंस पुराणु,
मइ गरिट्ठु कइणा विहिउ ।
पयडमि तहो अविहाणु,
जे लेहाविउ पुणु लिहिउ ।
भू-भरह पसिद्धउ सुह समिद्धु,
कुरु भूमिय दह विहिरिद्ध रिद्धु ।
सुरसरि जउणा णइ अतरालि,
तरुसीमखेत्त-धण-कण विसालि ।
तहिं णयरु अभयपुरि महि-रवण्णु,
सुरणाहु व वहु विवुहहि मण्णु ।
इक्खुरस गोरस ककणाइ,
तरु हलइ रसालइ वण-धणाइ ।
पहियण पोसिय पयसाल जत्थ,
सम-विसम छुहातिस णत्थि जत्थ ।
चउवण्ण समिद्धउ वसइ लोउ,
सुर सत्थुव मण्णइ विविह भोउ ।
जहि पूरिउ बहु मयणाइ वासु,
मण इच्छिय मणहि-रइ-विलासु ।
णर-णारि मणोहर गेह-गेह,
णावइ सुर सच्छर अइ सणेह ।
धम्माणुरत्तु जणु वसइ जत्थ,
चउदाण पओहर जण पसत्थ ।

घत्ता—
चेयालयेवि अइ उतग विसाल ताहि ।
धवलिय सिहरग्ग मडिय कंचण कलस जहिं ॥१

णंदणवणु वसवण वहु मंडिय,
धम्मणिलय पावारि विहडिय ।
धय-तोरण-उल्लीवय सोहिय,
पिच्छ महुच्छउ सुर णर मोहिय ।
कित्तिमयणिमउ कित्ति मजेंहिय,
जिम कइलासहु दीसहि तेहिय ।
मगलीय महुच्छउ किज्जइ,
दुंदुहि सुरु वहु थुइ विर इज्जइ ।
एक्कु कट्ठसघचेईहरु,
धम्मसचु णिण्णासिय भवजरु ।
सत्थ-पुराण-पूयजिणणाहउ,
किम वण्णमि सिवलच्छि सणाहहु ।

घत्ता—
सावय पुरवाउ णिव्वाहिय गिह-धम्म भरु ।
वय चाइ समत्थ तिविह पत्त उण्णतकरु ॥२

तहि वीयउ पसिद्धु जिणमदिरु,
भवियण-जण-मण णयणाणदिरु ।
मूलसघ जिण सासण सारउ,
रवि-विवुव-तम-णियर-णिवारउ ।
गुज्जर गोट्ठि धम्म भरु खचउ,
णिय धणु पुण्ण णिमिते संचिउ ।
सोहइ सहचउ सघ समिद्धउ,
मुणि तव-त्तेयव रिद्धिय रिद्धउ ।
चिरु सामिउ सिरि गोयमु गणहरु,
तहु सतउ अणेय णिज्जय सरु ।
कुंद कुंद आयरिय गरिट्ठहु,
अग पुव्वधरु आयम सिट्ठउ ।
तासु पट्टि अण कमेण कुरुक्कउ,
धम्मकित्ति मुणिवरु मल-मुक्कउ ।
तासु सिक्ख-सिक्खणिय अणेय वि,
महवय-अणुवय-व्रुह वहु भेय वि ।
तहिं चेयालइ विंव सिरोमणि,
भवियण-कमल-पवोहण-दिणमणि ।
पोमावइ पुरवारु गुरुक्कउ,
सीखम (?) विवसणदु मह पडिउ,
णिम्मल विज्ज चारि-दह-मडिउ ।
आगम-वेय-पुराण-पहाणउ,
जोइस अत्थ सत्थ गुण जाणउ ।

घत्ता—
चायह सुपहाणु चाइमल्लु सरसइ णिलउं ।
पण वासरुणाइ सोहइ वुहयण कुल तिलउ ॥३

गुज्जर गोठि गुट्ठि सुपहाण वि,
सेयसु व पयडे चउ दाण वि ।
धम्म जुत्त सम्मत्तालकिय,
पुण्ण पवित्ता णाम चदं किय ।
रज्ज-कज्ज-सज्जण सुह-दाइण,
विढवि लच्छि चेईहर लाइय ।
पूय पतिट्ठ इट्ठु सुह णिमित्ते,
णिय उण्णय कर-मुक्कल चित्ते ।
मंगल-गीय-सद्द-णाडय-रस,
णिच्च महुच्छव पुण्णहु सरहस ।
जिण कल्लाण मिलि वि णारीणर,
तण सिंगार सार सोह-धर ।
हाव-भाव-विब्भम अइ कुच्छर,
चउ-णिकाय सुरणाबइ सच्छर ।

घत्ता—
किं वण्णमि ताह गुज्जरगुट्ठि समत्थ जहिं ।
जिण धम्मपहाण पयड पहावण धम्मु तहिवें ॥४

जेणं लिहाविउ गथ गरिद्धउ,
पयडमि तासु वसु सु विसिट्ठउ ।
गुज्जरगुट्ठि आसिप पयडियतस,
पीणिय भव्वलोय चाएरसं ।
हरसो साहु णासु सुगरिट्ठउ,
लहुराइसी वि वस-मण इट्ठउ ।
हरसी भज्ज लच्छि कमलच्छिय,
गिह-धम्महु परिपालण दच्छिय ।
तासु उवरि णदण उप्पण्णउ,
ऊधू णामु जसरासि मणुण्णउ ।
तास सरो गेहिणि गय-गामिणि,
धम्मलीण परिवारहु सामिणि ।
तासु पुत्त चदू चदाणणु,

बीयउ मद्दू मणोहर गारउ,
परमधम्म रह-वर धुर धारउ ।
चंद्दू भज्ज सयल गुणसारी,
णाम णायणसिरि प्रणय पियारी

घत्ता—

तहु गेहि उवण्ण वेवि पुत्त ण चदरवि ।
सिउ गणु पढमिल्लु अय समही हरणाइ पवि ॥५

लहु भीखमु पुण्णालय खमुश्र,
धम्मधरा रुह सिचण प्रभुश्र ।
सिउ गण तिय रूपा रूव हरइ,
दाण पुण्ण वेलणिय महासइ ।
भीखम भज्ज पढो गुण जुत्तिय,
सीलणिकेय जणय ण पुत्तिय ।
सिउ गुण तणय बे वि कुल मडण,
मीणु बीउ भाउ अहु खउण ।
मीणु भज्ज पाथुल मण मोहण,
मुहु ससिहर ससि किरण णिरोहण ।
मद्दू नधु मद्दु चिरु भासिउ,
जासु सुजसु बुहयण सुपयासिउ ।
जासु भज्ज पदमा गुणसारी,
रूवरासि वल्लह सुपियारी ।
बोई मुद्ध कुवार णामकिय,
जा सोहग्ग रूव-रइ-सकिय ।
सीला-हरण विहूसिय देहिय,
मुणिवर विणय दाण सुसणेहिय ।
कुवरि उपरि सुउ तिण्णि उवण्णइ,
सुजस पुंज कव्वहु वण्णें कइ ।
ण रयणत्तय धम्महु कारण,
कप्पतरु जण दुक्ख णिवारण ।
दादु साहु पढम सुउ भासिउ,
जे सुय णाणु दाणु सुपयासिउ ।
जसहरु बीउ भुवणि जस सायरु,
णायणसीहु तहु लहु वउ भायरु ।
दादु णारि उहयसु-मणोहरि,
ण रइ-पीइ वेवि कामहु घरि ।
पढम भज्ज तइ साधिय परयण,[1]
लच्छि पयक्खि अंग सुह लक्खण ।
खिउसिरि णाम अवर सुपहाणी,
ससि मुहइं जिम इदह इदाणी ।
दाण-माण सम्मत्त सुरेवइ,
रइ-सोहग्ग सुजस ण देवइ ।
अतिहि दाणु अणु दिणु बहु दिज्जइ,
चउविह सघ विणउ विरज्जइ ।
तासु सरीरि पुत्तु उप्पण्णउ,
माणस सरिहु सुवसु मणुण्णउ ।
आसुकण्णु णामेण मणोहरु,
चिरु णंदउ जें मांडउ णिवघरु ।
गेहणि तासुरूव गुण सारी,
णाम राइसिरि पइ-सुपियारी ।
परियणु अवरु जइ वि वण्णिज्जइ,
तइ बीयउ पुराणु विरइज्जइ ।
एमहि मज्झि गरुउ पुरिसत्तणु,
तवणिउ जासु सुयण गुण कित्तणु ।
दादू साहू जिणेसरि भत्तउ,
पुरिस सीहु वय सील पवित्तउ ।
अभयाहार सत्थ पुणु ओसहु,
तिविहु पत्त पीणिय सतोसहु ।

घत्ता—

लेहाविउ एहु गुण णिहाणु कल्लोल णिहि ॥
णिसुणंत कहत भवियण जणमण होइ दिहि ॥६॥

लहु भीखमु पुण्णालय खमुअ,
धम्म धर कह सिचण अभुअ ।
सउ गण तिय रूपा रूपहरइ,
दाण-पुण्ण-वेलणिय महासइ ।
भीखमु भज्ज पढो गुणजुत्तिय,
सील णिकेय जणय ण पुत्तिय ।
सिउ गुण तणय देवि कुल मंडण,
मीणु बीउ भाउ अह खडण ।
माण भज्ज पाथुल मण मोहण,
मुहससिहर ससि किरणा-णिरोहण ।
चदु व्रधु मदु चिरु भासिउ,
जासु सुजसु बुहयण सुपयासिउ ।
तासु भज्ज पदमा गुणसारी,
रूवरासि वल्लहसुपियारी ।

बीई मुद्धकुंवरि णामकिउ,
जा सोहग्ग रूव-रइ-सकिय ।
सीलाहरण विभूसिय देहिय,
मुणिवर विणय-दाण सुसणेहिय ।
कुवरि उयरि सुव तिण्णिउवण्णइ,
सुजसु पज कव्वह वण्णें कइ ।
ण रयणत्तय धम्मह्णु कारणं,
कप्पतरुव जण दुक्ख-णिवारण ।
दादू साहू पढमसुउ भासिउ,
जे सुय णाणु दाणु सुपयासिउ ।
जसहर बीउ भुवणि जस सायरु,
णयणसीहु तहु लहु वउ भायरु ।
दादू णारित्ति हुइ सुमणोहरि,
णं रइ पीइ बे वि कामहु घरि ।
पढम भज्ज रुइ सासुय खण,
लच्छि पयक्खि श्रंग सुह लक्खश ।
खिउसिरि णाम श्रवर सुपहाणी,
ससिमुह जिम इदहु इदाणी ।
दाण माण सम्मत्त सुरेवइ,
रइ-सोहग्ग सुजस णं देवइ ।
श्रतिहि दाणु श्रणु दिणु बहु दिज्जइ,
चउ विह सघ विणउ विरइज्जइ ।
तासु सरीरि पुत्तु उप्पण्णउ,
माणस सरिह सुवसु मण णुण्णउ ।
श्रासकण्णु णामेण मणोहरु,
चिरु णंदउ जें माडउ णिव घरु ।
गेहणितासु रूवगुणसारी,
णाम राइसिरि पइ सुपियारी ।
परियणु श्रवरु जहा वण्णिज्जइ,
तउ बीयउ पुराणु विरइज्जइ,
एयहि मज्झि गरुउ पुरिसत्तणु,
वणिउ जासु सुयण गुण कित्तणु ।
दादूसाहु जिणेसरि भत्तउ,
पुरिस सीहु वय सील पवित्तउ ।
श्रभयाहार-सत्थ पुणु श्रोसहु,
तिविह पत्त पीणिय संतोसहु ।

घत्ता—

लेहाविउ एहु गुण णिहाणु कल्लोल णिहि
णिसुणंत कहत भवियण जणमण होइ दिहे ॥७

सवच्छरु सोलह सइ उत्तउ,
उवरि सत्तवरि सह संजुत्तउ ।
मग्गिसिरह सिय पचमि णिम्मल,
गुरु वासरु गरिट्ठु...... ।
जोगु मुहुत्तु लग्गु णखत्तुवि,
सुहदायऊ ससिह रुवसु जुत्तवि ।
चंदवार गढ दुग्ग दुग्गिज्जह,
संघाहिव चेयाले मज्झह ।
रामपुत्त पगारव लिहियउ,
जिम सुइकित्ति कई सें विहियउ ।
सुद्धकरि वि जो भवियण भासइ,
बोहि लाहु तहु देऊ सरसइ ।
णदउ भवियणु धम्म गुरुक्कउ,
णंदउ जइण संघु मल-मुक्कउ ।
णदउ कम्मू चउद्धर माणउ,
णंदउ दीपुभुवणि सु पहाणउ ।
णंदउ...........गरिट्ठउ,
णदउ चूहरुचदु जणिट्ठउ ।
णदउ साहु सधारणु संदरु,
णदउ राम गरुव गिरि मदरु ।
णदउ पढमसीह जे साहिउ,
वारसंगु सयलु वि श्रवगाहिउ ।
एयह पमुह सघु णदउ चिरु,
सुह सपय समूहु णव-णिहि थिरु ।
णदउ पढइ-सुणइ व्वर काणइ,
णदउ भावसुद्धु मणि माणइ ।

घत्ता—

णंदउ गुज्जरगुट्ठि परियण पुत्त कलत्तज्जुउ ।
जवलगि कह हरिवस जाम ससि रवि श्रटल धुउ ॥८

श्रामेर भंडार प्रति

परिशिष्ट ३

प्रशस्ति सग्रह में छूटे हुए तीन ग्रन्थो को प्रशस्तियाँ

रोहिणि विहाण कहा (रोहिणि विधान कथा)

देवनदि

आदिमंगल—

जिणवरु वदेविणु भावधरे विणु दिव्व वाणि गुरु भत्तिए ।
रोहिणि उववासे दुरिय-विणासहु फलु अक्खमि णियसत्तिए

अन्तिम भाग—

घत्ता—

रयणत्तयग्गिट्ठह सील विसिट्ठह जीवहंतिणु सुमिरतह ।
देवणदिमुणि भासइ दुरिय-पणासइ रोहिणिविहि-
पालतह ।।

इति रोहिणि विधान समाप्तम् ।

वड्ढमाण चरिउ (वर्धमान चरित)

विबुध श्रीधर

आदिभाग—

परमेट्ठि हो पविमल दिट्ठि हो चलण णवेप्पिणु वीर हो ।
तमु णासमि चरिउ समासमि जिय-दुज्जय-सरवीर हो ।।१।।
(इसके बाद वर्तमान चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति है) ।

× × × ×

इक्कहिं दिणए णरवर णदणेण,
सोमाजणणी आणंदणेण ।
जिण चरण-कमल इंदिदिरेण,
णिम्मलयर-गुणमणि-मदिरेण ।
जायस कुल-कमल दिवायरेण,
जिणिभणियागम-विहिणायरेण ।
णामेण णेमिचदेण वुत्तु,
भो कइ सिरिहर सद्दड्ढ जुत्तु ।
जिह विरइउ चरिउ दुहोहवारि,
ससारुब्भव सतावहारि ।
चदप्पह-सति-जिसरणेराह.
भव्वयण-सरोज-दिणेसराहं ।
तिहवइ विरयहि वीरहो जिणासु,
समणयण दिट्ठ कचण तिणासु ।
अंतिम तित्थयर हो थिरयरासु,
गभीरिय-जिय-रयणाय-रासु ।
ता पुज्जहि मज्झु मणोहराइ,
विणु भतिय णिरूपम णिय सुहाइ ।
त णिसुणेव भासिउ सिरिहरेण
कइणा वुहयण-माणस हरेण ।

घत्ता—

जवुत्तउ तुम्हहि जुत्तउ त अइरेण सयाणमि ।
णिय सत्तिए जिणपयभत्तिए तिह विह तपि वियाणमि ।।२।।

× × × ×

इय सिरि वड्ढमाण तित्थयर देव-चरिए पवर-गुण-रयण-णियर-भरिए विवुह सिरि सुकइ सिरिहर-विरइए साहु सिरि णेमिचद णामकिए, णदिवड्ढणणरिंद-वइराय वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ ।।१।।

अन्तिम भाग—

अन्त के सात पत्र न मिलने से अन्तिम प्रशस्ति नही दी गई । देखो, "अनेकान्त वर्ष" ४ कि० ६ ।

(दूनी भडार, जयपुर)

सतिणाह चरिउ (शांतिनाथ चरित्र) अपभ्रंश

शुभकीर्ति देव

आदि मगल—

पणविवि सिरिकतहु उसहु पवित्तहु केवल सिरिहु सुकतहु ।
हउ अक्खमि वर कह हो पविमल यह दिण्णचारु सजभवह ।

× × × ×

इय हय भासा (कइ) चक्क वट्टि सिरि सुहकित्ति देव विरइए महाभव्व सिरि रूपचद मण्णिए महाकव्वे सिरि विजय वभमोणाम पढमो सधी समत्तो ।

अन्तिम भाग—

.. ..

इदि उहयभासा (कइ) चक्क वट्टि सिरि सुहकित्तिदेव विरइए महाभव्व सिरि रूपचद मण्णिए महाकव्वे सिरि सतिणाह चक्काउह कुमार णिव्वाण गमण णाम दगु णीसमो सधि समत्तो ।

लिपि स० १५५१, नागौर भडार

इस ग्रथ की उक्त प्रशस्ति का भाग प० कस्तूरचद जी काशलीवाल एम.ए. जयपुर महावीर शोध सस्थान से प्राप्त हुआ है, इसके लिए आभारी हूँ ।

णेमिणाह चरिउ (नेमिनाथ चरित्र)

कवि दामोदर

आदिभाग—

इस ग्रंथ का आदि का एक पत्र उपलब्ध नहीं हुआ।

× × × ×

जिण हरइ असखइ णिरुपमाइं,
वण्णण को सक्कइ तह गुणाइ।
सालूर मणोहर भय-धुवेइ,
णग्गोय कित्ति ण दिवि जिवेइ।

घत्ता—

तहि वीर जिणेसरु हय वम्मीसरु दुक्किय काय-विणासयरु।
णिग्गथ महामुणि सत्थत्थहभुणि अणुअण्णु ण भायहि परमपरु

तहि कमलभद्दु सघाहि वई,
कुसुम-सर-वियारण तउ-तवई।
मम-अट्ठ दुट्ठ णिट्ठवण वीरु,
बावीस परीसह सहण धीरु।
अरि-कम्म किरडि छिण्णण विवाणु,
राईव भव्व, सबोह-भाणु।
सकसाय तिसल्ल तिवेउ हणणु,
जमु तिण्णि काल सुमसाण हरणु।
हय गारव मोहु मयदु जित्तु,
जिण धम्मु देस णं णिरु पवित्तु।
भव्वयण विंदवइ वय सुजाण
धीमंत सत सजम णिहाण।
सह मडणु मल्हहं तणउ सुण्णु,
णग्गेउ णिरतरु करइ पुण्णु।
तहि रामयंदु गुणगण महतु,
सजम सु-सील गुरु चरण भव्वु।

घत्ता—

गुज्जरधर देसहो गरुवय वेसहो सपत्त उ मालवविसइ॥३॥

सलखणपुरु दिट्ठउ मणि सतुट्ठउ,
भव्व वीर जिण-पय-णवउ।
खडिल्ल वाल कुल-कमल अमलु,
विसयह विरत्तु ससार सहलु।
केसवह तणउ भव्वयण वधु,
इदुउ जिणधम्महो धरइ खधु।
तिपयाहि ण देइ जिणेसरहो,
जय जय भणंतु परमेसर हो।
णिव्विण्णउं भव-भीसण रउद्दि,
ससार-गहिर-तारहि समुद्दि।
छुडु दिट्ठउ तुह मुह कमलु अज्जु,
हियइ छिउ सिद्धइ सयल कज्जु।
अण्णाण मोह तिमिर-हर-सूर,
कदप्प-दप्प-हय पलय पूर।
कलि-मलि णिण्णासण सुजस धम्मु,
लक्खण अणेय बहु विहूय रम्मु।
ते, धण्ण णयण जे पइ णियति,
ते धण्ण सवणु तुअ थुइ सुणति।
ते धण्ण पाणि तुव पूज्ज रयहिं,
कलि-मलु असेसु णिव सहचयहिं।
सत्तक्खर पच प्पयहं लीणु,
जिणु थुणइ भव्वु-पह-पंथ खीणु।

घत्ता—

जिण सामिउ वदिउ मणिआणदिउ इक्छा कारकरे वि पुणु,
उज्जतहं सामिउ सिव-सुहगामिउ वदहु भवियहु णेमि जिणु

आसीस देइ पयडइं णिमित्तु,
भउ णग्ग एउ साणंद चित्तु।
तव वयणह उवरणि वद्धगाहु,
स जाउअ चित्तउ धम्मलाहु।
किं किज्जइ रज्जइ परियरेण,
किं किज्जइ हय-गय-मण हरेण।
माया मउ पुत्त-कलित्त-मित्त,
सुरचाउ जम सयलइ अणिच्चु।
अब्भत्थ वि षमणइ अमलचित्तु,
णग्गोउ परम भव्व मणहि मित्तु।
दामोयर कइ अक्खहि वियाणि,
जिस होइ ण धम्मह तणिय ताणि।
सवियारुस्स विब्भमु सरस मरिउ,
महु अविखउ णेमिकुमारचरिउ।
जिमु गहिर-भवोवहि तरमि अज्जु,
स भलउ धम्मु होइ णियय कज्जु।

घत्ता—

तहो धम्मणिमित्त हो दिढ सम्मत्त हो सासयसुह तह कारण हो,
वण्णमि मगहाहिउ भव्वयणह पिउ भव्व कव्व रयणायरहो।।५।।

अन्तिम भाग—

इय णेमिणाहचरिए महामुणि कमल भद्द पच्चक्खे महाकइ कणिट्ठ दामोयर विरइए पंडिय रामयद आएसिए महाकव्वे मल्ह सुअ णागएव आयण्णिए णेमिणिव्वाण गमणं पचमो परिच्छेओ सम्मत्तो ।।१४५।।

वारह सयाइ सत्तासियाइ, विक्कम रायहो कालह ।
पयारह पट्ट समुद्धरणु णरव्वइ देवपालह ।।
तह तणइ मति सुर गुरु सवाणु,
धम्मेउ धम्मु गुण गण णिहाणु ।
गुणहद्दह पट्टु समुद्धरणू,
मुणि सूरिसेण कलि-मल हरणू ।
तह तणउ सीसु मुणि कमलभद्दु,
भव्वयणविंद जण मण अणदु ।
तहिं वणिवरु एकु पसण्णुचित्त,
णागेउ णाम भव्वयण-मित्तु ।
मेडत्तय वस उज्जाण करणु,
जे हीण दीण-दुह-रोय-हरणु ।
मल्हह णंदणु गुण गण पवित्तु,
तेणि भणिउ दल्ह विरयहिचरित्तु ।
मइ सलखणपुरि णिवस तएण,
किउ भव्वु कव्वु गुरु आयरेण ।
पिहिमी धर णदणु गयणिचदु,
उवएस करइ महु रामयदु ।
जस एवह णदणु जस णिहाणु,
वच्छल्लउ अइ मह एउ जाणु ।
जिण एवहु णदणु कइ करिणट्ठू,
दामोयरु सुजस णिहाणु दिट्ठु ।
तिण विरयउ णेमीसरचरित्तु,
स भलइ जु कवि साणद चित्तु ।
जो पठइ पठावइ लिहइ वि देइ,
सो मोक्ख महा पुरिपइ सूरेइ ।

घत्ता—

जगि सन्ति समिच्छओ जणु सुद्धइ छओ अट्ठकम्म पयडउ बिलउ ।
सलखणपुरि दिट्ठओ चित्तिगविट्ठओ वीरणाह तिहुवण तिलउ ।।१४६।।

देसहं रायह पुरवरह संति सयलद्धि भव्वयणु ।
पढइ सुणइ जो एक्कमण तहो होउ संति सव्वपरिण ।।
चउविहि सघह सुह-सति करणु,
णेमीसरचरिउ बहु दुख-हरणु ।
दुज्जीह जि किणि वय गुणइ लेहि,
भविभाव सिद्धि स भव्वउ तेहि ।
विसहर जिम जे पर छिद्दणियहिं,
ते कम्म कलकिय दुट्ठ-भवहिं ।
जे सुवण सुणहिं धरि साहिलासु,
ते लहहिं सगि सुहमइ णिवासु ।
पोसियइ सप्पुघिय दुट्ठएण,
परिणवइ होइ वि सुतक्खणेण ।
दुज्जण ज किज्जइ विणय सति,
त तह गुणस्स तह होउ सति ।

स० १५८२, जयपुर शास्त्र भण्डार
और टोडारायसिंह राजस्थान

इस ग्रन्थ की प्रति क्षुल्लक सिद्धिसागरजी और पं० कस्तूरचन्द जी शास्त्री एम ए के सौजन्य से प्राप्त ।

परिशिष्ट ४

जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के ग्रन्थ और ग्रन्थकार

परिशिष्ट नं० १

परिशिष्ट नं० २

परिशिष्ट नं० ३

णेमिणाह चरिउ	कवि लक्ष्मण
रोहिणी विधान कहा	देवनदि
वड्ढमाण चरिउ	विवुध श्रीधर
शांतिणाह चरिउ	शुभकीर्ति

परिशिष्ट ५

संघ, गण, गच्छ

परिशिष्ट ६

देश, नगर, पुर, ग्राम आदि

परिशिष्ट नं० ७

वंश, गोत्र, अन्वय आदि

परिशिष्ट नं० ८

राजा, मंत्री आदि

परिशिष्ट नं० ६

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित आचार्य, विद्वान और भट्टारक

प्रशस्ति सग्रह मे उल्लिखित जिन-जिनालय

अंगपाठी मुनि आदि

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित ग्रन्थ

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित श्रावक-श्राविका

---

१०२ वीं पासणाह चरिउ की प्रशस्ति का अंतिम अंश पृ० १२९

(यह अंश प्रेस से खो गया पुनः ग्रन्थ से लेकर दिया जा रहा है।)

अन्तिम भाग :—इगवीरहो णिव्वुइ कुच्छराइ, सत्तरिसहँचउसयवत्थराइ।
पच्छइ सिरिणिवविक्कमगयाइ, एउणसीदीसहु चउदहसयाइ ॥
भादवतमएयारसिमुणेहु, वरिसिक्के पूरिउ गथु एहु।
पचाहियवीससयाइ सुत्तु, सहसइ चयारि मडणिहिजुत्तु ॥
बहुलक्खणमूगासुउ वरिट्ठु, आणदमहेसर भाइ जेट्ठु।
जसु पचगुत्तसीहतियाइ, हुअ करम-रयण महमयणराइ ॥
सो करम उलेविणु सज्जणाह, आहासइ गुणियण गुणमणाह।
जो दुविहालकारइ मुणेइ, जो जिणसासणि दसणु जणेइ ॥
जो सम्मत्तायरुगुणअगव्वु, जो आयम-सत्थइ मुणइ भव्वु।
जो जीवदव्व तच्चत्थभासि, जो सद्दासद्दह कुणइ रासि ॥
गुणयास भाउ सवग्गु भेइ, जो वग्गु वमा मूल जि मुणेइ।
जो सख असख अणत जाणि, जो भव्वाभव्वह कय पमाणि ॥
जो घण घण मूलह मुणइ भेउ, सो सोहिवि पयडउ गथुएउ।
अह णमुणइ तो मज्भुत्थ होउ, अमुणतह दोसु म मज्भ देउ ॥

घत्ता :—जिण समय पहुत्तणु गुणगणकित्तणअवसविमहिवित्थारइ।
हउ तसु पयवदमि अप्पउ णिदमि जो सम्मत्तुद्धारइ ॥९॥
सो णदउ जिणु सिरिपासणाहु, उवसग्गविणासणु परमसाहु।
णदउ परमागमु णादिसघु, णदउ पुहवीसरु अरिदुलघु ॥
णदउ पउरमणु अहिंसभाउ, बुहयणु सज्जणु अमुणियकुभाव।
णदउ सिरि वाम्हहो तणउवसु, कीलउ णियकुलिजिमसेरहि हंसु ॥
णदउ जिणधम्म णिबद्धराउ, लोणायरु सुअ हरिवम्ह ताउ।
णदउ णदणु सहु भायरेहि, घाटम्मता उपहसिय मणेहि ॥
णदउ लहुभायरु सहु सुएण, परमत्थु जेण वुज्भिउ मणेण ॥
णदउ अवरुवि जिणसमयलीणु, खउजाउ दुट्ठु मिच्छत्तु हीण।
णंदउ जो पयडइ पास चित्तु, आतम सारकिउ गुण विचित्तु ॥
जो सुरगिरि रविससि महिपओहि, ता चउविह सघह जणहिं वोहि।
असुवालु भणइ मइ कयउ राउ, जिणु केवललोयणु मज्भुदेउ ॥

किंचोज्ज जासुघरिज हवइ। भो किं सेवय रहो त ण देइ ?

घत्ता—जा जिणमुहणिग्गय सग्ग सुभगम गिरनइ लोणहो सारी।
ज किउ हीणाहिउ काइमि साहिउ तमहु खमउ भडारी ॥६॥

इय पासणाह चरिए आयमसारे सुवग्ग चहुभरिए बुह असवाल विरइए सघाहिप सोणिगस्स कण्णाहरण सिरिपासणाह णिव्वाण गमणोणाम तेरहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१३॥

तृतीय परिशिष्ट (पृ० १५०) का वड्ढमाणचरिउप्रशस्ति का अन्तिम भाग

(तृतीय परिशिष्ट के छप जाने पर भाद्रपद मे व्यावर के ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन मे प्राप्त ग्रथ से नोट की हुई वड्ढमाणचरिउ प्रशस्ति का अतिम भाग यहाँ दिया जा रहा है)।

इह वोदाउ णयरे मणोहरे, विप्फुरत णाणाविह सुरवरे।
जायसवस सरोय दिणेसहो, अणुदिणु चित्त णिहित जिणेस हो।
णरवर सोमइ तणु सभूवहो, साहु णेमिचदहो गुणभूवहो।
वयणे विरइउ सिरिहरणामे, तियरण रक्खिय असुहर गामे।
'बील्हा' गब्भ समुब्भव देहे, सव्वयणहिं सहुँ पयडियणेहें।
एउ विरज्जिय पावखयकरु, वड्ढमाणजिणचरिउ सुहकरु।
णिवइविक्कमाइच्च हो कालए' णिव्वुच्छव वर तूर खालए।
एयारह सएहिं परिविगयहिं, सवच्छर सय णवहि समेयहि।
जेट्ठ पढम पक्खइ पचमिदिणे, सूरुवारे गयणगणि ठिइयणे।
होउ सति सघ हो चउभेयहो, वड्ढउ बुद्धि सुयण सधाय हो।
रामयदु णियकुल हरिदीवउ, अमुणिय वरिस सहासइ जीवउ।
सिरिचदु व चदु व परियट्टउ, सम्मत्तामलसिरिआयट्टउ।
विमलचदु चदु व जणवल्लहु, होउ अमुक्कउ लच्छिए दुल्लहु।
एयहि णियहि णिय पुत्तहिप रियारियउ, जिणवर धम्माणदे भरियउ।
णेमिचदु महियले चिरु णदिउ, जिण पायारविंद अहिवदउ।
एयहो गथ हो सख मुणिज्ज हो, वे सहास सय पच भणिज्ज हो।

घत्ता—इयचरिउ वीरणाहहो तणउ साहु णेमिचदहो मलु।
अवहरउ देउ णिव्वाणसिरि, वुहसिरिहरहो वि णिम्मलु।

इयसिरि वड्ढमाणतित्थयरदेव चरिए पवर गुण रयण णिय भरिए विबुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमचद अणुमण्णिए वीरणाह णिव्वाणगमणो णाम दहमो परिच्छेओ सम्मत्तो।

—ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन व्यावर प्रति।

सुगन्ध दसमीकहा (सुगन्ध दसमी कथा) भ० विमलकीर्ति

आदि मंगल

पणवेप्पिणु सम्मइ जिणेसर हो जा पुव्वसूरि आगम भणिया।
णिसुणिज्जहु भवियहु इक्कमना कह कहमि सुगधदसमी हित भणिया ।।

× × × ×

अन्तिमभाग

दसमिहि सुग्रध विहाणु करेविणु तइय कप्प उपण्ण मरेविणु।
चउदह आहरयेहि पसाहिय सागी सुहुइ भुजइ अविरोहिय ।।
पुहवी मण्डणु पुरु सुरुदुल्लहु, राउ पयाउ दयाजण वल्लहु।
मानस सुदरि गत्ति उपण्णी मयणावलि नाम सपुण्णी ।।
दिणि दिणि कुमरि वि पावहु भत्ती भव्वलोय माणस मोहती।
सामवण्ण मण्णवि सुरहि तणु, जिणवरु सामिउ पज्जइ अणुदिणु।
दाणु चउविह दिति ण थक्कइ, तह वच्छल्ल का वण्ण ण सक्कइ।
धम्मवत पेखि णरणारहि पोमाइयइ धम्मह असगहि।
राय सा परिणाविय जामहि पुत्तकलत्तहि वट्टियतामहि।
रामकित्ति गुरुविणउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरणु करेविणु सइ अणुक्कमेण सो मोक्खु लहेसइ ।।
घत्ता—जो करइ करावइ एह विहि वक्खाणिय विभवियह दावेइ।
सो जिणणाह भासियहु सग्गु-मोक्खु फल पावइ ।।८।।

इति सुगध दसमी कथा समाप्ता

पुप्फंजलिकथा (अनन्तकीर्ति गुरु)

आदि मंगल

जय जय अरुह जिणेसर हयवम्मीसर मुत्तिसिरी वरगण धरण।
अयसय गण भासुर सहय महीसर जुत्ति गिराधर समकरण ।।

अन्तिम भाग

बलवत्तरिगणि रयणकित्ति मुणि सिस्स वूहिव दिज्जइ।
भावकित्ति जुउ अनतकित्ति गुरु पुप्फजलि विहि किज्जइ ।।११।।

पुष्पाजलि कथा समाप्ता

—राजस्थान ग्रथ भडार सूची भा० ४ पृ० ६३२

मेघमालवयकहा (कवि ठकुरसी)

रचना काल सं० १५८०

आदिभाग

णुय चरिम जिणिंदु वि दय कदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णथिरो ।।

दिण्णेक ढुढाहड देस मज्झि, णयरी चपावइ अरिश्र सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णिहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासस‍ि वर मुणीसु, सह सठिउ ण गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय भव्व, णिसुणत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तह मल्लिदास वणि तणु रुहेण, सेवइ सुवुत्तु विणय सहेण।
भो घेल्हणाद ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहणु लीह।
महु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केण फलु लद्धु आसि।
इह कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बध मित्त।
ता विहसि वि जपइ घेल्हणादु, जो धम्म कहा कहणि अमदु।
भो मित्त ! पइमि बुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम बुज्झउ ण अत्थु।
वायरणु न मइ गुणियउ गुणालु, कोवद्दम दीठउ रसु रसालु।
जो हरइ जड तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु।
कह कहणि बुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रजावमि चित्त तुज्झ ।।

अन्तिम भागः—

सुअभयडी चिरू लेवि सुत्तय, करी कहा एह महा पवित्तय।
उणगल जपय मत्त जपिया, खमेउ त देवी भारही मया ।।
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वसि मय सायरु।
विणय सज्जण जणमण रजणु, दाणि दुहियणाह उल-भ जणु ।।
रूवे मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि।
जिण गुण णिग्गथह पयमत्तुवि, तोसण पडिय कवियण चित्तु वि।
वुच्छिय वयण सयल परिपालणु, बधव तिय सहयर सुयलालणु।
एलीतिय भण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिद्धु मणि।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थे ?
पुणुवि पहाडियाह वरवसवि, लद्धीसयल णयरि मुपससवि।
जीणा नदणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसते।
पुणु पारस तणेण दुहुवीरें, गहिउ सुवउ जइ तइजस धीरें।
पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि।
पुणु कह मुणिवि ठकुरसी णदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि।
पुणु णाथूसी वग्गरि भुल्लणि, लीयउ वउ जिउ रिय भय डुल्लणि।
पुणु कह सुणिवि मणोहर णारिहि, अवरहि भव्वण अर णर-णारहि।
मेघमालावउ चगउ महियउ, इछिउ फलु लहि सहि कवि करियउ।
चपावतीव णयरि णिवसते, रामचन्दपहु रज्जु करते।
हाथुवसाहु महत्ति महत्ते, पहाचन्द गुरु उवएसते।

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	२	२३	सभवहो	सभवणाहहो
५३	१	१२	देवदातु	देवदासु
६६	१	६	दोसुणु	दोणु
८८	२	३८	अरिट्ठणेमि चरिउ	रिट्ठणेमिचरिउ
८९	१	२०	णिवड्डु	णियडे
८९	१	१६	तसणिउ	ता भणिउ
९०	१	३२	विणमिय	वियभिय
९०	२	३६	धम्मभेण	धम्मभेय
९१	१	६	सरवाया	सहाया
९१	२	२८	मिच्छमय	मिच्छामय
९१	२	३६	वट्टमाण	वड्ढमाण
९८	२	३५	थुड	थुउ
९८	१	१२	वणसरु	वणिवरु
१०१	२	०५	कईयण्ण	कईयणमण
१०४	२	१६	सिरीमणि	सिरोमणि
१०५	१	१९	४	६४
१०७	१	३१	गायमु	गोयमु
१०८	२	२७	तिहुमणि	तिहुयणि
१०८	१	३४	पाविड	पाविउ
१०९	२	१३	सम	यम
१०९	२	१६	आरहइ	आराहइ
११०	१	८	दुधारसी	दुद्धारसी
११०	२	५	कविदेवदत्त	नयनानन्द
११०	२	७	देवदत्तह	देवसाह
११०	२	२१	भलु	फलु
११२	१	८	मडलामरिय	मंडलायरिय
११४	२	१७	जागि	जगि
११४	२	२१	भोमराड	भोयराड
११५	१	१२	नामा	नाम
११५	१	२७	भोयहु	पुणु भोयराय
११५	२	११	माणिउ	माणें
११५	२	२१	जितसल्लो	जितमल्लो
११८	२	२३	एपारस	एयारस
११९	१	२३	चेथाल	चेयाल
११९	२	१४	समरण्ण	समरह
१२०	१	१३	रयणकित्त	रयणकित्ति
१२२	१	१९	९८	९९
१२३	२	२१	दिवबदही	दिवचदही
१२४	१	१७	९९ पास पुराणं	१०० पास पुराण
१२६	२	१	१००	१०१
१२८	१	८	१०१ पास पुराण	१०२ पासचरिउ
१२८	२	२९	सतियउ	सठियउ
१२८	२	३७	सुअ कुमर	सुअलक्खण
१२९	१	३०	सयत्त रयणा	सम्मत्त रयण
१२९	२	२१	———	देखो, पृ० १७७
१२९	२	३२	१०२	१०३
१३०	१	३३	सुरसइ	सरसइ
१३१	२	१	१०३	१०४
१३२	१	१	१०४	१०५
१३२	१	२५	१०५	१०६
१३३	१	११	कुमुमचदु	कुमुयचदु
१३३	२	१९	१०६	१०७
१३५	१	१०	१०७	१०८
१३५	२	१	१०८	१०९
१३५	२	२९	बुक्ख	दुक्ख
१३६	१	३	१०९ स्सय भुछद	११० सयभुछद
१३७-२-१४			११० भविसयत कहा	१११ भविसयत्तकहा
१३८	२	२	प० १-११०	१११ महापुराण
			महापुराण	
१३९	२	५	प० १-११२	११३
१४१	१	१	प० १-११३	११३
१४२	१	३०	प० १-११४	११५
१४४	१	५	प० २-१	११६
१४७	२	२९	साहुणासु	साहुणामु
१५०	१	—	तीनग्रन्थो	चारग्रन्थो
१५०	२	२९	प० ३ जिसजिणेराह	णेसराह
१५१	२	३०	दामोपर	दामोयर
